कृष्णदास संस्कृत सीरीज २४८

वृद्ध-वसिष्ठसंहिता

पाठसंवादसंवलितः 'नारायणी' हिन्दीटीकासहितश्च

सम्पादकोऽनुवादकश्च
डॉ. चन्द्रमौलि रैणा

संशोधकः
प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय

प्रथमो भागः

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज़
२४८
***

वृद्ध-वसिष्ठसंहिता

पाठसंवादसंवलितः 'नारायणी' हिन्दीटीकासहितश्च

सम्पादकोऽनुवादकश्च
डॉ. चन्द्रमौलि रैणा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जम्मू

संशोधकः
प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, ज्योतिषविभाग
पूर्व प्रमुख, सं.वि.ध.वि.संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रथमो भागः

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०७१, सन् २०१५

ISBN: 978-81-218-0363-2

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३३४५८ P.P. & २३३५०२०

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
(आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

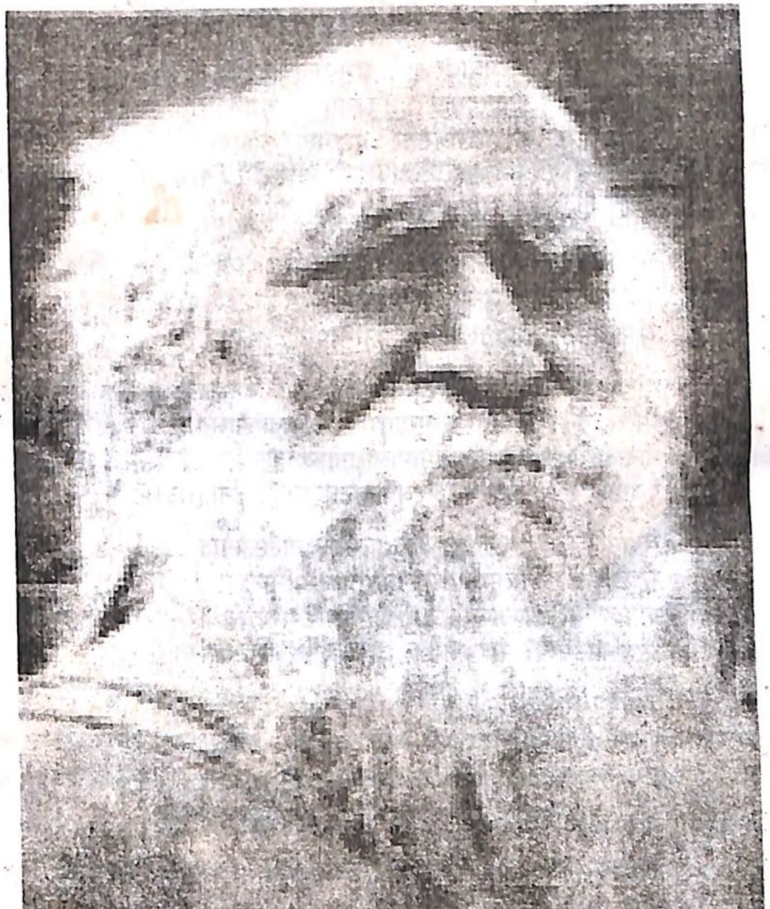

श्री १०८ पूज्यपाद् ब्रह्मर्षि बाबा दूधाधारी बर्फानी जी महाराज

ब्रह्मर्षि बाबादूधाधारी महात्मनां प्रशस्तिः।।

श्री १०८ श्री ब्रह्मर्षिदूधाधारी प्रशस्तिः

दुग्धाधारी यतिवर प्रभुर्वैष्णवानन्दकारी
वेदोद्धारी प्रतिपदमहो विश्वतो यज्ञकारी।
सिद्धाचारी स शणवसनो बाल्यतो ब्रह्मचारी
ब्रह्मानन्दं जनयति हृदि स्मर्तुरुद्धारकारी।।१।।

नाम्नां धाम्नामुपधविरहेणाऽऽत्मसिद्धौ प्रसिद्धाः
पुण्यात्मानो द्विजसुरगवां सर्वदेवावधानाः।
यज्ञैरिष्ट्वा जनगणमनोहारि पर्जन्यहेतो।
धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातं दधानाः।।२।।

दुग्धाधारिमहात्मनां द्विजकुले जातं शतं जन्मना–
मित्थं मे प्रतिभाति सन्मुखधिया यज्ञव्रताभ्यासतः।
नानातीर्थनिषेवणाद्गुरुकृपामासाद्यगोपालनाद्
देवानां सततार्चनात्षडक्षरजपादष्टाङ्गयोगार्जनात्।।३।।

वेदानां श्रवणाज्जगद्गुरुमुखान्मौनव्रतालम्बनात्
सच्छास्त्राचरणात्पुराणश्रवणात्पित्रार्चनान्नित्यशः।
गायत्र्याविधिवज्जपन्द्विजमुखान्नित्यं पुरश्चर्यया
श्रौतस्मार्तमखैः सदेहजगतः कल्याणसञ्चिन्तनात्।।४।।

ब्रह्मर्षिप्रवरा जगद्गुरुवरा दृष्ट्वैक दृष्टया जगत्
हस्राक्षं जितवन्त इत्थमपि ते जाताः सहस्राध्वराः।
नानातीर्थवनादिषु हिमजलाशय्यास्तपश्चर्यया
कृत्वाऽऽत्मानमतीव निर्मलमहो जगतां हिताय स्वयम्।।५।।

उड्राङ्गासमवङ्ग मागधखसाऽऽसाकेत काशी गया
जम्बू श्रीनगर सदूधमपुराम्बाराम आर्याश्रियम्।
राजौरी ह्यखनूर मानससरो जन्द्राह भड्डूगुढा
गङ्गायामुनसङ्गमं हरिहरद्वारोज्जयिन्याह्वयम्।।६।।

क्षेत्रं नैमिषिकं समेत्य वदरीक्षेत्रं कुरूणां वरम्
गामं गामहो सदर्षिप्रवराश्चान्त्ये स्मरन्तः प्रभुम्
न्यास्थञ्छ्री प्रभुदास वैष्णवकृते सत्कार्यभारं महत्
भारश्री वहताँ सतां प्रभुवरा जीवन्तु कल्पावधिम्।।७।।

इति श्रीविहारिलालवाशिष्ठप्रणीता
श्री १०८ श्रीब्रह्मर्षिदुग्धाधारिमहात्मनां
।। प्रशस्तिः समाप्ता ।।

पुरोवाक्

ज्योतिषशास्त्र के १८ प्रवर्तकों में १६ मानवऋषिगण रहे हैं। अनुमान किया जाता है कि सभी ऋषियों की अपनी-अपनी संहितायें भी रही होंगी, किन्तु कुछ ही संहिताओं के उल्लेख मिलते हैं, उनमें भी सभी उपलब्ध नहीं हैं। उपलब्ध संहितायें क्रमशः प्रकाश में आती जा रहीं हैं। कहीं-कहीं एक ही ऋषि के नाम दो तरह से उद्धृत हैं। यथा—वृद्धगर्गः, गर्गः, वृद्धवसिष्ठ, वसिष्ठः। एक ही ग्रन्थ में दो नामों से वचन उपलब्ध होने से यह भ्रम उत्पन्न होता है कि दोनों संहितायें तथा उनके आचार्य एक ही है या पृथक्-पृथक्। यथा—तिथिनिर्णयप्रसङ्ग में जयसिंहकल्पद्रुम में दो परस्पर विरुद्ध वचन मिलते हैं—

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी।
पूर्वविद्धा तु कर्तव्या यदि न स्यात् परेऽहनि।। (वसिष्ठः)

तथा—

द्वितीयापञ्चमीवेधाद्दशमी च त्रयोदशी। चतुर्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथी।

—वृद्धवसिष्ठ

कालान्तर में दो गर्ग संहिताओं के उद्धरण उपलब्ध होने से दो पृथक्-पृथक् गर्ग संहिताओं का होना सुनिश्चित हो गया। उनमें एक ज्योतिष विषयक है तथा दूसरी पुराण विषयक। पौराणिक गर्ग संहिता तो अब मुद्रित भी हो चुकी है, किन्तु ज्योतिष विषयक संहिता पाण्डुलिपि के रूप में भी अभी दुर्लभ है। वसिष्ठ संहिता दो है या एक, अभी भी अनिर्णित है। अपने जम्मू प्रवास के समय सन् १९७६ में रघुनाथ ग्रन्थालय के पाण्डुलिपि संग्रह में मैंने गर्ग संहिता ढूँढने का प्रयास किया था। वह तो नहीं मिली, किन्तु मुझे कश्यपसंहिता तथा वृद्धवसिष्ठ संहिता की एक-एक प्रति मिली। मैंने सोचा इन दोनों ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का उत्तम मार्ग यही होगा कि इन ग्रन्थों पर शोध कार्य हेतु दो छात्रों को दे दिया जाय। इस प्रस्ताव से अत्यन्त उत्साहित होकर विभागीय वरिष्ठ विद्वान् पं. विहारीलाल शास्त्री ने कश्यपसंहिता पर कार्य करने का भार स्वयं ले लिया तथा सोत्साह उसे सम्पन्न भी किया। वृद्धवसिष्ठसंहिता को शोधकार्य हेतु रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ में प्रथम सत्र के शिष्य श्री चन्द्रमौलि रैणा को दिया। चन्द्रमौलि रैणा वृद्धवसिष्ठसंहिता के अन्य हस्तलेखों का संकलन कर पाठान्तर सहित समीक्षात्मक सम्पादन कर सन् १९८९ में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान से शोध उपाधि प्राप्त की। अत्यधिक अन्तराल के बाद इसका प्रकाशन जम्मू में प्रारम्भ हुआ। अकस्मात् किसी कार्यविशेष से मुझे जम्मू जाना पड़ा। इसके मुद्रण कार्य को

देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। चन्द्रमौलि रैणा के आग्रह पर मैंने इसका पुन: अवलोकन किया तथा कुछ संशोधन और परिष्कार का सुझाव दे दिया। इस कार्य में पुन: कुछ विलम्ब हो गया। आज इसे हिन्दी अनुवाद के साथ मुद्रित होते देख कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। यद्यपि यह उचित नहीं था, किन्तु सम्पादक की अभिरूचि ग्रन्थ को दो भागों में प्रकाशित करने की रही है। इसलिए ग्रन्थ के दो भाग किये गये। प्रथम खण्ड के मुद्रण के अनन्तर अतिशीघ्र ही इसका दूसरा खण्ड भी प्रकाश में आ जायेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

ज्योतिषशास्त्र में संहिता ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, क्योंकि इनमें अनेक प्रकार के विषयों का समावेश होता है तथा सभी विषय राष्ट्रहित और जन कल्याण की दृष्टि से प्रतिपादित किये गये हैं। संहिताओं के माध्यम से ही हमें अपने प्राचीन ज्ञान विज्ञान की अनेक सूचनायें मिलती हैं। इन्हीं के माध्यम से हम कल्पना कर पाते हैं कि हमारे ऋषि, महर्षि तथा पूर्वज, आचार्यगण भूगर्भ, अन्तरिक्ष, कृषि, वायु-वृष्टि तथा पुश-पक्षियों के विषय में भी कितने जागरुक एवं दत्तावधान थे। जिनका अनुसन्धान सहस्राब्दियों से विभिन्न क्षेत्रों में जनमानस का मार्ग दर्शन करता आ रहा है। प्राय: सभी संहिताओं में कुछ न कुछ विशिष्ट विषयों का समावेश होता है, जिनसे उनकी पृथक्-पृथक् पहचान होती है, साथ ही अनेक विषयों में समानता भी होती है, जिनसे उन विषयों की प्रामाणिकता की पुष्टि भी होती है। वृद्धवसिष्ठ संहिता में भी अन्य संहिताओं की तरह ग्रहचार का विशद विवेचन करने के अनन्तर पञ्चाङ्गों तथा प्रमुख संस्कारों का विस्तृत निरूपण किया गया है। ग्रहदोषों का उल्लेख करते हुए उनके शमन के उपाय भी बतलाये गये हैं, जो इन संहिता के वैशिष्ट्य के रूप में चिह्नित किये जा सकते हैं। स्वयं संहिताकार ऋषि ने अत्यन्त संक्षेप में ग्रन्थ में वर्णित विषयवस्तु को एक पद्य में दर्शाया है—

शास्त्रस्वरूपग्रहचारमानप्रत्येकपञ्चाङ्गफलं क्षणाख्या:।
गोचारसंक्रान्तिनिशीशतारावलोपखेटग्रहकौटभाश्च।। (वृ.व.सं. १.९)

इन विषयों के आधार पर इस ग्रन्थ की व्यावहारिक उपयोगिता स्वत: सिद्ध हो जाती है। किसी भी पाण्डुलिपि की कई प्रतियों की समीक्षा कर पाठ निर्धारण करना तथा पाठान्तरों को श्लोकानुसार सुलभ कराना अपने आप में एक महत्वपूर्ण तथा शोधपरक कार्य है। समीक्षात्मकसम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने हेतु अपने प्रिय शिष्य डॉ. चन्द्रमौलि रैणा को साशीर्वाद बधाई देता हूँ। इस प्रकाशन से वृद्धवसिष्ठ संहिता की कई पाण्डुलिपियाँ भी सुरक्षित हो गईं। मैं आशा करता हूँ कि इस ग्रन्थ के अवशिष्ट अंशों का भी पाठान्तर सहित

सानुवाद, समीक्षात्मक संस्करण ग्रन्थ के द्वितीय भाग के रूप में अति शीघ्र प्रकाश में आयेगा। मैं अवशिष्ट कार्य की शीघ्र पूर्ति हेतु डॉ. रैणा को पुनः अग्रिम बधाई देता हूँ तथा उत्साहित भी करता हूँ साथ ही आशा करता हूँ कि शास्त्रों के मनन, चिन्तन में प्रवृत्त रहते हुए कुशलदैवज्ञ बनने का प्रयास करेंगे। दैवज्ञ के गुणों का वर्णन करते हुए आचार्य ने स्वयं लिखा है—

श्रुतिस्मृतिज्ञः पटुरर्थशास्त्रे शब्दोपविष्टः कुशलः कलासु।
त्रिस्कन्धविज्ज्योतिषिकः सुवेषः कुली सुवृत्तस्त्वगदः सुवृत्तः।। (वृ.व.सं. १.८)

मुझे आशा है इस प्रकाशन से पाठकगण सन्तुष्ट होंगे। उनकी सन्तुष्टि पर ही ग्रन्थ की सार्थकता सिद्ध होती है। इस अवसर पर ग्रन्थ को सुन्दर कलेवर देने हेतु मैं चौखम्बा संस्कृत सीरीज के दोनों चिरञ्जीवी सचिन गुप्त एवं कौशिक गुप्त कर्णधारों को साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने इसके प्रकाशन में अपनी रुचि दिखलाते हुए इसे सोत्साह सम्पन्न किया।

रामचन्द्रपाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष ज्योतिषविभाग
पूर्व प्रमुख, सं.वि.ध.वि.संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भूमिका

दिवाकरं ग्रहाधीशं हेरम्बञ्च सरस्वतीम्।
विविच्यते प्रणम्यादौ वसिष्ठस्यां हि संहिताम्।।

समस्त प्राणियों के आधिभौतिक, अध्यात्मिक आधिदैविक तीन प्रकार के दु:खों को विनाश करने में पूर्णरूपेण सशक्त और चतुर्वर्ग प्राप्ति के अत्यन्त सुन्दर मार्गदर्शक वेद हैं।

भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद हैं। वेद से ही हमें अपने धर्म और सदाचार का ज्ञान होता है। हमारी पारिवारिक, सामाजिक, वैज्ञानिक एवं दर्शनिक विचारधाराओं के स्रोत भी वेद ही हैं। वेदों के छः अङ्ग कहे गये हैं *– 1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. व्याकरण, 4. निरुक्त, 5. छन्द तथा 6. ज्योतिष। इन्हें षड्वेदाङ्गों की संज्ञा दी गई है। मन्त्रों के उचित उच्चारण के लिये शिक्षा का, कर्मकाण्ड और धार्मिक अनुष्ठानों के लिये कल्प का, शब्दों के सही ज्ञान के लिए व्याकरण का, अर्थ ज्ञान के निमित्त शब्दों के निर्वचन के लिए निरुक्त का, वैदिक छन्दों के ज्ञान हेतु छन्द का और अनुष्ठानों के उचित काल निर्णय के लिए ज्योतिष का उपयोग सर्वमान्य है।

महर्षि वसिष्ठ ने ज्योतिष को वेदपुरुष का नेत्र कहा है–

वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत्प्रधानताङ्गेषु ततोऽस्य जाता।
अङ्गैर्युतोऽन्यैः परिपूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न किंचित्।।

(वृद्धवसिष्ठ संहिता अ. १ श्लोक ६)

वेद का नेत्र होने से यह शास्त्र सम्पूर्ण अङ्गों में प्रधानता को प्राप्त हो गया है। जैसे मनुष्य बिना चक्षुइन्द्रिय के किसी भी वस्तु का दर्शन करने में असमर्थ

---

* शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पं करौ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।।

(सि.शि. ग्रहगणिते श्लोकसंख्या १०)

होता है, ठीक वैसे ही वेदशास्त्र या वेदशास्त्र विहित कर्मों को जानने के लिए ज्योतिष का अत्यन्त महत्त्व सिद्ध है। भूतल अन्तरिक्ष एवं भूगर्भ के प्रत्येक पदार्थ का त्रैकालिक यथार्थ ज्ञान जिस शास्त्र से होता है वह ज्योतिष शास्त्र है ज्योतिष शास्त्र से त्रैकालिक प्रभाव को जाना जा सकता है।

प्रातः उत्थान से लेकर शयनपर्यन्त की दिनचर्या, गर्भ से लेकर मृत्यु तक और उसके पश्चात भी परलोक-पुनर्जन्म की बातों को ज्योतिष अभिव्यक्त करता है। आचार्य वराहमिहिर के अनुसार अन्य जन्मों में जो भी शुभाशुभ कर्म किया गया हो उसके फल तथा फलप्राप्ति समय को यह शास्त्र वैसे ही अभिव्यक्त करता है जैसे अन्धकार में पड़े पदार्थों को दीपक व्यक्त करता है।

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

(लघुजातके राशिप्रभेदाऽध्याये श्लोक संख्या ३)

कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति।।

(वृहज्जातकम् १-३)

'कालाधीनं जगत्सर्वम्' प्राणियों के व्यवहारिक एवं पारमार्थिक समस्त कार्य काल के अधीन हैं और काल जेतिषशास्त्र के अधीन है। काल की विवेचना सभी शास्त्रों में उपलब्ध है किन्तु ज्योतिष शास्त्र काल की सम्यग्यता विवेचना करता है इसी कारणवश काल का पर्याय ही बन गया है। काल के वशीभूत होकर ब्रह्मा सृष्टि रचते हैं, विष्णु पालन करते हैं तथा शिव संहारकारक बनते हैं, छः ऋतुएँ काल के ही रूप हैं। इसी में समस्त प्रणी जन्म लेते हैं मर भी जाते हैं, कालानुसार ही पशु, पक्षी, वृक्ष लतादि चलते हैं।

अथर्ववेद के अथर्वज्योतिष में वारों के नाम एवं क्रम का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुधबृहस्पतिः
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधिपाः।।

वारों का नामकरण सर्वप्रथम भारत में हुआ था यह हमारे ऋषियों की अद्‌भुत देन है अथर्वा ऋषि के अनुसार काल सब का गृहीता, दाता एवं कर्त्ता

है। मास पक्ष काल के शरीर हैं दिन रात्रि वस्त्र हैं ऋतुएँ इन्द्रियाँ हैं– यही काल संज्ञक ब्रह्म है। यह काल ही प्राणीमात्र की गति है। यह काल सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होने पर भी प्राणियों को शुभाशुभ फल उनके कर्मानुसार ही देता है। ज्योतिषशास्त्र कालबोधक शास्त्र है। इस सन्दर्भ में वृद्ध वसिष्ठ भी लिखते हैं; तद्यथा–

क्रतुक्रियार्थश्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः
शास्त्रादमुष्मात्किल कालबोधो वेदाङ्गताऽमुष्य ततः प्रसिद्धा॥

(वृद्धवसिष्ठ संहिता १-४)

ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त, होरा एवं संहिता– ये तीन स्कन्ध हैं। इन तीन स्तम्भों पर ही ज्योतिषशास्त्र रूपी विशाल प्रासाद टिका हुआ है। एक भी स्तम्भ में कुछ हीनता हो जाए तो प्रासाद अवनत हो जाता है अतः ज्योतिष शास्त्र को यथार्थ रूप में समझना हो तो तीनों स्कन्धों का भलीभान्ति ज्ञान आवश्यक है।

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम्॥

(नारदसंहिता 1/4)

सिद्धान्त स्कन्ध

त्रुटिकाल से लेकर प्रलयान्त तक के काल की गणना, सौर, सावन चान्द्र, नक्षत्रादि मानों का भेद, ग्रहों के सञ्चार तथा साधन, व्यक्ताव्यक्त गणित, पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति सिद्धान्त ज्योतिष से समझी जा सकती है। सिद्धान्त शिरोमणि में भास्कराचार्य द्वारा यही परिभाष स्वीकृत है।

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदस्तथा।
चारश्चद्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः॥
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते।
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥

होरा स्कन्ध

मनुष्य के जीवन में आने वाले सुख-दुःख अच्छा-बुरा इत्यादि सभी शुभाशुभ विषयों का विवेचन करने वाला भाग होरा शास्त्र है। इसमें शोधित इष्टकाल के द्वारा जन्मकुण्डली निर्माण करके पूर्वजन्म, वर्त्तमान जन्म तथा

होता है, ठीक वैसे ही वेदशास्त्र या वेदशास्त्र विहित कर्मों को जानने के लिए ज्योतिष का अत्यन्त महत्त्व सिद्ध है। भूतल अन्तरिक्ष एवं भूगर्भ के प्रत्येक पदार्थ का त्रैकालिक यथार्थ ज्ञान जिस शास्त्र से होता है वह ज्योतिष शास्त्र है ज्योतिष शास्त्र से त्रैकालिक प्रभाव को जाना जा सकता है।

प्रातः उत्थान से लेकर शयनपर्यन्त की दिनचर्या, गर्भ से लेकर मृत्यु तक और उसके पश्चात भी परलोक-पुनर्जन्म की बातों को ज्योतिष अभिव्यक्त करता है। आचार्य वराहमिहिर के अनुसार अन्य जन्मों में जो भी शुभाशुभ कर्म किया गया हो उसके फल तथा फलप्राप्ति समय को यह शास्त्र वैसे ही अभिव्यक्त करता है जैसे अन्धकार में पड़े पदार्थों को दीपक व्यक्त करता है।

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।

(लघुजातके राशिप्रभेदाऽध्याये श्लोक संख्या ३)

कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति।।

(वृहज्जातकम् १-३)

'कालाधीनं जगत्सर्वम्' प्राणियों के व्यवहारिक एवं पारमार्थिक समस्त कार्य काल के अधीन हैं और काल जेतिषशास्त्र के अधीन है। काल की विवेचना सभी शास्त्रों में उपलब्ध है किन्तु ज्योतिष शास्त्र काल की सम्यग्यता विवेचना करता है इसी कारणवश काल का पर्याय ही बन गया है। काल के वशीभूत होकर ब्रह्मा सृष्टि रचते हैं, विष्णु पालन करते हैं तथा शिव संहारकारक बनते हैं, छः ऋतुएँ काल के ही रूप हैं। इसी में समस्त प्रणी जन्म लेते हैं मर भी जाते हैं, कालानुसार ही पशु, पक्षी, वृक्ष लतादि चलते हैं।

अथर्ववेद के अथर्वज्योतिष में वारों के नाम एवं क्रम का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुधबृहस्पतिः
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधिपाः।।

वारों का नामकरण सर्वप्रथम भारत में हुआ था यह हमारे ऋषियों की अद्भुत देन है अथर्वा ऋषि के अनुसार काल सब का गृहीता, दाता एवं कर्त्ता

है। मास पक्ष काल के शरीर हैं दिन रात्रि वस्त्र हैं ऋतुएँ इन्द्रियाँ हैं– यही काल संज्ञक ब्रह्म है। यह काल ही प्राणीमात्र की गति है। यह काल सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होने पर भी प्राणियों को शुभाशुभ फल उनके कर्मानुसार ही देता है। ज्योतिषशास्त्र कालबोधक शास्त्र है। इस सन्दर्भ में वृद्ध वसिष्ठ भी लिखते हैं; तद्यथा–

क्रतुक्रियार्थश्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः
शास्त्रादमुष्मात्किल कालबोधो वेदाङ्गताऽमुष्य ततः प्रसिद्धा॥

(वृद्धवसिष्ठ संहिता १-४)

ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त, होरा एवं संहिता– ये तीन स्कन्ध हैं। इन तीन स्तम्भों पर ही ज्योतिषशास्त्र रूपी विशाल प्रासाद टिका हुआ है। एक भी स्तम्भ में कुछ हीनता हो जाए तो प्रासाद अवनत हो जाता है अतः ज्योतिष शास्त्र को यथार्थ रूप में समझना हो तो तीनों स्कन्धों का भलीभान्ति ज्ञान आवश्यक है।

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम्॥

(नारदसंहिता 1/4)

सिद्धान्त स्कन्ध

त्रुटिकाल से लेकर प्रलयान्त तक के काल की गणना, सौर, सावन चान्द्र, नक्षत्रादि मानों का भेद, ग्रहों के सञ्चार तथा साधन, व्यक्ताव्यक्त गणित, पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति सिद्धान्त ज्योतिष से समझी जा सकती है। सिद्धान्त शिरोमणि में भास्कराचार्य द्वारा यही परिभाष स्वीकृत है।

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदस्तथा।
चारश्चद्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः॥
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते।
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥

होरा स्कन्ध

मनुष्य के जीवन में आने वाले सुख-दुःख अच्छा-बुरा इत्यादि सभी शुभाशुभ विषयों का विवेचन करने वाला भाग होरा शास्त्र है। इसमें शोधित इष्टकाल के द्वारा जन्मकुण्डली निर्माण करके पूर्वजन्म, वर्त्तमान जन्म तथा

भविष्य के फलों को कहने की विधियाँ निरूपित हैं। फलित स्कन्ध के मुख्य पाँच भेद हैं– जातक, ताजिक, मुहूर्त्त एवं प्रश्न। यहाँ मनुष्य के जीवन काल सम्बन्धि सभी फल कहे गये हैं उसे जातक कहते हैं। ताजिक विभाग में वर्षफल कथन की विधियाँ हैं। मुहूर्त्त विभाग में जातकर्म, नामकरण अन्नप्राशन, मुण्डन यज्ञोपवीत इत्यादि मुहूर्त्तों का वर्णन मिलता है।

संहिता स्कन्ध*

संहिता विभाग ज्योतिष शास्त्र का प्रधानाङ्ग है और बड़े ही महत्त्व का है। संहिता भाग सार्वभौम है और होरा भाग व्यक्ति विषयक है। संहिता स्कन्ध में सिद्धान्त और फलित दोनों का समावेश है। गणित एवं फलित के मिश्रत रूप का अथवा ज्योतिष शास्त्र के सभी पक्षों पर जिसमें विचार किया जाता है उसे संहिता शास्त्र कहते हैं। संहिता शास्त्र में प्रधानता से ग्रहों का चार, आकाशीय उत्पातों के लक्षण और उनके परिणाम, मेघलक्षण, वृष्टिकाल ज्ञान, वृष्टि प्रमाण, वायु लक्षण, अङ्गलक्षण, पशुओं के लक्षण, रत्न परिचय, दकार्गल (भूगर्भलक्षण), भूकम्प लक्षण, वास्तु विवेचन, शकुन मुहूर्त्त इत्यादि विषयों का समावेश है।

मूहूर्त्त का व्यवहार होरा ग्रन्थों में भी उपलब्ध है, मुहूर्त्तों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से जनसामान्य के साथ है इसी कारण बहुत से आचार्यों ने होरा शास्त्रीय विषयों के साथ मुहूर्त्तों का भी प्रतिपादन किया है। वस्तुतः मुहूर्त्तों का प्राकाट्य संहिता शास्त्र में ही हुआ करता था।

यदि हम ज्योतिष शास्त्र के इतिहास की ओर उन्मुख होते हैं तो सर्वप्रथम ज्योतिष शास्त्र के इन्ही विषयों पर ध्यान केन्द्रित होता है। प्राचीन काल में आकाशीय परिवर्तन, सूर्यचन्द्र का युत्यन्तर, ग्रहण, परिवेश धूमकेतु दर्शन पृथ्वी निवासियों को आकर्षित करता था। विद्वानों ने इस आकाशीय परिवर्तन का कारण तथा परिणाम के सन्दर्भ में प्रयास किया और उन्होंने अन्नवेषण किया

---

* दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृति विकृति प्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानस्तनोदयमार्गमार्गान्तर वक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागम चारादिभिः फलानि नक्षत्र कूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्य चारः॥
(द्रष्टव्यं वृहत्संहितायां सांवत्सर सूत्राध्याये २/२२ पृष्ठ संख्या ५६)

कि सभी आकाशीय उत्पात एवं शुभाशुभ घटनाओं के प्रादुर्भाव ग्रहों के कारण ही होते हैं। इस सन्दर्भ में विस्तृत विवेचन संहिता ग्रन्थों में ही उपलब्ध होता है। संहिता ग्रन्थों का दूसरा महत्त्व यह भी है कि हम राष्ट्र एवं विश्व हित के लिए शोध कार्य कर सकते हैं, जैसे वृष्टि, भूकम्पादि उत्पातों की पूर्व सूचना, अनिष्टों का परिहार राष्ट्र हित के लिए हो सकता है न कि सामान्य मानव के लिए। यदि हम समष्टि हित लक्षीकृत्य विचार करते हैं तो संहिता स्कन्ध का महत्त्व सर्वाऽतिशायी होता है।

उपलब्ध संहिता ग्रन्थ

प्रायः सभी विद्वानों का अनुमान है कि अष्टादश ज्योतिष शास्त्र प्रवर्त्तकों * के भिन्न-भिन्न संहिता ग्रन्थ थे परन्तु उन ऋषि प्रवरों के मध्य में केवल गर्ग, पराशर, वसिष्ठ, कश्यप नारदादि ऋषियों के संहिता ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं शेष उपलब्ध नहीं होते। आचार्य वराहमिहिर द्वारा विरचित वाराही संहिता भी सुलभता से उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त जैन आचार्यों द्वारा सम्पादित भद्रवाहु संहिता भी उपलब्ध है।

वृहत्संहिता के अतिरिक्त नारदादि की कुछ संहितायें मुद्रित रूप में सुलभ है परन्तु अन्य संहिता ग्रन्थ नहीं। अतः मैंने वृद्धवसिष्ठ संहिता का हस्त लेखों के आधार पर समीक्षात्मक सम्पादन किया तथा प्रयास किया कि शुद्ध पाठ पाठकों तक पहुँचे।

आधार ग्रन्थ एवं हस्तलेखों का परिचय

वसिष्ठसंहिता मुम्बई नगर से 'खेमराजकृष्णदास' द्वारा संवत् १९७२ में एक बार मुद्रित हुई थी। उसी ग्रन्थ का पाठ आधार रूप में गृहीत किया। यद्यपि इस ग्रन्थ में प्रायशः संशोधित पाठ ही लिया गया फिर भी बहुत से स्थलों पर हस्तलेखों के आधार पर परिवर्तन एवं संशोधन भी किया गया है।

जम्मू नगरस्थ श्रीरघुरनाथानुसन्धान पुस्तकालय से दो हस्तलेख प्राप्त हुए तथा एक सरस्वती विद्यामन्दिर रामनगर वाराणसी से प्राप्त हुआ। यद्यपि यह हस्तलेख अपूर्ण है परन्तु इसका पाठ अतीव शुद्ध एवं प्रमाणिक है। इस प्रकार

---

* सूर्यः पितामहोव्यासोवसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिः शास्त्र प्रवर्त्तकाः॥

तीन हस्तलेख एवं एक मुद्रित पुस्तक को लेकर पाठ शुद्ध किया। स्थान स्थान पर 'जगन्मोहनम्' ग्रन्थ का पाठान्तर भी दिया गया है क्योंकि इस पुस्तक में वृद्धवसिष्ठ संहिता के बहुत से श्लोक उपलब्ध हैं। इसी प्रकार मुहूर्त्तचिन्तामणि की पीयूषधारा टीका में भी वृद्धवसिष्ठ संहिता के अनेकों श्लोक उधृत हैं अत: पाठान्तर करने से पाठ में शुद्धता हुई।

(ज१) जम्मू में श्रीरघुनाथानुसन्धान पुस्तकालय से हस्तलेख
ग्रन्थ संख्या २८६१
पत्र संख्या २५२
पृष्टे पंक्ति संख्या १३
पंक्ति में अक्षर संख्या ३८
आधार – कर्गज
लिपि – देवनागरी
लेखन काल – वि.सं. १९२७
लेखक – श्री वसिष्ठऋषि
प्रतिलिपिकार – श्री लक्षमणाचार्य:

(ज2) ग्रन्थ संख्या ४३६८
पत्र संख्या ५८
पृष्टे पंक्ति संख्या १४
पंक्ति में अक्षर संख्या ३९
आधार – कर्गज
लिपि – देवनागरी
लेखनकाल – वि.सं. १९३५
लेखक – श्री वसिष्ठऋषि
प्रतिलिपिकार – श्री लक्षमणाचार्य:

(वा.) ग्रन्थ संख्या ....
पत्र संख्या ९७
पृष्टे पंक्ति संख्या ९
पंक्ति में अक्षर संख्या ३७

आधार – कर्गज
लिपि – देवनागरी
लेखनकाल – ....
लेखक – श्री वसिष्ठऋषि
प्रतिलिपिकार – ....

(मु.पु.) वसिष्ठ संहिता मुद्रित ग्रन्थ
सम्पादकः – पं. शिवदुलारे वाजपेयी
प्रकाशन वर्ष – संवत् १९७२ शके १८३७
प्रकाशकः – लक्ष्मी वैंकटेश्वर प्रैस, कल्याण, मुंबई

(ज.मो.) जगन्मोहनम्, भट्टलक्ष्मणाचार्य विरचित
सम्पादकः – ज्योतिषाचार्य पं. देवीप्रसाद लंसाल
प्रकाशकः – श्री ५ सर्वकार पुरातत्व संस्कृति विभाग
नेपालराष्ट्रिय पुस्तकालय
प्रकाशन वर्ष – संवत् २०२० विक्रमी

(पी.यू.धा.टी.) पीयूषधारा टीका
टीकाकार – पं. गोविन्द दैवज्ञ
प्रकाशन – मोतीलालबनारसी दास
सम्पादक – पं. श्री केदारदत्त जोशी
प्रकाशन वर्ष – १९७२-१९७९

पाठ संवादार्थ गृहीत नियम

भण्डारकर रिसर्च इंस्टीच्यूट पूना, सर्वभारतीय काशी राजन्यास द्वारा गृहीत सारिणी का अनुसरण करके मैंने पाठान्तर किया है, प्रत्येक अध्याय के पश्चात पाठान्तर दिया भी गया है, अपनी बुद्धि के अनुसार शुद्ध पाठ निर्धारित किया है, सुविधा के लिए पाठान्तर के अन्त में कोष्टक में शुद्ध पाठ भी लिख दिया है। श्लोकों को पंक्ति के अनुसार निर्देश किया गया है, जैसे–

अ = प्रथम पंक्तिः, व = द्वितीय पंक्तिः, स = तृतीय पंक्तिः तथा द = चतुर्थ पंक्तिः।

इसी प्रकार जिस श्लोक की पंक्ति में जो पाठान्तर या अधिक पाठान्तर उपलब्ध हुए उनका वर्णन श्लोक संख्या, पंक्ति संख्या एवं पाण्डुलिपि संख्या अनुसार दिया गया है। उदाहरणार्थ–

अभिषेके नृपतीनां साहस कर्मादि वैरोधम्।
आकार धातु वादाद्यखिलं मेषोदये कार्यम्।।१।।

१(ब) ज1, ज2, कर्माणि (कर्मादि)

१(व) मु.पु. आकर धातु, वा आकाश वातु (आकार धातु)

यहाँ पर मूल पाठ के अतिरिक्त प्रसङ्गानुकूल पाठ मिला तो उस पाठ को भी मूल पाठ में दिया हुआ है। यदि मूल पाठ से न्यूनपाठ पाण्डुलिपि में जहाँ-जहाँ मिला वहाँ-वहाँ 'पाठोनाऽस्ति' लिखा गया है। अध्याय के अन्त में पुष्पिका का पाठ भी दिया है पुष्पिकाओं के मध्यम में जो पाठान्तर उपलब्ध हुआ वह भी लिख दिया है।

हस्तलेखों का बाहुल्य नहीं था केवल मात्र तीन हस्त लेख तथा एक मुद्रित पुस्तक उपलब्ध हुई अतः मुद्रित पुस्तक के पाठ को आधार पाठ स्वीकार करके जिस पाठ में प्रासङ्गिकता मिली उसी पाठ को मूल पाठ में स्वीकार किया। कहीं-कहीं अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध वृद्धवसिष्ठसंहिता का पाठ भी पाठ शुद्धि में सहायक हुआ। पाठान्तर में उन श्लोकों का व्यवहार भी किया। जहाँ-जहाँ संदिग्ध पाठ का निर्णय यथामति करके मूल पाठ में स्थापित कर पाठान्तर में दे दिया है इसका निर्णय स्वयं विद्वान लोग कर सकते हैं।

वसिष्ठ संहिता का परिचय

संहिता ग्रन्थों में 'वृद्धवसिष्ठ संहिता' का प्रमुख स्थान है। इस ग्रन्थ में प्रायशः संहिता पदार्थों का सम्यगतया विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना स्वयं महर्षि वसिष्ठ ने की है अतः आर्ष ग्रन्थ के रूप में इस ग्रन्थ की प्रतिष्ठा है। यह पूर्णतया सुप्रसिद्ध है कि महर्षि वसिष्ठ का नाम ज्योतिष शास्त्र के अष्टादश प्रवर्त्तकों में आता है। इस ग्रन्थ में (४६) छियालीस अध्याय हैं। अध्यायों का विभाजन एवं विषय विभाजन क्रम से सुव्यवस्थित रूप में किया गया है। संक्षेप में अध्यायों का विवरण लिखते हैं। शास्त्र स्वरूपाध्याय से दशम

अध्याय पर्यन्त ग्रहों का चार, एकादश अध्याय से षोडश अध्याय पर्यन्त पञ्चांग निरूपणम्, सप्तदशाध्याय में मुहूर्त्त कथन, अष्टदशाध्याय में विविध दानमन्त्र और उनका विधान, उन्नीसवें अध्याय में संक्रान्ति निरूपन एवं फलकथन, वीसवें अध्याय में चन्द्रतारा बल कथन, इक्कीसवें अध्याय में उत्पात फल, तेइसवें अध्याय में ग्रहकूट, तेइसवें अध्याय में लग्न बलाबल, चौवीसवें अध्याय से बत्तीसवें अध्याय पर्यन्त गर्भाधान से लेकर विवाहादि संस्कारों का विवेचन है, तैंतीसवें अध्याय में राजाभिषेक, चौतीसवें अध्याय में अश्वों का विवेचन, पैंतीसवें अध्याय में गजारिष्ट शान्ति, छत्तीसवें अध्याय में ग्रहण शान्ति, सैंतीसवें अध्याय में यात्रा मुहूर्त्त, अठतीसवें अध्याय में गृहप्रवेश, उन्नतालीसवें अध्याय में वास्तुविवेचन, चालीसवें अध्याय में देवप्रतिष्ठा, इकतालीसवें अध्याय में गुणनिरूपण, वयालीसवें अध्याय में दोष-निरूपण, शान्ति विधान, तैंतालीसवें में गुणदोषापवाद कथन, चौआलीसवें में वस्त्रपरिधान, पंचतालीसवें में उत्पात शान्ति, छयालीसवें में रोगोत्पत्ति विवेचन और शान्ति विधान मिलते हैं। इस प्रकार छयालीस अध्यायों में ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त श्लोक एवं विषय आर्ष हैं तथा स्वयं महर्षि वसिष्ठ द्वारा प्रणीत हैं। इस ग्रन्थ पर अन्य ऋषियों और आचार्यों का प्रभाव नहीं है अपितु प्रायश: सभी आचार्यों ने तथा समकालीन पराशरादि ऋषियों ने भी वसिष्ठऋषि के श्लोकों एवं मतों को अपने-अपने ग्रन्थों में उधृत किया है अत: इस ग्रन्थ की प्राचीनता आर्षत्व स्वयमेव सिद्ध हो जाता है।

ग्रन्थ की विशेषता

वृद्ध वसिष्ठसंहिता के छयालीस अध्याय हैं सभी अध्यायों के अनुसार श्लोकों की पूर्ण संख्या २६१६ बनती है। सभी विषय मौलिक, श्लोक आर्ष और ब्रह्मर्षि वसिष्ठ द्वारा प्रणीत हैं। ग्रन्थ की भाषा सुस्पष्ट और सरल है विषयों के विवेचन में भाषा में कोई कठिनाई कहीं भी प्रतीत नहीं होती।

संहिता ग्रन्थों में जो प्रतिपाद्य विषय होते हैं उन सभी विषयों का समावेश वृद्धवसिष्ठसंहिता में नहीं मिलता और जो विषय इस संहिता में दिये गिए हैं वे पूर्णतया स्पष्ट हैं। पञ्चाङ्ग परिचय भी दिया हुआ है, तिथि, वार, योग, नक्षत्र तथा करणात्मक पाँचों अङ्गों का विवेचन इस ग्रन्थ की विशेषता है।

मुहूर्त्तों का सम्बन्ध संहिता ग्रन्थों के साथ पुराना था परन्तु आधुनिक संहिता ग्रन्थों में मुहूर्त्तों का अवलोकन नहीं कर सकते परन्तु वृद्ध वसिष्ठ संहिता में मुहूर्त्ताध्याय नामक एक स्वतन्त्र अध्याय है तथा मुहूर्त्तों के अङ्गभूत सङ्क्रान्तियों, उपग्रहदोषों, ग्रहकूटों, षोडश संस्कारों का पृथक्-पृथक् अध्याय रूप में वर्णन विस्तार से किया गया है यह इस ग्रन्थ की एक सर्वोत्तम विशेषता है। सूर्यादि नवग्रहों का विवरण पुरस्सर गोदानादि विधि मन्त्रों का उल्लेख भी उपलब्ध है कुछ होरा शास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन भी किया गया है जैसे चन्द्र ताराबल, द्वादश राशियों का बलकथन गोचरफल इत्यादि। विवाह संस्कार का अत्यन्त विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ की विशेषता में चार चान्द लगा रहा है। विवाहाध्याय में प्रायशः सभी प्रमुख दोषों का विवेचन, त्याज्य दोषों का परिहार, अष्टकूटों के अतिरिक्त, जाति गोत्र, पक्षी आयादि कूटों का विवेचन, यात्रा मुहूर्त्तों के लिए एक स्वतन्त्राध्याय बनाकर, तीन प्रकार की यात्राओं का शास्त्रीय विवरण भी दिया गया है।

सुरप्रतिष्ठा, गुणदोषयोर्निरूपण, उत्पातादि विषयों का सफल विवेचन इस ग्रन्थ में दिखाई देता है। संहिता ग्रन्थों की प्रासंगिकता रूप में वास्तुप्रकरण, वास्तु प्रकरण इतना सन्तोषप्रद नहीं जितना होना चाहिए यद्यपि इस प्रकरण में कुछ नूतन महत्वपूर्ण विषय दिये गए हैं।

अतः वृद्धवसिष्ठासंहिता का संहिता ग्रन्थों में एक समुन्नत स्थान है। इसकी शास्त्रीय विशेषता ही नहीं अपितु ऐतिहासिक महत्त्व भी है इस कारणवश इस ग्रन्थ का सम्पादन एवं हिन्दी रूपान्तर करने का विचार मेरे मन में आया–प्रस्तुत ग्रन्थ तेईसवें अध्याय तक पाठान्तर एवं हिन्दी रूपान्तर सहित प्रस्तुत है २४ से ४६ अध्यायों का द्वितीय भाग शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

अत्यन्त प्रयास से वृद्धवसिष्ठ संहिता के विभिन्न हस्तलेखों तथा मुद्रित पुस्तक का विभिन्न-विभिन्न स्थानों से संकलन करके अपनी अल्पबुद्धि से पाठ का चयन करके शुद्ध श्लोकों का गुम्फन मैंने किया है। इस ग्रन्थ के रचना काल के सन्दर्भ में कोई चिन्तानावसर मैंने नहीं देखा क्योंकि सर्वत्र ब्रह्मर्षि वसिष्ठ का नामोल्लेख बार-बार विभिन्न ग्रन्थों एवं टीकाओं में उपलब्ध होता रहा इसलिए आर्ष रूप में इस ग्रन्थ की महिमा को समझते हुए काल विवेक

को मैंने परित्यक्त कर दिया। यहीं कहीं भी पाठनिर्धारण करने में प्रमादवश भ्रान्ति या अनुचित पाठ गृहीत हुआ हो तो अध्याय के अन्त में दिए हुए पाठान्तर से विद्वानों को संशोधन का अवकाश प्राप्त है नीरक्षीर विवेकी चतुर विद्वान मेरे इस प्रयास से सन्तुष्ट होंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

इस शोधकार्य में जिन-जिन विद्वानों की सहायता प्राप्त हुई उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करना चाहता हूँ। ज्योतिष एवं संस्कृत के लिए देश विदेशों में सर्वोत्तम योगदान देने हेतु राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, संस्कृत विद्याधर्म विज्ञान सङ्काय प्रमुख चर परम पूज्य गुरुजी प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय जी के प्रति श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ जिनके कुशल निर्देशन में यह कार्य करने में समर्थ हुआ।

मेरे प्रेरणा स्रोत दैवज्ञ केसरि राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान श्रीरणवीर परिसर ज्योतिष विभाग के अध्यक्षचर परमपूज्य गुरु जी डॉ. विहारिलाल वसिष्ठ जी का हार्दिक धन्यवाद करते हुए सन्तोषानुभूति हो रही है, उन्होंने वास्तव में मुझे संस्कृत एवं ज्योतिष पढ़ने की प्रेरणा दी और मेरी हर प्रकार से सहायता की, मैं सदैव आपका आभारी रहूँगा। गोब्राह्मण प्रतिपालक सन्तशिरोमणि श्री प्रभुदास जी जो मेरे धर्मगुरु हैं उनको नतमस्तक होकर प्रणाम करते हुए शुभाशीर्वाद की निरन्तर कामना करता हूँ। परम श्रद्धेय गुरुकल्प पूज्य पिता जी पं. रामेश्वर दत्त रैणा एवं पूज्या माताश्री श्रीमती शान्ति देवी जी को प्रणामाञ्जलि समर्पण करता हूँ जिनके शुभाशीर्वाद से अध्ययन में प्रवृत्ति हुई तथा सभी कार्य सम्पन्न हुए। विविध प्रकार से सहायता देने वाले ठा. दिवाकर सिंह एवं रानी साहिवा श्रीमती सरोज देवी जी को शुभकामनाएँ अर्पित करते हुए शुभाशीर्वाद भी देता हूँ भगवान श्री रघुनाथ सदैव आप पर कृपालु रहें। इस कार्य में विभिन्न प्रकार से सहायता देने वाले मेरे दोनों अनुजों को श्रीमती एवं श्री शिवप्रसाद रैणा तथा श्रीमती एवं श्री रवीन्द्र रैणा परिवार सहित आशीर्वाद देते हुए इनकी सफलता की कामना करता हूँ।

टीका का नाम नारायणी टीका क्यों रखा? यह नाम मेरे पूज्यपिता जी द्वारा मेरी पत्नी को दिया गया था वे इसकी योग्यता और स्वभाव से अत्यन्त प्रसन्न होते थे। इस कार्य की सम्पन्नता हेतु मुझे विशेष योगदान देने के लिए अपनी

सद्भार्या श्रीमती कमलेश रैणा को शुभाशीर्वाद देते हुए श्री रघुनाथ जी से प्रार्थना करता हूँ कि हमारा प्रेमभरा सफर चलता रहे और हमारे कार्य सिद्ध होते रहें।

मेरे सुपुत्र चिरंजीवी पीयूष रैणा एवं पुत्र वधु सौभाग्यवती प्रिया रैणा और पौत्र श्रीरघुवर रैणा तथा सुपुत्री कुमारी महिमा रैणा इन सब को मेरा साधुवाद शुभाशीर्वाद।

वाराणसी के सुप्रसिद्ध प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया अतः आप धन्यवाद के पात्र हैं।

मेरे प्रिय श्री राजैन्द्र सौगुणियाँ जी ने टंकन कार्य में श्रम तथा निष्ठा से सहायता की आपका हृदय से आभार प्रकट करते हुए मङ्गलकामना करता हूँ।

अनवधानवश अथवा मुद्रण दोष से कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो पण्डितगण निष्पक्ष रूप से सुधार करके मुझे सूचित करें ताकि अग्रिम संस्करण में पुनः शुद्ध करके विद्वान सज्जनों के सामने प्रस्तुत कर सकूँ। कहा भी है–

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

(विदुषां वशंवदः)
चन्द्रमौलि रैणा

विषयानुक्रमणिका:

अध्याय:	पृष्ठांक:
१. अथ शास्त्रस्वरूपाध्याय:	१-६
२. अथार्कचाराध्याय:	७-१६
३. अथ चन्द्रचाराध्याय:	१७-२५
४. अथ भौमचाराध्याय:	२६-३३
५. अथ बुधचाराध्याय:	३४-४१
६. अथ गुरुचाराध्याय:	४२-९०
७. अथ शुक्रचाराध्याय:	९१-९८
८. अथ शनिचाराध्याय:	९९-१०१
९. अथ राहुचाराध्याय:	१०२-१२६
१०. अथ केतुचाराध्याय:	१२७-१४७
११. अथ वर्षेशादिनिर्णयफलाध्याय:	१४८-१६५
१२. अथ तिथिस्वरूपाध्याय:	१६६-१८९
१३. अथ वारस्वरूपाध्याय:	१९०-२००
१४. अथ नक्षत्रस्वरूपाध्याय:	२०१-२३८
१५. अथ योगाध्याय:	२३९-२४९
१६. अथ करणाध्याय:	२५०-२५६
१७. अथ मुहूर्ताध्याय:	२५७-२५९
१८. अथ गोचरविचाराध्याय:	२६०-२९८
१९. अथ सङ्क्रान्त्याध्याय:	२९९-३०८
२०. अथ चन्द्रताराबलाध्याय:	३०९-३१२
२१. अथोपग्रहाध्याय:	३१३-३१५
२२. अथ ग्रहकूटाध्याय:	३१६-३१८
२३. अथ लग्नबलाध्याय:	३१९-३३०

—०—

वृद्ध-वसिष्ठ संहिता

१

अथ शास्त्रस्वरूपाध्यायः

प्रह्वोऽम्भोजभवामरेन्द्रनिकरस्फूर्जत्किरीटोज्वल-
ज्ज्योत्स्नालीढपदारविन्दयुगलस्तत्वस्वरूपो रविः।
ब्रह्माण्डोदरसंस्थिताखिलजगत्तद्ध्वान्तविध्वंसनं
यः कुर्वन्निखिलं जगत्प्रतिदिनं पर्य्येति कालात्मकः॥१॥

नारायणी टीका–देदीप्यमान मुकटों की उज्जवल कान्ति एवं संदीप्त चरण-कमलों से युक्त कमलोत्पन्न ब्रह्मा, इन्द्रादि देवताओं के समूह, समस्त जगत् की प्रतिदिन परिक्रमा कर ब्रह्माण्ड के उदर में स्थित समस्त संसार के अन्धकार को नष्ट करते रहने वाले, काल-तत्वस्वरूप श्री सूर्यनारायण के सम्मुख प्रणामार्थ नतमस्तक हैं॥१॥

ज्योतिः शास्त्रं समग्रं प्रथमपुरुषतः स्वर्णगर्भाद्विदित्वा।
पूर्वं ब्रह्मा ततोपर्यखिल-मुनिगण-प्रार्थनाद्यच्चकार॥
तच्चेदं सुप्रसन्नं मृदुपदनिकरैर्गुह्यमध्यात्मरूपं।
शश्वद्विश्वप्रकाशं ग्रहचरितविदां निर्मलं ज्ञानचक्षुः॥२॥

हिरण्यगर्भ भगवान् श्रीसूर्यनारायण जी से सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा जी ने प्राप्त किया। तदनन्तर उन्होंने समस्त मुनिवृन्द द्वारा प्रार्थना किये जाने पर निरन्तर विश्व प्रकाशक अत्यन्त गुप्त उक्त अध्यात्म विद्या को मृदुपद समूह सहित अत्यन्त प्रसन्नभाव से ग्रह चरित के ज्ञाता दैवज्ञों के लिए प्रकाशित किया, यह शास्त्र वस्तुतः ग्रहचरित दैवज्ञों के हेतु निर्मल ज्ञान चक्षुस्वरूप है॥२॥

स्कन्धद्वयं वृत्तविचित्रमर्थगम्भीरमादावधुना यदुक्तम्।
तत्संहितास्कन्धमिदं तृतीयं वक्ष्ये जगन्मोहननामधेयम्॥३॥

पूर्वोक्त विचित्र छन्दोगर्भित, गम्भीर अर्थों से युक्त (होरा, सिद्धान्त) दो स्कन्धों के पश्चात् मैं अब जगन्मोहन नामक तृतीय संहिता स्कन्ध का वर्णन कर रहा हूँ॥३॥

क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः।
शास्त्रादमुष्मात्किल कालबोधो वेदांगताऽमुष्य ततः प्रसिद्धा॥४॥

वेदों का प्रवर्त्तन यज्ञ-क्रियाओं के सम्पादनार्थ हुआ। वे यज्ञ काल के आश्रित कहे जाते हैं और काल इस ज्योतिष शास्त्र से जाना जाता है। इसलिये इस शास्त्र का वेदाङ्गत्व इसी से सिद्ध है।।४।।

छन्दः पादौ शब्दशास्त्रं च वक्त्रं कल्पः पाणी ज्योतिषं चक्षुषी च।
शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च।।५।।

वेद के ये छह अङ्ग निम्नाङ्कित हैं यथा छन्दःशास्त्र को वेद का पाद, व्याकरण को मुख, कल्पशास्त्र को हाथ, ज्योतिषशास्त्र को नेत्र, शिक्षा को नाक एवं निरुक्त को कान कहा है।।५।।

सिद्धान्तः संहिता होरारूपं स्कन्धत्रयात्मकं
वेदस्य निर्मलं चक्षुःज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम्।।
अस्य शास्त्रस्य सम्बन्धो वेदाङ्गमिति कथ्यते।
अभिधेयं च जगतः शुभाशुभनिरूपणम्।।

(नारदसंहितायांप्रथमाध्याये श्लोक ४-५)

वेदस्य चक्षुः किलशास्त्रमेतत्प्रधानतांगेषु ततोऽस्य जाता।
अङ्गैर्युतोऽन्यैः परिपूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न किञ्चित्।।६।।

इस प्रकार वेदाङ्गों में प्रधान माने जाने वाले ज्योतिषशास्त्र को वेदों का निर्मल चक्षुःस्वरूप कहा जाता है। जैसे सर्वाङ्ग सम्पूर्ण मूर्ति होने पर भी कोई नेत्रहीन पुरुष अकिंचन ही होता है।।६।।

अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिःशास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यम्।
एतद् बुध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थं धर्मं मोक्षमग्र्यं यशश्च।।७।।

पुण्यमय, रहस्यमय ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन ब्राह्मणों को ही करना चाहिये; क्योंकि धर्म, अर्थ, मोक्ष एवं सर्वोत्तम यश की प्राप्ति इस शास्त्र को भली-भाँति जानने से ही सम्भव है।।७।।

श्रुतिस्मृतिज्ञः पटुरर्थशास्त्रे शब्दोपदिष्टः कुशलः कलासु।
त्रिःस्कन्धविज्ज्योतिषिकः सुवेषः कुली सुवृत्तस्त्वगदः सुशीलः।।८।।

श्रुतिस्मृति का ज्ञाता, अर्थशास्त्र में निपुण, व्याकरणशास्त्र का उपदेष्टा, अखिल कलाओं में कुशल, सुन्दर वेषयुक्त, कुलीन सदाचारी, आरोग्य सम्पन्न और शीलयुक्त त्रिस्कन्ध शास्त्र को जानने वाले व्यक्ति को ही श्रेष्ठ ब्राह्मण (दैवज्ञ) माना जाता है।।८।।

अध्येतव्यं द्विजैर्यत्नात् पुण्यमायुर्यशस्करम्।
पुण्यकालपरिज्ञानादश्वमेधफलं लभेत्।

पुण्यकालं च यो वेत्ति स तु वेत्ति परांगतिम्।
कालज्ञानेऽतिकुशलं तद्देवा ब्राह्मणं विदुः।।
(कश्यपसंहितायां प्रथमाध्याये श्लोक २१-२२)

त्रिस्कन्धपारङ्गम एव पूज्यः श्राद्धे सदा भूसुरवृन्दकाद्यैः।
नक्षत्रसूची किल पापरूपो हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये।।९।।

मण्डलाग्रगण्य प्राचीन विद्वानों ने त्रिस्कन्ध ज्योतिषशास्त्र पारङ्गत विद्वान् को ही श्राद्ध में सर्वश्रेष्ठ पंक्ति पावन एवं पूज्य स्वीकार किया है। इसके विपरीत समस्त धर्मकृत्यों में सदा नक्षत्र सूचक (ज्ञानरहित) को पाप स्वरूप एवं सर्वदा हेय (वर्जित) माना गया है।।९।।

शास्त्रस्वरूपग्रहचारमानप्रत्येकपञ्चाङ्गफलं क्षणाख्याः।
गोचारसङ्क्रान्ति निशीशताराबलोपखेटग्रहकूटभाश्च।।१०।।

(यहाँ) ज्योतिषशास्त्र का स्वरूप, ग्रहचार, नवविधमान, पञ्चापङ्गफल, मुहूर्त, गोचर, सङ्क्रान्ति, चन्द्रबल, ताराबल, उपग्रह ग्रहकूट राशिकूट (लग्नबल)।।१०।।

नारद संहिता में प्रतिपाद्य विषय–

संज्ञान्युक्तानि सर्वाणि सम्यक् ज्ञात्वा पृथक् पृथक्।
शास्त्रोपनयनाध्यायो ग्रहचारोऽब्दलक्षणम्।।१०।।
तिथिर्वारश्च नक्षत्रं योगः तिथ्यर्द्धसंज्ञकम्।
मुहूर्तोपग्रहोऽर्कस्य संक्रान्तिर्गोचरस्तथा।।११।।
चन्द्रताराबलाध्यायः सर्वलग्नार्त्तवाह्वयः।
आधानपुस्त्वंसीमन्तो जातनामान्नभुक्तयः।।१२।।
चौलाङ्कुरोप मौंजीछुरिकाबन्धने क्रमात्।
समावर्तनवैवाहप्रतिष्ठाः सद्मलक्षणम्।।१३।।
यात्राप्रवेशनं सद्यो वृष्टिकूर्म विलक्षणम्।
उत्पातलक्षणं शान्तिर्मिश्रकं श्राद्धलक्षणम्।।१४।।
सप्तत्रिशद्भिरध्यायैर्नारदीयाख्य संहिता।
य इमां पठ्यते भक्त्या स दैवज्ञो हि दैववित्।।१५।।
(नारदसंहितायां प्रथमाध्याये श्लोक १०-१५)

आधानपुंसवनमष्टममङ्गलं यत्सञ्जातकर्मवरनामनवान्नभुक्तिः।
चूडाविधिव्रतविवाहनृपाभिषेकयात्राप्रवेशनववास्तुसुरप्रतिष्ठाः।।११।।

गर्भाधान, पुंसवन, अष्टममङ्गल (सीमन्त), जातकर्म, नामकरण, नवान्न प्राशन, चूडाकर्म, व्रतबन्ध, विवाह, राज्याभिषेक, यात्रा, त्रिविधप्रवेश, नववास्तु, सुरप्रतिष्ठा।।११।।

काश्यपसंहिता में प्रतिपाद्य विषय–

स्कन्धत्रयात्मकं शास्त्रमाद्यं सिद्धान्तसंज्ञकम्।
द्वितीयं जातकस्कन्धं तृतीयं संहिताह्वयम्।।४।।
ग्रहाणां मध्यमाभुक्तिः स्फुटभुक्तिरनन्तरम्।
दिक्साधनं ततश्छाया लग्नकाल विनिर्णयः।।५।।
चन्द्रार्कग्रहणं सम्यक् तयोश्च परिलेखनम्।
समागमो युद्धभेदो भग्रहाणां युतिस्तथा।।६।।
उदयास्तमयज्ञानं चन्द्रशृङ्ग नतोन्नतिः।
पात वैधृतयोर्भेदौ भूगोलं यन्त्रलक्षणम्।।७।।
मानक्रियामानभेदाश्चाद्य स्कन्धे प्रकीर्तिताः।
राशि भेदः खेटयोनिर्वियोनिर्जन्मलक्षणम्।।८।।
निषेको जननं पुंसामरिष्टं भङ्गलक्षणम्।
आयुर्दायो दशाभेदा भेदाश्चान्तर्दशासु च।।९।।
अष्टवर्गः कर्मजीवो राजयोगा अनेकशः।
चन्द्रयोगा द्विग्रहाद्याः प्रव्रज्यायोसम्भवा।।१०।।

गुणदोषयोर्निरूपणमुभयोरपवादमंबरोत्पातौ ।
अखिलोत्पातप्रशमनशान्तिकमिश्राख्यपैत्रिकाध्यायाः।।१२।।

गुणदोषनिरूपण, अपवाद, त्रिविधोत्पात, अखिलोत्पात, शान्तिमिश्रित पैतृकाध्याय पर्यन्ता।।१२।।

राशिशीलं दृष्टिफलं ग्रहभावफलं ततः।
आश्रायाख्याश्च ये योगा योगाः संकीर्णसम्भवाः।।११।।
स्त्रीजातकं नष्टयोगं निर्याणं नष्टजातकम्।
द्रेष्काणश्च क्रिया योगा द्वितीयस्कन्धसम्भवाः।।१२।।
आदौ शास्त्रोपनयनं खेट चारोऽब्दलक्षणम्।
तिथिवासर-नक्षत्र-योगतिथ्यर्धलक्षणम्।।१३।।
मुहूर्तोपग्रहः सूर्यसंक्रान्तिर्गोचरक्रमः।
चन्द्रतारा बलैश्चैव क्रियाः षोडशकर्मणाम्।।१४।।
छुरिकाबन्धनं यात्रा प्रवेशो वास्तुलक्षणम्।
नृपाभिषेचनं देव प्रतिष्ठावस्त्रलक्षणम्।।१५।।
अग्न्याधानं मेघगर्भं निखिलोत्पातलक्षणम्।
तच्छान्तिर्मिश्रकाध्यायस्तृतीय स्कन्धसंभवाः।।१६।।

(कश्यपसंहितायां ४-१६, १-४-१६)

पञ्चोत्तरचत्वारिंशद्विपुलाध्यायैर्विराजते स्कन्धः।
अज्ञाज्ञानोपशमनमितरेषां बुद्धिवर्द्धनं नित्यम्॥१३॥

विपुलकाय पैंतालीस (४५) अध्यायों से सम्पन्न संहिता स्कन्ध प्रस्तुत है, जो अज्ञानी जनों के अज्ञानान्धकार को शमन करने में समर्थ एवं अधीत विद्वानों के लिए नित्यबुद्धिवर्धक है॥१३॥

॥इति श्रीवृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां शास्त्रस्वरूपाध्यायः प्रथमः॥१॥

॥वृद्ध वसिष्ठसंहिता के शास्त्रस्वरूपाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥१॥

पाठान्तरम्

१(अ) ज१—प्रह्वस्त्रोज्यसुरासुरेन्द्र ज२—प्रहवांभोज्यसुरासुरेन्द्र, वा.—प्रह्वांभोज्य-सुरासुरेन्द्र, ज.मो. प्रह्वांभोज (प्रह्वोऽम्भोजभावमरेन्द्र)

ज१—स्फूर्यकिरीटीज्वलत्, ज२—स्पुःर्युकिरीटोज्वलत्, ज.मो.—स्पूर्जकिरीटोज्वलत्, वा.—सूर्तेत्किरिटोज्वले (स्फूर्जत्किरीटोज्वलत्)

१(ब) ज१, ज२ ज.मो, ज्योत्सना, वा.—ज्जोत्स्ना (ज्योत्सना)

१(स) ज१—बह्मांडोदर, ज२—ब्रह्मांडोदर (बह्माण्डोदर)

१(स) ज१—ध्वांतस्यध्वशनं, ज२—ध्वांतस्यसंध्वंसनां, ज.मो.—ध्वांतस्यविध्वंसनं, वा.—जगध्वांसतस्यांविध्वंसंनं (जगत्तद्धवान्तविध्वंसनं)

१(द) ज१—कुर्वत्तिखिलं, ज२—ऊर्ध्वेनिखलं (कुवन्निखिलं)

१(द) ज१—अमत्यपनुदिनं पंर्यति, ज२—जगत्यनुदिनं, ज.मो.—जगत्प्रतिदिनं पर्यति, वा.—जगत्यनुदितर्येति (जगत्प्रतिदिनं पर्य्येति)

२(अ) ज२—सुर्ण (स्वर्ण)

२(ब) ज१—पूर्वेब्रह्मांतथोर्यखिलं, ज२—पूर्वेवलात तथो पर्याखिला वा.पूर्वब्रह्मातत्तोपर्यखिल (पूर्वब्रह्माततोपर्यखिल)

ज१—प्रार्थनाय्यंच्चकार, वा.प्रार्थनायच्चकार (प्रार्थनाद्यच्चकार)

२(स) ज२—वक्ष्येदं (तच्चेदं)

२(द) ज१—शश्चद्विश्वं, ज२—शस्वद्विस्व, वा. वद्धिश्वत (शाश्वद्विश्व)

२(स) ज२—वक्ष्येदं (तच्छेदं)

२(ब) ज१—शश्चद्विश्वं, ज२—शस्वद्विस्व, वा. वद्धिश्वत (शाश्वद्विश्व)

३(अ) ज१—वृत्ति (वृत्त), ज१, ज२—वा.—यदुक्ता (यदुक्तम्)

३(ब) ज१—त्रितीयं (तृतीयं), ज२—वक्षे, वा.वुक्ष्ये (वक्ष्ये)

४(ब) ज१—मुढ्यात्खिल, ज२—तस्माक्लि (मुष्मात्किल), ज१, ज२—मुख्यतरा (ऽमुष्यततः)

५(अ) ज१, वक्रं ज२—वत्तमां (वक्त्रं), ज१—कल्प (कल्प:)

५(ब) ज१—गान्याहुरेतानिषद्ध, ज२—गान्यादुरेतानिषद्ध

वा—वेदस्यागान्याहुरेतानिषट् (वेदास्याङ्गान्याहुरेतानिषट्च)

६(अ) ज२—चक्ष: (चक्षु:) वा. जोता (जाता)

६(ब) वा.—चक्षुर्विहन: (चक्षुर्विहन:) ज.मो. कश्चित (किंचित)

७(ब) ज१—ट्वुध्वा (एतद्बुध्वा), ज१, ज२—मोक्षमेवं मु.पु. मोक्षपत्र्यं (मोक्षमैत्र्ये)

८(अ) ज३—यदुरर्थ (पटुरर्थ) वा.—शास्त्रं (शास्त्रे)

वा.—शब्दोपदेष्ठा (शब्दोपदिष्ट:) ज१—कुशलं (कुशल:)

८(ब) ज२—सुवेद वा.—सुवेश: (सुवेष:) ज१—क्ली (कुली), वा.—शुशील: (सुशील:)

१०(ब) मु.पु. कौटभाश्च (कूटभाश्च)

११(अ) ज१—संजातक, ज२—संजाति (संजात कर्म), ज१—तवान्न (नवान्न)

११(ब) ज१—विर्धिव्रत, ज२—निधिव्रत (विधिव्रत), ज१—प्रतिष्ठा, ज२—प्रतिष्ठा (प्रतिष्टा:)

१२(अ) ज१—गुणदोषनिरुपयोरूभयोरूपवादनमवरोत्पाता

ज३—गुणदोषनिरूपयोमुभयोरूपवादनमवरोत्पाता

ज१—मिआख्यै (मिश्राख्य)

१२(ब) ज१—पैतृकाध्याया, ज३—यैत्रकाध्याय: (पैत्रिकाध्याय:)

१३(अ) ज१, ज३—विराजिते, वा—विराटते (विराजते)

ज१—अज्ञानमपियुद्धपितरेषां, ज३—अज्ञानमपियुदपिताषां

वा—अज्ञानांज्ञानांज्ञानम् (अज्ञाज्ञानोपशमनमितरेषां)

***

२

अथार्कचाराध्यायः

अथार्कचाराज्जगतः शुभाशुभे न्यूनाधिमासेतरमासनिर्णयः।
उद्वाहसङ्क्रान्तिदिनार्द्धं निश्चयः सर्वप्रपञ्चो भवतीति तद्वशात्॥१॥

नारायणी—सूर्यचार के प्रभाव से ही समस्त जगत् का शुभाशुभ, क्षयमासाधिमास, सौरमास, विवाह, सङ्क्रान्ति दिनार्ध (अभिजित्काल) निर्णय लिये जाते हैं और सभी प्रकार के कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रपञ्च भी सूर्यचाराधीन हैं॥१॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि सूर्यचारमुत्तमम्।
सूर्यचारवशादेव निखिलं कालनिर्णयः॥

(क. सं. सूर्यचाराध्याये श्लोक-१)

मकरादिराशिषट्कमुदगयनं कर्कटादिकं याम्यम्।
राशिद्वयार्कभोगात्षड्ऋतवः शिशिरादयः क्रमशः॥२॥

सूर्य के मकरादि ६ राशियों में जाने पर उत्तरायण और कर्कादि ६ राशियों में जाने पर दक्षिणायन होता है। दो-दो राशियों के सौर भोग द्वारा शिशिरादि ६ ऋतुओं का क्रमशः मान होता है॥२॥

सौम्यायनं मासषट्कं मृगाद्यं भानुयुक्तितः।
अहः सुराणां तद्रात्रिः कर्काद्यं दक्षिणायनम्॥

(ना. सं. तृतीयाध्यायेश्लोक-७८)

माघादिमासौ द्वौ द्वौ च ऋतवः शिशिरादयः।
चान्द्रो दर्शावधिः सौरः सङ्क्रान्त्या सावनो दिनैः॥

(ना. सं. ३य-श्लोक-८१)

चैत्रादिमासेन यथा क्रमेण मेषादयो द्वादशराशयः स्युः।
न्यूनाधिमासेषु समागतेषु चलन्ति तेभ्यो नियतं विनाऽपि॥३॥

चैत्रशुक्लादि मान से यथाक्रम मेषादि द्वादश राशियों में सूर्यभ्रमण करता है। न्यूनमास तथा अधिमास का समागम होने पर भी उन राशियों में रवि संचार निर्बाध गति से चलता रहता है (विपरिणामादि कहीं भी नहीं दिखाई देता)॥३॥

अधिमास क्षयमास संसर्प अंहस्पति मासों का निर्णय

सर्वेषु मासेष्वधिमासकः स्यात्तुलादिमासत्रयगः क्षयाख्यः।
संसपर्कः पूर्वभवोऽधिमासः पश्चाद्भवोऽहस्पतिनामधेयः॥४॥

चैत्रादि सभी मासों में अधिमास सम्भव है। तुलादि (कार्तिकादि) तीन मासों में

क्षय संज्ञक मास होता है। पूर्वोक्त पूर्वाधिमास संसर्प कहलाता है तत्पश्चात् क्षयमास अंहस्पति संज्ञक होता है।।४।।

कश्यप संहिता में उपलब्ध पाठ–

संक्रान्तयः स्युर्मेषाद्यश्चैत्रमासादिषु क्रमात्।
नियमेन भवेत्तत्र त्वधिमासे समागते।।
यस्मिन् मासेऽर्कसंक्रान्तिर्दर्शान्तात्प्राक् परापरम्।।
दर्शमुल्लङ्घ्य भवति संसर्पः सोऽधिमासकः।।
आरभ्य शुक्लप्रतिपत् प्रवेशात्संक्रमद्वयम्।।
आगामीन्दुक्षयस्यान्तात् प्राक् न्यूनाख्यस्त्वहस्पतिः।।
न्यूनमासस्तुलाषट्के त्वधिमासस्तु सर्वदा।।
स्फुटार्क संक्रमाद्विन्द्यान्न्यूनमासधिमासकौ।।

(क.सं. सूर्यचाराध्याये-२-५)

यस्मिन्दर्शस्यांतादर्वागेका परा परं दर्शम्।
उल्लंघ्य भवति भानोः सङ्क्रान्तिः सोऽधिमासः स्यात्।।५।।

जिस मास में अमावास्या की समाप्ति के पूर्व ही एक सङ्क्रान्ति हो जाए और दूसरी अमावास्या के पश्चात् सङ्क्रान्ति हो तो वह अधिमास कहलाता है।।५।।

आद्यन्तदर्शयोर्मध्ये तयोराद्यन्तयोर्यदा।
सङ्क्रान्तिद्वितयं चेत्स्यान्नयूनमासः स उच्चते।।६।।

जिस में दो अमावास्याओं के मध्य में दो सङ्क्रान्तियाँ आती हैं अर्थात् उन दो सङ्क्रान्तियों के मध्य कोई अमावास्या नहीं होती उसे क्षयमास कहते हैं।।६।।

मासप्रधानाखिलमेव कर्म मुक्त्वाखिलं कर्म न कार्यमत्र।
यज्ञोपवासव्रततीर्थयात्रा विवाहकर्मादि विनाशमेति।।७।।

मास प्रधान समस्त कृत्यों को मासों की प्रधानता त्याग कर नहीं करना चाहिये। यज्ञ, उपवास, व्रत, व्रतबन्ध तीर्थयात्रा, विवाहादिकृत्य मासों की अनवधानता से नष्ट हो जाते हैं।।७।।

कश्यपसंहिता में भी उल्लेख मिलता है—

मासौ न्यूनाधिकौ प्रोक्तौ सर्वकर्मबहिष्कृतौ।
मासप्राधान्यकं कर्म विनाऽपि ऋतुसूचकम्।।

(कश्यपसंहितायां २-६)

अश्विन्यादि नक्षत्रों में सूर्य का शुभाशुभ फल

दास्त्रादिऋक्षद्वयगे दिनेशे वृष्टिर्भवेत्क्षेमकरी जनानाम्।
वह्न्यर्क्षसंस्थे यदि वृष्टिरीतिर्ब्राह्मद्वये स्यादतुलं सुभिक्षम्।।८।।

अश्विनी और भरणी नक्षत्रों में रवि सञ्चार होने पर यदि वृष्टि हो तो लोगों के लिए हितकारी होती है। कृत्तिका नक्षत्र में वर्षा हो तो ईतिभीतिप्रद (टिड्डी आदि कीटों से भय), रोहिणी मृगशिरा में अत्यन्त सुभिक्षप्रद है॥८॥

प्रवेशकाले यदि रौद्रभस्य वृष्टिर्भवेदीतिरनर्घता च।
शेषेषु पादत्रितयेषु भीतिरत्यल्पवृष्टिर्महती गदा च॥९॥

आर्द्रा प्रवेश के प्रथम चरण के समय ईतिभीति एवं वस्तुओं के मूल्यों में उतार-चढ़ाव (तेजी मन्दी) होता है। आर्द्रा के शेष तीन चरणों में अल्पवृष्टि तथा महामारी का भय होता है॥९॥

कश्यप ऋषि के अनुसार–

दस्रभाद्द्वितीयस्थेऽर्के यदि वृष्टिर्भवेत्तदा।
क्षेमं सुभिक्षामतुलं भीतिदोषोऽग्निधिष्ण्यगे॥
रोहिणी द्वितयस्थेऽर्के सस्यवृद्धिर्मनोजयः।
रौद्रनक्षत्रगे सूर्ये यदि वृष्टिर्भवेत्तदा॥
अनल्पमल्पवृष्टिः स्यादीतिदोषस्त्वनर्घता॥
आर्द्राप्रवेशे वृष्टिः स्यात्सार्धमासमवर्षणम्॥

(कश्यपसंहितायां २, ७-११)

आर्द्राप्रवेशेऽह्निजगद्विपत्तिं सस्यस्य नाशं कुरुतेऽल्पवृष्टिम्।
क्षेमं सुभिक्षं निशि सस्यवृद्धिं सुवृष्टिमत्यन्तजनानुरागम्॥१०॥

दिवा आर्द्रा प्रवेश होने पर संसार में विपत्ति, सस्यनाश एवं अल्पवृष्टि होती है। निशाकाल में आर्द्रा प्रवेश होने पर क्षेम, सुभिक्ष, सुवृष्टि, जनता में परस्पर अनुराग वृद्धि॥१०॥

पुनर्वसोर्भाद्दशधिष्ण्यवृन्दे प्रीजिर्जनानां कलहो नृपाणाम्।
मैत्रादित्रृक्षत्रितये नराणां विभावसोः साध्वसमामयश्च॥११॥

पुनर्वसु आदि दश नक्षत्रों में वृष्टि होने पर जनता में प्रीति; परन्तु राजाओं में कलह हो। सूर्य के अनुराधा आदि तीन नक्षत्रों में आने पर मेघ घटाओं से संयुक्त हों तथा मनुष्य यात्रारत एवं रोगरहित होते हैं॥११॥

जलाधिदैवर्क्षगते पतंगे विद्युन्मरुद्वारिधनैश्चयुक्ते।
दिनेषु सार्द्धत्रितयेषु पश्चाद्रौद्रादिभेषु क्रमशः सुवृष्टिः॥१२॥

बिजली, वायु और बादलों से आकाश ढँका होने पर यदि सूर्यनारायण शतभिषा में चार करें तो आर्द्रादि नक्षत्रों में क्रमशः ३ $\frac{१}{२}$ दिनों तक वृष्टि होती है॥१२॥

भङ्गोऽस्य पौष्णार्क्षगते दिनेशे भिन्नेषु रात्रावपि वीक्षणीयम्।
विश्वादिऋक्षत्रितये गदः स्यात्तदा सुभिक्षं त्रिषु वारुणर्क्षात्॥१३॥

रेवती नक्षत्र में वृष्टि भङ्ग, तदभिन्न नक्षत्रों में भी रात्रि का ध्यान रखते हुए विचार करें, उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों में सूर्यचार हो तो रोगभय, शतभिषादि तीन नक्षत्रों में सुभिक्ष होता है॥१३॥

सूर्यमण्डलगत राहु पुत्र तामस कीलकादि केतुफल

राहोः सुतास्तामसकीलकाद्याः कबन्धकाकोष्ट्रश्रृगालरूपाः।
यदा रवेर्मण्डलगास्तदानीं मातंगभूपाहवभीतिदाः स्युः॥१४॥

राहु के पुत्र तामसकीलकादि धूम्रकेतु जब सूर्यमण्डल में कबन्ध (शीर्षरहितमानव) काक, ऊष्ट्र, श्रृगालाकृति दिखाई दें तो हाथी, राजा युद्धादि से भय होता है॥१४॥

छत्रध्वजे भाङ्कुशगोवृषाश्वदण्डास्त्रभद्रासनसिंहरूपाः।
दृष्टा रवेर्मण्डलगा यदा ते जगद्विपत्तीति भयप्रदाः स्युः॥१५॥

यदि सूर्यमण्डल में छत्र, ध्वज, गज, अङ्कुश, गो, वृष, अश्व, दण्ड, अस्त्र, भद्रासन, सिंहाकृति रूपवान केतु दिखाई दे तो वे जगद्विपत्तिकारक और ईतिभीतिप्रद होते हैं॥१५॥

नारद ऋषि के अनुसार–

ज्ञात्वा बलाबलं सम्यग्वदेत्फलनिरूपणम्।
दण्डाकारे कबन्धे वा ध्वांक्षाकारेऽथकीलके॥
दृष्टिरर्कमण्डले व्याधिर्भीतिश्चौरार्थनाशनम्।
छत्रध्वजपताकाद्यैराकारैस्तिमिरैर्घनैः ॥
रविमण्डलगैर्धूमैः स्फुलिङ्गैर्नाशनम्।
सितरक्तैः पीतकृष्णस्तैर्मिर्विप्रपूर्वकान्॥
हन्ति द्वित्रिचतुर्भिर्वा राज्ञोऽन्यत्र जनक्षयः।
ऊर्ध्वैर्भानुकरैस्ताम्रैर्नाशं याति च भूपतिः॥
पीतैर्नृपसुतः श्वेतैः पुरोधाश्चित्रितैर्जनाः।
धूम्रैर्नृपः पिशङ्गैश्च जलदोऽधोमुखैस्तथा॥

(ना. सं. २, ११-१५)

श्वेता द्विजान्घ्नन्ति नृपांश्च रक्ताः पीताश्च वैश्यानसिताश्च शूद्रान्।
चमूपतिं चोर्ध्वमुखाश्च रक्ताः पुरोधसं तेऽपि विचित्रवर्णाः॥१६॥

श्वेत केतु विप्र, रक्तवर्ण नृप, पीतवर्ण वैश्य, कृष्णवर्ण शूद्रों की हानि करता है। ऊर्ध्वमुख रक्तवर्ण सेनापति के लिये घातक, विचित्रवर्ण युक्त केतु पुरोहित के लिये घातक होता है॥१६॥

निमित्तवस्तुतो यत्नात् फलं नैमित्तिकस्य च।
खड्गाकारे नृपवधं कबन्धे व्याधितो भयम्।
ध्वांक्षे चौरभयं कीलकाकारेऽपि त्वनर्घता।
राजोपकरणाकारैश्छत्राद्यैरर्कमण्डले।।
राजाबन्धोऽन्यराजत्वं स्फुलिङ्गरर्कमण्डले।।
राजाबन्धोऽन्यराजत्वं स्फुलिङ्गर्गजनाशनम्।
मेघैर्विद्धं नृपवधं करोति रविमण्डलम्।।
सितरक्तैः पीतकृष्णैः पाटलैर्विप्रपूर्वकान्।
चमूपो नाशमायाति ताम्रैरूर्ध्वमुखैः करैः।।
पीतैर्नृपात्मजः श्वेतै पुरोधाश्चित्रितैर्जनाः।
राजधूमैः पिशङ्गैस्तैर्वृष्टिश्चाधोमुखैस्तथा।।

(क. सं. सूर्यचाराध्याये, २१-२५)

अधोमुखा धूमनिभाः क्षितीशान् वृष्टिं पिशंगाश्च तथा विधास्ते।
उक्त्वा फलं तामसकीलकानां फलं ततो मण्डलवर्णतश्च।।१७।।

धूमवर्ण अधोमुख राजघातक, भूरे रंग युक्त पीत केतु वृष्टिनाशक होता है। तामसकीलकादि केतुफल निरूपणानन्तर भास्कर मण्डल के वर्णानुरूप फल निम्न प्रकार से जानें।।१७।।

तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत्।
वर्णस्थानाकरैस्तान् दृष्ट्वाऽर्के फलं ब्रूयात।।
ते चार्कमण्डलगताः पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्याः।।
ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपाः शाशाङ्केऽपि।
दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात् कबन्धस्थाने।
ध्वाङ्क्षे च तस्करभयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे।
राजोपकरणरूपैश्छत्रध्वजचामरादिभिर्विद्धः।
राजान्यत्वकृदर्कः स्फुलिङ्गधूमादिर्भिजनहा।।

(आचार्य वराह मिहिरः वृहत्संहितायां आदित्य चाराध्याये ७, ८, १७, १८)

ऋतुवशात् सूर्य का शुभाशुभफल

लोहितवर्णो ग्रीष्मे लोकानामीतिमीतिदः शश्वत्।
हेमन्ते व्याधिभयं पीतः प्रावृष्यवृष्टिकृत्कृष्णः।।१८।।
आखण्डलचापनिभो भूपविरोधं परस्परं तत्र।
यदि पत्रनिभो बर्हैर्द्वादशवर्षं न वर्षति क्षोण्याम्।।१९।।

ग्रीष्म में रक्तवर्ण सूर्य निरन्तर लोगों में ईतिभीतिप्रद, हेमन्त में पीतवर्ण

व्याधिभय, वर्षा ऋतु में कृष्णवर्ण अनावृष्टिप्रद, इन्द्रधनुषाकार सप्तवर्ण सौरमण्डल राजाओं का परस्पर विरोधकारक जानें। मयूरपंखाकारयुक्त भास्कर भूमि पर द्वादश वर्ष पर्यन्त वर्षा का अभाव करता है।।१८-१९।।

उदयास्तमये काले स्वास्थ्यं तैः पाण्डुसन्निभैः।
भास्करास्ताम्रसंकाशः शिशिरे कपिलोऽपि वा।।
कुंकुमाभौ वसन्तर्त्ता कपिलो वापि शस्यते।
अपाण्डुरः स्वर्णवर्णो ग्रीष्मे चित्रो जलागमे।।
पद्मोदराभः शरदि हेमन्ते लोहितच्छविः।
हेमन्ते प्रावृषि ग्रीष्मे रोगाणां वृष्टिभीतिकृत्।।
पीताभकृष्णवर्णोऽपि लोहितस्तु यथा क्रमात्।
इन्द्रचापार्द्धमूर्तिश्चेत् भानुर्भूपविरोधकृत्।।
मयूरपत्रसंकाशो द्वादशाब्दं न वर्षति।
शशरक्तनिभे भानौ संग्रामे ह्यचिराद् भवेत्।।

(ना. सं. २-१६-२०)

शशरक्तनिभो युद्धं राजान्यत्वं विधूपमः सविता।
श्यामनिभः कीटभयं भस्मनिभो भयदमासुरं जगतः।।२०।।

शशक रुधिर सदृश सौरमण्डलयुद्धप्रद, चन्द्रतुल्य सवितृमण्डल राष्ट्र विप्लवकारक, श्यामवर्ण कीटभय, भस्म सदृश जगत् को आसुरभावों द्वारा भयप्रद करता है।।२०।।

चन्द्रस्य सदृशो यत्र चान्यं राजानमादिशेत्।
अर्के श्यामे कीटभयं भस्माभे शस्त्रतो भयम्।।
छिद्रेऽर्कमण्डले दृष्टे तदा राजविनाशकृत्।
घटाकृतिः क्षुद्भयकृत् पुरहा तोरणाकृतिः।।
छत्राकृतिर्देशहन्ता खण्डभानुर्नृपान्तकृत।
उदयास्तमये भानोर्विद्युदुल्काशनिर्यदि।।
तदा नृपवधो ज्ञेयस्त्वथवा राजविग्रहः।
पक्षं पक्षार्द्धमर्केन्दू परिविष्टावहर्निशम्।।
राजानमन्यं कुरुते लोहितानुदयास्तगौ।
उदयास्तमये भानुराच्छिन्नः शस्त्रसन्निभैः।।
घनैर्युद्धं खरोष्ट्राद्यैः पापरूपैर्भयप्रदः।
ऋतुकालानुरूपोऽर्कः सौम्यमूर्तिः शुभावहः।
रविचारमिदं सम्यक् ज्ञातव्यं तत्त्ववेदिभिः।।

(नारदसंहितायां २, १६-२६)

भानोरुदयास्तमये चोल्कापतनं महाहवं राज्ञाम्।
परिवेषयति प्रकटं पक्षं पक्षार्द्धमेव वा सततम्।।२१।।

सूर्योदय एवं सूर्यास्त काल में (सूर्यमण्डल पर) उल्कापात राजयुद्धसूचक, निरन्तर पक्षपर्यन्त अथवा सप्ताह पर्यन्त सूर्य पर परिवेष भी उक्त फल देता है।।२१।।

यद्युपसूर्य्यकमस्यां संध्यायामर्घनाशनं प्रचुरम्।
क्षितिपति कलहः शीघ्रं सलिलभयं वा भवेन्नूनम्।।२२।।

सन्ध्या समय में प्रति सूर्य दर्शन प्रचुर मात्रा में (मूल्यों में वृद्धि) विचार सूचक, राजकलह तथा जलभयप्रद होता है।।२२।।

उदयेऽस्तमये स्वस्थं सर्वेषां न तथा विधैः।
शिशरे ताम्रवर्णोऽर्कः शुभदा कपिलोऽपि वा।।
बसन्ते कुंकुमनिभः शिवाय हरितोऽपि वा।
ग्रीष्मे स्वर्णनिभश्चित्रः प्रावृष्यम्बुजगर्भवत्।।
शरद् हेमन्ते समये लोहिताभः शुभप्रदः।
लोकानां भयदो ग्रीष्मे लोहितः सूर्यमण्डलः।।
हेमन्ते रोगदः पीतः कृष्णः प्रावृषि वृष्टिकृत्।
आखण्डलधनुः खण्डलिनभो भूपविरोधकृत्।।
न वर्षति द्वादशाब्दं वर्हिपव निभोपमः।
युद्धाय शशरक्ताभो राजान्यत्वं विधूपमः।।
श्यामोऽर्कः कीटभयकृच्छस्त्रभीर्भस्म सन्निभः।
छिद्राणि मण्डले भानोर्दृश्यन्ते राजमृत्यवे।।
कुम्भरूपः क्षुद्भयदो भूपहा तोरणाकृतिः।
देशहाछत्ररूपस्तु भूपहाखण्डमण्डलः।।
उल्कादिपतनं सन्ध्याकाले राजविनाशनम्।
परिविष्ठो सदार्केन्दू पक्षं पक्षार्धमेव वा।।

(क. सं.—सूर्यचाराध्याये २६-३३)

सूर्यमण्डल के शुभलक्षण

ऋतौ वसन्ते खलु कुंकुमाभः शुभप्रदः कापिलसन्निभो वा।
आनन्ददस्ताम्रनिभो विवस्वान्यः शैशिरे वा कपिलः सुभिक्षः।।२३।।
ग्रीष्मे सदा हेमनिभो विचित्रवर्णो नृणां क्षेमशुभप्रदश्च।
अंभोजगर्भोपम शोभनश्च प्रावृष्यतीवाखिलसस्यवृद्ध्यै।।२४।।

वसन्त ऋतु में कुमकुम सदृश अथवा कपिल वर्ण आनन्दप्रद, शिशिर ऋतु में

ताम्रवर्ण अथवा कपिलवर्ण सौर मण्डल सुभिक्षप्रद, स्वर्ण सदृश विचित्र वर्ण ग्रीष्म में मानवमात्र के लिए कल्याणप्रद तथा शुभ हो, वर्षा ऋतु में रक्तकमल सदृश हो तो समस्त सस्य (फसलों) वृद्धिकारक होता है॥२३-२४॥

दिवसकृतः प्रतिसूर्य्यो जलकृदुदग दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत्
अभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा॥
रुधिरनिभो वियत्यवनिपान्तकरो न चिरात्।
परुषरजोऽरुणीकृतनुर्यदि वा दिनकृत्॥
असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः।
खगमृगभैरवस्वरतरुतैश्च निशाद्युमुखे॥

(वृ. सं. २, ३७-३८)

रक्तः सूर्यः शरदि विपुलाकीर्तिसौभाग्यदश्च।
हेमन्तेऽपि त्वखिलजगतः सस्यसंपद्विवृद्ध्यै॥
ज्ञात्वा चारं दशशतकरस्याखिलं दैववेदी।
पश्चात्सर्वं सुशुभमशुभं वा दिशेत्कालरूपम्॥२५॥

शरद् ऋतु में रक्तमण्डल प्रजा के लिए अतुलकीर्ति एवं सौभाग्यप्रद, हेमन्त में शान्तवर्ण होने पर सस्य सम्पत्ति से प्रजा सुखी हो। ऐसे ही सहस्रकिरण सूर्य चार को जानकर दैववेत्ता कालानुरूप शुभाशुभफलादेश कहें॥२५॥

अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः।
अविकृततनुवर्णचिह्नभृज्जगति करोति शिवं दिवाकरः॥

(वृ. सं. ३, ३९)

॥इति श्री वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां अर्कचाराध्यायो द्वितीयः॥२॥

॥वृद्ध वसिष्ठ संहिता के अर्कचाराध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥२॥

पाठान्तरम्

१ (अ) ज२–अथावर्क (अथार्क), ज१–जगत्तः (जगतः), ज२–मांतर (मासेतर)
१ (ब) ज१–दिनार्द्धनिर्णयः मु. पु. दिनाब्दनिश्चयः (दिनार्द्धनिश्चयः)
२ (अ) ज१–कर्कटादिषट्वाभ्यं, ज२–कर्कटादिषट्याम्यं (कर्कटादिकंयाम्यं)
२ (ब) ज१–शिसिर वा-शौशिरादयः (शिशिरादयः)
३ (अ) वा-चैत्रादिमासेषु (चैत्रादिमासेन), ज१ ज२–क्रमेषु (क्रमेण)
३ (ब) ज२–चलति (चलन्ति)
४ (अ) ज१– कस्यातुलादिषट्केपिन्यूनन्यामाक्षः
ज२–कस्यातुलादिषटेपिचशून्यमासः

वा.–स्यात् तुलादिषट्केऽपि च न्यूनमासः (स्यात्तुलादिमासत्रयगः क्षयाख्यः)

४ (ब) ज१, ज२–संसर्पतः वा. संसर्पितः (संसपर्कः)

ज१–अहर्यत, ज२–अहर्पता वा हर्पयति (अंहस्पति)

५ (अ) ज१–दर्शयोर्मध्येतयोरेवंतयोर्यदा, ज२–दर्शस्यस्याद्धागेकापरंदश्यं, वा. पाठोनास्ति (यस्मिन्दर्शस्यांतादर्वागेकापरापरंदर्शम्)

५ (ब) ज१–अलंध्या (उल्लंघ्य), ज१–भानो (भानोः), ज२–संक्रोतिः (संक्रान्ति)

६ (अ) ज१, ज२–क्षेमकरं, वा-क्षमकरा (क्षेमकरी), ज१–जनाना, ज२–जनीनां, ज. मो. प्रजानाम् (जनानाम्)

७ (अ) ज१–क्लिमेक, ज२–क्लिमेव, वा–क्लिवैव (खिलमेव), ज१, ज२–मुक्ताखिलं, वा–मुक्ताखिकर्म (मुक्त्वाखिलं)

७ (ब) ज२–विनाशमिति (विनाशमेति)

८ (अ) ज१, ज२–क्षेमकरं, वा-क्षमकरा (क्षेमकरी), ज१–जनाना, ज२-जनीनां, ज. मो. प्रजानाम् (जनानाम्)

८ (ब) ज१-ब्राह्मद्वयस्येप्यतुलंसुभिक्षं, ज२-ब्राह्मयस्येप्पतुलं भिक्षं, ज. मो. यस्येऽप्यमलं, वा.-द्वयस्थऽप्यतुलं (ब्राह्मद्वयेस्यादतुलं सुभिक्षम्)

९ (अ) ज१-वानर्यताच, ज१-वारनघाताच (भवेदीतिरनर्घताच)

१२ (अ) ज१-विधन्मरुद्रारि, ज२-विद्युन्मरुद्दारि, वा.-विद्यन्मरुद्वारि (विद्युन्मरुद्वारि), वा.-धरेश्चे (धनैश्च), ज१, ज२-युक्तः, वा. युते (युक्ते)

१२ (ब) ज१, ज२-त्रिदशेषु (त्रितयेषु)

१३ (अ) ज१, ज२-भगस्य, वा. भगोस्य (भंगोऽस्य), ज१-पौल्लर्क्ष वा.-पौष्णाक्षरि (पौष्णार्क्षगते), ज१, ज२-पतंगे (दिनेशे) ज१, ज२-रात्रौ, वा. रात्रा च (रात्रावपि), ज१-ज२-ततदीक्षणीयम् (वीक्षणीयम्)

१३ (ब) ज१-ज२-वित्स्वादि (विश्वादि), मु.पु. यदा (गदः)

१४ (अ) ज१-स्याततः, ज-२कीतकाक्षा ज.मो. कीलकाख्याः, वा.-तामसकीलकायाः (तामसकीलकाधाः)

१४ (ब) ज१, कबन्धवक्तोष्ठ, ज२-कवधुवकोष्ट्र, वा-कबधकाकोल (कबन्धकोष्ट्र)

१५ (अ) ज१, ज२-वृषश्च (वृषाश्च)

१५ (ब) ज१-जगद्विपत्ताप्ति, ज२-जगद्विपानाति (जगद्विपत्तीति)

१६ (अ) ज१, ज२ (रवेतान्हिजाघ्नन्ति (श्वेताद्विजान्घ्नन्ति), ज१ ज.२-नृपश्च (नृपांश्च) ज१-वैश्यात्रसितश्च, ज२-वैश्यासिसीताश्च (वैश्यान सिताश्च)

१६ (ब) ज१, ज२-चमूपतिश्चोर्द्रमुखाश्च, ज.मो.-चमूपतिं-चौर्ध्वमुखास (चमूपतिं चौर्ध्वमुखाश्च), ज१,,ज२-प्रवोधसत्रेपि वा.-पुरोधसंतेच (पुरोधसंतेऽपि)

१७ (अ) ज१-ज२-अधोमुरवां, वा.-अधोमुखाः (अधोमुखा), ज१, ज२-धूनिशः (धूनिभाः), ज१ ज२, वा., ज.मो. क्षितीशं (क्षितीशान्) ज१ ज२-वृष्टि (वृष्टिं), ज२-वियास्ते (विधास्ते)

१७ (ब) ज१ ज२-उल्का, वा. अर्क्क (उत्त्वा), ज१-फलत्रासन ज२-फलंताशन (फलंतामस), ज२ वर्णे (वर्णतश्च)

१८ (अ) ज१, ज२, वा.-७ोकानांभतिरीतीदं:, ज.मो.-लोकानाभीतिरीतिद:, मु.पु. लोकानामीतिरीतिद: (लोकानां भीतिरीतिद:)

१८ (ब) ज१, ज२-भय: (भयं), ज१-प्रीत, ज२-प्रीति, ज.मो.-पीतं (पीत:), ज१-प्रावृट्वृष्टिकृतल्कनल:, ज२-प्रावृध्यवृष्टिकृत् कृष्ण: (प्रावृष्यवृष्टिकृत्कृष्ण:)

१९ (अ) ज१-वापसन्निभौ, ज२-सन्निभौ (चापनिभो), ज१, ज२-भूपतिरोध:, ज.मो. विधूपम: वा-भूपविरोध: (भूपविरोधं), ज१ ज२-पतनं, वा. नूनं (तत्र)

१९ (ब) ज१, ज२-यत्त्रंविभो, वा.-वर्हिपत्रनिभो (पत्रनिभो)

२० (अ) ज२-शब्दरक्तारिनिभो (शशरक्तनिभो), ज१, ज२-राजानत्वं, वा.-राजन्यत्व (राजान्यत्वं), ज१-विद्धूपभम (विधूपम:)

२० (ब) कीटनिभं (कीटभयं), ज१-भयदामरं, ज२-भयदमारंजगत् (भयदमासुरं जगत:)

२१ (अ) ज१-माद्वाहवं (महाहवं)

२१ (ब) ज१, ज२-परिवेष (परिवेषयति)

२२ (अ) ज१-सूर्यकमस्या, ज२-सूर्यमस्या (सूर्य्यकमस्यां), ज१-संध्यायाममर्घनाराशतं, ज२-सन्ध्यायापर्वुराशनं (संध्यायामर्घनाशनं), ज१, ज२-ललित (सलिल)

२३ (अ) ज२-प्रकापिल (कापिल), ज२-ताम्त्रनिभो (ताम्रानिभो)

२३ (ब) ज२-सुभिक्षे, ज.मो. सतुतीक्ष्ण: वा-सतीक्षण: (सुभिक्ष:)

२४ (अ) ज१, ज२-सुभिक्षदश्च, वा.-क्षेमसुभिक्षदश्च (क्षेमशुभप्रदश्च)

२४ (ब) ज१, ज२-भनानि, वा-शोभनाभ: (शोभनश्च), ज१-प्रावृष्स्यति, ज२-प्रवृष्टयती (प्रावृष्यती), ज१-वृद्धौ (वृद्ध्यै)

२५ (अ) ज१-सरदि (शरदि), ज२-विपुलां, वा.-विपुल: (विपुला)

२५ (ब) ज१-हेमन्तेऽपिताखिल, ज२-हेमन्तेपियित्वा (हमेन्तेऽपित्वाखिल), ज१, ज२-विद्धौ (वृद्ध्यै)

२५ (स) ज१-करंस्थापिलं, ज२-सुतकरंस्थापितं (दशशतकरस्याखिलं)

२५ (द) ज१, ज२-व्यादिशेत्तालरूप (वादिशेत्कालरूपम्)

***

३

अथ चन्द्रचाराध्यायः

चन्द्रचार का फल

अमृतकिरणचारं खेटचारेषु सारं
विपुल निखिललोकानन्दनं सुन्दरं च॥
सदसदखिललोकाभोगदं यत्फलं तत्
कथितविषमकालज्ञानरूपं प्रवच्मि॥१॥

अमृत किरणों वाले चन्द्रमा का चार समस्त ग्रहों के चार में एक सार है। अधिक-से-अधिक लोगों के लिए आनन्दप्रद एवं सुन्दर माना जाता है। अच्छे-बुरे सम्पूर्ण लोगों के भोग्याभोग्य जो फल हैं, उसे ज्ञानस्वरूप उक्त विषम काल को मैं प्रस्तुत करता हूँ॥१॥

असितचतुर्दश्यन्ते प्रतिमासं चास्तमेति तुहिनकरः।
सततं दर्शस्यान्ते तुलितौ राश्यादिभिर्नियतम्॥२॥
विमलं प्रतिपद्यन्ते उदयं संयाति भास्करान्मुक्तः।
द्वादशभागविवृद्ध्या तिथयश्चन्द्राच्च सम्भूताः॥३॥

कृष्ण चतुर्दशी के अन्त में प्रतिमास चन्द्रमा अस्त होता है। निरन्तर अमावास्या के अन्त में सूर्यचन्द्र राश्यादि कला पर्यन्त युति जानना, अतएव (दर्शः सूर्येन्दुसंगमः) चरितार्थ होता है॥२॥

प्रतिपदा के अन्त में सूर्य किरणों से मुक्त विमल मूर्ति चन्द्रमा उदय होता है तभी प्रत्येक तिथि में १२-१२ अंशानुसार वृद्धि द्वारा चन्द्रमा से तिथियाँ उत्पन्न होती हैं॥३॥

चतुर्दश्यन्तगश्चन्द्रः सर्वदास्तमयं व्रजेत्॥
अमावास्यान्तगौ चन्द्रसूर्यौ राश्यादिभिः समौ
अन्ते प्रतिपदः सूर्यान्निर्गतश्चोदयं गतः॥
शुभदः सर्वजन्तूनां सौम्यशृङ्गोन्नतोदितः॥

(क.सं. ३; १-२)

हिमद्युतेरभ्युदितस्य शृङ्गे याम्योन्नते मेषझषे सुभिक्षम्।
जनानुरागं वृषकुम्भयोश्च तुल्ये विषाणे जगतोऽखिलस्य॥४॥

मेष और मीन में उदित चन्द्रमा के याम्यो शृंग उन्नत होने पर सुभिक्षप्रद, वृष और कुम्भ में तुल्य शृङ्गोन्नति होने पर जनता में परस्पर अनुराग होता है॥४॥

सौम्योन्नते जिह्म मृगास्ययोश्च मासद्वयं स्वास्थ्यमुपैति लोकः।
सौम्योन्नते शीतनिभे सुवृष्टिः क्षेमं सदा कर्कटचापयोश्च॥५॥

मिथुनमकरस्थ चन्द्रमा के उत्तर शृङ्गोन्नत होने पर संसार में दो मास तक स्वास्थ्य लाभ, शीतसदृश चन्द्रमा के कर्क और धनुराशि में उत्तरशृङ्गोन्नति होने पर सुन्दर वृष्टि एवं कल्याण होता है॥५॥

याम्यशृङ्गोन्नतश्चन्द्रोऽशुभदो मीनमेषयोः।
सौम्यशृङ्गोन्नतः श्रेष्ठो नृयुग्मकरयोस्तथा॥
समोऽक्षघटयोः कर्कसिंहयोः शरसन्निभः।
चापकीटभयोः स्थूलः शूलुवृत्तौलिकन्ययोः॥
विपरीतोदितश्चन्द्रोदुर्भिक्षकलहप्रदः ।
यथोक्तोभ्युदितश्चेन्दुः प्रतिमासं सुभिक्षकृत्॥

(ना.सं. २; १, २, ३)३३

सस्याभिवृद्धिर्हरिकीटयोश्च सौम्योन्नते चापनिभे सुवृष्टिः।
अनामया वृष्टिरतीव कन्यातुलाद्वयोः शूलनिभे तथैव॥६॥

सिंहवृश्चिकस्थ चापसदृश उत्तरशृङ्गोन्नति होने पर फसलों की वृद्धि एवं कन्या और तुला में उत्तरशृङ्गोन्नति आरोग्य तथा अतिवृष्टिप्रद होती है॥६॥

एवं क्रमेणाभ्युदितः शशांकः क्षेमं सुभिक्षं जगतः करोति।
व्यस्तोदितः प्रोक्तफलं समस्तं करोति नाशं कलहं नृपाणाम्॥७॥

इस प्रकार उदित चन्द्रमा संसार में कल्याण और सुभिक्ष करता है। अस्तोदित उपरोक्त कहा हुआ फल करता है। विशेषतः राज कलह एवं नाशकारक होता है॥७॥

शृङ्गे ब्रीहियवाकारे वृष्टिः स्यान्महदर्घता।
तस्मिन्पिपीलिकाकारे पूर्वोक्तफलनाशनम्॥८॥

शृङ्ग के धान्यकण और यवाकार होने पर वृष्टि और महंगाई हो, यदि पिपीलिकाकार हो जाए तो पूर्वोक्त फल नाशकारक होता है॥८॥

विशाल शुक्ले वृद्धिः स्यादविशालेत्त्वनर्घता।
अधोमुखे भूपहानिर्दण्डाकारे नृपाहवः॥९॥

विशाल शुक्लत्व होने पर महंगाई की वृद्धि और संकुचित होने पर सुभिक्षप्रद हो, अधोमुख हो तो राजाओं की हानि और दण्डाकार राजाओं में युद्धप्रद होता है॥९॥

वृद्धिः शुक्ले प्लवाकारे हानिः पिपीलिकानिभे।
अर्घवृद्धिर्विशालेन्दाववविशालेऽर्घनाशनम्॥

अधोमुखे राजहानिः कलहं दण्डसन्निभे।
हतशृङ्गः कुजेनेन्दुर्हन्ति प्रत्यन्तभूमिपान्।।

(क.सं. ३; ९, १०)

याम्यशृङ्गोन्नतः श्रेष्ठः (नेष्ठः) सौम्यशृङ्गोन्नतः शुभः
शुक्ले पिपीलिकाकारे हानिर्वृद्धिर्यथाक्रमात्।।
सुभिक्षकृद्विशालेन्दुरविशालोर्घनाशनः
अधोमुखे शस्त्रभयं कलहो दण्डसन्निभेः।।

(ना.सं. २. ८, ९)

नाशं ययुर्नृपतयोन्तगतः किराता मन्दे
हते हिमकरस्य नवे विषाणे।।
क्षुच्छस्त्रभीतिरतुला निहते कुजे च
दुर्भिक्षवृष्टिभयमिन्दुसुते हतेऽस्मिन्।।१०।।

चन्द्रमा की नई शृङ्गोन्नति में शनि के द्वारा हत होने पर राजाओं का नाश, किरातों का दमन, मङ्गल द्वारा हत होने पर भूखमरी, राजभय, बुध द्वारा हत हो तो दुर्भिक्ष एवं भयप्रद वृष्टि होती है।।१०।।

गुरुणा श्रेष्ठनृपतीन् शुक्रेनाल्पनृपास्तथा।
दुर्भिक्षवृष्टिभयकृद् हतशृङ्गो बुधेन सः।।
सौरिणा चास्त्रभयकृत् कृष्णेऽल्प फलदः सिते।
वर्धमाने सिते पक्षे कृष्णपक्षे क्षयं गते।।
विप्रभूमिपयोवृद्धिर्हीने हानिः समे समम्।
प्रालेय कुन्दकुमुदमुक्तास्फटिकसन्निभः।।

(क.सं. ३; ११ १२, १३)

श्रेष्ठा नृपा युधिलयं त्वमरेन्द्रवन्द्ये।
शुक्रे हते नियतमल्पनृपाश्च सर्वे।।
कृष्णे फलं त्वविकलं भवति प्रजानां
पक्षे सिते विफलमेति भवेच्च यद्वा।।११।।

बृहस्पति द्वारा हत हो तो श्रेष्ठ राजाओं का युद्ध में नाश, शुक्र द्वारा हत होने से सभी सामन्त राजा नष्ट हों, कृष्ण पक्ष में प्रजा हानि तथा शुक्ल पक्ष में सफलता प्राप्त हो।।११।।

कुजाद्यैर्निहते शृङ्गे मण्डले वा यथाक्रमात्।
क्षेमार्घवृष्टिनृपतिजानानां नाशकृच्छशी।।

(ना.सं. २; १०)

शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में चन्द्रवृद्धि का फल

वलक्षपक्षः खलुवर्द्धते चेत्क्षेमाभिवृद्धिः सततं द्विजानाम्।
कृष्णे विवृद्धौ यदि शूद्रवृद्धिर्व्यत्यासवृद्धौ स्वफलं तथैव॥१२॥

शुक्लपक्ष में चन्द्रवृद्धि से निरन्तर ब्राह्मणों का कल्याण तथा वृद्धि एवं कृष्णपक्ष में शूद्रों की अभिवृद्धि, इसके विपरीत चन्द्रमा अपना फल वैसे ही देता है॥१२॥

वृद्धिः शुक्ले प्लवाकारे हानिः पिपीलिका निभे।
अर्धवृद्धिर्विशालेन्दावविशालेऽर्धनाशनम्॥

(क.सं. ३; ९)

नक्षत्रवश चन्द्रचार फल

विश्वाम्बुमूलेन्द्रविशाखमैत्रभानां यदा दक्षिणभागगेन्दुः।
बह्वेर्भयं त्वीतिभयं जनानां करोति दुर्भिक्षमतीव युद्धम्॥१३॥

पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मूल, ज्येष्ठा, विशाखा, अनुराधा नक्षत्रों के दक्षिण भाग में चन्द्रमा जाये तो अग्निभय, ईतिभय, दुर्भिक्ष एवं युद्धप्रद होता है॥१३॥

आषाढ़द्वयमूलेन्द्रधिष्ण्यानां याम्यगः शशिः।
अग्निप्रदस्तोयचरवनसर्पविनाशकृत् ॥
विशाखामैत्रयोर्याम्यपार्श्वगः पापकृत्सदा।
मध्यगः पितृदैवत्ये द्विदैवत्ये शुभोत्तरे॥
सम्प्राप्य पौष्णभात् रौद्रात्षट्‌ऋक्षाणि शशिः शुभः।
मध्यगो द्वादशर्क्षाणि अतीत्य नव वासवात्॥

(ना.सं. २; ४, ५ ६)

अनुक्तभानां यदि याम्यवृत्तिं करोति वृष्टिं कलहं नृपाणाम्।
प्रजापतेर्भं यदि पैत्र्यभं वा भिनत्ति चन्द्रोऽन्तकरः प्रजानाम्॥१४॥

जो नक्षत्र नहीं कहे गए हैं, यदि उन से चन्द्रमा का दक्षिण संचार हो तो राजाओं में कलह तथा वृष्टिकारक होता है। रोहिणी और मघा नक्षत्रों में चन्द्रमा यदि भेद करे तो प्रजाक्षय कारक जानें॥१४॥

विपरीतोदितस्तेषामनिष्टायामृतद्युति ।
अप्राप्य भुङ्क्षेषड्भानि पौष्णभाद् विधुरीशभात्॥
द्वादशर्क्षाणि मध्यस्थो भुक्तेऽतीत्य नवेन्द्रींात्।
अर्धभान्यनिलेन्द्राहि वसवे शान्तकानि च।
वृहद्भान्यदितीन्द्राग्नि ध्रुवसंज्ञानि यानि च॥

अन्यानि समधिष्ण्यानि क्रमादेषूदितो विधुः।।
अनर्घमहदर्घत्वं समर्घत्वं करोति सः।
तोय विश्वेन्द्रमूलानां याम्यमार्गगतः शशी।।
वह्निप्रदो जलचरो यानसर्पविनाशकृत्।
मैत्रद्विदैवयोर्याम्यमार्गवर्ती च पापकृत्।।
धातृपैतृभयोर्मध्यं गतो दुर्भिक्षकृच्छशी।
शुभदोऽखिलधिष्ण्यानां सौम्ये याम्यगतोऽशुभः।।

भानां यदि सौम्यगतस्तदानीं जनानुरागं सततं करोति।
सदामयाप्रीतिरतीवदुःखं करोति याम्योपगतश्च भानाम्।।१५।।

चन्द्रमा नक्षत्रों के उत्तरभाग में होने पर निरन्तर लोगों में परस्पर प्रेम, प्रोन्नतिकारक, दक्षिण भाग में रोग, घृणा तथा अत्यन्त दुःखप्रद होता है।।१५।।

युञ्जाफलम्

जट्पौष्ण्यभाद्द्वादशरौद्रधिष्ण्यात्सुराधिपाद्भानि नव क्रमेण।
पूर्वार्द्धमध्यापरभागगेन्दुर्भुक्तेऽखिलव्योमचरास्तथैव।।१६।।

रेवती नक्षत्र से ६ नक्षत्र तक पूर्व (आदि) युंजा आर्द्रा नक्षत्र से द्वादश नक्षत्र पर्यन्त मध्य युंजा, ज्येष्ठा से नौ (९) नक्षत्र पर्यन्त अपर (अन्त्य) युंजा का चन्द्रमा भोग करता है। इसी प्रकार शेष ग्रहों के सन्दर्भ में भी जानना।।१६।।

पूर्वार्द्धधिष्ण्येषु पतिप्रिया स्याद् विवाहिता मध्यमभागगेषु।
परस्परं प्रेमतयोर्नृनार्योः परेषु भर्त्ता वनिताप्रियः स्यात्।।१७।।

आदि युंजा में कन्या का जन्म हो तो विवाह होने पर पतिप्रिया, मध्य युंजा में जन्म हो तो पति-पत्नी की परस्पर गाढ़ प्रीति, अन्त्य युंजा हो तो पुरुष स्त्री का अत्यन्त प्रिय होता है।।१७।।

युंजा ज्ञानाय चक्रम्

युञ्जा	नक्षत्राणि
पूर्व (आदि)	रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा
मध्य	आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा
अन्त्य	ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा

नक्षत्रों की जघन्यादिसंज्ञा

जघन्यधिष्ण्यानि जलेशसार्परौद्रेन्द्रयाम्यानिलदैवतानि।
अध्यर्द्धधिष्ण्यान्यदितिद्विदैवस्थिराणि शेषाणि समाह्वयानि॥१८॥

भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, ज्येष्ठा, शतभिषा नक्षत्र जघन्यसंज्ञक अथवा अर्धसंज्ञक अर्थात् तीस घटी के या १५ मुहूर्त माने जाते हैं। अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, चित्रा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ़ा (अभिजित्), श्रवण, धनिष्ठा, रेवती ये सभी नक्षत्र समसंज्ञक ६० घड़ी तीस मुहूर्त वाले हैं। शेष रोहिणी, पुनर्वसु, विशाखा, तीनों उत्तरा ये वृहत् संज्ञक या अध्यर्द्ध नक्षत्र ९० घड़ी या ४५ मुहूर्त वाले हैं।।१८।।

जघन्यादिसंज्ञा ज्ञानाय चक्रम्

नक्षत्राणि	जघन्य संज्ञक	भ., आर्द्रा, आश्लेषा, स्वा., ज्ये., शतभिषा
नक्षत्राणि	समसंज्ञक	अ. कृ. मृग, पुष्य, मघा, चित्रा, अनुराधा मूला, पूर्वाषाढ़ा (अभि.) श्रवण, धनिष्ठा, रेवती
नक्षत्राणि	बृहद्संज्ञक	रो. पुनर्वसु, वि. उत्तरा ३

अध्यर्द्धधिष्ण्येऽभ्युदितः शशाङ्कः करोति धान्यं महदर्घमन्तम्।
जघन्यभेऽनर्घमसंशयेन समर्घमन्येषु च मासि मासि॥१९॥

अध्यर्द्ध (वृहद्संज्ञक) नक्षत्रों में चन्द्रदर्शन हो या सौर सङ्क्रान्ति हो तो अन्न अधिक महंगा हो, जघन्य (अर्धसंज्ञक) नक्षत्रों में चन्द्रदर्शन या सौर सङ्क्रान्ति होने पर वस्तुओं के भावों में (तेजी मन्दी) वृद्धिह्रास हो तथा समसंज्ञक नक्षत्रों में भाव सस्ते हो जाते हैं॥१९॥

ज्ञात्वैवमेवं मणिजीवधातुमूलोर्णकर्पूररसादिकानाम्।
अर्घं वदेज्ज्योतिषिकः प्रजानां समर्घवस्तूत्तमसंग्रहार्थम्॥२०॥

इस प्रकार नक्षत्रों की जघन्य, सम, बृहद् संज्ञाओं के अनुसार नक्षत्रों में ग्रह स्थिति होने पर मणि, जीव, धातु, मूल, ऊर्ण, कर्पूर, लवणादि रस सम्बन्ध वस्तुओं के भाव (अनर्घ, महर्घ, समर्घ) बताने चाहिये। जिससे जनता की रक्षा के लिए सस्ती वस्तुओं को खरीदकर महंगाई के समय जनता को पीड़ित न होना पड़े॥२०॥

जघन्यादि नक्षत्रों का फल

एतानि जाघन्यसमाधिकर्क्षाण्यत्रार्घखण्डे विनियोजितानि।
नोद्वाहजन्मादिषु यत्र चोक्तं तत्राभिवृद्ध्यै विनियोजनीयम्॥२१॥

ये जघन्य, सम, बृहद् नक्षत्र इस अर्घखण्ड (अर्घकाण्ड) में नियुक्त किये गए

हैं, विवाह जन्मादि विषयों में यहाँ पर इनका उल्लेख किया हो वहाँ विषय की वृद्धि के लिए एवं फलादेश के लिए इन तीन भेदों के अनुसार फल कहे।।२१।।

चन्द्रमण्डल लक्षणम्

> **प्रालेयकुन्दकुमुदामलपुण्डरीक-**
> **शङ्खप्रतप्तरजतामलवज्रकान्तिः।**
> **एवं विधोऽभ्युदितशीतकरः प्रजानां**
> **क्षेमं सुभिक्षमतुलं कुरुतेऽत्रमासे।।२२।।**

बर्फ, कुन्द (स्थलश्वेत कमल), कुमुद (नीलोत्पल), अमलपुण्डरीक (पीतकमल), शंख, तपी हुई चाँदी, शुद्धहीरक मणि के समान कान्ति वाला चन्द्रमा उदय हो तो प्रजा के लिए कल्याणप्रद अतुल सुभिक्ष मासादि में ही करता है।।२२।।

।।इति श्रीवृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां चन्द्रचाराध्यास्तृतीयः।।३।।

।।वृद्ध वसिष्ठसंहिता के चन्द्रचाराध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।३।।

> प्रालेयकुन्दकुमदस्फटिकावदातो
> यत्नादिवाऽद्रिसुता या परिमृज्यचन्द्रः।।
> उच्चैः कृतो निशि भविष्यति मे शिवाय।।
> यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय।।

(वृ. सं. ४; ३०)

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, ज२-सुंदरीयं, वा-सुंदरियं (सुन्दरंच)

१ (ब) ज१, ज२-सदसदखिलभोगाभोगदं, मु.पु.-भोगाभोगदं (सदसदखिललोकाभोगदं)

१ (स) ज१, ज२-तदधिवविषमकालं (तत्कथिताविषमकाल), ज१-प्रवक्ष्मि (प्रवच्मि), वा-ज्ञानदीपं (ज्ञानरूपं)

२ (अ) ज२-चतुर्दश्यां (चतुर्दश्यन्ते), वा.-हमकरः (तुहिनकरः)

२ (ब) ज१-सततदर्शस्याते, ज२-सददर्शस्यान्ते (सततं दर्शस्यान्ते), ज१-तुलितोराश्यादिभिर्नियती, ज२-रुलिराश्यादिभिनीति, वा.-राश्यादिभिमियतं (तुलितौ राश्यादिभिर्नियतम्)

३ (अ) ज१, ज२-विमलप्रतिपद्यते, वा.-विमलप्रतिपद्यन्ते (विमलः प्रतिपद्यन्ते), ज१, ज२-वा.-याति (संयाति), वा.-प्रभाकरान्मुक्तः (भास्करान्मुक्तः)

३ (ब) ज१, ज२-तिथियश्चार्द्रात (तिथयश्चन्द्राच्च), ज२-संभूतः (संभूताः)

४ (अ) वा-हिमयुतेरभ्युदितश्च (हिमद्युतेरभ्युदितस्य), ज२-संभूतः (संभूताः), ज२-शृङ्ग, वा. शृगे (शृङ्गे), ज१, ज२-याम्योन्नतौ (याम्योन्नते)

४ (ब) ज१, ज२-तुल्यो विषांणे (तुल्येविषाणे), ज२-त्रिंशतोजतोषिलस्य, वा. जगतोखिलस्य (जगतोऽखिलस्य)

५ (अ) ज१-ज२-याम्योन्नतौ, वा.-याम्योन्नते (सौम्योन्नते), ज१-जिन्म, ज२-जित्स, ज.मो.-युग्म (जिह्म), ज१-ज२-स्यात्समुपैतिलोक: (स्वास्थ्यमुपैतिलोक:)

५ (ब) ज१-सौम्योत्रौ, ज२-सुतिन्नतौ (सौम्योन्नते), ज१-शितनिर्मेषु,, ज२-शिरनिर्मेषु, वा.-शीतनिभ: (शीतनिभे), ज१-दृष्टिक्षेसमंदा, ज२-दृष्टिसमस्तासदा (सुवृष्टि: क्षेमसंदा)

६ (अ) ज१-सौम्योन्नतौ, ज२-सौम्योत्रौ (सौम्योन्नते), ज१-वायनिभे, वा.-चापनि (चापनिभे), ज१, ज२-सुवृष्ट्या, वा.-सुवृष्ट्या (सुवृष्टि:)

६ (ब) ज१-जुलाद्वयो, ज२-कन्यांमासद्वयो, वा.-कन्यातुलाद्वये (कन्या तुलाद्वयो:), ज१- सौम्योनिते, ज२-तूलिनिते (शूलनिभे)

७ (अ) ज२- सुभिक्ष (सुभिक्षं), ज२-करोती (करोति)

७ (ब) ज१, ज२-सव्योदित: (व्यस्तोदित:), वा.-सुभिक्षं (समस्तं), ज१, ज२-क्लेहं (कलहं)

८ (अ) ज२-मु.पु. शुक्ले (शृंगे), वा.-व्रीहयवाकारे (व्रीहियवाकारे), ज२-मरुदर्घता (महदर्घता)

८ (ब) ज२-मु.पु. शुक्ले (शृंगे), वा.-व्रीहयवाकारे (व्रीहियवाकारे), ज२-मरुदर्घता (महदर्घता)

९ (अ) ज१-वा.-शृंगे (शुक्ले), ज.मो.-वृष्टि:, वा.-वृषि: (वृद्धि:), ज१-त्वनर्यता, ज२-ह्यनर्घता (त्वनर्घता)

९ (ब) ज१-अधोन्मुखो, ज२-अधोमुखो (अधोमुखे), ज१-नृपाहवे, ज२-नृपाहव, वा. नृपावेह (नृपाहव:)

१० (अ) ज१-ययुर्नृपतयोततरगा, ज२-ययुनृपतयोगता:, वा.-ययुर्नृपतयोतरगा: (ययुर्नृपतयोंऽतगत:), ज१-मंदाहीते, ज२-मंदाहोते, वा.-मंदाहते (मंदेहते), ज२- तिकरस्य, वा.-मकरस्य (हिमकरस्य)

१० (ब) ज१-क्षत्ससुमीतिखुला, ज२-क्षुन्सस्त्रभीतिरवुला (क्षुच्छस्त्रभीतिरतुला), ज१-भयत्रमिंदु, वा.-भयमिदु (भयमिन्दु), ज१, ज२-हतोऽस्मिन् (हतेऽस्मिन्)

११ (अ) ज१-युद्धिलयं (युधिलयं), ज१-युयुविद्रचंते, ज२-ययुविद्रवं, वा.-युरिद्रवन्धे (त्वमरेन्द्रवन्धे)

११ (ब) ज१-नियतमन्य, ज२-नियतमत्य (नियतमल्प)

१२ (अ) ज२-वलर्क्ष: पक्ष: मु.पु.-वलर्क्षपक्ष: (वलक्षपक्ष:), ज२-वृष्टिं (वृद्धि:), वा.-प्रजानां (द्विजानाम्)

१२ (ब) ज१-अत्यास, ज२-र्धत्वास (व्यत्यास), ज२-वृतौ (वृद्धौ), ज१-स्वफलाना, वा.-रकफलं (स्वफलं)

१३ (अ) ज१, ज२-विशेषमैत्रभानी, वा.-विशाषमेत्र (विशाखमैत्रभानां)

१३ (ब) ज१, ज२-वह्लेभयंचौरभयं, वा.-वह्नेनेर्भयचेतियं (वह्लेर्भयं त्वीतिभयं)

१४ (अ) ज१-याम्यवृत्ति: ज२-साम्यवृत्तै:, वा.-याम्यवृती (याम्यवृत्तिं), ज१, ज२-करोत्यवृष्टिं (करोति वृष्टिं)

१४ (ब) ज१-पैतृभं, मु.पु.-पैत्रिभं, वा.-यदैक्षभं (पैत्र्यभं), ज१-चंद्रांतकरस्य, ज२-चन्द्रातकर, मु.पु.-चन्द्रोंऽतकरः वा.-चन्द्रोतेकर: (चन्द्रोंन्तकर:), वा.-मजाना (प्रजानाम्)

१५ (अ) वा.-जनानुरागी (जनानुरागं), वा.-भानी (भानाम्)

१५ (ब) वा.-जनानुरागी (जनानुरागं), वा.-भानी (भानाम्)

१६ (अ) ज२-ररौर्द्रायभ्यात्सुराधिपद्भानि (रौद्रधिष्ण्यात्सुराधियाद्भानि)

१६ (ब) ज१, ज२-पूर्वापरर्द्धापर, वा.-पूर्वापरार्द्धपर (पूर्वार्द्धमध्यापर)

१७ (अ) ज१-पूर्वार्द्धधिश्रोषु (पूर्वार्द्धधिष्ण्येषु)

१७ (ब) ज१-परिषुमतीव (परेषुभर्ता)

१८ (अ) ज१-जयन्यधिष्णयानि, ज२-जघन्ययिस्य्यानि (जघन्यधिष्ण्यानि), ज१-सर्वरौद्र, ज२-सशर्परौद्रै (सार्परौद्रे)

१८ (ब) ज२-अर्घ्यर्द्धयिस्माभ्यदिति (अघ्यर्द्धधिष्ण्यान्यदिति), ज१-समद्धयानि (सवाह्वयानि)

१९ (अ) ज१-अध्यर्द्धधिकृपेभ्युदित:, ज२-अध्यर्द्धपिन्त्येभ्युदित: (अध्यर्द्धधिष्ण्येऽभ्युदित:), ज१-महदर्यमत्त:, ज२-महदर्धता, वा.-चमहर्धमत: (महदर्धमतम्)

१९ (ब) ज२-संसयोन (संशयेन), ज१, ज२-समर्यमन्येषु (समर्धमन्येषु)

२० (अ) ज१-मूलोर्क्ष्मकर (मूलोर्णकर्पूर)

२० (ब) अर्यैवदेज्योतिषक:, ज२-अर्धैवदेज्योतिष:, वा.-वदेजोतिषिग: (अर्ध वदेज्ज्योतिषक:)

२१ (अ) ज१-जयन्यसमाधिख्याएयशर्क्ष:ष ज२-जवन्यसमाधिपूक्ष्याण्यशर्क्ष, मु.पु.-जाघन्यसमाधित्रृक्षाण्यत्रार्वखण्डे (जाघन्यसमाधित्रृक्षाण्यत्रार्धखण्डे)

२१ (ब) ज१, ज२-नोदाह (नोद्वाह), ज१-ज२-तत्राभिवृद्धौ (तत्राभिवृद्धयै), ज१, ज२-विनियोजनीया (विनियोजनीयम्)

२२ (अ) ज१, ज२-रजितामल (रजतामल)

२२ (ब) वा.-प्रजानं (प्रजानां)

***

४

अथ भौमचाराध्यायः

यस्माद्विनाभूमिसुतस्य चारं शुभाशुभं यज्जगतः सुसम्यक्।
न ज्ञायते ज्ञानमनुत्तमं तत्तस्मात्प्रवक्ष्यामि समासतोऽत्र।।१।।

भूमिपुत्र (मङ्गल) चार के बिना समस्त जगत् के शुभाशुभ फलों की भली-भाँति उत्तम ज्ञान प्राप्ति नहीं होती। अतः संक्षेप में कहता हूँ।।१।।

क्रमागत–

कश्यपः–

अथातः संप्रवक्ष्यामि कुजचारमनुत्तमम्।
यतः शुभाशुभं तेन चारेणाखिलदेहिनाम्।।

(क.सं. ४; १)

स स्वोदयर्क्षान्नवमेऽष्टमे वा सप्तर्क्षगे वा विचरेत्प्रतीपम्।
तद्वक्रमुष्णाह्वयमेव तत्र वह्नेर्भयं व्याधिभयं जनानाम्।।२।।

अपने उदय नक्षत्र से सातवें, आठवें तथा नवमें नक्षत्र में वक्रगति मङ्गल उष्णमुख संज्ञक कहलाता है। यह प्रजा में अग्नि भय तथा व्याधिभयप्रद होता है।।२।।

क्रमागत–

नारदः–

सप्ताष्टनवमर्क्षेषु स्वोदयाद्वक्रिते कुजे।
तद्वक्रमुष्णं तस्मि न्स्यात् प्रजापीडाग्निसंभवः।।

(ना.सं. २; १)

कश्यपः–

नवसप्ताष्टमर्क्षेषु स्वोदयाद्वक्रिते कुजे।
तदवक्रमुष्णसंज्ञं स्यादामयाग्निभयप्रदम्।।

(क.सं. ४; २)

अश्रुमुखभौम का फल

एकादशे द्वादशभे प्रतीपे दशर्क्षगे वाश्रुमुखं प्रतीपम्।
तत्राश्रुवक्त्रेऽर्घविवृद्धिपूर्वं रसादिकं नाशमुपैति नूनम्।।३।।

उदय नक्षत्र से दशम, एकादश एवं द्वादश नक्षत्रों में वक्री मङ्गल अश्रुमुख कहलाता है। ऐसा भौम अर्घविवृद्धि के पूर्व ही रसादिकों का नाश करता है।।३।।

क्रमागत–

नारदः–

दशमैकादशे ऋक्षे द्वादशे वा प्रतीपगे।
वक्रमल्पसुखं तस्मिन् तस्य वृष्टिविनाशनम्।।

(ना.सं. २; २)

कश्यपः–

द्वादशैकादशे धिष्ण्ये दशमे वा प्रतीपगे।
वक्रमश्रुमुखं नाम रसवृष्टिविनाशनम्।।

(क.सं. ४; ३)

व्यालमुखभौम का फल

त्रयोदशर्क्षेऽपि चतुर्दशर्क्षे वक्रे कुजे व्यालमुखाभिधानम्।
तेभ्यो भयं तत्र सुवृष्टिसस्यसमृद्धिरर्घं च जनानुरागम्।।४।।

त्रयोदश एवं चतुर्दश नक्षत्रों में वक्र मङ्गल व्यालमुख कहलाता है। इसमें सर्पादि विषैले जन्तुओं का भय; परन्तु सुन्दर वर्षा, फसलों की वृद्धि, अनुकूल अर्घता तथा प्रजा में परस्पर अनुराग होता है।।४।।

क्रमागत–

नारदः–

कुजे त्रयोदशे ऋक्षे वक्रिते वा चतुर्दशे।
व्यालाख्यवक्रं तत्तस्मिन् सस्यवृद्धिरहेर्भयम्।।

(ना.सं. २; ३)

कश्यपः–

धिष्ण्ये त्रयोदशे भौमे वक्रिते वा चतुर्दशे।
तद् वक्रं व्यालसंज्ञं तदहिभीतिमहर्घदम्।।

(क.सं. ४; ४)

रुधिराननभौम का फल

प्रतीपगे पञ्चदशेऽथ धिष्ण्ये धरासुते षोडशधिष्ण्यके च।
रक्ताननं नाम भवेत्तु तत्र सुभिक्षमात्यामयशत्रुवृद्धिः।।५।।

१५वें और १६वें नक्षत्रों पर वक्री मङ्गल रुधिरानन कहलाता है। इसमें सुभिक्ष मुखरोग भय तथा शत्रु वृद्धि होती है।।५।।

क्रमागत–

नारदः–

पञ्चदशे षोडशर्क्षे तद्वक्रं रुधिराननं
सुभिक्षकृद्भयं रोगान् करोति यदि भूमिजः।।

(ना.सं. २; ४)

कश्यपः–

षोडशर्क्षेऽथवापञ्चदशे तद् रुधिराननम्।
सुभिक्षकृद् व्याधिभयं वदक्तदेहधारिणम्।।

(क.सं. ४; ५)

अतिमुशलमुख भौम का फल

अष्टादशे सप्तदशे प्रतीपे निस्त्रिंशपूर्वं मुशलाह्वयं च।
तत्रार्घभीतिः क्षितिपालकानां युद्धे क्षयं यान्ति समस्तलोकाः।।६।।

१७वें वा १८वें नक्षत्रों में अथवा १३वें से पहले वक्री मङ्गल असिमुशलमुख कहलाता है। इसमें अर्घभीति राजाओं के युद्ध में समस्त लोगों का क्षय होता है।।६।।

क्रमागत–

नारदः–

अष्टादशे सप्तदशे तदासिमुसलं स्मृतम्।
दस्युभिर्धनहान्यादि तस्मिन्भौमे प्रतीपगे।।

(ना.सं. २; ५)

कश्यपः–

धिष्ण्येऽष्टादशमे सप्तदशे वक्रं गते च तत्।
निस्त्रिंशमुसलं नाम दस्युशस्त्रार्थभीतिदम्।।

(क.सं. ४; ६)

नक्षत्रवशात उदयास्त समय भौम फल

भूमिसुतः फाल्गुन्योरुदयं कृत्वाथ वक्रितो वैश्वे।
प्रजापत्येऽस्तमितः करोति निखिलधराभ्रमणम्।।७।।

मङ्गल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उदय होकर उत्तरषाढ़ा में वक्री हो और पुनः रोहिणी में अस्त हो तो समस्त पृथ्वी को भूकम्पादि से घुमा देता है।।७।।

क्रमागत–

नारदः–

फाल्गुन्योरुदितो भौमे वैश्वदेवे प्रतीपगः।
अस्तगश्चतुरास्यर्क्षे लोकत्रयविनाशकृत्।।

(ना.सं. २; ६)

कश्यपः–

फाल्गुन्योरुदयं कृत्वा वक्रः स्याद्विश्वदैवते।
प्राजापत्ये प्रवासश्च त्रैलोक्यं तत्र पीड्यते।।

अभ्युदितः श्रवणर्क्षे पुष्ये वक्रं गतो धरातनयः।
निखिलधराधिपवर्गप्रलयकरः प्रतिदिनं प्रजानां च।।८।।

श्रवण नक्षत्र में उदित मङ्गल पुष्य नक्षत्र में वक्र हो तो राजाओं के लिए हानिप्रद तथा प्रतिदिन प्रजा के लिए प्रलयकारी होता है॥८॥

क्रमागत–

नारदः–

उदितः श्रवणे पुष्ये वक्रतो नृपहानिदः।
यद्दिग्भ्योऽभ्युदितो भौमस्तद्दिग्भूपभयप्रदः॥

(ना.सं. २; ७)

कश्यपः–

श्रवणेऽभ्युदितो भौमः पुष्ये वक्रं गतो यदि।
मूर्धाभिषिक्तराजानो विनश्येयुः परस्परम्॥

(क.सं. ४; ८)

अभ्युदितः पितृधिष्ण्ये तस्मिन्नेव प्रतीपगः क्षितिजः।
पीडां क्षितिपतिमरणं करोति कलहं क्षितीशानाम्॥९॥

मघा नक्षत्र में उदित मङ्गल मघा नक्षत्र में ही वक्री हो तो पीड़ादायक, राजाओं के लिए मृत्युप्रद एवं कलहकारक होता है॥९॥

यस्मिन्दिग्द्वारनक्षत्रे क्षितिजोऽभ्युदयं गतः।
तद्दिगीशस्य मरणं यदि तेषु प्रतीपगः॥१०॥

जिस दिशा द्वारा नक्षत्र में उदित मङ्गल उसी दिशा द्वारा नक्षत्र में पुनः वक्री हो तो दिशापति के लिए मृत्युप्रद होता है॥१०॥

क्रमागत–

नारदः–

मरवा (मघा) मध्यगतोभौमस्तत्रैवं च प्रतीपगः।
अवृष्टिशस्त्रभयदः पाण्डुदेशाधिपांतकृत्॥

(ना.सं. २; ८)

कश्यपः–

यद्दिगभ्युदितो भौमस्तद्दिगराज्ञां भयप्रदः।
मधायां विचरेद् भौमस्तस्यामेव प्रतीपगः॥

(क.सं. ४; ९)

भौम का योगतारा वेधन फल

भिनत्ति योगतारां च पितृधातृभयोः कुजः।
तदा भूपाहवैर्भूमिर्नूनं भ्रमति चक्रवत्॥११॥

मङ्गल मघा और विशाखा को योगतारा का वेध (भेदन) करे तो राजाओं के लिए हानिप्रद तथा निश्चय से भूमि चक्रवत् भ्रमण करती है अर्थात् भूकम्पादि का भय रहता है।।११।।

क्रमागत–

नारदः–

पितृद्विदैवधातृणां भिधन्ते योगतारकाः।
दुर्भिक्षं मरणं रोगं करोति यदि भूमिजः।।

(ना.सं. ४; ९)

कश्यपः–

शस्त्रानावृष्टिभयदः पाण्ड्यदेश विनाशकृत्।
पितृधातृद्विदैवक्षं योगतारां भिनत्ति चेत्।।

(क.सं. ४; १०)

दक्षिण दिशा जाते हुए भौम का फल

विशाखाविश्वधिष्ण्यान्त्यभानां याम्यचरः कुजः।
दुर्भिक्षवृष्टिभयकृदाहवे भुवि भूभुजाम्।।१२।।

विशाखा, उत्तराफाल्गुनी और रेवती नक्षत्रों में दक्षिण दिशा में जाता हुआ मङ्गल भूमि पर दुर्भिक्ष, वृष्टिभय और युद्ध में राजाओं के लिए हानिप्रद होता है।।१२।।

क्रमागत–

नारदः–

त्रिषूत्तरासु रोहिण्यां नैऋते श्रवणेन्दुभे।
अष्टष्टि (अवृष्टि) दश्चरन् भौमो रोहिणी दक्षिणे स्थितः।।

(ना.सं. २; १०)

कश्यपः–

तदा करोति भूसूनुर्दुभिक्षं कलहागमम्।
नैऋत्यश्रवणेन्द्रक्षं रोहिणीषुत्तरासु च।।

(क.सं. ४; ११)

उत्तर दिशा में जाते हुए भौम का फल

शुभदः सर्वधिष्ण्यानां सौम्यमार्गचरः कुजः।
अरिष्टफलदः सर्वजन्तूनां याम्यमार्गगः।।१३।।

उत्तरदिशा में जाता हुआ मङ्गल सभी नक्षत्रों में शुभफलप्रद होता है। ऐसे ही दक्षिण दिशा में जाता हुआ मङ्गल सभी प्राणियों के लिए अरिष्टकारक होता है।।१३।।

क्रमागत–

नारदः–

भूमिजः सर्वधिष्ण्यानामुदग्गामी शुभप्रदः।
याम्यगोनिष्टफलदो भेदे भेदकरो नृणाम्।।

(ना.सं. २; ११)

कश्यपः–

चरन्वृष्टिदौ भौमो रोहिणी याम्यगोऽपि च।
शुभदः सर्वधिष्ण्यानामुदग्यायी धरासुतः।।
याम्यगोऽनिष्टफलदो भेद भेदकरो नृणाम्।
उत्पातगणितादिभन्नगतिश्चेल्लोकनाशकृत् ।।

(क.सं. ४; १२, १३)

भौमवक्रत्वफल

मेषसिंहझषचापभसंस्थे वक्रिते क्षितिसुते रविजे वा।
गोनराश्वगजपक्षिसमूहं नाशमेति निखिलं च दलं वा।।१४।।

मेष, सिंह, धनु एवं मीन राशि में मङ्गल व शनि के वक्र होने पर गो, नर, अश्व, गज तथा पक्षी समूहों का नाश और सम्पूर्ण दलों (सेना) का नाश भी समझना।।१४।।

मण्डल लक्षणम्

अशोकबन्धूकमणिप्रवालसंतप्तताम्रामलकिंशुकाभः।
एवं विधः सन्नुदितो महीजः शुभाय बृद्ध्यै भवति प्रजानाम्।।१५।।

अशोक बन्धूक, मणि, प्रवाल, तपे हुए ताँबे के समान सुन्दर मङ्गल का बिम्ब हो तो प्रजा के लिए सदैव वृद्धिप्रद एवं श्रेयस्कर होता है।।१५।।

क्रमागत–

कश्यप–

प्रबाल किंशुकाशोकलाक्षाताम्रनिभः कुजः।
विपुलो निर्मलः पद्मरागमूर्तिः शुभप्रदः।।

(क.सं. ४; १४)

आचार्य वाराहमिहिर–

विपुलविमलमूर्तिः किंशुकाशोकवर्णः।
स्फुट रुचिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः।।
विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनीजः।
शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम्।।

(वृ.सं. ६; १३)

इति बृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षि विरचितायां संहितायां कुजचाराध्यायश्चतुर्थः।।४।।

वसिष्ठसंहिता के भौमचाराध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।४।।

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१-यस्माद्दिना, ज२-यस्मिन्दिना (यस्माद्दिना), ज२-वारं (चारं), ज१-यज्जगत्, ज२-यजगत् (यज्जगतः), ज१-सम्यक्, वा.-ससभ्यक (सुसभ्यक्)

१ (ब) ज१-तत्तस्थांत, ज२-ततस्मात् प्रवक्षामि (तत्तस्मात्प्रवक्ष्यामि), ज१-ज२-समासतोत्र (सासतोऽक्ष)

२ (अ) ज१, ज२-स्वस्योदर्येक्षानवमेष्टमे, ज.मो.स्वस्वोदयर्क्षाचवमेऽष्टमे, वा.-खरखोदयर्क्षान्नवमेष्टमे (स स्वोदयर्क्षान्नवमेऽष्टमे वा), मु.पु.-सप्तर्क्षके (सप्तर्क्षगे)

२ (ब) ज१-अतद्वक्रमुर्लाद्वयमेव, ज२-तद्वक्रमुर्क्ष्मह्येव, ज.मो.-तद्वकवमुष्णाह्वयमेव, मु.पु.-तद्वक्रमुख्याह्वयमेव (तद्वक्रमुष्णह्वयमेव)

३ (अ) ज१-ज२, वा. द्वादशगे (द्वादशभे), ज१-वाश्रमुखं, ज२-वायुमुखं, ज.मो. क्षितिजेप्रतीपे, मु.पु.-श्वमुखं प्रतीपम्, वा.-वाश्रुमुखप्रतिपं (वाश्रुमुखंप्रतीपम्)

३ (ब) ज१-तत्राश्रवक्रेर्घवृद्धिसर्वं, ज२-अत्रासुवक्रेखवृद्धिर्स, ज.मो.-तदाश्रुवक्त्रे-सुखवृद्धिसर्व, मु.पु.-तत्राश्रुवक्तेऽर्धविवृद्धिपूर्वं (तत्राश्रुवक्रेऽर्घविवृद्धिपूर्वं), ज२-समुपैतिनूनं (नाशमुपैतिनूनम्)

४ (अ) ज१-त्रयोदशेवा, ज२-त्रयोदशेवापि, ज.मो.-त्रयोदशेवाथ (त्रयोदशर्क्षेऽपि)

४ (ब) ज१-समृद्धिरंर्य, ज२-समृद्धिरर्थं (समृद्धिरर्घ)

५ (अ) ज१-रक्तानननंवामभवेत, ज२-रक्तानननेनामभवेक्षु (रक्ताननं नाम भवेत्तु)

५ (ब) ज१-सुभिक्षंमत्वामय, ज२- सुभक्षमंत्वाभय, मु.पु.-सुभिक्षमत्यामय (सुभिक्ष-मास्यामय)

६ (अ) ज१-निस्त्रंशपूर्वंमुसलाद्वयं च, ज२-निस्त्रंशपूर्वसुशब्दभयं (निस्त्रिंश-पूर्वमुशलाह्वयंच), ज१, ज२-तत्रार्थभीति (तत्रार्घभीति:), ज२-क्षितिपलनानांयुद्धे (क्षितिपालकानां युद्धे)

७ (अ) ज२-भूमिसुता, ज.मो.-भूमिसुते (भूमिसुत:), ज२-फाल्गुन्योदर्घकृत्वार्थ (फाल्गुन्योरुदयं कृत्वाथ), ज१, ज२-ज.मो.क.-वक्रिते (वक्रितो)

७ (ब) ज१-निखिलधराभ्ररणां, ज२-निखिलामराधरारणां, वा.-निखिलधराभ्रमए, मु.पु.-निखिलधराकरणम् (निखिलधराभ्रमणम्)

८ (अ) अभ्युदिता: (अभ्युदित:, ज१, ज२-गतक्षमातनय:, ज.मो। गत:क्ष्मातनय:, वा.-गत:क्षमातनय: (गतोधरातनमय:)

८ (ब) ज१- निखिलधनाधियवर्ग, ज२- निखिलधतापत्रापि, वा.-निखिलधनाधिपवर्ग: (निखिलधराधिप वर्ग)

९ (ब) ज१, ज२-पीड़य:, ज.मो।-पाण्ड्य, वा.-पीडा (पीडां), ज२-चिक्षितीनां, वा.-क्षिर्तिशाना (क्षितीशानाम्)

१० (अ) वा.-यस्मिन्दिग्द्वारानक्षत्रो (यस्मिन्दिग्द्वारनक्षत्रे), ज१, ज२-ऽभ्युदयांगत: (ऽभ्युदयंगत:)

१० (ब) ज१-भयेदो, ज२-भयेदावदि, ज.मो।-भयदोयदि, वा.-भयदोयदि (मरणं यदि), वा.-प्रतिपग: (प्रतीपग:)

११ (अ) पितृधातृमयोः, ज२-पितृपातृमयो, मु.पु.-पितृधातृभयोः (पितृधातृभयः)

११ (ब) ज१, ज२-तदभूपाहवै, वा.-तदानृपाहवै (तदाभपाहवैः), ज१-वक्रवत् (चक्रवत्)

१२ (अ) ज१, ज२-विशाखाद्विश्वधिष्ण्यातयातयाभ्यचरां, वा.-विशावाविश्वधिष्ण्यात (विशाखाविस्वधिष्ण्यान्त्यभानांयाम्यचरः)

१२ (ब) ज२-त्वद्धरुवै, वा.-कृद्हवै (कृदाह्वे), वा.भूभुजी (भूभुजाम्)

१३ (अ) ज१-चरन्कुजः, ज२-जराकुजः, वा.-चरकुजः (चरःकुजः)

१३ (ब) ज१-सर्वजन्तूनाभ्यमार्गगः (सर्वजन्तूनां याम्यमार्गगः)

१४ (अ) वा.-सषे (झष), ज१, ज२, ज.मो।वा.-संस्थिते (भसंस्थे), ज१, ज२, ज.मो.वा.-क्षितिसुतेऽधवाशनौ (क्षितिसुते रविजे वा)

१४ (ब) ज१-गोनराश्च, ज२-गानेराश्च, वा.-गौनाराश्व (गोनराश्व), ज२-नाखमेति (नाशमेति), ज१-तिषलं च दल वा, ज२-निखिलेचरलावाः, वा.-निखिलं च देवा (निखिलं च दलं वा)

१५ (अ) बन्धूकमराणि (बंधूकमणि), ज१-संतापतताम्रमलविंशुकाम (संतप्तताम्रामलकिंशुकाभः)

१५ (ब) ज१-विधो, ज२-विधेः (विधः), ज१, ज२-सनुदितो, ज.मो.-सन्नुदिते, वा.-सन्नुदिता (सन्नुदितो), वा.-महिजः (महीजः), ज१, ज२-वृद्धौ, ज.मो.-वृष्टि, वा.-वद्यै (वृद्ध्यै)

***

५

अथ बुधचाराध्यायः

बुध का उदय फल

बुधोदयः सर्वजगद्विपत्त्यै भवेत्कदाचिद्भृशमन्यथा वा।
वृष्ट्यर्घवाय्वग्निभयप्रदश्च तेभ्यो भयं कुत्रचिदन्यथा वा॥१॥

बुध का उदय कभी भी उपद्रव (जगद्विपत्ति) के बिना नहीं होता। इसके उदय होने पर वृष्टि, अर्घ, वायु और अग्नि द्वारा भय होता है और कहीं-कहीं इसके विपरीत शुभ भी होता है॥१॥

क्रमागत–

नारदः–

विनोत्पतेनशशिजः कदाचिन्नदयंव्रजेत्।
अनावृष्ट्यग्निभयकृदनर्थ नृपविग्रहम्॥

(ना.सं. २;१)

कश्यपः–

अथातः संप्रवक्ष्यामि बुधचारं समासतः।
उदयं न व्रजेत्सौम्यः विनोत्पातेन सर्वदा॥

(क.सं. ५; १)

नक्षत्रानुसार बुध चार का फल

पुरंदर श्रीपतिवैश्वदेव वसुस्वयंभूड्डुषुचन्द्रसूनुः।
चरन्करोति प्रचुरार्घवृष्टिं नृपाहवाद्भीतिमतीवपीडाम्॥२॥

ज्येष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ़ा और धनिष्ठा तथा रोहिणी नक्षत्रों में चन्द्रमापुत्र बुध गमन करे तो मूल्यों में वृद्धि, अधिक वर्षा, राजाओं को युद्ध में भय और अत्यन्त पीड़ाप्रद होता है॥२॥

क्रमागत–

नारदः–

वसुश्रवणविश्वेन्दुधातृभेषुचरन् बुधः।
भिनत्तियदितत्तारामवृष्टिव्याधिभीतिकृत्॥

(ना.सं. २; २)

कश्यपः–

आतङ्कावृष्टिसंग्राम दुर्भिक्षानलतो भयम्।
विष्णुभद्वयविश्वेन्दु धातृभेषु चरन्बुधः॥

(क.सं. ५; २)

बुध का नक्षत्रानुगामि फल

आर्द्रादितिज्याहिमघासु भेषु चरन् प्रजानामतुलां च पीडाम्।
करोति शीतांशु सुतो बलीयान्क्षुच्छस्त्रवृष्ट्यामयशत्रुभीश्च॥३॥

आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा एवं मघा नक्षत्रों में बुधचार प्रजा के लिए अत्यन्त पीड़ाप्रद होता है। यदि चन्द्रपुत्र बुध बलवान हो तो क्षुधा, शस्त्र, वर्षा, रोग तथा शत्रु से भय होता है॥३॥

क्रमागत–

नारदः–

आर्द्रादि पितृभान्तेषु दृश्यते यदि चन्द्रजः।
तदा दुर्भिक्षकलहो रोगाणां वृद्धिभीतिकृत्॥

(ना.सं. २; ३)

कश्यपः–

भिनत्ति योगतारास्ता अवृष्टिः वयाधिभीतिकृत्।
आर्द्रादि पितृभान्त्येषु दृश्यते यदि चन्द्रजः॥

(क.सं. ५; ३)

हस्तद्वयस्वातिविशाखमैत्रसुरेशधिष्ण्यानि हि पीडयन्बुधः।
करोति तैलाज्यरसादि वस्तु समृद्धिदस्तत्र गवादिपीडाम्॥४॥

हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा एवं ज्येष्ठा नक्षत्रों में भ्रमण करता हुआ बुध तैल, घी, रसादि वस्तुओं में समृद्धि; परन्तु गौ आदि पशुओं को पीड़ाप्रद होता है॥४॥

क्रमागत–

नारदः–

हस्तादि रसतारासु विचरन् इन्दुनन्दनः।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं कुरुते पशुनाशनम्॥

(ना.सं. २; ४)

कश्यपः–

आमयावृष्टिभिर्क्षराजविड्वरभीतिकृत् ।
विचरन सार्पनक्षत्रात्षड्र्क्षेष्विन्दुनन्दनः॥

(क.सं. ५; ४)

हौतभुगजपादार्यमयाम्यर्क्षेषु शीतदीधितेस्तनयः।
अतिविपुलकरोत्यग्निं घ्नन् देहभृतां सप्तधातुविकलकरः॥५॥

कृत्तिका, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी, भरणी नक्षत्रों में चन्द्रपुत्र (बुध) का सञ्चार अत्यन्त अग्निप्रकोप तथा प्राणियों में धातुओं (वसा, रक्त, मांस, मेधा, अस्थि, मज्जा और शुक्र) के विकार द्वारा कष्टप्रद होता है॥५॥

क्रमागत–

नारदः–

अहिर्बुध्न्यार्यमाग्नेययमभेषु चरन् यदि।
धातुक्षयं च जन्तूनां करोति शशिनन्दनः।।

(ना.सं. २; ५)

कश्यपः–

नृणां सुभिक्षमारोग्यं करोति पशुनाशनम्।
संचरन्नर्यमाग्नेययाम्याहिर्बध्न्यभेषु च।।

(क.सं. ५; ५)

वारुणनैर्ऋतपौष्णान्नुपमृद्नन् साश्विनानि चन्द्रसुतः।
सलिलजभेषजतुरगक्रयविक्रयजीविनां च नाशकरः।।६।।

शतभिषा, मूल, रेवती और अश्विनी नक्षत्रों में विमर्दन करता हुआ बुध सञ्चार करे तो जलोत्पन्न वस्तु, औषधि, अश्वों के व्यापार द्वारा आजीविका चलाने वालों का नाश होता है।।६।।

क्रमागत–

नारदः–

दास्रवारुणनैऋत्यरेवतीषु चरन् बुधः।
भिषक्तुरगवाणिज्यवृत्तीनां नाशदस्तदा।।

(ना.सं. २; ६)

कश्यपः–

धातुः क्षोभप्रदः सर्वजन्तूनामिन्दुनन्दनः।
रेवती दस्र नैऋत्य वासवर्क्षेषु संचरन्।।

(क.सं. ५; ६)

विशदं त्वाहिर्बुध्न्यभमेकं चन्द्रात्मजो विमृद्नीयात्।
विपुलामयशस्त्रभयं क्षुद्भयमतुलं प्रजानां च।।७।।

पवित्र चन्द्रसुत (बुध) उत्तराभाद्रपदा को विमर्दन करे तो महामारी, भूखमरी, शस्त्रभय और लोक में दुर्भिक्ष होता है।।७।।

क्रमागत–

नारदः–

पूर्वात्रये चरन् सौम्यो योगतारां भित्ति चेत्।
क्षुच्छस्त्रामय चौरेभ्यो भयदः प्राणिनस्तदा।।

(ना.सं. २; ७)

कश्यपः-

भिषग्वाणिज्यतुरगवृत्तीनां क्षोऽशुभप्रदः।
चरन् पूर्वात्रये तेषां योगतारां भिनत्ति चेत्।।

(क.सं. ५; ७)

बुध के गतिभेद

प्राकृतमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तिकघोरपापाश्च ।
सप्तविधा गतिभेदा हिमकरतनयस्य विविधफलदाः स्युः।।८।।

प्राकृत, मिश्र, संक्षिप्त, तीक्ष्ण, योगान्तिक, घोर एवं पाप विविध फलादेशों वाले सात प्रकार के बुध के गतिभेद हैं।।८।।

क्रमागत-

कश्यपः-

वह्निक्षुच्छस्त्रचौरेभ्यो भयदश्चन्द्रनन्दनः।
वायव्य धातृयाम्याग्नि धिष्ण्येषु प्राकृता गतिः।।
पितृसर्पेन्दुरौद्रेषु भेषु मिश्राह्वयागतिः।
भाग्यार्यमेज्यादितिषु संक्षिप्ता सा गतिस्तदा।
अहिर्बुध्नयाजपादेन्द्र-दस्रभेष्वतिदासगा ।
योगान्तिकागतिः पौष्णविस्व नैऋत्यवारिषु।।
घोरा गतिरुक्ताष्टविष्णुवसुवासगभेषु च।
मित्रेन्द्राग्नि दिनाधीशभेषु पापाह्वयागतिः।।
प्राकृतायां गतः सस्यवृद्धिवृष्टिश्च रोगकृत्।
मिश्र संक्षिप्तयोर्मध्यस्ततोऽन्यासु त्वनिष्टदः।।

(क.सं. ५; १२)

नक्षत्रानुसार बुध गतियों के नाम

अनिलानलकमलजयमधिष्ण्यैः स्यात्प्राकृताभिधानगतिः।
पितृशशिशंकरभुजगैर्धिष्ण्यैर्गतिरपरा मिश्रसंज्ञा च।।९।।

बुध की भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, स्वाती नक्षत्रों में **प्राकृता गति** तथा मृगशिरा, आर्द्रा, आश्लेषा और मघा नक्षत्रों में **मिश्रा गति** होती है।।९।।

क्रमागत-

नारदः-

याम्यग्निधातृवायव्यधिष्ण्येषु प्राकृता गतिः।
ईशेन्दुसार्पपित्र्येषु ज्ञेया मिश्राह्वया गतिः।।

संक्षिप्तादितिबाग्यार्यमेज्यधिष्णेषु या गतिः।
गतिस्तीक्ष्णाजचरणेऽहिर्बुध्न्येन्द्राश्विभेषु च॥
योगान्तिकाम्बु विश्वाख्यमूलगस्येन्दुजस्य च।
घोरागतिर्हरित्वाष्ट्रवसुवारुणभेषु च॥

भाग्यद्वितयादितिभद्वितयैः संक्षिप्तसंज्ञिका विपुला।
भाद्रपदद्वयवासभद्वितयैश्च विमलतीक्ष्णाख्या॥१०॥

पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रों में **संक्षिप्तगति** तथा पूर्वाभाद्रपदा, धनिष्ठा और शतभिषा नामक नक्षत्रों में **तीक्ष्ण नामक** गति कही गई है॥१०॥

क्रमागत–
नारदः–

इन्द्राग्निमित्रमार्त्तण्डभेषु पापाह्वया गतिः।
प्राकृताद्यासु गतिषु ह्यदितोस्तमितोऽपि वा॥
एतावन्ति दिनान्येव दृश्यस्त्वावत्र दृश्यगः।
चत्वारिंशत् क्रमात्त्रिशद्वाविंशद्विशतिर्नव॥
पञ्चदशैर्द्वादशभिर्दिवसैः शशिनन्दनः।
प्राकृतायां गतौ सस्यक्षेमारोग्यसुवृष्टिकृत्॥
मिश्रसंक्षिप्तयोर्मध्ये फलदोऽन्यास्वनिष्टयः।
वैशाखे श्रावणे पौषे-आषाढ़ेप्युदितो बुधः॥
जनानां पापफलदस्त्वितरेसु शुभप्रदः।
इषोर्जमासयोः शस्त्रदुर्भिक्षाग्निभयप्रदः।
उदितश्चन्द्रजः श्रेष्ठो रजतस्फटिकोपमः॥

(ना.सं. २; ११-१५)

योगान्तिकगतिरतुला नैर्ऋतमारभ्यभत्रितये।
श्रवणत्रितयं त्वाष्ट्रभमृक्षचतुष्कं च घोरसंज्ञा सा॥११॥
दिनकरमित्रविशाखाभत्रितयं भवति पापरूपाख्या।
प्राकृतगत्यां राजप्रवृद्धिरारोग्यसस्यवृद्धिः स्यात्॥१२॥

मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों में **योगान्तिक** तथा श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा एवं चित्रा नक्षत्रों में घोरगति मानी जाती है॥११॥

हस्त, विशाखा, अनुराधा एवं ज्येष्ठा नक्षत्रों में बुध की **पापगति** कही है। **प्राकृत गति** में राजपक्ष में वृद्धि, आरोग्य तथा फसलों की वृद्धि होती है॥१२॥

बुध गतियों का फल

मित्रविरोधः सततं भवति तयोः क्षिप्तमिश्रयोर्गत्योः।
अपरासु गतिषु नियतं विपरीतं भवति सर्वजन्तूनाम्॥१३॥

क्षिप्त और मिश्र गतियों में निरन्तर मित्रों से विरोध तथा अन्य दूसरी गतियों में सभी प्राणियों के लिए विपरीत फल होता है॥१३॥

बुध गतिभेद और उनके फल

विकलाऋज्व्यनुवक्रा वक्राख्या बोधनस्य गतिभेदाः।
विविधफलं तासु करोत्यविकलमेवं बलीयांश्चेत्॥१४॥
शस्त्रभयामयजननी विकला ऋज्वी च देहिनां शुभदा।
अर्घविनाशनकरी त्वनुवक्रा भूपयुद्धदा वक्रा॥१५॥

विकला, ऋज्वी, अनुवक्रा एवं वक्रा बुध के गतिभेद हैं। बुध जैसे-जैसे बलवान हो वैसा-वैसा विविध प्रकार का फल करता है।

विकला गति शस्त्र भय एवं रोग भय, ऋज्वी प्राणियों के लिए शुभप्रद, अनुवक्रा अर्घ विनाशकारी तथा वक्रा गति राजाओं में युद्ध करवाती है॥१४-१५॥

द्वादशमासानुसार बुधोदयफल

आषाढमासे द्वितये सपौषे वैशाखमासे यदि चन्द्रसूनुः।
दृष्टः करोत्यामयराजपीडा विवर्षणं तस्करभीतिमुग्राम्॥१६॥

वैशाख, आषाढ़, श्रावण तथा पौष मासों में बुध का उदय रोग, राजपीड़ा, अनावृष्टि, चौर और आतङ्क भय होता है॥१६॥

क्रमागत–

कश्यपः–

आषाढपौषवैशाखश्रवणेऽभ्युदितो बुधः।
अनिष्टफलदो नृणामितरेषु शुभप्रदः॥

(क.सं. ५; १३)

बुधमण्डल लक्षणम्

माणिक्यशङ्खकनकामलपुष्पराग ।
कुन्देन्दुसन्मरकतोपमशुद्धकान्तिः ॥
स्निग्धः शशांकतनयः प्रचुरार्घदश्च।
लोकेऽन्यमूर्त्तिरुदितो भयरोगकृत्सः॥१७॥

माणिक्य, शंख, स्वर्ण, कमल, पुष्पराग (पुखराज मणि), मरकत (पन्ना) की

कान्ति सदृश शुद्ध कान्ति वाला बुध का बिम्ब दृष्टिगोचर हो तो अधिक महंगाई हो, इससे भिन्न अकार में उदित बुध संसार में भय तथा रोगकारक होता है।।१७।।

क्रमागत–

कश्यपः–

वज्रमौक्तिककुन्देन्दु कुमुदस्फटिकोपमः।
तप्ततारनिभः सौम्यो जन्तूनामभयप्रदः।।

(क.सं. ५; १५)

वाराहमिहिर

हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः सस्यकेन मणिना सदृशो वा।
स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुत्कृच्छशिपुत्रः।।

(व.सं. ८; २०)

।।इति श्रीवृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षि विरचितायां संहितायां बुधचाराध्यायः पञ्चमः।।५।।

।।वृद्ध वसिष्ठसंहिता के बुध चाराध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।५।।

पाठान्तरम्

---

१ (ब) ज१, ज२-भयप्रदः, वा.-भयःप्रदासा (भयप्रदश्च), ज१-शास्तेमोभयं, ज२-सस्तेमोभयं, वा-तेभ्योतपं (तेभ्योभयं), ज१, ज२-कुन्यविदन्यथावा (कुत्रचिदन्यथा वा)

२ (अ) ज१, ज२-पुरंदरः (पुरंदर), ज१-स्वयंभूदुषु, ज२-स्वयंभूदुष्ट (स्वयंभूड्डषु)

२ (ब) ज२-चरकरोति, ज.मो.-चारं, वा.-चरत्करोति (चरन्करोति), ज१-प्रचुरार्यवृष्टिः, ज२-प्रचुरार्घवृष्टि (प्रचुरार्घवृष्टिं), वा.-नुपाहव्यादिनिरती (नृपाहवाद्भीमितीव)

३ (अ) ज१-मयाशुभेषु, ज२-मघाशुभेषु (मघासुभेषु), वा.-चरन्प्रजानामनुलांगपीडा (चरन्प्रजानामतुलांचपीडाम्)

३ (ब) ज१-ज२-वा.-शत्रुभिश्च (शत्रुभीश्च)

४ (अ) ज१-ज२-निपीडयेद्रुधः, ज.मो.-निपीड्यज्ज्ञ, वा.-पीडयवधः (पीडयन्बुधः)

४ (ब) मु.पु. रसादि वस्त्र (रसादिवस्तु), ज१-समृद्धिस्तत्रगवांच पीडां, ज२-गवां च पीड़ा, ज.मो. गवां च पीडाम् (समृद्धिदस्तत्र गवादिपीडाम्)

५ (अ) ज१, ज२-हौतभुजगयादर्यमयाभ्यक्षीं, वा.-हौतमुभुंगंजपार्थमयाभ्यंक्ष (हौतभुगजपादार्यमयाम्यर्क्षेषु), ज२-शीतदीपितिस्तनयः, वा.-शीतदिधितेस्तनयः (शीतदीधितेस्तनयः)

५ (ब) ज१-ज२-करोतितद्देहभूतां, वा.-करोत्यग्निघनदेहभृतां (करोत्यग्निं घ्नन् देहभूतां)

६ (अ) ज१-वारुणीर्ऋतिपौष्मान्युपददंभ्रशश्चितानि,
ज२-वारुणनैर्ऋतियौस्मान्युपददंशश्चितानि (वारुणनैर्ऋतपौष्णान्नुपमृद्नन्)

वा.-चन्द्रसुनु: (चन्द्रसुतः)

६ (ब) जर-सलिलजलेषु, वा.-सलिलमेषज (सलिलजभेषज), ज२-नासकरः (नाशकरः), वा. जीवनां (जीविनां)

७ (अ) ज२-भनेकं (भमेकं), ज१-विमृद्धियात्, ज२-विमृद्भियान्, वा.-विमृद्धियात् (विमृद्नीयात्)

७ (ब) ज१-ज२-विपुलाभयशयशस्त्र (विपुलामयशस्त्र)

८ (अ) ज१-प्राकृतिविमिश्रसंज्ञेत्यातीक्ष्णयोगात्रकाक्षवापाश्च, ज२-प्राकृतिविमिश्रसंक्षेप्ताक्षीक्ष्ण- योगात्रकाक्षवापाश्च, वा.-प्राकृतां विमिश्रसंक्षिसतीक्ष्णयोगान्तं (प्राकृत-मिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्ण- योगान्तिकघोरपापाश्च)

८ (ब) ज१, ज२-गतिवेधा (गतिभेदा)

९ (अ) ज१-अनिलानलमकुलजयमधिष्ण्यैरपरिमिश्रसंजीवा, ज२-अनिलानलमकुल-जपधीरपरिमिश्रंसंजीवा, वा.-अनिलामनलकमलजयमधिष्ण्यै: (अनिलानलकमल- जयमधिष्ण्यैः स्यात्प्राकृताभिधानगतिः)

९ (ब) ज१, ज२, वा.-पाठोनास्ति।

१० (अ) ज१-नाद्वितये (भद्वितयैः), ज१, ज२-संक्षिप्तसंज्ञकः मु.पु. संक्षिप्तप्रसंज्ञिका (संक्षिप्तसंज्ञिका)

१० (ब) ज२-भाग्यद्वितयेश्च, ज.मो.-भान्त्यद्वितयैश्च (भद्वितयैश्च)

११ (अ) ज१ ज२-नैऋतमारभ्यभत्रितयं, मु.पु. नैऋतमारभत्रितये (नैऋतमारभ्यभत्रितये)

११ (ब) ज१-त्वाष्टुमृक्ष, ज२-पाठानास्ति (त्वाष्ट्रभमृक्ष)

१२ (अ) ज२-पापरूपक्षा, वा.-पापरूपांख्यां (पापरूपाख्या)

१२ (ब) ज१-ज२-प्रकृत्यां (प्राकृतगत्यां), ज१, ज२-समृद्धिश्च (वृद्धिःस्यात्)

१३ (अ) ज१, ज२, ज.मो. मित्रविरोधं (मित्रविरोधः) वा.-सतत (सततं), ज१, ज२-क्षिप्तं, मु.पु. (क्षिप्र (क्षिप्त)

१३ (ब) ज२-भवतिषु (गतिषु), वा.-विपरति (विपरीतं)

१४ (अ) ज१-विकलान्सद्धवुनवक्ताख्य, ज२-विकलान्सद्धक्रचक्राख्य (विकलाऋज्व्यनु-वक्रा वक्रवख्या)

१५ (अ) ज२-असुभमजनी (शस्त्रभयामयजननी), ज१-ऋत्वा, ज२-ऋद्धी (ऋज्वी)

१५ (ब) ज१-अर्घविवाशकारी, ज२-आघेविनाशकारी, वा.-अर्घविनाशकारि (अर्घविनाशकारी)

१६ (अ) ज१-दृष्टि, ज२-दृष्टिः (दृष्टिः)

१७ (अ) ज१, ज२-सस्या, ज.मो. सस्य (शङ्ख)

१७ (ब) ज१-सन्मर्कतो, ज२-सन्मकरोपम (सन्मरकतोपम)

१७ (स) ज१-प्रचुरार्यदश्च (प्रचुरार्घदश्च)

१७ (द) ज१-भयतोन्यरोगकृत्स्नः, ज२-तोन्यकृष्णः (भयरोगकृत्सः)

***

६

अथ गुरुचाराध्यायः

मासेषु चोर्ज्जादिषु कृत्तिकाद्धि द्वयं द्वयं च क्रमशोऽश्विभात्स्यात्।
त्रिभान्नभस्येष तपस्य मासाः शुक्लान्तयुक्तर्क्षवशादजस्त्रम्।।१।।

शुक्ल पूर्णिमा से नक्षत्रों के आधार पर मासों के नाम होते हैं। कार्तिकादि मास कृत्तिकादि दो-दो नक्षत्रों के होते हैं। क्रम से भाद्रपद मास (शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा), आश्विन् मास (रेवती, अश्विनी, भरणी) एवं फाल्गुन मास (पू.फा., उ.फा, हस्त) तीन-तीन नक्षत्रों के होते हैं।।१।।

द्वीभाऊर्जादिमासास्स्युः पञ्चान्त्यैकादशस्त्रिभाः।
यद्धिष्ण्याभ्युदितो जीवस्तन्नक्षत्राह्वयवत्सरः।।

(ना.स. गुरुचारः १)

स्यादूर्जादिषुमासेषुवह्निभादिद्वयद्वयम् ।
उपान्त्यपञ्चभान्त्येषु नक्षत्राणां त्रयं त्रयम्।।

(क.स. ६, २)

कार्तिकादिवर्षज्ञानम्

उदेति धिष्ण्येन सुरेन्द्रमन्त्री तेनैव तन्नाम भवेत्तु वर्षम्।
ज्ञेयाति तत्कार्तिकपूर्वकाणि भवन्ति तेषां च फलं च सम्यक्।।२।।

जिस नक्षत्र में बृहस्पति उदय होता है, उसी नक्षत्र के नाम से संवत्सर होता है। कार्त्तिकादि नक्षत्रों से ही कार्त्तिक संवत्सर का ज्ञान करना चाहिये।।२।।

यस्मिन्नभ्युदितो जीवस्तन्नक्षत्राख्यवत्सरः।
स्यात्पीडा कार्त्तिके वर्षे वह्निगोरथ जीविनाम्।।

(क.स. ६, ३)

कार्त्तिकादिवर्षानुसार फल

सितरक्तहरितपीतद्रव्याणां वृद्धिरतुलास्यात्।
शकटकृषीबलवणिजां पीडास्यात्कार्तिके वर्षे।।३।।

कार्तिक नाम वर्ष में (कृत्तिका, रोहिणी) सफेद, लाल, हरी तथा पीली वस्तुओं की अधिक वृद्धि, शकट वाहकों, किसानों एवं व्यापारियों को पीड़ा होती है।।३।।

क्रमागत–

नारदः–

पीडा स्यात्कार्त्तिके वर्षे रथगोग्न्युपजीविनाम्।
क्षुच्छस्त्राग्निभयं वृद्धिः पुष्पकौसुंभजीविनाम्।।

(ना.स. गुरुचारः २)

सौम्येऽब्दे सस्यानां भयमीतिभ्यो निरन्तरं जगति।
पौषे निवृत्तवैरा राजानो व्याधिपीडितास्त्वपरे॥४॥

सौम्य (मार्गशीर्ष) वर्ष में (मृगशिरा आर्द्रा) फसलों को भय, संसार में निरन्तर ईति भय हो। पौष (पुनर्वसु, पुष्य) में राजा वैर से रहित अर्थात् आनन्दित हो जाते हैं; किन्तु अन्य लोग पीड़ित होते हैं॥४॥

क्रमागत–

नारदः–

अनावृष्टिः सौम्यवर्षे मृगुशु शलभांडजैः।
सर्वसस्यवधो व्याधिर्वैरं राज्ञां परस्परम्॥
निवृत्तवैरा क्षितिपा जगदानन्दकारकाः।
पुष्टिकर्मरताः सर्वे पौषेब्देऽध्वरतत्पराः॥

(ना.स. गुरुचारः ३, ४)

कश्यपः–

शस्त्राग्निक्षुद्भयंवृद्धिः पुष्पकौसुम्भवातसाम्।
सौम्यवर्षेत्वनावृष्टिः सस्यहानिरनेकधा॥
राजानोयुद्धनिरताश्चान्योऽन्यंवधकांक्षिणः।
पौषेऽब्देसुखिनः सर्वे द्विजाश्चाध्वर तत्पराः॥

(क.सं. ६, ४-५)

माघे सस्यविवृद्धिर्महदर्घं कर्म पौष्टिकं प्रचुरम्।
सुर पितृपूजावृद्धिर्भवति जनानां च हार्दितो भीतिः॥५॥

माघ (आश्लेषा, मघा) वर्ष में फसलों में वृद्धि, सुभिक्ष, पौष्टिक कार्यों (निर्माण कार्यों) की अधिकता, देव और पितृ पूजा में वृद्धि; किन्तु लोगों को परस्पर विरोधाभास भय हो॥५॥

क्रमागत–

नारदः–

माघेऽब्देसततं सर्वे पितृपूजनतत्पराः।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वृष्टिः कर्षकसंमता॥

(ना.स. गुरुचार ५)

कश्यपः–

निवृत्तवैरा राजानो बहुसस्यार्घवृष्टयः।
माघेऽब्दे जन्तवः सर्वे गुरुपूजनतत्पराः॥

(क.स. ६, ६)

फाल्गुनमासे वृद्धिः क्वचित्क्वचित्तद्वदर्घसस्यानि।
जन्तूनामारोग्यं परस्परं हन्तुमुद्यता भूपाः॥६॥

फाल्गुन नामक (पू.फा., उ.फा., हस्त) वर्ष में कहीं-कहीं वर्षा, कहीं-कहीं फसलें होती हैं। जन्तुओं में आरोग्य; किन्तु राजा एक-दूसरे को मारने के लिए तत्पर रहते हैं॥६॥

क्रमागत-

नारदः-

चौराश्चप्रबलास्त्रीणां दौर्भाग्यं स्वजनाः खलाः।
क्वचिद्वृष्टिः क्वचित्सस्यं क्वचिद्वृद्धिश्च फाल्गुने॥

(ना.स. गुरुचाराध्याये ६)

कश्यपः-

क्षेमंसुभिक्षमारोग्यं वृष्टिः कर्षकसंमता।
फाल्गुनाब्दे चौरभीतिस्त्रीणा दौर्भाग्यता भृशम्॥

(क.स. ६, ७)

चैत्रे स्त्रीजनहानिः क्रोधवशाभूमिपालकाः सर्वे।
क्षेमं सुभिक्षमतुलं प्रीतिर्द्विजसाधुजन्तूनाम्॥७॥

चैत्र नामक वर्ष (चित्रा, स्वाती) में स्त्री जाति की हानि और सभी राजा क्रोध के अधीन रहते हैं। कल्याण और सुभिक्ष प्रचुर हो, ब्राह्मण, साधु एवं सभी जन्तुओं में परस्पर प्रेम बढ़ता है॥७॥

क्रमागत-

नारदः-

चैत्रेब्देमध्यमा वृष्टिरुत्तमान्नंसुदुर्लभम्।
सस्यार्घवृष्टयः स्वल्पा राजानः क्षेमकारिणाः॥

(ना.स. गुरुचाराध्याये ७)

कश्यपः-

क्वचिद्वृष्टिः क्वचित्सस्यं क्वचिद्भीतिर्नतक्वचित्।
चैत्रेऽब्दे भूभुजः स्वस्थाः पृथ्वी चाल्पफलप्रदा॥

(क.स. ६-८)

द्विजपशुसज्जनवृद्धिर्वैशाखे शान्तिसंयुताः सर्वे।
अध्वरनिरताः सर्वे भूसुरनिकराश्च सस्यसंपूर्तिः॥८॥

वैशाख नामक वर्ष (विशाखा, अनुराधा) में ब्राह्मण, श्रेष्ठ पुरुष एवं पशुओं की वृद्धि तथा सर्वत्र शान्ति रहती है। सभी राजा यज्ञ एवं फसलों की पूर्ति के लिए एवं जनता की अनुकूलता में रहते हैं॥८॥

क्रमागत–

नारदः–

वैशाखे धर्मनिरता राजानः सप्रजा भृशम्।
निष्पत्तिः सर्वसस्यानामध्वरोद्युक्तचेतसः।।

(ना.स. गुरुचाराध्याये)

कश्यपः–

सुदुर्लभं चोत्तमानं प्रजानां व्याधितो भयम्।
वैशाखाब्दे तु राजानो धर्ममार्गरताखिलाः।।

(क.स. ६-९)

ज्येष्ठेऽब्दे निखिलजनाः स्वे स्वे कर्मप्रवर्त्तका जगति।
सततं ज्ञातिषु वैरं कुर्वन्त्यवनीश्वरा न तथा।।९।।

ज्येष्ठ नामक वर्ष (ज्येष्ठा, मूल) में सभी जनवर्ग अपने-अपने कार्यों के प्रवर्त्तक रहते हैं। संसार में सभी जातियाँ परस्पर शत्रुता उत्पन्न करती हैं; परन्तु राजाओं में परस्पर ऐसा विरोध नहीं होता।।९।।

क्रमागत–

नारदः–

वृक्षगुल्मलतादीनां क्षेमं सस्यविनाशनम्।
ज्येष्ठेऽब्दे धर्मतत्वज्ञाः सन्नृपाः पीडिताः परैः।।

(ना.सं. गुरुचाराध्याये ०९)

कश्यपः–

क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं द्विजाश्चाध्वर तत्पराः।
ज्येष्ठेऽब्दे धर्ममार्गस्थाः पीडितास्तु नृपाः परे।।

(क.स. ६-१०)

आषाढेऽब्दे प्रचुरं पीड्यन्ते सर्वसस्यानि।
कृमिकीटादिभिरतुलं त्वपरं सस्यं च वृद्धिमाप्नोति।।१०।।

आषाढ़ नामक वर्ष (पू.षा., उ.षा.) में कृमि-कीटादि सभी फसलों को अधिक हानि पहुंचाते हैं, फिर भी पश्चाद्धान्य (फसलों) की वृद्धि हो जाती है।।१०।।

क्रमागत–

नारदः–

क्वचिद्वृष्टिः क्वचित्सस्यं न तु सस्यं क्वचित्क्वचित्।
आषाढेऽब्दे क्षितीशाः स्युरन्योन्यजयकांक्षिणः।।

(ना.स. गुरुचाराध्याये १०)

कश्यपः–

बहुगुल्मलतावृद्धिभतत्सस्य विनाशनम्।
आषाढाब्दे तु राजानः सर्वदा कलहोत्सुकाः।।

(क.स. ६-११)

श्रावणवर्षे क्षेमं सस्यान्यखिलानि पाकमुपयान्ति।
राजक्षौभैरतुलं निखिलजनाः पीडिताः सततम्।।११।।

श्रावण नामक वर्ष (श्रवण, धनिष्ठा) में सभी फसलें पकने पर कल्याणकारी होती हैं। राजा परस्पर क्षोभयुक्त रहते हैं तथा सम्पूर्ण जनवर्ग निरन्तर पीड़ा में रहता है।।११।।

क्रमागत–
नारदः–

अनेकसस्यसम्पूर्णासुरार्चनसमाकुला ।
पापपाखण्डहन्त्री भूः श्रावणेऽब्दे विराजते।।

(ना.स. गुरुचाराध्याये ११)

कश्यपः–

क्वचिदीतिः क्वचिद्वृद्धिः क्वचिद्वृष्टिर्न ताः क्वचित्।
श्रावणाब्दे धराभीतिस्त्रिदशस्यर्द्धिमानवैः।।

(क.स. ६-१२)

भाद्रपदेऽब्दे षण्डास्तद्भक्ता ये च ते निपीड्यन्ते।
पूर्वं यत्सस्यञ्च निखिलं निष्पत्तिमुपयान्ति।।१२।।

भाद्रपद नामक वर्ष (शतभिषा, पू.षा.) में नपुंसक अपने सहयोगियों सहित पीड़ा को प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त धान्य गेहूँ इत्यादि समस्त फसलें नष्ट हो जाती हैं।।१२।।

क्रमागत–
नारदः–

पूर्वं तु सस्यसम्पूर्तिर्नाशं यात्यपरं तु यत्।
मध्यवृष्टिर्महत्सस्यं नृपाणां समरं महत्।।
अब्दे भाद्रपदे लोके क्षेमाक्षेमं क्वचित्क्वचित्।
धनधान्यसमृद्धिश्च सुभिक्षमतिवृष्टयः।।

कश्यपः–

(ना.सं. गुरुचाराध्याये १२-१३)

मनसोऽभीष्ट वृष्ट्यर्धफलपुष्पाध्वरादिभिः।
अब्दे भाद्रपदे वृष्टिः क्षेमारोग्यं क्वचित् क्वचित्।।

(क.सं. ६-१३)

आश्वियुजेऽब्देवृष्टिर्भवति च नाना निरामयं क्षेमम्।
अपरं सस्यं न स्यात्कुंत्रचिदीतिः प्रजापीडा॥१३॥

आश्विन नामक वर्ष (रेवती, अश्विनी, भरणी) में नाना प्रकार से आरोग्य, कल्याण तथा सुवृष्टि होती है। फसलों में कहीं भी ईतिभय न हो और प्रजा भी पीड़ित नहीं होती॥१३॥

क्रमागत–

नारदः–

सुवृष्टिः सर्वसस्यानि फलितानि भवन्ति च।
भवन्त्याश्वयुजे वर्षे सन्तुष्टाः सर्वजन्तवः॥

(ना.स. गुरुचाराध्याये १४)

कश्यपः–

पूर्वसस्यसमृद्धिः स्यान्नाशयत्यपरं फलम्।
अब्दे चाश्वयुजेऽत्यर्थं सुखिनः सर्वजन्तवः॥

(क.स. ६-१४)

सौम्ययाम्य मार्गगत गुरुफलम्

भानां यदा सौम्यगतिः सुरेज्यस्तदा जनानामभयप्रदः सः।
व्याधिप्रदो दक्षिणमार्गगामी भूदेवभूमीश्वरनाशदश्च॥१४॥

यदि गुरु नक्षत्रों (अपने योगतारा) के सौम्य (उत्तर) भाग से गमन करे तो जनवर्ग में अभयप्रद हो, दक्षिण भाग से व्याधिप्रद तथा ब्राह्मण एवं राजाओं का नाश करता है॥१४॥

क्रमागत–

नारदः–

सौम्यभागे चरन् भानां क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत्।
विपरीतं गुरोर्याभ्ये मध्ये च प्रतिमध्यमम्॥

(ना.सं. गुरुचाराध्याये १५)

कश्यपः–

मध्यमं पूर्व सस्यं स्यात्सम्पूर्णमवरं फलम्।
सौम्यमार्गगतोभानां गुरुर्नृणां सुभिक्षकृत्॥
अनर्घ्यं याम्यगस्तेषां मध्यवतीर्तुमध्यमः।
धूमाग्निश्यामरुधिरपीताभः क्रमशो गुरुः॥

(क.स. ६, १५-१६)

वर्णानुसार गुरुफलम्

वह्नेर्भयं वह्निसमानवर्णः पीतश्च रोगं हरितोऽरिभीतिम्।
श्यामस्तु युद्धं सततं करोति रक्तः क्षितीशद्विजकामपीडाम्॥१५॥

गुरु यदि अग्नि, पीत, हरित, श्याम और रक्त वर्ण का हो तो क्रमशः प्राणियों में अग्निभय, रोगभय, शत्रुभय, युद्धभय तथा राजा और ब्राह्मणों को काम वेदना सताती है॥१५॥

क्रमागत–

नारदः–

पीताग्निश्यामहरितरक्तवर्णो अङ्गिरा क्रमात्।
व्याध्याग्निरणचौरास्त्रभयकृत्प्राणिनां तदा॥

(ना.स. गुरुचाराध्याये १६)

वृष्टेर्भयं धूमनिभः पिशंगस्त्वीतेर्भयं कास्यनिभोन्नभीतिम्।
क्षिप्रं नृपस्यान्तकरो ह्यदृष्टश्चित्रो विचित्रं क्षितिपालयुद्धम्॥१६॥

धूम्रवर्ण बृहस्पति अनावृष्टि, पिशंग वर्ण (श्वेतमिश्रितपीत) ईतिभय, कास्य वर्ण अन्नभीति अर्थात् दुर्भिक्ष करता है। बृहस्पति अस्त या मूढ हो तो शीघ्र ही राजाओं का नाश करता है, विचित्र वर्ण राजाओं का परस्पर युद्धकारक होता है॥१६॥

क्रमागत–

नारदः–

अनावृष्टिर्धूमनिभः करोति सुरपूजितः।
दिवा दृष्टो नृपवधस्त्वथवा राज्यनाशनम्॥

(ना.स. गुरुचाराध्याये १७)

कश्यपः–

चौराग्न्यामय धात्रीश कलहानर्घभीतिकृत्।
भयकृत्सर्वं जन्तूनां धूमराभः सुरार्चितः॥

(क.स. ६-१७)

संवत्सर पुरुष के अङ्ग और उनके विभागानुसार नक्षत्रफल

वह्निभाद्द्वितयमब्दशरीरं नाभिरस्य जलवैश्वदैवभम्।
सार्पभं हृदयमन्तरात्मकं पैतृभं विकसितं सुमनश्च॥१७॥

संवत्सर पुरुष के कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र शरीर, पूर्वाषाढ़ा एवं उत्तराषाढ़ा नाभि, आश्लेषा हृदय (अन्तरात्मा) और मघा उदार मन है॥१७॥

क्रमागत–

नारदः–

संवत्सरशरीरः स्यात् कृत्तिकारोहिणी उभे।
नाभिस्त्वाषाढद्वितयमार्द्रा हृत्कुसुमं मघा॥

(ना.स. गुरुचाराध्याये १८)

कश्यपः–

हन्ति राष्ट्रं दिवादृष्टस्त्वथवा तदधीश्वरम्।
भवेत्संवत्सरतनुर्भद्वयं वह्निधिष्ण्यतः।।
आषाढद्वितयं नाभिर्हृदार्द्राकुसुमं मघा।
शरीरे क्रूरखेटेन पीडितेऽग्न्यम्बुतो भयम्।।
नाभिदेशेत्वनावृष्टिः पुष्ये मूलफलक्षयः।
हृदये सस्य नाशः स्याच्छुभयुक्ते तु शोभनम्।।

(क.स. ६, १८-२०)

क्रूरग्रहे चास्य शरीरसंस्थे वह्नेर्भयं वायुभयं च तत्र।
नाभिस्थितेऽनर्घभयं प्रभूतं हृदि स्थिते सस्यभयं जनानाम्।।१८।।

यदि संवत्सर पुरुष के शरीर (कृत्तिका रोहिणी नक्षत्रों) में पापग्रहों की युति हो तो अग्निभय और वायुभय होता है। नाभि (पू.षा. उ.षा. नक्षत्रों में) में पाप ग्रह हों तो दुर्भिक्ष भय, हृदय (आश्लेषा) में पाप ग्रह हों तो लोगों की फसलों की हानि होती है।।१८।।

क्रमागत–

नारदः–

दुर्भिक्षाग्निमहद्भीतिः शरीरे क्रूरपीडिते।
नाभ्यां तु क्षुद्भयं पुष्ये सम्यक् मूलफलक्षयम्।।
हृदये सस्यनिधनं शुभं स्यात् पीडिताः शुभैः।।

(ना.स. गुरुचाराध्याये १९-१९.५)

मनःस्थिते मूलफलं विनाशं वक्रग्रहस्थे फलमुग्रमेतत्।
सौम्यग्रहेष्वेषु च संस्थितेषु सर्वं शुभं मिश्रफलं च मिश्रैः।।१९।।

पुष्य-मन (मघा) में मूलफल विनाश, वक्र ग्रह होने पर उग्रफलदायक, शुभग्रहों की स्थिति होने पर शुभ, शुभपाप (मिश्रग्रह) मिश्र फलादेश करते हैं।।१९।।

सुरेज्ययाता भगणाः श्रुतिघ्ना नखैरवाप्ताः श्रुतिरामहीनाः।
विभाजिताश्चामरवर्त्मतर्कैः ६० शेषाः स्युरत्र प्रभवादयोऽब्दा।।२०।।

बृहस्पति के गतभगण को चार से गुणाकर २० बीस से भाग देकर लब्धफल से चौंतीस (३४) हीन करके षष्टि ६० से भाग दें, शेष प्रभवादि संवत्सर आ जाते हैं।।२०।।

संवत्सरों के नाम

प्रभवो १ विभवः २ शुक्लः ३ प्रमोदो ४ऽथ प्रजापतिः ५।
अंगिरा ६ श्रीमुखो ७ भावो ८ युवा ९ धाता १० तथेश्वरः ११।।२१।।

बहुधान्यः १२ प्रमाथी च १३ विक्रमो १४ वृषवत्सरः १५।
चित्रभानुः १६ सुभानुश्च १७ तारणः १८ पार्थिवो १९ व्ययः २०॥२२॥

प्रभव १, विभव २, शुक्ल ३, प्रमोद ४, प्रजापति ५, अंगिरा ६, श्रीमुख ७, भाव ८, युवा ९, धाता १०, ईश्वर ११, बहुधान्य १२, प्रमाथी १३, विक्रम १४, वृष १५, चित्रभानु १६, सुभानु १७, तारण १८, पार्थिव १९, व्यय २०॥२१-२२॥

सर्वजित् २१ सर्वधारी च २२ विरोधी २३ विकृतः २४ खरः २५।
नन्दनो २६ विजय २७ श्चैव जयो २८ मन्मथ २९ दुर्मुखौ ३०॥२३॥
हेमलम्बो ३१ विलम्बश्च ३२ विकारी ३३ शार्वरी ३४ प्लवः ३५।
शुभकृ ३६ च्छोभकृ ३७ तक्रोधी ३८ विश्वावसु ३९ पराभवौ ४०॥२४॥

सर्वजित् २१, सर्वधारी २२, विरोधी २३, विकृत २४, खर २५, नंदन २६, विजय २७, जय २८, मन्मथ २९, दुर्मुख ३०, हेमलम्ब (हेमलम्बी) ३१, विलम्ब (विलम्बी) ३२, विकारी ३३, शार्वरी ३४, प्लव ३५, शुभकृत ३६, शोभकृत ३७, क्रोधी ३८, विश्वावसु ३९, पराभव ४०॥२३-२४॥

प्लवंग ४१ कीलकः ४२ सौम्यः ४३ साधारण ४४ विरोधकृत् ४५।
परिधावी ४६ प्रमादी ४७ स्यादानन्दो ४८ राक्षसो ४९ नलः ५०॥२५॥
पिङ्गलः ५१ कालयुक्तश्च ५२ सिद्धार्थो ५३ रौद्र ५४ दुर्मती ५५।
दुंदुभी ५६ रुधिरोद्गारी ५७ रक्ताक्षी ५८ क्रोधनः ५९ क्षयः ६०॥६०॥

प्लवंग ४१, कीलक ४२, सौम्य ४३, साधारण ४४, विरोधकृत् ४५, परिधावी ४६, प्रमादी ४७, आनन्द ४८, राक्षस ४९, नल ५०, पिङ्गलः ५१, कालयुक्त ५२, सिद्धार्थी ५३, रौद्र ५४, दुर्मती ५५, दुंदुभी ५६, रुधिरोद्गारी ५६, रक्ताक्षी ५८, क्रोधन ५९, और क्षयः ६० संवत्सरों के नाम कहलाते हैं॥२५-२६॥

१२ युगों के अधिपति

अब्दैर्युगं पञ्चभिरब्दषष्ट्या युगानि च द्वादश वै भवन्ति।
पञ्चाऽब्दनाथाः क्रमशो युगस्य वह्न्यर्कचन्द्राब्जशंकराः स्युः॥२७॥

पाँच वर्षों का एक युग होता है। इस प्रकार ६० संवत्सरों में बारह १२ युग होते हैं। एक युग में जो पाँच ५ वर्ष होते हैं, उनके अधिपति क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा और शङ्कर हैं॥२७॥

क्रमागत–

नारदः–

युगं स्यात्पंचभिर्वर्षैयुगानि द्वादशैवं ते।
तेषामीशाः क्रमाज्ज्ञेया विष्णुर्देवपुरोहितः॥

पुरन्दरो लोहितस्च त्वष्टाहिर्बुध्न्यसंज्ञकः।।
पितरश्च ततो विश्वे शशीन्द्राग्नी भगोऽश्विनौ।।
युगस्य पञ्चवर्षेशा वह्नीनेन्द्वब्जजेश्वराः।।
तेषां फलानि प्रोच्यन्ते वत्सराणां पृथक्-पृथक्।।

(ना.स.अ. ३-१४-१६)

कृष्णः सूरिस्त्विन्द्रो ज्वलनस्त्वष्ट्रा चाहिर्बुध्न्यः पितरः।
विश्वे चन्द्रस्त्विन्द्रो सदहनोश्विन्याख्यो भगस्त्वपरः।।२८।।

१२ बारह युगों में क्रमशः कृष्ण (विष्णु), बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि, त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य (शंकर) पितर, विश्वदेवा, इन्द्राग्नि, अश्विनी कुमार और भग (सूर्य) अधिपति हैं।।२८।।

क्रमागत–

कश्यपः–

युगं स्यात्पञ्चभिर्वर्षैर्युगानि द्वादशैव तै।।
युगेशा विष्णु जीवेन्दुज्वलनस्त्वष्टसंज्ञकाः।।
अहिर्बुध्न्यश्च पितरो विश्वेदेवाश्च चन्द्रमाः
इन्द्राग्नी हयाश्विनौ दैवौ भगाखेऽन्त्यः प्रकीर्तितेः।।
युगस्य पञ्चवर्षेशाः वह्नयर्केन्द्वब्जवैश्वराः
द्युगेशवत्सरेशानां फल नामानुरूपतः।।

(क.स.अ. ९९-९३-९५)

प्रभवादिषष्टि संवत्सरों का पृथक्-पृथक् फल

अब्दे प्रवृत्ते प्रभवेऽग्निकोपः सन्तीतयः पैत्तकफाश्चरोगाः।
स्तोकं जलं मुञ्चति वारिवाहः सदा प्रमोदन्त जनाश्च सर्वे।।२९।।

प्रभव संवत्सर में अग्निकोप, ईतिभय, पित्तकफ जन्यरोग, अनावृष्टि होने पर भी प्रजावर्ग प्रसन्न रहे।।२९।।

क्रमागत–

नारदः–

क्वचिद्वृद्धिः क्वचिद्हानिः क्वचिद्भीति क्वचिद्गदः।
तथापि मोदते लोकः प्रभाब्दे विभत्सरः।।

(ना.सं. ३, १७

कश्यपः–

ईतयश्चाग्निकोपश्च व्याधयः प्रचुराभुवि।
प्रभवाब्दे मन्दवृष्टिस्तथापि सुखिनो जनाः।।

(क.स. ११-१६)

वृष्टिः प्रभूताखिलसस्यवृद्धिर्जनानुरागं विभवे प्रवृत्ते।
अन्योऽन्ययुद्धैः क्षितिपालकानां न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि।।३०।।

विभव संवत्सर में सुवृष्टि से समस्त फसलों की वृद्धि, प्रजा में परस्पर प्रेम, राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर भी लोग दुःखों का अनुभव नहीं करते।।३०।।

क्रमागत–

नारदः–

आन्वीक्षिकीसु निरताः सप्रजाःस्युः क्षितीश्वराः।
कर्षकाभिमता वृष्टिर्विभवाब्दे विवैरिणः।।

(ना.सं. ३-१८)

कश्यपः–

दण्डनीतिपरभूपा बहुसस्यार्घवृष्टिभिः।
विभवाब्देऽखिला लोकाः सुखिनः स्युर्विवैरिणः।।

(क.स. ११-१७)

अन्योऽन्यरत्यातिशयादजस्त्रं रामाः प्रपञ्चे रमयन्ति रामान्।
गोधूमशालीक्षुमती धरित्री निवृत्तवैरा भुवि शुक्लवर्षे।।३१।।

शुक्ल संवत्सर में पुरुष-स्त्री परस्पर प्रेम से युक्त होकर आनन्द मग्न रहें, गोधूम, धान, तथा ईख की फसलों से धरती हरी भरी रहे और प्रजावर्ग में परस्पर विरोध का अभाव हो।।३१।।

क्रमागत–

नारदः–

सकलत्रात्मजाञ्छश्वल्लालयत्यबला जनाः।
अमरस्पर्द्धिनः शुक्ले वत्सरे विगतारयः।।

(ना.स. ३-१९)

कश्यपः–

शुक्लाब्दे निखिला लोकाः सुखिनः स्वजनैः सह।
राजानो युद्धनिरताः परस्परजयेच्छया।।

(क.स. ११-१८)

प्रमोदवर्षे सुजना नृपांश्च मोदन्ति पापाभिरताः सचौराः।
सीदन्ति पृथ्वी बहुसस्यपूर्णा विवैरिणः सर्वजना धरित्र्याम्।।३२।।

प्रमोद संवत्सर में सज्जन पुरुष और राजा प्रसन्न रहें, चोर लोग पापरत रहते हुये पीड़ित रहते हैं। पृथ्वी अन्न तृणादि से सम्पन्न धरती पर सभी लोग निर्विरोध एवं आनन्दित रहें।।३२।।

क्रमागत–

नारदः–

अतिव्याध्यर्दिताः लोकाः क्षितीशाः कलहोत्सुकाः।
प्रमोदाब्दे प्रमोदन्ते तथापि निखिला जनाः।।

(ना.स. ३-२०)

कश्यपः–

प्रमोदाब्दे प्रमोदन्ति राजानो निखिलाजनाः।
वीतरोग भयक्लेश ईतिव्यालयुता अपि।।

(क.स. ११, १९)

गावः प्रभूतपयसः सकला धरित्री
मेघैर्विसृष्टसलिलैः परिपूर्णवप्रा।
आरामसंवृत्तपुरौघविचित्रिताङ्गी
तुष्टाः प्रजापतिवरे परिपूर्णलोकाः।।३३।।

प्रमोद संवत्सर में पृथ्वी पर गौएं अधिक दुधारू हों, समस्त भूमि मेघों की जल वृष्टि से तृप्त, खेत हरे भरे सुशोभित हों। विविध प्रकार के वाटिकाओं से युक्त नगर लोगों को आनन्दित करते रहते हैं।।३३।।

क्रमागत–

नारदः–

क्लेशः क्वचिन्न प्रेक्ष्यन्ते स्वजनानामनामयः।
एवं वै मोदते लोका प्रजापतिशरद्युतः।।

(ना.स. ३, २१)

कश्यपः–

प्रजापति समे नूनं बहुवृष्टियुताधरा।
न चलन्त्याखिला लोकाः स्वीयमार्गात्कदाचन।।

(क.स. ११, २०)

धात्री सुरप्रवरयज्ञवरौघपूर्वैः
पूर्णातिरम्यपुरसंघविचित्रिताङ्गी ।
अब्दे यदाङ्गिरसि भूरिजनैर्विकीर्णा
शश्वत्सुवृष्टिनिकरैश्च तडागपूर्णा।।३४।।

अंगिरस वर्ष में पृथ्वी देवयज्ञ यागादि से युक्त, अत्यन्त रमणीय नगर नर-नारियों से सम्पन्न, जनसंख्या वृद्धि, निरंतर समयानुसार वृष्टि के द्वारा तड़ागादि पूर्ण दृग्गोचर होते रहते हैं।।३४।।

क्रमागत–

नारदः–

अतिथिस्वजनैस्सार्द्धमन्नं बोभुज्यते मधु।
पेपीयन्ते कामिनीभिरङ्गिराऽब्दे निरन्तरम्।।

(ना.स. ३-२२)

कश्यपः–

अन्नं बोभुज्यते शश्वत्स्वजनैरर्थिभिः सह।
अङ्गिराऽब्देऽखिलालोकाः भूपाः स्युः कलहोत्सुकाः।।

(क.स. ११, २१)

विचित्रसस्याम्बरचित्रवर्णा गुल्मस्तनी पूर्णतडागपूर्णा।
क्रीडावनाढ्या फलपुष्पवक्त्रा भूः श्रीमुखेऽब्दे वनितेव भाति।।३५।।

श्रीमुख संवत्सर में विचित्र अन्नतृणादि से सम्पन्न विभिन्न वर्णों से युक्त गुल्मरूपी उन्नत पयोधरों से सुशोभित तड़ागों से भरपूर, क्रीड़ा वनों की शोभा एवं फलपुष्प मुखी वसुन्धरा सुन्दर नारी की तरह जनमानस को प्रसन्न करती है।।३५।।

क्रमागत–

नारदः–

श्रीमुखेऽब्दे दुग्धपूर्णा गोकर्णवलयेव भूः।
सस्यपीता वरावारि गावस्तुङ्गपयोधराः।।

(ना.स. ३, २३)

कश्यपः–

श्रीमुखाब्देऽखिलाधात्री बहुसस्यार्घवृष्टयः।
स्वाध्यायनिरता विप्रा वीतरागा विवैरिणः।।

(क.स. ११, २२)

वापीकूपतडागपूर्तिरतुला स्वस्थाः क्षितीशाः क्षितौ।
देवस्पर्द्धिजनैः सुसस्यनिकरैर्नानाविधैराकरैः।।
धात्री भाति निरन्तरं शुकपिकश्रीकण्ठपुंस्कोकिल-
भ्राजत्षट्पदनादमण्डितवनैर्भावाह्वयेऽब्दे सदा।।३६।।

भाव संवत्सर में बावड़ी, कुआं, तालाब आदि पूर्ण, राजा लोग स्वस्थचित्त होकर पृथ्वी पर देवतुल्य प्रजाजनों से सम्पन्न, नाना प्रकार के धन-धान्य फसलादि से परिपूर्ण पृथ्वी सुशोभित हो। जिसमें निरन्तर तोता, कोयल, श्रीकण्ठ (नीलड़ी), पुंस्कोकिल और भ्रमरों की गुंजाहट से गुंजायमान वनों से सम्पन्न पृथ्वी प्रजा को आनन्दित करती रहती है।।३६।।

क्रमागत–

नारदः–

स्युर्भूभुजो प्रभाभाजः प्रभञ्जनभुजः परे।
भावाब्दे भूसुरग्रामभ्रमणं लोभतः सदा।।

(ना.स. ३, २४)

कश्यपः–

भावाब्दे प्रचुररागा मध्यसस्यार्घ वृष्टयः।
राजानो युद्धनिरतास्तथापि सुखिनो जनाः।।

(क.स. ११, २३)

प्रकीर्णकामाः प्रमदा युवेऽब्दे गोधूमशालीक्षुफलैर्नियुक्ता।
चौरामयव्यालभयं प्रभूतं तथापि नन्दन्ति न दुःखमेति।।३७।।

युवा संवत्सर में सुन्दर स्त्रियों में इच्छाओं की वृद्धि, गोधूम, धान्य, गन्ना एवं फलों से युक्त, चौरभय, रोगभय, सर्पभय होने पर भी जनवर्ग आनन्दित हो अर्थात् जनवर्ग दु:खों का अनुभव न करें।।३७।।

क्रमागत–

नारदः–

सदाऽजस्रं रमयति युवाब्दे युवतीजनः।
युवानो निखिला लोकाः क्षितिश्चापि फलोत्कटा।।

(ना.स. ३, २५)

कश्यपः–

प्रभूतपयसो गावः सुखिनः सर्वजन्तवः।
सर्वकाम क्रियासक्ता युवाब्दे युवती जनाः।।

(क.स. ११, २४)

अब्दे विधातुः सकला धरित्री प्रदायिनी सर्वजनेच्छितार्थान्।
भूदेव भूवृत्तिकराश्च सर्वे मखक्रियाद्युत्सवतत्पराः स्युः।।३८।।

विधाता संवत्सर में सम्पूर्ण पृथ्वी समस्त प्रजाजनों के अभीष्ट पदार्थों को प्रदान करती है। ब्राह्मण, कृषक वर्ग एवं समस्त प्रजाजन महोत्सवों को सम्पन्न करने में तत्पर रहें।।३८।।

क्रमागत–

नारदः–

धात्री धात्रीव लोकानामभया च फलप्रदा।
धात्रब्दे धरणीनाथाः परस्परजयोत्सुकाः।।

(ना.स. ३, २६)

कश्यपः-

धातृवर्षेऽखिला भूपाः सदा युद्धपरायणाः।
सम्पूर्णा धरणी भाति बहुसस्यार्घवृष्टिभिः।।

(क.स. ११, २५)

पोषयतीश्वरवर्षे धात्री धात्रीव निखिलजनान्।
धात्रीपतयः सर्वे क्षुभ्यन्त्यनिशं परस्परं क्षोभात्।।३९।।

ईश्वर वर्ष में पृथ्वी समस्त जनवर्ग का धायमाता की तरह ही पोषण करे। सभी परस्पर क्षोभ के कारण निरंतर क्षुब्ध रहें।।३९।।

क्रमागत-

नारदः-

ईश्वराब्दे स्थिराः क्ष्मेक्षा जगदानन्दिनी मही।
अध्वरे निरता विप्राः स्वस्वमार्गे रताः परे।।

(ना.स. ३, २७)

कश्यपः-

ईश्वराब्देऽखिलां जन्तून्धात्री धात्रीवत्सर्वदा।
पौषयत्यतुलं चार्धफलशालीक्षु व्रीहिभिः।।

(क.स. ११, २६)

बहुधान्याब्दे सततं बहुधान्ययुतं धारातलं निखिलम्।
पित्तकफानिलजाता बहुधा रोगास्तथाविधास्तत्र।।४०।।

बहुधान्य संवत्सर में सम्पूर्ण पृथ्वी सदैव प्रचुर धान्य से युक्त रहे, वात-पित्त-कफ जन्य रोगों से जनता प्रायः पीड़ित रहती है।।४०।।

क्रमागत-

नारदः-

बहुधान्ये च बहुभिर्धान्यैः पूर्णाखिला धरा।
प्रभूतपयसो गावो राजनः स्युर्विवैरिणः।।

(ना.स. ३, २८)

कश्यपः-

अनीतिरतुलावृष्टिर्बहुधान्याख्य वत्सरे।
विविधैर्धान्यनिचयैः सम्पूर्णानिखिलाधरा।।

(क.स., ११, २७)

निखिला धरणी सहिता रथतुरगगजादिभिर्बहुभिः।
कुत्रचिदर्घं प्रचुरं न कुत्रचिद्धनरसं प्रमाथ्यब्दे।।४१।।

प्रमाथी संवत्सर में समस्त भूमि रथ, तुरग, गजादि के बाहुल्य से युक्त हो। कहीं-कहीं प्रचुरार्घ और कहीं धन रसादि की न्यूनता का प्रजा में अनुभव हो।।४१।।

क्रमागत–

नारदः–

बलाहका न मुञ्चन्ति कुत्रचित्प्रचुरं पयः।
प्रमाथ्यब्दे वीतरागास्तथापि निखिला जनाः।।

(ना.स. ३, २९)

कश्यपः–

न मुञ्चन्ति पयोवाहाः कुत्रचित्कुत्रचिज्जलम्।
मध्यमावृष्टिरर्घं च नूनमब्दे प्रमाथिनि।।

(क.स., ११, २८)

अनुपमविक्रम धरणीनाथैराक्रान्तवसुमती सकला।
विक्रमवर्षे सुजना वर्द्धन्ते विक्रमैः स्वैः स्वैः।।४२।।

विक्रमाब्द में अनुपम शूरवीरता से राजा समस्त भूमि को आक्रान्त कर ले और निजी पराक्रम द्वारा सज्जनों की वृद्धि हो।।४२।।

क्रमागत–

नारदः–

प्रवहन्ति जलं स्वच्छं स्रवन्ति प्रचुरं पयः।
विक्रमाब्देऽखिलाः क्ष्मेशा विक्रमाक्रान्तभूमयः।।

(ना.स. ३, ३०)

कश्यपः–

विक्रमाब्दे धराधीशा विक्रमाक्रान्तभूमयः।
सर्वत्र सर्वदा मेघा मुञ्चन्ति प्रचुरं जलम्।।

(क.स. ११, २९)

वृषभनिभा वृषभाब्दे क्षितिपतयः सप्रजाः स्वस्थः।
बहुविधसस्यसमृद्धिः कृषिजनमतवृष्टिरतुला स्यात्।।४३।।

वृषभ संवत्सर में वृषभ की तरह राजा प्रजा सहित स्वस्थयुक्त रहे। कृषक वर्ग के लिए सुवृष्टि होने से अनेक प्रकार की फसलों की वृद्धि हो।।४३।।

क्रमागत–

नारदः–

विविधैरन्नपानाद्यैर्हृष्टपुष्टाङ्गचेतसः।
मदोन्मत्ताखिला लोका वृषाब्दे वृषसन्निभाः।।

(ना.स. ३, ३१)

कश्यपः–

वृषाब्दे निखिलाक्ष्मेशा युध्यन्ति वृषभा इव।
मखप्रसक्तविप्रेन्द्रा सततं यजते सुरान्।।

(क.स. ११, ३०)

नानाविधैः सस्यविचित्रिता भूर्विचित्रभानौ भुवि चित्रवृष्टिः।
अन्योऽन्ययुद्धैः क्षितिपालकानां कपालकेशास्थिकबन्धचित्रा।।४३।।

चित्रभानु संवत्सर में पृथ्वी पर चित्रवृष्टि (कहीं सुवृष्टि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि) हो, नाना प्रकार से फसलें विचित्रित हों। राजाओं को परस्पर युद्ध में सिर, बाल, हड्डियां एवं कबन्धादि दिखाई दे।।४४।।

क्रमागत–

नारदः–

विचित्रा वसुधा चित्रपुष्पवृष्टिफलादिभिः।
चित्रभानुशरद्येषा भाति चित्राङ्गना यथा।।

(ना.स. ३, ३२)

कश्यपः–

चित्रार्धवृष्टिसस्याद्यैर्विचित्रा निकिलाधरा।
निराकुलाखिला लोकाश्चित्रभानोश्च वत्सरे।।

(क. ११, ३१)

सुभानुवर्षे प्रतपत्यजस्त्रं भानुः क्षितिर्मध्यमसस्ययुक्ता।
शस्त्राग्निकोपैः प्रचलनन्ति मर्त्यास्तथापि नो भीतिमवाप्नुवन्ति।।४५।।

सुभानु संवत्सर में सूर्य प्रतपन से भूमि साधारण फसलों से युक्त, शस्त्राग्नि प्रकोप से मरते रहने पर भी जनवर्ग भय का अनुभव न करे।।४५।।

क्रमागत–

नारदः–

नन्दन्तीह जनाः सर्वे भूमिर्भूरिफलान्वित।
सुभानुवत्सरे भूमिर्भीमभूपाल विग्रहा।।

(ना.स. ३, ३३)

कश्यपः–

सुभानुवत्सरे भूमौ भूभुजां नीतिविग्रहः।
भीतिभूर्भूरिसस्याद्यैर्भयङ्करः भुजङ्गमैः।।

(क.स. ११, ३२)

तरन्ति दुःखान्यपि तारणाब्दे जनाः प्रमोदन्ति सपुत्रमित्रैः।
यथेप्सितं वर्षति जम्भभेदी तथापि सीदत्यपरं च सस्यम्।।४६।।

तारण संवत्सर में लोग दुःखों से निवृत्त होकर पुत्र-मित्रादि से युक्त हो

आनन्दित हों, खण्डवृष्टि न होकर आवश्यकतानुसार वृष्टि होने पर भी कुछ धान्यों की हानि होती है।।४६।।

क्रमागत–

नारदः–

प्रतरन्त्युडुपोपायैः सरितोऽर्थाय सन्ततम्।
तारणाब्दे त्वतुलिता अर्थवन्तो हि जन्तवः।।

(ना.स. ३, ३४)

कश्यपः–

कथंचिन्निखिला लोकास्तरन्ति प्रतिवासरम्।
नृपाहवक्षतक्लेशभेषजैस्तारणाह्वये ।।

(क.स. ११, ३३)

ये पार्थिवेन्द्रा विलयं ययुस्ते युद्धेषु सर्वे सुखिनः पुरे स्युः।
मुञ्चन्ति तोयं प्रचुरं पयोदा भीतिर्ज्वरेभ्यः खलु पार्थिवेऽब्दे।।४७।।

पार्थिव संवत्सर में राजा युद्ध में नष्ट हों, उनके अतिरिक्त बची सभी प्रजा नगरों में सुखी हो। मेघराज प्रभूत वर्षा से पृथ्वी को तृप्त करें; किंतु प्रजा को ज्वरभय भी हो।।४७।।

क्रमागत–

नारदः–

पतन्ति करकोपेताः पयोधारा निरन्तरम्।
पापादपेतनसः पार्थिवाब्दे तु पार्थिवाः।।

(ना.स. ३, ३५)

कश्यपः–

पार्थिवाब्दे तु राजानः सुखिनः सप्रजाभृशम्।
बहुभिः फलपुष्पाद्यैर्विविधैश्च पयोधरैः।।

(क.स. ११, ३४)

व्ययान्विताः सर्वजना व्ययाब्दे निरन्तरं वारिमयी धरित्री।
धर्मप्रसक्ताः खलु पार्थिवेन्द्राः सीदन्ति ये पापपरा सचौराः।।४८।।

व्यय नाम संवत्सर में प्रजा खर्च अधिक करे, पृथ्वी निरन्तर वृष्टि जल से तृप्त रहे, राजा लोग धर्मोपासक हों तथा अन्य चौरादि पापीगण पीड़ित रहें।।४८।।

क्रमागत–

नारदः–

दीप्सते वसुधा वीरभटवारणवाजिभिः।
व्यपेत व्याधयः सर्वे व्ययाब्दे तु व्ययान्विताः।।

(ना.स. ३, ३६)

कश्यपः–

व्ययसब्दे निखिला भूपा बहुव्ययपराभृशम्।
वीरमत्तेभ तुरगवैर्भाति वसुन्धरा।।

(क.स. ११, ३५)

सर्वजिदब्दे निखिलं जगत्सदानन्दसुन्दरोपेतम्।
भूभुजनिकरविकारैः प्रकटितबहुदुःखतामेव।।४९।।

सर्वजित् संवत्सर में समस्त जगत् परमानन्द सन्दोह में मग्न रहे। राजागणों में विकार उत्पन्न होने वे बहुविध दुःखों से पीड़ित हो।।४९।।

क्रमागत–

नारदः–

गीर्वाणपूर्वगीर्वाणान् गर्वनिर्भरचेतसः।
सर्वजिद्वत्सरे सर्वं उर्वीशान् हन्ति भूमिपान्।।

(ना.स. ३, ३७)

कश्यपः–

सर्वजिद्वत्सरे सर्वे जनास्त्रिदशसन्निभाः।
राजानो विलयं यान्ति भीमसंग्रामभूमिषु।।

(क.स., ११, ३६)

वारिधरा वारिचयं मुञ्चत्यल्पं क्वचित्क्वचिद्बहुलम्।
अवनीपालकसंयाति निस्खलिता भूश्च सर्वधार्येऽब्दे।।५०।।

सर्वधारी वर्ष में कहीं वृष्टि, अनावृष्टि व अतिवृष्टि की संभावना रहे, राजाओं के युद्ध से भूमि पीड़ित रहे।।५०।।

क्रमागत–

नारदः–

सर्वधारीवत्सरेऽस्मिन् जगदानन्दिनी धरा।
प्रशान्तवैरा राजानः प्रजापालनतत्पराः।।

(ना.स. ३, ३८)

कश्यपः–

सर्वधारि समे भूपाः प्रजापालनतत्पराः।
प्रशान्तवैरा सर्वत्र बहु सस्यार्घवृष्टयाः।।

(क.स. ११, ३७)

भूपसंक्षोभसंभूतभूरिभीतिभुजः प्रजाः।
सर्वस्वापहृताश्चौरैर्विरोध्यशब्दे विदेशगाः।।५१।।

विरोधी नामक संवत्सर में राजाओं के संक्षोभ से प्रजा संक्षुब्ध रहे। तस्करों

द्वारा प्रजा का सारा धन लूट लिया जाता है तथा लोग दूसरे देशों में प्रवास करते हैं।।५१।।

क्रमागत–

नारदः–

विरोधं सततं कुर्वन्त्यन्योन्यं क्षितिपाः प्रजाः।
विरोधीवत्सरे भूमिर्भूरिवारिधरैर्वृता।।

(ना.स. ३, ३९)

कश्यपः–

विरोधिवत्सरे लोकाः परस्पर विरोधिनः।
भूरिभूतिच्युता भूमिर्भूरि वारि समाकुला।।

(क.स. ११, ३८)

प्रकृतिः प्रयाति विकृतिं विकृतिरपि प्रकृतिमायाति।
वर्षे विकृते सुजना निशाचरार्घप्रदा धरणी।।५२।।

विकृत संवत्सर में प्रकृति विकार उत्पन्न हो; परन्तु विकृति का सुधार भी हो। सज्जन तथा चौरादि भी कमरतोड़ महंगाई से पीड़ित रहें।।५२।।

क्रमागत–

नारदः–

विकृतिः प्रकृतिं याति प्रकृतिर्विकृतिं तथा।
तथापि मोदते लोकस्तस्मिन् विकृतवत्सरे।।

(ना.स. ३, ४०)

कश्यपः–

प्रकृतिर्विकृतिं याति विकृतिः प्रकृतिं गता।
तथापि सुखिनो लोकाश्चास्मिन् विकृति वत्सरे।।

(क.स. ११, ३९)

नृपाः खराब्दे भुवि विक्रमेण सापत्न्यराष्ट्रान्प्रचलन्ति हन्तुम्।
रथेभपत्यश्वबलैर्वृतास्ते धात्री जनानन्दफलप्रदा स्यात्।।५३।।

खर संवत्सर में राजा लोग अपने पराक्रम द्वारा शत्रु राष्ट्रों को कुचलने के लिए उद्यत रहें। रथ, गज, पैदल, अश्व सेनाओं के साथ घिरे हुए प्रजा की रक्षा के लिए आनन्द प्रद रहे।।५३।।

क्रमागत–

नारदः–

खराब्दे सततं सम्यग्बध्यन्ते पशवः प्रजाः।
राजानो विलयं यान्ति परस्पर विरोधतः।।

(ना.स. ३, ४१)

कश्यपः–

खराब्दे निखिला भूपाश्चान्योऽन्यं समरोत्सुकाः।
मध्यमावृष्टिरत्युग्ररौगैर्व्याप्तास्तदा नराः।।

(क.सं., ११, ४०)

आनन्दा सुन्दरनन्दनाब्दे सम्पूर्णसस्यामितवारिवाहैः।
फलैर्विचित्रमितपुष्पवृन्दैधरात्यसस्यादिफलं विनष्टम्।।५४।।

नन्दन नामक संवत्सर में सम्पूर्ण सस्यवृद्धि, समयानुकूल वर्षा के द्वारा पुष्प तृणादि से सुशोभित वसुन्धरा आनन्द प्रदान करती हुई भी कहीं कहीं फसलों की हानि के अनुभव से पीड़ित रहे।।५४।।

क्रमागत–
नारदः–

आनन्ददा धराजस्रं प्रजाभ्यः फलसञ्चयैः।
नन्दनाब्दे स्वहानिः स्यात्कोशधान्यविनाशकृत।।

(ना.सं., ३, ४२)

कश्यपः–

नन्दनाब्दे सदा पृथ्वी बहु सस्यार्घवृष्टिभिः।
आनन्ददाखिलानां च जन्तूनां च महीभुजाम्।।

(क.सं. ११, ४१)

अतुलबलसमृद्धं पार्थिवेन्द्रस्य चक्रं।
पुरविषयहयादीन्हन्तुमुद्यच्च नित्यम्।।
प्रचलति भुवि चैवं तेऽपि सर्वे चलन्ति।
क्षितिरपि विजयाब्दे सस्यसम्पूर्णरम्या।।५५।।

विजय संवत्सर में राजा चक्र अतुल सेना से समृद्ध होकर पुर, नगर अश्वादिकों को मारने के लिए निरन्तर उद्यत हों, भूकम्पादि से राजा लोग प्रजा सहित विचलित हों; किंतु पृथ्वी धन-तृणादि से सम्पन्न रहे।।५५।।

क्रमागत–
नारदः–

नश्यते वारिधराभिः पूर्वकृष्यखिलं फलम्।
राजभिश्चापरं सर्वं विजयाब्दे जयेप्सुभिः।।

(ना.सं. ३, ४३)

कश्यपः–

विजयाब्दे तु राजानः सदा विजयकांक्षिणः।
सुखिनो जन्तवः सर्वे बहुसस्यार्घ वृष्टिभिः।।

(क.सं. ११, ४२)

यस्मिञ्जयाब्दे विरलार्घसस्या बलाधिका गोऽजवृषाश्वनागाः।
तथा धराधीशमहारणैश्च सीदन्ति गौडाः खलु गुर्जराश्च॥५६॥

जय संवत्सर में कहीं महंगाई, कहीं सस्तापन हो। गौड़, गुर्जरवासी राजागण गो, बकरी, बैल, अश्व, गजादि द्वारा बलसमृद्ध होकर महायुद्धों के द्वारा नष्ट भ्रष्ट भी हों॥५६॥

क्रमागत–

नारदः–

शैलोद्यानवनारामफलैरतुलिता महीं।
जेगीयते वेणुनादैर्जयाब्दे च महाजलम्॥

(ना.सं. ३, ४४)

कश्यपः–

जयाब्दे धरणीनाथाः संग्रामे जयकांक्षिणः।
जयमङ्गलघोषाद्यैर्धरणी भाति सर्वदा॥

(क.सं., ११, ४३)

जृम्भन्ति सर्वे विविधान्नपानैः कामोपचारैः पशवो मृगाश्च।
ते मन्मथाब्दे शवराः सचौराः सीदन्ति सन्यासिजना ह्यलब्धाः॥५७॥

मन्मथ संवत्सर में पशु तथा मृग इच्छित उपचारों द्वारा और शवर चौर नानाविध खाने-पीने के साधनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त हों; किंतु सन्यासी वर्ग लाभ के अभाव से दुःखी हों॥५७॥

क्रमागत–

नारदः–

मन्मथाब्देखिला लोकास्तत्केलिपरलोलुपाः।
शालीक्षुयवगोधूमैर्नयनाभिनवा धरा॥

(ना.सं. ३, ४५)

कश्यपः–

मन्मथाब्दे जनाः सर्वे पुंश्चलीलास्यलोलुपाः।
शालीक्षुयवगोधूमैर्नयनाभिनवाधरा ॥

(क.सं. ११, ४४)

सुदुर्मुखाब्दे प्रलयं प्रयान्ति सस्यार्घधात्रीपतिमुख्यविप्राः।
प्रव्राजकव्रातकिरातचौरा लैंग्वाश्च सर्वे खलु वर्द्धयन्ति॥५८॥

दुर्मुख नाम संवत्सर में पश्चिम धान्य, वस्तुओं के मूल्य, राजा और मुख्य ब्राह्मण प्रलय को प्राप्त होते हैं। सन्यासी, श्रमिक, भील, चोर तथा मूर्तिकार सभी वृद्धि को प्राप्त होते हैं॥५८॥

क्रमागत–

नारदः–

दुर्मुखाब्देऽग्निरोगाः स्युः प्रचुरात्रं तथा पयः।
राजानाः सप्रजास्तुष्टा निःस्वाश्च द्विजसत्तमाः।।

(ना.सं., ३, ४६)

कश्यपः–

दुर्मुखे पुष्टवृष्टिः स्यादीति चौराकुलाधरा।
तथा वैरिमहीनाथ वीरवारण घोटकैः।।

(क.सं. ११, ४५)

धरामरा गोकुलराजवृन्दा धर्मप्रसक्ताः खलु हेमलम्बे।
सीदन्ति सर्वे विरलार्घसस्यैरवृष्टिभिः क्षुद्भयपीडिताश्च।।५९।।

हेमलम्ब संवत्सर में ब्राह्मण, गो समूह, राजमण्डल धर्मात्मा, भावों में उतार चढ़ाव, पश्चिम धान्य की न्यूनाधिकता, अनावृष्टि, भूखमरी से पीड़ित होकर आतङ्कित होते हैं।।५९।।

क्रमागत–

नारदः–

हेमलम्बे नृपाः सर्वे परस्परविरोधिनः।
प्रजापीडात्वनर्घत्वं तथापि सुखिनो जनाः।।

(ना.सं. ३, ४७)

कश्यपः–

हेमलम्बिनीति भीतिर्मध्य सस्यार्घवृष्टयः।
भातिर्भूर्भूप संक्षोभस्त्वर्कविद्युल्लतादिभिः।।

(क.सं. ११, ४६)

विलम्बिवर्षेत्वरिवृन्दरोगैः स्वल्पार्घवृष्ट्युद्धतचौरसंघैः।
निस्वाः प्रजाः सत्वविहीनमानविदेशगाः स्वोदरपूरणाय।।६०।।

विलम्बि संवत्सर में शत्रु वर्ग, रोग, भावों, तथा वृष्टि की न्यूनता, बिगड़े हुए चोरों के समूह द्वारा सभी निर्धन शक्तिहीन, मानहीन होकर उदरपूर्ति हेतु विदेश में जाकर पीड़ित हो।।६०।।

क्रमागत–

नारदः–

विलम्बवत्सरे राजविग्रहो भूरिवृष्टयः।
आतंकपीडिता लोकाः प्रभूतं चापरं फलम्।।

(ना.सं. ३, ४८)

कश्यपः–

विलम्बवत्सरे भूपाः परस्पर विरोधिनः।
प्रजापीडात्वनर्घत्वं तथापि सुखिनो जनाः।।

(क.सं. ११, ४७)

स्तोकं जलं मुञ्चन्ति वारिवाहस्तथापि नानाविधसस्यपूर्णा।
विकारिवर्षे निखिला जनास्ते जीवन्ति नानाविधवृक्षमूलैः।।६१।।

विकारी संवत्सर में मेघराज न्यून जल वृष्टि करते हैं, तो भी नाना प्रकार के सस्यों (धान्यों) से भरपूर एवं नाना प्रकार के वृक्षफल, फलों द्वारा प्रजा सुख से जीवनान्द प्राप्त करती है।।६१।।

क्रमागत–

नारदः–

विकारिणो विकार्यब्दे पित्तरोगादिभिर्नराः।
मेघो वर्षति सम्पूर्णे समुद्रवसनक्षितौ।।

(ना.सं. ३, ४९)

कश्यपः–

विकार्यब्देऽखिला लोकाः पित्तरोगादिभिर्नराः।
पूर्वसस्यफलं स्वल्पं बहुलं चापरं फलम्।।

(क.सं. ११, ४८)

शार्वरीशरदि भाति मेदिनी पूर्णसस्यजनवृन्दसंकुला।
अध्वरोत्सुकधराऽमरपूर्णा धर्ममार्गरतभूपकुलैश्च।।६२।।

शार्वरी नाम संवत्सर में भूमि पूर्णरूपेन पश्चिम धान्यादि से सम्पन्न, समृद्ध लोगों, यज्ञार्थ तत्पर ब्राह्मणों से युक्त, धर्ममार्ग में संलग्न राजकुलों द्वारा सुशोभित होती है।।६२।।

क्रमागत–

नारदः–

शार्वरीवत्सरे सर्वसस्यवृद्धिरनुत्तमा।
चलिताचलसंकाशैः पयोदैरावृतं नभः।।

(ना.सं. ३, ५०)

कश्यपः–

शार्वरी वत्सरे पूर्णाधरा सस्यार्घवृष्टिभिः।
प्रजाश्च सुखिनः सर्वे राजानः स्युर्विवैरिणः।।

(क.सं. ११, ४९)

प्लववर्षे निखिलजनाः स्थलजलभवपण्यजीविनस्तत्र।
बहुवृष्टिभिरखिलधरा प्लवसदृशा भवति जलमध्ये॥६३॥

प्लव नामक संवत्सर में स्थल व जल से उत्पन्न वस्तुओं से जीविका चलाने वाले समस्त प्रजाजन अतिवृष्टि के द्वारा समस्त भूमण्डल जल में छोटी नौका की तरह डममगाता है॥६३॥

क्रमागत–

नारदः–

दीप्यन्ते सततं भूपाः प्लवाब्देप्लवगा जनाः।
राजते पृथिवी सर्वा सततं विविधोत्सवैः॥

(ना.सं. ३, ५१)

कश्यपः–

प्लवाब्दे त्वखिला धात्री वृष्टिभिः प्लवसन्निभा।
रोगा कुलात्वीतिभीतिः सम्पूर्णे वत्सरे फलम्॥

(क.सं. ११, ५०)

शुभकृच्छरदि विभाति क्षितिरतुलैर्मखमहोत्सवैः सततम्।
नीतिपथक्षितिपतिभिर्बहुविधसस्यार्घवृष्टिभिः सकला॥६४॥

शुभकृत्संवत्सर में पृथ्वी पर निरन्तर यज्ञ महोत्सव हों, राजा लोग नीति के अनुकूल रहें तथा समस्त भूमि पर अनेक प्रकार से सुवृष्टि एवं फसलें हों॥६४॥

क्रमागत–

नारदः–

शुभकृद्वत्सरे सर्वसस्यानामतिवृद्धयः।
नृपाणां स्नेहमन्योन्यां प्रजानां च परस्परं॥

(ना.सं. ३, ५२)

कश्यपः–

शुभकृद्वत्सरे पृथ्वी राजते विविधोत्सवैः।
आतङ्क चौरभयप्रद राजानः समरोत्सुकाः॥

(क.सं. ११, ५१)

शोभकृति क्षितिपतयो जृम्भन्ते विविधसैन्ययुताः।
क्षितिरपि भाति सुपुष्पित फलितवनारामतोयांशैः॥६५॥

शोभकृत् संवत्सर में राजा नाना प्रकार की सेनाओं से सम्पन्न तथा समृद्धि को प्राप्त हों। पृथ्वी भी रंग-बिरंगे फूलों, सुन्दर उद्यानों और जलाशयों द्वारा सुन्दर दिखाई दे॥६५॥

क्रमागत–

नारदः–

शोभनाख्ये हायने तु शोभनं भूरिवर्तते।
नृपाश्चैवात्र निर्वैराः सर्वसम्पद्युता धरा।।

(ना.सं. ३, ५३)

कश्यपः–

शोक हृदवत्सरे धात्री प्रजानां शोकरोगदा।
तथापि सुखिनो लोका बहु सस्यार्घ वृष्टिभिः।।

(क.सं. ११, ५२)

**क्रोधिनि शरदि निरन्तरक्षितिपतिकलहैर्विहीनधनाः।
फलमूलाशनवशगास्तथापि लोकाश्च वर्द्धन्ते।।६६।।**

क्रोधी संवत्सर में राजाओं की कलह से धन हानि होने पर भी फल, मूल, खाद्यान्न इत्यादि वस्तुओं की वृद्धि से प्रजा समृद्ध हो।।६६।।

क्रमागत–

नारदः–

क्रोध्यब्दे सततं रोगाः सर्वसस्यसमृद्धयः।
दम्पत्योर्वैरमन्योन्यं प्रजानां च परस्परम्।।

(ना.सं. ३, ५४)

कश्यपः–

क्रोधिनोऽब्देऽखिला लोकाः क्रोधलोभपरायणाः।
ईति दोषेण नियतं मध्यसस्यार्घवृष्टयः।।

(क.सं. ११, ५३)

**विश्वावसौ विविधसस्ययुता धरित्री नानाकरैः प्रचुरतोयदमेघवृन्दैः।
नानाविधक्रतुवरेषु विचित्रनादैर्भात्यङ्गवङ्गमगधा निहताश्च चौरैः।।६७।।**

विश्वावसु नामक संवत्सर में पृथ्वी अनेक प्रकार की फसलों से सम्पन्न, नाना प्रकार के खानों से सुशोभित, वर्षणशील मेघ घटाओं से तृप्त हो। नाना प्रकार के यज्ञों में मन्त्र घोषों से सम्पन्न, चोरों से रहित, अंग, वंग एवं मगध भूभाग सुशोभित हो।।६७।।

क्रमागत–

नारदः–

शश्वद्विश्वावसावब्दे मध्यसस्यर्घवृष्टयः।
प्रचुराश्चौररोगाश्च नृपा लोभाभिभूतयाः।।

(ना.सं. ३, ५५)

कश्यपः–

अब्दे विश्वावसौ शश्वच्चौररोगाकुलाधरा।
सस्यार्घवृष्टयोर्मध्या भूपा लोभाभिभूतयः।।

(क.सं. ११, ५४)

परिभवजनितक्लेशैर्निःसाराः सप्रजाः क्षितिपाः।
अतुलितसस्यसमृद्धां भूमिं भुक्त्वा पराभवाब्देऽपि।।६८।।

पराभव संवत्सर में भूमि अत्यन्त सस्य सम्पन्न होने पर भी पराजय के तिरस्कार द्वारा क्लेशों से युक्त सार हीन प्रजा जनों सहित राजा लोग दुःखी हो।।६८।।

क्रमागत–

नारदः–

पराभावाब्दे राजानः प्राप्नुवन्ति पराभवम्।
आमयः क्षुद्रधान्यानि प्रभूतानि सुवृष्टयः।।

(ना.सं. ३, ५६)

कश्यपः–

पराभावाब्दे राज्ञां स्यात्सभरं सह शत्रुभिः।
आमय क्षुद्रसस्यादि प्रभूतास्वल्पवृष्टयः।।

(क.सं. ११, ५५)

अब्दे प्लवङ्गे प्रमदाजनास्तु कुर्वन्ति वैरं पुरुषेषु नित्यम्।
धराधिपक्षोभविघट्टिताभूस्तदा न सम्पूर्णफलप्रदायिनी।।६९।।

प्लवंगाब्द में स्त्रियां पुरुषों से नित्य वैर विरोध करती है, राजाओं के क्षुब्ध होने के कारण भूमि सम्पूर्ण फल प्रदायिनी नहीं होती।।६९।।

क्रमागत–

नारदः–

प्लवंगाब्दे सस्यहानिश्चौररोगार्दिता जनाः।
मध्यवृष्टि क्षितीशानां विरोधं च परस्परम्।।

(ना.सं. ३, ५७)

कश्यपः–

प्लवङ्गाब्दे मध्यवृष्टिः रोगचौराकुलाधरा।
अनयोऽन्यं भूपाः शत्रुभिः हतभूमयः।।

(क.सं. ११, ५६)

अवृष्टिचौराहवरोगवह्निभीतान् जनान्वीक्ष्य सुकीलकाब्दे।
भूर्जीवयामीति कथं विचार्य विचित्रनानाकरदा च तेभ्यः।।७०।।

कीलकाब्द में अनावृष्टि, चोर, युद्ध, रोग एवं अग्निकाण्डादि से जनवर्ग

भयभीत देखकर भूमि उनके लिए नाना प्रकार से करदात्री होती हुई भी, मैं कैसे जीवन धारण करूँ? इस विचार से पीड़ित रहती है।।७०।।

क्रमागत–

नारदः–

प्रचुराः पित्तरोगाः स्युर्मध्या वृष्टिरहेर्भयम्।
कीलकाब्दे त्वीतिभयं प्रजाक्षोभः परस्परम्।।

(ना.सं. ३, ५८)

कश्यपः–

कीलकाब्दे त्वीतिभीतिः प्रजाक्षोभो नृपाहवैः।
तथापिवर्धते लोकः समधान्यार्घवृष्टिभिः।।

(क.सं., ११, ५७)

सुवृष्टिसस्यार्घधरा विभाति धर्मप्रसक्तक्षितिपोत्सवाद्यैः।
स्वमार्गसंसक्तजनैरजस्त्रं सौम्याह्वयाब्दे प्रविनष्टदोषैः।।७१।।

सौम्य संवत्सर में सुवृष्टि से भूमि प्रचुर फसलों से युक्त, राजा लोग धर्मोत्सवों में संलग्न, दोषों से रहित सभी जनवर्ग अपने अपने मार्ग पर चलें।।७१।।

क्रमागत–

नारदः–

प्रचुराः शैत्यरोगाः स्युर्मध्या वृष्टिरहेर्भयम्।
सौम्याब्दे चैव सततं शान्तवैरा क्षितीश्वराः।।

(ना.सं. ३, ५९)

कश्यपः–

सौम्याब्दे सुखिनो लोका बहु सस्यार्घवृष्टिभिः।
विवैरिणो धराधीशा विप्राश्चाध्वरतत्पराः।।

(क.सं ११, ५८)

विविधामयचोरभयं मध्यमवृष्ट्यर्घसस्यभयम्।
भुवि साधारणवर्षे निखिलजनानां च चौरभयम्।।७२।।

साधारण संवत्सर में विविध प्रकार के रोगों तथा चोरों से नागरिक भयभीत हों और मध्यम वर्षा से फसलों को भय एवं समस्त जनवर्ग के लिए चोर भय हो।।७२।।

क्रमागत–

नारदः–

साधारणेऽब्दे राजानः सुखिनो गतमत्सराः।
प्रजाश्च पशवः सर्वे वृष्टिः कर्षकसंमताः।।

(ना.सं. ३, ६०)

कश्यपः–

साधारणाब्दे वृष्ट्येर्घभयं साधारणं भवेत्।
विवैरिणोऽखिला भूपाः प्रजाः स्युः स्वस्थचेतसः।।

(क.सं. ११, ५९)

कलहो निखिलजनानामीतिभयं स्याद्विरोधकृद्वर्षे।
धरणी सस्यसमृद्धपि विकल फलदायिनी सततम्।।७३।।

विरोधकृत् संवत्सर में कलह, समस्त लोगों के लिए ईतिभय, भूमि फसलों से भरपूर होने पर भी निरन्तर सदोष फलप्रदायिनी हो।।७३।।

क्रमागत–

नारदः–

विरोधकृद्वत्सरे तु परस्परविरोधिनः।
राजानो मध्यमा वृष्टिः प्रजा स्वस्था निरन्तरम्।।

(ना.सं. ३, ६१)

कश्यपः–

विरोधकृद्वत्सरे तु परस्पर विरोधिनः।
सर्वेजना नृपाश्चैव मध्य-सस्यार्घ-वृष्टयः।।

(क.सं. ११, ६०)

शुभफलदा परिधाविन्यतुलितबहुसस्यवृद्धिः स्यात्।
निखिलधराऽऽमयरहिता मध्यमदेशस्य नाशःस्यात्।।७४।।

परिधावी संवत्सर में प्रचुर सस्य समृद्धि से शुभ फल हो, सभी जनवर्ग रोग रहित हों; परंतु मध्यदेश का नाश हो।।७४।।

क्रमागत–

नारदः–

अनर्घ्यामयरोगेभ्यो भीतिरीतिर्निरन्तरम्।
परिधावीवत्सरे तु नृणां वृष्टिस्तु मध्यमा।।

(ना.सं. ३, ६२)

कश्यपः–

भूपाहव महारोग मध्य सस्यार्ध वृष्टयः।
दुःखिनो जन्तवः सर्वे वत्सरे परिधाविनि।।

(क.सं. ११, ६१)

सस्यानामीतिभयं क्षुद्भयमखिलं प्रजानां च।
चौरभयं धनिकानां राजभयं च प्रमाद्यब्दे।।७५।।

प्रमादी संवत्सर में पश्चिम धान्यों को ईतिभय, समस्त प्रजा में दुर्भिक्ष, धनाढ्य लोगों के लिए राजा तथा चोर भय हो।।७५।।

क्रमागत–

नारदः–

नृपसंक्षोभयत्युग्रं प्रजापीडात्वनर्घता।
तथापि दुःखमाप्नोति प्रमादीवत्सरे जनः।।

(ना.सं. ३, ६३)

कश्यपः–

प्रमादिवत्सरे तस्मिन्मध्यसस्यार्घवृष्टयः।
प्रजाः कथचिञ्जीवन्ति समात्सर्याः क्षितीश्वराः।।

(क.सं. ११, ६२)

आनन्ददः स्थावरजङ्गमानामानन्दवर्षे विविधान्नपान्नैः।
तत्रातिरोगैर्विलयं प्रयान्ति कलिङ्गवङ्गखशमाहिषाश्च।।७६।।

आनन्द संवत्सर में नाना प्रकार के खान पान द्वारा चराचर जगत् के प्राणियों को आनन्द प्राप्त हो; किंतु कलिङ्ग, वङ्ग, खश (नेपाल) महिष देशवासी नाना प्रकार के रोगों से व्याकुल हो।।७६।।

क्रमागत–

नारदः–

आनन्दवत्सरे सर्वजन्तवः पशवः सदा।
आनन्दयन्ति चान्योन्यमन्यथा तु क्वचित् क्वचित्।।

(ना.सं. ३, ६४)

कश्यपः–

आनन्दाब्देऽखिला लोकाः सर्वदानन्दमानिनः।
जन्तवः सुखिनः सर्वे बहु सस्यार्घवृष्टिभिः।।

(क.सं. ११, ६३)

रथाश्वहेमाम्बरलोहकारा वृद्धिं प्रयान्त्यारकजीविनश्च।
विप्राः क्षितीशाः सुजानाः सुवृत्ता ये राक्षसाब्दे प्रभवन्ति निस्वाः।।७७।।

राक्षस नाम संवत्सर में रथ, अश्व, स्वर्ण, वस्त्र, लोहजीवि, काष्ठ चिराई करने वाले लोग वृद्धि को प्राप्त होते हैं; किंतु ब्राह्मण, राजा, सज्जन एवं सच्चरित्र जन निर्धन हो जाते हैं।।७७।।

क्रमागत–

नारदः–

प्रजायां मध्यमसुखं तदधीशाहवान्वहम्।
निष्क्रिया राक्षसाब्दे तु राक्षसा इव जन्तवः।।

(ना.सं. ३, ६५)

कश्यपः–

राक्षसाब्देऽखिला लोका राक्षसा इव निष्कृपाः।
राजानो विवशं यान्ति क्रूरमागप्रवर्तिनः।।

(क.सं. ११, ६४)

यस्मिन्नलाब्दे विलयं प्रयान्ति मृगाश्च पक्षिव्रजकोकिलाश्च।
अन्ये च सर्वे नरगोकुलाद्याः प्रयान्ति वृद्धिं खलु मध्यप्रदेशाः।।७८।।

नल नामक संवत्सर में मृग, पक्षी, कोकिलसमूह नाश होते हैं। अन्य सभी नर, गो कुलादि तथा मध्य प्रदेश निवासी वृद्धि को प्राप्त होते हैं।।७८।।

क्रमागत–

नारदः–

अनलाब्देऽनलभयं मध्यवृष्टिरनर्घता।
नृपाः संक्षोभसंभूता भूरिभीकरभूमिपाः।।

(ना.सं. ३, ६६)

कश्यपः–

नलाब्दे मध्य सस्यार्घवृष्टिभिः प्रवराधराः।
भूपसंक्षोभसंजातभूरि क्लेश भुजः प्रजाः।।

(क.सं. ११, ६५)

ईतिभयं चौरभयं पिङ्गलवर्षे भवेन्न शत्रुभयम्।
स्तोकजलं निखिलभुवि द्विजसज्जनवैरमन्योन्यम्।।७९।।

पिंगल नामक संवत्सर में ईति और चोर भीति तो हो, किंतु शत्रु भय न हो, पृथ्वी पर जल न्यूनता, द्विज सज्जन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) सभी जन परस्पर विरोधी हों।।७९।।

क्रमागत–

नारदः–

पिङ्गलाब्दे तु सततं दिकपूरितघनस्वनम्।
राजानः स्वभुजाक्रान्ता भुञ्जते क्ष्मामनुत्तमाम्।।

(ना.सं. ३, ६७)

कश्यपः–

पिङ्गलाब्देत्वरतिभीतिर्मध्यसस्यार्घवृष्टयः ।
राजभिर्विक्रमाक्रान्ताभुज्यते शत्रु मेदिनी।।

(क.सं. ११, ६६)

कालयुगाब्दे संततं विवैरिणाः सर्वधात्रीशाः।
अध्वरनिरता विप्राः क्वचित्क्वचित्चौरवह्निभयम्।।८०।।

कालयुक्त संवत्सर में समस्त राजगण निर्विरोध रहें, ब्राह्मण यज्ञों में तत्पर रहें, कहीं-कहीं चोर तथा अग्निकाण्ड भय हो॥८०॥

क्रमागत–

नारदः–

अतिवृष्टिः कालयुक्ते वत्सरे सुखिनो जनाः।
सततं सर्वसस्यानि सम्पूर्णाश्च तथा द्रुमाः॥

(ना.सं. ३, ६८)

कश्यपः–

वत्सरे कालयुक्ताख्ये सुखिनः सर्वजन्तवः।
सन्तीतयोऽपि सस्यानि प्रचुराणिवराणि च॥

(क.सं. ११, ६७)

वसुधातलमखिलं यद्बहुविधधान्यार्घसम्पूर्णम्।
विविधामयसर्पभयं वर्षे सिद्धार्थिसंज्ञे च॥८१॥

सिद्धार्थी वर्ष में समस्त भूमण्डल नाना प्रकार के धनधान्यादि से सम्पन्न हो; किंतु विविध रोगों तथा सर्पादि की भीति बनी रहे॥८१॥

क्रमागत–

नारदः–

सिद्धार्थीवत्सरे भूपाश्चान्योन्यं स्नेहकांक्षिणः।
सम्पूर्णसस्यां वसुधां दुदुहुर्गां यथा तथा॥

(ना.सं. ३, ६९)

कश्यपः–

सिद्धार्थे वत्सरे भूपाः शान्तवैराः सदा प्रजाः।
सकला वसुधा भाति बहुसस्यार्घवृष्टिभिः॥

(क.सं. ११, ६८)

युद्ध्यन्ति क्षितिपतयः परस्परं हन्तुमुद्यताः सर्वे।
कोंकणदेशक्षितिपतिनिधनं तत्रैव रौद्राब्दे॥८२॥

रौद्र नाम संवत्सर में कोंकण नरेश का निधन तथा समस्त भूपति परस्पर युद्ध करें सभी एक-दूसरे को मारने के लिए उद्यत रहें॥८२॥

क्रमागत–

नारदः–

अन्योन्यं नृपसंक्षोभं चौरव्याघ्रादिभिर्जयम्।
मध्यवृष्टिरनर्घत्वं रौद्राब्दे नैव गुज्जरि॥

(ना.सं. ३, ७०)

कश्यपः–

रौद्राब्दे नृपसंक्षोभं सम्भूत क्लेशभागिनः।
सततं त्वखिलालोका मध्य सस्यार्घवृष्टयः।।

(क.सं. ११, ६९)

दुर्मतिवर्षे वर्षति पर्जन्यः सततमम्बुधाराभिः।
निखिलजनानां हाटकमखिलं गृह्णन्ति कितवश्चौराश्च।।८३।।

दुर्मति संवत्सर में निरंतर जलधाराओं से युक्त मेघ बरसें तथा समस्त जनवर्ग का सोना कपटी चोर अपहरण कर लें।।८३।।

क्रमागत–

नारदः–

दुर्मत्यब्दे दुर्मतयो भवन्त्यखिलभूमिपाः।
तथापि सुखिनो लोकाः संग्रामे निर्जितास्यः।।

(ना.सं. ३, ७१)

कश्यपः–

दुर्मत्यब्देऽखिलालोका भूपाधर्मवहास्तथा।
तथापि सुखिनः सर्वे संग्रामा सन्ति चेदपि।।

(क.सं. ११, ७०)

दुन्दुभिवर्षे सततं विविधोत्सवनादपूरिता धरणी।
विविधफलसस्यपूर्णा विविधामयसंयुता नूनम्।।८४।।

दुन्दुभि वर्ष में निरंतर नाना प्रकार के महोत्सव समारोह आदि में वेद वाद्यादि से भूमि तृप्त हो। वसुन्धरा विविध प्रकार के फल तथा फसलों से सम्पन्न होती हुई भी नाना प्रकार के रोगों की उत्पादक भी हो।।८४।।

क्रमागत–

नारदः–

सर्वसस्यैश्च सम्पूर्णा धात्री दुंदुभिवत्सरे।
राजभिः पाल्यते पूर्वदेशेश्वर विनाशनम्।।

(ना.सं. ३, ७२)

कश्यपः–

सर्वसस्ययुतां धात्री पालन्त्यवनीश्वराः।
पूर्वदेशे विनाशः स्यात् तस्मिन्दुन्दुभि वत्सरे।।

(क.सं. ११, ७१)

युद्धे भटप्रतिभटास्त्रविखण्डितानां।
रक्तं पिबन्त्यनुदिनं वसुधाधिपानाम्।।

यस्मिन् सदा रुधिरमुद्गिरति प्रवर्षे।
तस्मिन् सदा विरलसस्ययुता धरित्री॥८५॥

रुधिरोद्गारी संवत्सर में युद्ध में परस्पर प्रतिद्वंदी योद्धागण राजाओं के शस्त्रों, अस्त्रों द्वारा खण्डित अङ्गों के रक्त को अनुदिन पान करते हैं तथा भूमि विरल धान्य की न्यूनता से युक्त होती है॥८५॥

क्रमागत–

नारदः–

आहवे निहताः सर्वे भूपा रोगैस्तथा जनाः।
तथापि तत्र जीवन्ति रुधिरोद्गारि वत्सरे॥

(ना.सं. ३, ७३)

कश्यपः–

कथिरोद्गारि व्याधिप्रभूताः स्युस्तथाऽऽमयाः।
नृपसंग्राम सम्भूत भूभुजस्त्वखिला जनाः॥

(क.सं. ११, ७२)

रक्ताक्षिवर्षे सततं महीशाः परस्परं क्रोधपरा न योधाः।
विश्वंभरा चोत्तमसस्यपूर्णा क्वचित्तदा नैवमहीनसस्या॥८६॥

रक्ताक्षी संवत्सर में राजा लोगों का परस्पर विरोध चलता है, किंतु योद्धा लोग युद्ध से विरक्त रहते हैं। पृथ्वी उत्तम सस्य सम्पन्न हो, कहीं-कहीं सस्याभाव भी हो॥८६॥

क्रमागत–

नारदः–

रक्ताक्षिवत्सरे सस्यवृद्धिर्वृष्टिरनुत्तमा।
प्रेक्षन्ते सर्वदान्योन्यं राजानो रक्तलोचनाः॥

(ना.सं. ३, ७४)

कश्यपः–

रक्ताक्षिवत्सरे भूपाश्चान्योन्यं हन्तुमुद्यताः।
ईतिरोगाकुला धात्री स्वल्पसस्यार्घवृष्टयः॥

(क.सं. ११, ७३)

गोधूमशाल्यादिवरेक्षुवाटनानाविधोद्यानतडागवपैः।
तैः क्रोधनाब्दे सकला धरित्री तथा न सन्तोषकरी जनानाम्॥८७॥

क्रोधन नामक संवत्सर में पृथ्वी गेहूँ, धान्य, ईख, विभिन्न प्रकार के उद्यान, वाटिका, तालाबादि से भरपूर होती हुई भी जनता के लिए सन्तोषप्रद न हो॥८७॥

क्रमागत–

नारदः–

क्रोधनाब्दे मध्यवृष्टिः पूर्वसस्यं न तु क्वचित्।
सम्पूर्णमितर सस्यं सर्वे क्रोधपरा जनाः।।

(ना.सं. ३, ७५)

कश्यपः–

क्रोधनाब्दे मध्यवृष्टिः पूर्वसस्यविनाशनम्।
सम्पूर्णमपरं सस्यं भूपाः क्रोधाभिभूतयः।।

(क.सं. ११, ७४)

नरानजानश्वखरोष्ट्रपक्षिमृगांश्च नागाखिलभूतराशीन्।
त्रिभागशेषं कुरुते क्षयाब्दे मही त्वनावृष्टिनृपाहवैश्च।।८८।।

क्षयकृत् संवत्सर में अनावृष्टि, परस्पर राजविरोध द्वारा युद्ध इत्यादि ये समस्त भूमण्डलीय मनुष्य, भेड़, बकरी, घोड़ा, गधा, ऊँट, पक्षी, मृग, गजादि प्राणियों की तृतीयांश मात्र रक्षा होती है अर्थात् दो भाग नाश तथा एक भाग की रक्षा होती है।।८८।।

क्रमागत–

नारदः–

कार्पासगुडतैलेक्षुमधुसस्यविनाशनम्।
क्षीयमाणाश्चापि नरा जीवन्ति क्षयवत्सरे।।

(ना.सं. ३, ७६)

कश्यपः–

क्षयाब्दे सर्वसस्यार्घवृष्ट्याः स्युः क्षयं गताः।
तथापि लोका जीवन्ति कथंचित् केनचित्क्वचित्।।

(क.सं. ११, ७५)

द्वादश राशियों में बृहस्पति का फल

मेषगते सुरसचिवे मेषविनाशो भवेदचिरात्।
अतुलितसस्यसमृद्धिः क्षितिपतिकलहः प्रजायते क्षोभः।।८९।।

मेष राशि में गुरु शीघ्र भेड़ों का नाश करता है। पर्याप्त सस्य समृद्धि हो; परन्तु जगणों की परस्पर कलह से क्षोभ हो।।८९।।

क्रमागत–

नारदः–

मेष राशिगते जीवेत्वीतिर्मेषः विनाशनम्।
सस्यवृद्धिः प्रजारोग्यं वृष्टिः कर्षक सम्मता।।

(ना.सं. २, ८५)

कश्यपः–

मेष स्थितो देव पूज्यस्तदा मेष विनाशनम्।
ईतिभीतिश्चौरभयं तथापि सुखिनो जनाः।।

(क.सं. ६, २१)

शिशुपशुवनितानिचयो विलयं यान्ति द्वितीयगे जीवे।
क्षितिपति कलहैः सततं मध्यमसस्यार्घदा धरणी।।९०।।

वृषस्थ गुरु, बालक, पशु तथा स्त्रियों के लिए हानिप्रद, निरन्तर राजाओं का परस्पर युद्ध हो और भूमि पर अन्नादि की उपज मध्यम हो।।९०।।

क्रमागत–

नारदः–

सस्यवृद्धिः प्रजारोग्यं वृष्टिः कषरकसंमता।
वृषराशि गते जीवे शिशुस्त्रीपशुनाशनम्।।

(ना.सं., २, २१)

कश्यपः–

वृषराशिगते जीवे पशुस्त्री शिशुनाशनम्।
सस्यहानिर्मध्यावृष्टिर्नृपाणां दारुणं रणम्।।

(क.सं. २, २२)

कलहरतक्षितिपतयो वारिधराश्चापि कुत्रचिज्जलदाः।
सस्यानां भवति भयं त्वङ्गिरसे मिथुनराशिस्थे।।९१।।

मिथुन राशि में बृहस्पति हो तो राजा लोग कलह में रत, कहीं-कहीं वर्षा हो और फसलों की हानि हो।।९१।।

क्रमागत–

नारदः–

मध्यावृष्टिः सस्यहानिर्नृपाभं समरं महत्।
जनानां भीतिरीतिश्च नृपाणां दारुणं रणम्।।
विप्रपीडां मध्यवृष्टिः सस्यवृद्धिस्तृतीयभे।।

(ना.सं. २, २२)

कश्यपः–

ईति भीतिर्विप्रपीडासततं नृपविग्रहः।
तथापि मोदते लोकः सुरेज्ये मिथुनस्थिते।।

(क.सं. ६, २३)

अतुलितसस्यसमृद्धा भवति धरा वारिदाः पयोवाहाः।
निवसति कर्कटराशौ प्रभूतपयसस्तदा गावः।।९२।।

कर्कस्थ बृहस्पति में भूमि पर पर्याप्त फसलों की वृद्धि, उत्तम वर्षा, गौएं बहुत दूध देने वाली होती हैं॥९२॥

क्रमागत–

नारदः–

प्रभूतपयतो गावः सुजनाः सुखिनः स्त्रियः।
मदोद्धताः कर्किणीज्ये सस्यवृद्धियुताधरा॥

(ना.सं. २, २३)

कश्यपः–

कर्किणीज्येऽकिला गावः प्रभूतपयसो जनाः।
मोदन्ते स्वजनैः सार्धं राजानः स्युर्विवैरिणः॥

(क.सं. ६, २४)

विलयं यान्तयवनीशाः संयति सुजनाऽवनीसुरा निःस्वाः।
अनुपमवृष्टिभिरखिलं धरातलं वारिपूरितं हरिगे॥९३॥

सिंहस्थ बृहस्पति में राजाओं के युद्ध में सज्जन, ब्राह्मण और निर्धन लोगों की हानि हो। समस्त भूमि पर सुवृष्टि से जलपूर्ण हो जाए॥९३॥

क्रमागत–

नारदः–

सिंहराशिगते जीवे निःस्वा भूःसुरसत्तमाः।
अतिवृष्टिर्व्यालभयं नृपा युद्धे लयं ययुः॥

(ना.सं. २, २४)

कश्यपः–

जीवे मृगयस्थिते स्युर्युद्धे भूपालयं ययुः।
सुवृष्टिः कलिभीतिश्च निःस्वाःस्युर्विप्रसज्जनाः॥

(क.सं. ६, २४)

अतुलितविभूतिसहिताः क्षितिपतयः सप्रजा नियतम्।
भूसुरनिकराः सततं वाध्वरनिरता भवन्ति युवतिस्थे॥९४॥

कन्या राशि में बृहस्पति हो तो अतुलित विभूतियों से युक्त राजा प्रजा सहित राज करें और ब्राह्मणों के समूह निरन्तर यज्ञ यागादि में संलग्न रहें॥९४॥

क्रमागत–

नारदः–

यदा पाथोनभस्थेज्ये पुष्टा वृष्टिर्धरासुराः।
अध्वराभिरताःसर्वे सस्वाः स्वस्थाः क्षितीश्वराः॥

(क.सं. ९, २९)

कश्यपः–

जीवे कन्या गते वृष्टिःहृष्टाः स्वस्थाः क्षितीश्वरा।
महोत्सुकाः क्षितिसुराः स्वस्थाः स्युर्निखिला जनाः।।

(ना.सं. २, २५)

तुलयोद्धतवस्तुचयं दुर्लभमखिलं तुलागतेंऽगिरसि।
सुलभं त्वितरद्रव्यं तूत्तमसस्यार्घवृद्धिः स्यात्।।९५।।

तुला राशि में बृहस्पति हो तो तोली जाने वाली चीजें, दुर्लभ इतर इत्यादि सुलभ हो और उत्तम फसलों तथा मूल्यों की वृद्धि होती है।।९५।।

क्रमागत–

नारदः–

जीवे तुलागते सर्वधातुमूलातुलं जगत्।
तथापि धात्री सम्पूर्णा धनधान्य सुवृष्टिभिः।।

(ना.सं. २, २६)

कश्यपः–

तुलामारोहते जीवे तथैवाखिल वस्तुनि।
तथापि धात्री सम्पूर्णा धनधान्यार्घवृष्टिभिः।।

(क.सं. ६, २७)

बहुवृष्टिभिरखिलधरा बहुविधधान्यार्घसम्पूर्णा।
वृश्चिकराशौ जीव सर्वे सुखिनोऽन्त्य जाति विलयः स्यात्।।९६।।

वृश्चिक राशि में बृहस्पति समस्त भूमि पर पर्याप्त वर्षा से अनेक प्रकार से धान्यों में समर्घता देता है। सभी जनवर्ग सुखी; परंतु नीच जाति के लोग विलय को प्राप्त होते हैं।।९६।।

क्रमागत–

नारदः–

मदोद्धतानां भूपानां युद्धे जनपदक्षयः।
अतुष्टा वृष्टिरत्युग्रं डामरं कीटगे गुरौ।।

(ना.सं. २, २७)

कश्यपः–

कीटकेज्ये कीटभयं युद्धे जनपदक्षयः।
क्षौभडामरमातङ्कमल्पसस्यार्घवृष्टिभिः ।।

(क.सं. ६, २८)

संकरशबरनिशाचरनिधनं सुखिनः परे गुरौ धनुषि।
अचलाचलसदृशाम्बुदनिकरैः सम्पूर्णवारिमयी।।९७।।

धनु राशि में बृहस्पति हो तो वर्णसंकर, शवर तथा निशाचरों का मरण; परन्तु अन्य सभी सुखी हों। चराचर मेघ मण्डली अधिक वर्षा से भूमण्डल को तृप्त करती है।।९७।।

क्रमागत–

नारदः–

जीवे चापगते भीतिरीतिर्भूपभयं महत्।
अतुष्टा वृष्टिरत्युग्रा पीडा निःस्वाः क्षितीश्वराः।।

(ना.सं. २, २८)

कश्यपः–

पीडात्युग्रात्वीतिभीतिर्युद्धे भूपनिःस्वाः क्षितीश्वराः।
वसुधा मन्दफलदा तौक्षिकस्थेऽमरार्चिते।।

(क.सं. ६, २९)

गुरौ मृगस्थेऽम्बुधराः प्रकामं वर्षन्ति वाप्यौघतडागपूर्णा।
शरीरिणां स्थावरजङ्गमानामानन्ददाभीष्टफलैर्धरित्री।।९८।।

मकरस्थ बृहस्पति सुवृष्टि से भूमिवासियों की इच्छाएँ पूरी करता है। बावली, कूप, तड़ागादि जल से भर जाते हैं। भूमि शरीर धारियों एवं जगत् के चराचर प्राणियों के लिए आनन्ददायक अभीष्ट फल प्रदायिनी होती है।।९८।।

क्रमागत–

नारदः–

अशत्रवो जना धात्री पूर्ण सस्यार्घवृष्टिभिः।
वीतरोगभयाः सर्वे मकरस्थे सुरार्चिते।।

(ना.सं. २, २९)

कश्यपः–

विवैरिणो धराधीशा धात्री पूर्णफलप्रदा।
वीतरोगभयाः सर्वे मृगगे देव पूजिते।।

(क.सं. ६, ३०)

विवैरिणाः सर्वधराधिनाथाः सीदन्ति पापाश्च कलिङ्गगौडाः।
कुम्भस्थिते देवगुरौ धरित्री पुष्पैः फलैरुत्तमसस्यरम्या।।९९।।

कुम्भस्थ गुरु सभी राजा लोगों को वैर रहित करता है। कलिङ्ग और गौड़वासी पापों से वंचित होते हैं। भूमि पुष्प-फलादि एवं फसलों से सुंदर सुशोभित होती है।।९९।।

क्रमागत–

नारदः–

सुपस्पर्द्धिजना धात्रीफलपुषपाघवृष्टिभिः।
सम्पूर्णा कुम्भगे जीवे वीतरोगयुता धरा।।

(ना.सं. २, ३०)

कश्यपः–

हृदयानन्ददा धात्री फलशालीक्षु वृष्टिभिः।
अजातशत्रवः सर्वे कुम्भवे देव पूजिते।।

(क.सं. ६, ३१)

नानाविधोद्यान तडाग सस्यमहोत्सवानेकमखक्रियाद्यैः।
मीनस्थिते देवगुरौ धरित्री रम्या क्षितीशाः सुखिनः प्रजाश्च।।१००।।

मीन राशि में गुरु हो तो अनेक प्रकार के बाग, तड़ाग, सस्य महोत्सव और यज्ञ यागादि होते हैं। पृथ्वी सुन्दर प्रतीत हो, राजा और प्रजा दोनों सुखी हो।।१००।।

क्रमागत–

नारदः–

धान्यार्घवृष्टिसम्पूर्णा क्वचिद्रोगः क्वचिदभयम्।
न्यायमार्गरता भूपाः सर्वे मीनस्थिते गुरौ।।

(ना.सं. २, ३१)

कश्यपः–

बहुरोगान्विता धात्री बहुधान्यार्घसंयुता।
विवैरिणो धराधीशाः सुरेज्ये मीनराशिगे।।

(क.सं. ६, ३२)

गुरुमण्डल लक्षणम्

कुन्देन्दुशङ्खस्फटिक प्रवालनीहारमुक्ताफफलसन्निभाभः।
एवं विधो देवगुरुर्जनानां शुभप्रदः क्लेशनिवारकश्च।।१०१।।

बृहस्पति का बिम्ब यदि कुन्द पुष्प, चन्द्र, शंख स्फटिकमणि, प्रवाल (मूंगा), बर्फ की डली या मुक्ता फल सदृश चमकता हुआ दृग्गोचर हो तो देवता गुरुजनों के लिए शुभप्रद एवं क्लेशनाशक होते हैं।।१०१।।

क्रमागत–

नारदः–

अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्तिः।
कुमुद कुन्दकुसुमस्फटिकाभः।।

कश्यपः–

गुहहतो न यदि सत्पथवर्ती।
हितकरोऽमर गुरुर्मनुजानाम्।।

(वृ.सं.अ. ८, ४३)

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां गुरुचाराध्यायः षष्ठः।।६।।

वृद्ध वसिष्ठ संहिता के गुरूचाराध्याय की "नारायणी" हिन्दी टीका समाप्त।।६।।

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, ज२ वा. मासेषुऊर्जादिषु (मासेषुचोर्ज्जादिषु), ज१-क्रमशोखिमास्यात्, ज२, वैक्रमशोस्वमावात् (क्रमशोऽश्विभात्स्यात्)

१ (व) ज१, त्रिमानभस्येषतयस्य, ज२, त्रिभानभथेषतस्य, वा. त्रिभानुभस्येषतपस्य (त्रिभान्नभस्येषतपस्यमासाः), (त्रिभान्नभस्येषतपस्यमासाः), वा. शुक्तातयुक्तर्क्षवशादतन्नषु, ज१, ज२, पाठोनारित (शुक्लांतयुक्तवशादजस्त्रम्)

२ (अ) भवेनुवर्ष (भवेत्तुवर्षम्)

२ (ब) ज२, तत्वार्त्तिक (तत्कार्तिक), ज१, फलानि, ज२, च फलानि (चफलं)

३ (अ) वा. द्रव्याणा (द्रव्याणां), ज१, वृद्धिरतुलः, ज२ वृद्धिरतुलास्यात् (वृद्धिरतुलास्यात्)

३ (ब) ज१, शकटकृषिवलधनिजा, ज२, साकटककृषिवलधानियां (शकटकृषीनलवणिजां), ज२ कार्त्तिके, वा. कातिकेवर्ष (कार्तिकेवर्षे)

४ (अ) ज२, भयमगीतिभ्यो (भयमीतिभ्यो)

४ (ब) ज२, निवृत्तवै, वा. निवृत्तवै (निवृत्तवैरा), ज१ राजानोव्याधि, ज२, राजानोव्याघ्र (राजानोव्याधि), ज२, पीडातोस्तंपरे, ज२, पीडितास्तपरो, वा. पीडितास्त्वपरैः (पीडितास्त्वपरे)

५ (अ) ज१, ज२, वृद्धिर्महदर्थं (वृद्धिर्महदर्घ), ज१, ज२, कर्मणोष्टिकं (कर्मपोष्टिकं), ज१ प्रयुतम्, ज२ प्रयुतं (प्रचुरम्)

५ (ब) ज१. व हार्दिवा, ज२. हार्दिता, वा. होर्दितो (च हार्दितो)

६ (अ) ज१. वृष्टिः (वृद्धिः), ज१. त्तदर्यसस्यानि, ज२. तदर्घसस्यानि (तद्वदर्घसस्यानि)

६ (ब) ज१. हंतुमुपता, वा. होतुमुधता (हंतुमुद्यता)

७ (अ) ज१. स्त्रीधीहानिः (स्त्रीजनहानिः), ज१. क्रोधपराभूमिपालक, वा. क्रोधवशाद (क्रोधवशाभूमिपालकाः)

७ (ब) ज२. सुभिखांमतुले (सुभिक्षमतुलं), ज१. प्रीद्विजसाधु, ज२. प्रीतिद्विजसायु (प्रीतिर्द्विजसाधु), वा. तंतूना (जन्तूनाम्)

८ (अ) नाशतांययुस्त्वन्म्ये, ज२. नाशताययुस्तभ्ये, वा. नाशाययेयुस्त्वन्ये (शान्ति संयुतः सर्वे)

८ (ब) ज१. अश्वनिताः, ज२. अद्यनिताः, वा. अध्वरताः (ऽध्वरनिरताः)

९ (अ) वा. निखिललतातिषु (निखिलजनाः), ज२. प्रवृत्तिका (प्रवर्त्तका) वा. स्वस्वे (स्वेस्वे)

९ (ब) ज२. ज्ञातयु (ज्ञातिषु)

१० (अ) ज१. आषाढेप्रचुरः पीड्यते, ज२. आषाढेप्रचुरः पडांत, वा. आषाढेब्दप्रचुरंपीडते (आषाढ़ेऽब्दे प्रचुरं पीड्यन्ते), ज१. सर्वेसस्यानि, ज२. सर्वेसस्थनि (सर्वसस्यानि)

१० (ब) ज१-ज२. क्रिमिकीटादिरतुलं, वा. क्रिमकीटादि (कृमिकीटादिभिरतुलं)

११ (अ) ज१. सस्यानिखिलानि, ज२. सस्पनिखिलग्लानि (सस्यान्यखिलानि), वा. पाकमुपयाति (पाकमुपयान्ति)

११ (ब) ज२. राजक्षोभेतुलं (राजक्षोभैरतुलं), ज२-वा. निखिलजना (निखिलजनाः), वा. पीत्ताः (पीडिताः), वा. सतभं (सततम्)

१२ (अ) ज१. भाद्रपदेद्धेखंडाद्भक्तावर्षे, ज२. भाद्रपदेवर्षेचयस्ततदक्ताये च (भाद्रपदेऽब्दे षंडास्तद्भक्ताये च), ज१. तेतिपिपीड्यते, ज२. तेपिपीडयन्ते, वा. ते पीयते (ते निपीड्यन्ते)

१२ (ब) ज१. पूर्वयत्सस्यभयं, ज२. पूर्वेयत्सस्यभयं (पूर्वं यत्सस्यञ्च), ज१, ज२. निष्पत्तिमुयाति, वा. निष्पत्तिमुपयात (निष्पत्तिमुपयन्ति)

१३ (अ) ज१. आश्वियुतेब्द, ज२. आस्वियुतेब्दे, वा. आश्वयुजेब्दे (अश्वियुजेऽब्दे), ज१. जनानां, ज२. जवानां (च नाना)

१३ (ब) ज१. कुत्रचिरिति, ज२. कुत्रचिदिति (कुत्रचिदीतिः)

१४ (अ) ज२. भानोयदा (भानां यदा), ज१. जनाना भयप्रदृश्यः, ज२. जनान भयंप्रदृश्यः, वा. भयःप्रदःस्यात् (जनानामभयप्रदः)

१४ (ब) वा. व्याधिमदो (व्याधिप्रदो), ज१. मार्गमासः, वा. मार्गगामि (मार्गगामी), ज१, वा. भूमिश्वर (भूमीश्वर)

१५ (अ) ज१. पीतस्तु, ज२. पीतत्व (पीतश्च), वा. हरितोतिभीतं (हरितोऽरिभीतिम्)

१५ (ब) वा. युद्ध (युद्धं), वा. रक्तं (रक्तः), ज२. द्विजकाययाद्वा, वा. द्विजकापीनं (द्विजकामपीडाम्)

१६ (अ) ज२. पिशंगस्तोतिर्भयं, वा. पिशंगस्त्वातेर्भं (पिशंगस्त्वीतेर्भयं), ज१, ज२. कास्यनिभोभ्रभीतिः (कांस्यनिभोन्रभीतिम्)

१६ (ब) ज१, ज२. नरस्यांतकरो, वा. नृपस्यान्तकरा (नृपस्यांतकरो), ज२, ज२, वा. द्युदृष्टश्चित्रो (ह्यदृष्टश्चित्रो), वा. वित्ति (विचित्रं)

१७ (अ) ज२. दैवभः (दैवभम्)

१७ (ब) ज१. सार्प्य, ज२. साध्यं मे, मु.पु. सार्थभं (सार्पभं), ज२. हृदयसमेतरात्मं (हृदयमंतरात्मकं), ज२. पैतृभे (पैतृभं), ज१. सुमनाश्च, ज२. मुसनाश्च (सुमनश्च)

१८ (ब) ज१, ज२. नाभिर्वृत्तेनर्घभयं (नाभिस्थितेऽनर्घभयं)

१९ (अ) ज१, ज२. पुष्ये, वा. पुष्यं (मनः), ज१, ज२. फलमुक्तमेतत, वा. फलमुग्रमेततः (फलमुग्रमेतत्)

१९ (ब) वा. सौम्यग्रहेद्यषु (सौम्यग्रहेष्वेषु), वा. विमिश्रैः (च मिश्रैः)

२० (अ) ज१, ज२. सुरेज्यपाता (सुरेज्ययाता) वा. रामएनाः (रामहीनाः)

२७ (अ) वा. भवति (भवन्ति)

२७ (ब) वा. पंचनाथाः (पंचाऽब्दनाथाः), ज२. वापर्क (वह्न्यर्क), ज१, ज२. चंद्रार्कजशंकरास्युः (चन्द्राब्जदजशंकराः स्युः)

२८ (अ) ज२-विष्णु:, वा. कृष्णं (कृष्ण:), ज१, ज२-सूरिस्त्विंद्रोजलनरवस्त्वष्टा, वा. सुरिस्विंद्रोज्वलनस्तवष्टा (सूरिस्त्विंद्रोज्वलनस्त्वष्ट्रा) ज१, चाहिघ्र: ज२ चाहिर्वधृन:-(चाहिर्बुध्न्य:)

२९ (अ) ज१-अब्द:, ज२-अब्द (अब्दे)

२९ (ब) ज१-प्रमोदति (प्रमोदन्ति)

३० (अ) वा.-वृद्धिर्जनानानुरागो (वृद्धिर्जनानुरागं)

३० (ब) ज१.-दु:खंप्रातिजनस्तथापि, ज२. दु:खं..........प्रीतिर्जनस्तथापि वा. नदु:खमन्यातिजनाश्चसर्वे (न दु:खमाप्नोति जनस्तथापि)

३१ (अ) ज१-अन्योन्यरत्यानिसपादजसं, ज२-अन्योन्यरयानिश्यादजस्त्रं, वा. अन्योन्यरत्यातिशपादजस्त्रं, (अन्योऽन्यरत्यातिशयादजस्त्रं) ज१-रामाप्रचंडाभयन्ति, ज२-रामाप्रचंडंयरमुयंति, वा. रामा:, प्रपंचंरमयति (रामा: प्रपंचे रमयन्ति)

३१ (ब) ज२-निवृवैरा (निवृत्तवैरा)

३२ (अ) वा. पापमिहता: (पापभिरता:), मु.पु. सवैरा: (सचौरा:)

३२ (ब) ज१, ज२-वृष्टि (पृथ्वी)

३३ (अ) ज१, ज२ प्रकृतपयस: (प्रभूतपयस:), ज१, ज२-सकलधरित्री (सकला धरित्री), ज१, ज२-मेर्घविशिष्ट: वा. मेघेविसृष्ट: (मेघैर्विसृष्ट), ज१, ज२-सक्लै: (सलिलै:), ज१, ज२-परिपूर्णविप्रा: (परिपूर्णवप्रा)

३३ (ब) ज१, असिभसंष्टुपुरोधर्युचित्रितं गतित्वब्दे, ज२-अमिसंसयत्रपुरेधर्धिचित्रितांगीबब्दे (आरामसंवृत्तपुरोधर्विचित्रिताङ्गी), ज१, ज२- प्रजापतिकरे (प्रजापतिवरे)

३४ (अ) ज१, ज२, यात्री (धात्री), ज१, ज२-पूर्णाभिरस्यपुरसंघ (पूर्णातिरम्यपुरसंघ)

३४ (ब) ज१, ज२-यथांगिरसि: (यदाङ्गिरसि), ज१, ज२-सूरिजनै: (भूरिजनै:), ज१-प्रशशश्वशतवसुवृष्टि, ज२-प्रशत्वमुवृष्टिश्चा (शश्वत्सुवृष्टिनिकरैश्च)

३५ (अ) ज१, दाश्यांवारचित्रवर्णा, ज२ दाश्योवरचित्रवर्णा, (सस्याम्बरचित्रवर्णा), ज१, ज२-तडागकर्मा, वा. तडागकीर्णो (तडागपूर्णा)

३५ (ब) ज१, ज२-फलपुष्पवक्रा (फलपुष्पवक्त्रा), ज२-भवापि (भाति)

३५ (स) ज१, ज२, धात्रे (धात्री)

३५ (द) ज१, वदनादिमुंडेत, ज२-दनादमुंद्रित (पदनादमण्डित) ज१, वनैर्भाहूयेब्दे, वा.- धनैभावाहुयाहूसदा (वनैर्भाह्वयेऽब्दे)

३७ (अ) प्रकीर्णाकामा (प्रकीर्णाकामा:), ज१, सालीक्षुफलनिभुक्ता, ज२-शालीक्षुफलानिरुता, वा. शालीक्षुफलानियुक्ता (शालीक्षुफलैर्नियुक्ता) ज२-शालीक्षुफलानिरुता, वा. शालीक्षुफलानियुक्ता (शालीक्षुफलैर्नियुक्ता)

३७ (ब) ज१, विंवानदति, ज२-विंवादति (नन्दन्ति), वा. न दु:खमेता: (न: दु:खमेति)

३८ (अ) ज१ सकराधारेत्री, ज२- सकरा (सकला धरित्री), ज१, ज२- प्रमदायिनी (प्रदायिनी), ज१, ज२-सर्वेजनाश्यिार्थान् (सर्वेजनेच्छितार्थान्)

३८ (ब) ज१, मषक्रियाद्यसवतत्परास्यु:, ज२-मेघक्रियाधसचम्परास्यु:, वा., मेखिक्रियायुत्र च तत्परा स्यु: (मखक्रियाद्युत्सव तत्परा: स्यु:)

३९ (अ) ज१ पाषपर्जिश्चरवर्षे, ज२- पौषयतिविर्स्वरवर्षे (पोषयतीश्वरवर्षे), ज१, धात्रीवर्षवतिविलजनान्, ज२-धात्रीवर्षवतिविलजननानत् (धात्रीधात्रीव निखिलजनान्), ज१, परस्यरक्षोभावात्, ज२-रस्यरक्षोभावात्, वा. परस्परक्षोभात् (परस्परं क्षोभात्)

४० (अ) ज१ धरातल्यं, ज२-धरातलं (धरातलं)

४० (ब) ज१, ज२-पैत्य (पित्त) ज१, ज२-विविधा (बहुधा), ज१, ज२-विस्तत्र (विधास्तत्र)

४१ (अ) ज१ ज२-रथगजतुरगादि (रथतुरगगजादि), ज१, वहृनभि: (बहुभि:)

४१ (ब) ज१, कुत्रचिदर्य, ज२-कुत्रचिदर्घ (कुत्रचितर्घ), ज२-कुत्रचिदनरसं, वा. कुत्रचिद्धनससं (कुत्रचिद्घनरसं), ज२-प्रमाप्यब्दे (प्रमाश्यब्दे)

४२ (अ) ज१ ज२-नाथैरात्क्तांत, वा. नाथै:राक्रांत (नाथैराक्रान्त), ज१, ज२, वर्द्धते, वा. वर्धन्ते (वर्धन्ते) वा. वसुमति (वसुमति), ज१, ज२-विक्रम: खै: खै:, वा.-विक्रम: खै: खै:, (विक्रमै: स्वै: स्वै:)

४३ (अ) ज१. बहुधा, ज२-वद्धंसस्वप, वा. बहुधासस्य (बहुविधसस्य)

४४ (अ) ज१ ज२-वा. विचित्रा (विचित्रिता) वा., भू:स्याच्चित्रबानो भूर्विचित्रभानौ) वा. तुवि (भुवि)

४४ (ब) ज१, युद्धा, ज२-युद्धे, वा. युद्ध (युद्धे), ज२-वयचित्रा (कबन्ध चित्रा)

४५ (अ) ज१ ज२-प्रतयत्रताम्रं, वा. प्रतपसतस्रं (प्रजापत्यजस्रं), वा. शस्ययुक्त (सस्ययुक्ता)

४५ (ब) वा-सस्त्राग्निकोपै: (शस्त्राग्निकोपै:), वा.-मवलंति (प्रचलन्ति)

४६ (अ) ज१-तरंतिदु:खन्यति (तरन्ति दु:खान्यपि), ज१-तरणाब्दे (तरणाब्दे), ज२-यमोदंति (प्रमोदंति)

४६ (ब) ज१-सांदीत्यपरं च भेद, ज२-सोदंत्यपरंच भेदं, वा.-सदिंतिपरं च सस्य (सदित्यपरं च सस्यम्)

४७ (अ) ज१, ज२-यपार्थिचंद्रो (ये पार्थिवेन्द्रा), ज१-विलय, वा.-विलायं (विलयं) वा.-युस्ते (ययुस्ते)

४७ (ब) वा.-भोयं (तोयं), ज१ ज२-यदा (पयोदा), ज१-भीतिर्जद्यल्पेभ्य:, ज२-भीतितिर्घलेभ्य: वा.-भीतिर्जलेभ्य: (भीतिज्वरेभ्य:)

४८ (अ) ज२- व्ययाहे (व्ययाब्दे), ज१, ज२-वारिमयं (वारिमयी)

४८ (ब) ज२-पार्थिवेन्दो: (पार्थिवेन्द्रा:), वा.-थाथपरा: (पापपरा:), ज१ सचैररा: (सचौरा:)

४९ (अ) ज१-सर्वजिब्देदं (सर्वजिदब्दे), ज२-निखिलं (निखिलं), ज१-जगत्सुदा-नंदसुंदरायेतं, ज२-जगत्समदानंसुंदरायेत (जगत्सदानंदसुन्दरोपेतम्)

४९ (ब) ज१, ज२-विकरै: (विकारै:), ज१, ज२, वा.-दु:खभागेवा (दु:खतामेव)

५० (अ) ज१-वाराधिराजां, ज२-वाराधिजारारा (वारिधरा), ज१-वारिवयं (वारिचयं)

५० (ब) ज१-संपनि, ज२-संयानि, वा.-संयाति (संयति), ज१, ज२-विसखलिता, वा.-निस्खलिभा (निस्खलिता), ज१, ज२, सर्वधायेब्दे, वा.-सर्वधार्यब्दे (सर्वधार्येऽब्दे)

५१ (अ) ज१-संज्ञोभयं, ज२-भूपसंज्ञंभयं (भूपसंक्षोभ), ज१, ज२-भुजाप्रजा (भुजा: प्रजा:)

५१ (ब) ज१-सर्वस्यापहताश्चोरविवरोधाब्दे, ज२-सर्वस्यापदृताश्चौरविरोधाब्दे, (सर्वस्वापहृतांश्चौरैर्विरोध्याब्दे)

५२ (अ) ज१-प्रकृतिप्रयाति, ज२-प्रकृतिप्रयार्तीव (प्रकृति: प्रयाति), ज१, ज२-प्रकृतिमायापि (प्रकृतिमायाति)

५२ (ब) ज१-वर्षेब्देकृते, ज२-वर्षे प्रवृत्तौ (वर्षेविकृते), ज१, ज२-सुजनानि (सुजना), ज१-निसाचरार्यप्रदाधरणी, ज२-निश्वाश्चार्धप्रदाधरणी, वा.-निशाचैरार्द्धप्रदाधरणी (निशाचरार्धप्रदा धरणी)

५३ (अ) ज१-नृपखुरब्दे, (नृपा: खराब्दे), ज१, सापत्यराष्ट्राप्रावलं, ज२-सापत्यराष्ट्रान्प्राचलं (सापत्न्यराष्ट्रान्प्रचलन्ति), ज१, ज२-निहंतु, वा.-हन्तु (हन्तुम्)

५३ (ब) ज१-रथेभयपत्यश्ववलैर्भूतोस्त, ज२-रथेनभयतश्चवलैर्भृतो (रथेभपत्यश्वबलैवर्वृतास्ते)

५४ (अ) वा.-सुरनन्दनाब्दे, (सुन्दरनन्दनाब्दे)

५४ (ब) ज१-धरात्रास्तादिफलंविनष्ट, ज२-धरायररास्तादिफलंविनष्टं (धरात्यसस्यादिफलं विनष्टम्)

५५ (अ) ज१, ज२-स्वतुलवलसमृद्ध (अतुलबलसमृद्धं), ज१-चक्रं, ज२-चक्रो (चक्रं)

५५ (ब) ज१, परिविषह्लादीन, ज२-परिविषयल्पादीन् (पुरविवषयहयादीन्), ज१-भतुररूधम्यानित्यं, ज२-भर्तुरूधम्यनित्यं (हन्तुमुद्यच्चनित्यम्)

५५ (स) ज१, प्रचलति (प्रचलति)

५५ (द) ज१, ज२-क्षतितिपति (क्षतिरपि)

५६ (अ) ज१, ज२-जलाविका (बलाधिका), ज१, ज२-गोवृपाश्व (गोऽजवृषाश्वनागा:)

५६ (ब) ज१, वराधरराधीशमहाधररैश्च, ज२-चराधराधीशमहाधरैश्च, वा.-धराधराधीश (तथा धराधीशमहारणैश्च), ज१, गुर्जराद्या:, ज२-गुर्ज्जराद्या: (गुर्जराश्च:)

५७ (अ) वा.-जंभति (जृंभन्ति), ज१, विविधात्रयतै:, ज२-विधान्नायानै: (विविधान्नपानै:), ज१, ज२-कामोपचार, वा.-कामोपवारै: (कामोपचारै:), ज१, पसवो, ज२-यशवो (पशवो)

५७ (ब) मु.पु.-सवरा:, ज१, ज२-श्वरा (शवरा:), ज२-शचौरा:, वा.-सचौरा (सचौरा:), ज१, सलंग्या, ज२-सुलैग्या, वा.-संघेया (ह्यलब्धा:)

५८ (अ) ज२-प्रधान्ति, वा.-प्रयाति (प्रयान्ति), ज१, ज२, वा.-विप्रमुख्या: (मुख्यविप्रा:)

५८ (ब) ज१, किराल (किरात), ज१, ज२-लेंग्यश्च (लैंग्याश्च)

५९ (अ) ज१, ज२-वृंद (वृन्दा), ज१, प्रसक्तो, ज२, प्रसक्ता (प्रसक्ताः)

५९ (ब) ज१-विरलार्यसस्यैरदृष्टिभिः, ज१-विरलासस्यैरहष्टिभिः, (विरलार्घसस्यैरवृष्टिभिः), ज१, क्षुपपीडितास्व, ज२-क्षुयपीडिताश्च (क्षुद्भयपीडिताश्च)

६० (अ) ज१, विलंविवर्धे, (विलम्बिवर्षे), ज१, प्रसक्तो, ज२, प्रसक्ता (प्रसक्ताः)

६० (ब) ज१-स्वल्पार्घवृष्ट्युद्भतिचौरसपैः, ज२-स्वल्पार्श्ववृष्ट्याद्भूति, (स्वल्पार्घ-वृष्ट्युद्धवचौरसंघैः)

६० (ब) ज१, निषाः ज२-निरखा (निस्वाः), ज१, ज२-विहीनमाता (विहीनमान), ज१, ज२-पौषणाय (पूरणाय)

६१ (अ) वा.-मुचति (मुञ्चति), ज१, संयस्तथापि, ज२-संघंस्तथापि (वारिवाहस्तथापि)

६१ (ब) ज१-शकमूलैः, ज२-साकमूलैः (वृक्षमूलैः)

६२ (अ) वा.-मेतिमेदिनी (मेदिनी), वा.-पूर्वसस्य (पूर्वसस्य)

६२ (ब) ज१, ज२-अघसेत्सुक (अध्वरोत्सुक)

६३ (अ) ज१-निषिल (निखिल), ज१-ज२-जनास्थलजलयंभपष्य (जनाः स्थलजल-भवपण्य)

६३ (ब) ज१, ज२-वहुवृष्टिभिरखिल्पवसदृशो भाति, वा पाठोनास्ति (बाहुवृष्टिभि-रखिलधरा प्लवसदृशा भवति)

६४ (अ) वा.-महोत्सवं (महोत्सवैः)

६४ (ब) ज१.-वीतिभय, ज२, नीतिपथ, (नीतिपथ)

६५ (अ) ज१-शोभतः कृत, ज२-शोभनकृति, (शोभकृति), ज१, ज२-जंभते (जृम्भन्ते)

६५ (ब) ज१, ज२, विभाति, (भाति), ज१, ज२, वा.-पुष्पित, (सुपुष्पित) ज१, रामतोधीशैः, ज२-रामतोधीसो, वा.-रामतोयः सैः, (रामतोयांशैः)

६६ (अ) ज१, ज२-क्रोधी, वा. क्रोध्यां (क्रोधिनी), ज१, शशर, ज२-शर (शरदि), ज१, नरयंतिर, ज२-नरयतर (निरन्तर)

६६ (ब) ज१-फलमूलावर्द्धतेशनवशगात्रथापिलोकाश्च, ज२, फलमूलावर्द्धतेशत-वशगातथापिलोकाश्च, वा.-पाठोनाऽस्ति (फलमूलाशनवशगास्तथापि लोकाश्च वर्द्धन्ते)

६७ (अ) ज१, सयुयुता ज२-संयुता (सस्ययुता), ज१, ज२, वा.-प्रचुरतोयदमेघसंघैः (प्रचुरतोयदमेघवृन्दैः)

६७ (ब) ज१, ज२-नानाविधविक्रयविधेषु (नानाविधक्रतुवरेषु), ज१, विपृष्ट-नादैर्भात्यंगच्छनिधना, ज१-विपृष्टनादैर्भात्येगछतिधना (विचित्रनादैर्भात्यङ्गवङ्गमगधा), वा. निहिताश्वचोरैः (निहताश्वचौरैः)

६८ (अ) ज१, ज२-दनितकेशैः (जनितक्लेशैः) ज१, सुप्रजाः (सप्रजा)

६८ (ब) ज१, ज२-समृद्धि, वा. समृद्धा (समृद्धां), ज१, भूक्तां ज१-भुक्तां (भुक्त्वा), ज१, ज२-पराभवेब्देपि (पराभवाब्देऽपि)

६९ (अ) ज१, भविधधता, ज२-भभवघहता, वा.-भविघता (क्षोभवघट्टिता)

६९ (ब) ज१, ज२-प्रदातिं (प्रदायिनी)

७० (अ) ज१, ज२-अवृष्टिपौराहयरोगवह्निभीता (अवृष्टिचौराहवरोगवह्निभीतान्), ज१, ज२-क्षताश्लीक्ष (जनान्वीक्ष्य), ज२-सकीलकाब्दे (सुकीलकाब्दे)

७० (ब) ज२-विचार्थ (विचार्य), ज१-चित्रनाना, ज२-चित्रनागाकरहा च नित्यं (विचित्र नानाकरदा च तेभ्य:)

७१ (अ) ज१, ज२-धन (धर्म), ज१, ज२-क्षितियोत्सवाघै: (क्षितिपोत्सवाद्यै:)

७१ (ब) ज१-जनैरजसस्त्रं, ज१-जनैहसस् (जनैरजस्त्रं), ज१-सौम्यद्धयाब्दे, ज२-सौम्याह्वयाब्देश्च (सौम्याह्वयाब्दे), ज१-वविष्टदोषै:, ज२-विनिष्टदोषै:, वा.-विनिष्टदोषै: (प्रवनिष्टदोषै:)

७२ (अ) ज१, ज२-वृष्ट्यर्थ, (वृष्ट्यर्घ)

७२ (ब) ज१, ज२-वचोभयं, वा.-चोरभयं (च चोरभयम्)

७३ (अ) ज१, ज२-कलहं (कलहो)

७३ (ब) ज१, सस्यमृद्धाप्य, मु.पु. सस्यसमृद्वाऽप्य (सस्यसमृद्धाप्य), वा.-विकलदायिनी (विकलफलदायिनी)

७४ (अ) वा.-शुभप्रदा (शुभफलदा), ज१, परिधावीत्यनुलितरहु, ज२-परिधावीत्यतुलितरहु (परिधाविन्यतुलितबहु)

७४ (ब) ज१, ज२-निखिलभयामय, वा.-निखिलधराभयरहिता (निखिलधराऽऽभयरहित)

७५ (अ) ज१, ज२, मु.पु. पाठोनास्ति

७५ (ब) ज१, प्रमाथब्दे, ज२-प्रमाधब्दे, (प्रमाद्यब्दे)

७६ (अ) ज१, ज२, वा.-आनंददं (आनन्दद:), ज१, विविधात्रपात:, ज२-विविधात्रपान: (विविधान्नपात्रै:)

७६ (ब) ज१, ज२-तत्रातिरोगंविलयं (तत्रातिरोगैर्विलयं), ज१, ज२, वा.-ययुस्ते, (प्रयान्ति), ज१, ज२, खलु (खश)

७७ (अ) ज१, ज२-रतांश्च (रथाश्च), ज१, ज२, वा.-लोहाकारा: (लोहकारा:), ज१, ज२-प्रवर्द्धयत्याकरजीविनश्च, वा.-प्रवर्द्धयस्यानरजीविनश्च (वृद्धिं प्रयान्त्यारकजीविनश्च)

७७ (ब) ज१, ज२, विप्रक्षितीश:, वा.-क्षितीश:, (विप्रा: क्षितीशा:), ज१, ज२, सुजना (सुजना:), ज१, ज२, वृत्ताये (सुवृत्ताये)

७८ (अ) ज१, ज२-विलयं प्रयाति (विलयंप्रयान्ति), ज१, ज२, पक्षीवृजकालिकाश्च (पक्षीव्रजकोलिकाश्च)

७८ (ब) ज१, ज२-प्रयाति (प्रयान्ति), ज१, ज२, वृद्धं, वा.-वृष्टिं, (वृद्धिं), ज१, मध्यप्रदेश: ज२, मध्यप्रदेशे, मु.पु. मध्यदेशा: (मध्यप्रदेशा:)

७९ (अ) ज१, भवेद्यशस्त्रभयं, ज२-भवेद्यशस्त्र, वा.-भवेन्नरास्त्रभयं (भवेन्नशत्रुभयम्)

७९ (ब) ज१, ज२-स्तोकंजलं, वा.-स्तोकजला (स्तोकजलं), ज१-वैरिमन्योन्यं, ज२-वैरमन्योन्यं, वा.-वैरमन्योन्यु, (वैरमन्योन्यम्)

८० (अ) ज१-युक्तब्दे, ज२-युत्यब्दे, वा.-युक्तब्दे (कालयुगाब्दे), ज१, ज२-वेरिणा: (विवैरिणा:), ज१-ज२-धरणीश: (धात्रीश:)

८० (ब) ज१-अधरावितरा, ज२-अध्यरतितरा:, वा.-अर्ध्वनिनता (अध्वरनिरता)

८१ (अ) ज१-ज२-वसुधातमाखिले, मु.पु.-सुधातलमखिलं (वसुधातलमखिलं), ज१-युद्धसस्यार्घ, ज२-युद्धविधसस्यार्घं (युद्वहुविधधान्यार्घ), ज१-ज२-वा.-सम्पूर्णा (सम्पूर्णम्)

८१ (ब) ज१-ज२-सिद्धार्थ (सिद्धार्थि), ज१-संज्ञं च (संज्ञेय)

८२ (अ) ज१-युद्यते, ज२-सिद्धयते, (युद्धयन्ति), ज१-जेतुमधता:, ज२-जेतुधता: (हन्तुमुद्यता:)

८२ (ब) ज१-टंकण, ज२-टंकण, वा.-कोंकणा (कोंकण)

८३ (ब) ज१-ज२-गृह्णति (गृह्णन्ति), ज१-ज२-विभववोराश्च (कितवचौराश्च)

८४ (अ) ज१-ज२-धोत्सवनादपूरि (विविधोत्सवनादपूरिता)

८४ (ब) ज२-विविधफलं, वा.-विविध (विविधफल)

८५ (अ) ज१-ज२-भयंप्रतिभशस्त्व, वा.-भंटभटास्र (भटप्रतिभटास्त्र)

८५ (ब) ज१-पिवृत्यनुदिनं, ज२-पिवत्यनुदिने (पिबन्त्यनुदिनं) वा.-वसुधधियाना (वसुधाधियानाम्)

८६ (अ) ज१-योद्धा, ज२-योद्धा, (योद्धा:)

८६ (ब) ज२-विश्वे (विश्वंभरा), वा.-नैवमहीनस्या (नैवमहीनसस्या)

८७ (अ) ज२-वक्रै:, वा.-विप्रै:, (वप्रै:)

८७ (ब) वा.-क्रोधना (क्रोधनाब्दे), ज२-कला (सकला), ज२, ज२-संतोषकरा (संतोषकरी)

८८ (अ) ज१-नरानयानश्च, ज२-नरानपान, वा.-नरान्गजान, (नरानजानश्च), ज१-ज२-पक्षीमृगाश्च (पक्षीमृगांश्च), ज१-ज२-खिल, वा.-पाठोनास्ति (नागाखिल) वा.-भूतराशिन् (भूतराशीन्)

८८ (ब) वा.-त्रिभागशेष (त्रिभागशेषं)

८९ (अ) ज१-ज२-वृद्धि (समृद्धि:), ज१-प्रजांतोभ्यंश:, ज२-प्रजातेभ्यंश: (प्रजायतेक्षोभ:)

९० (अ) ज१-ज२-यति (यान्ति), वा.-द्वितियेगे (द्वितीयगे)

९० (ब) ज१-ज२-वा.-कलह: (कलहै:)

९१ (ब) ज१-ज२-सुरसचिवे (अङ्गिरसे), ज१-ज२-मिथुनराशिसंस्थे (मिथुनराशिस्थे)

९२ (अ) ज१-धरा: (धरा) ज२-वारिदा (वारिदा:), ज१-पधोवाहा: (पयोवाहा:)

९२ (ब) ज१-रासौ (राशौ), ज१, ज२-पयस: सदा (पयसस्तदा)

९३ (अ) ज१-यंययुरवनीश: ज२-यंयुरवनीश:, वा.-ययुरववीशा (यान्त्यवनीशा:) ज१-सयंति, ज२-सपंती (संयति), ज१, ज२-वनीसुरा (वनीसुरा)

९३ (ब) ज२-पूरगं (पूरितं)

९४ (अ) ज१-सहिता, ज२-संहिता: (सहिता:), ज१, ज२-सुप्रजा (सप्रजा)

९४ (ब) वा.-भूसुरनिकरा (भूसुनिकरा:)

९५ (अ) ज१-ज२-तुलयाकृतिवस्तुभयं (तुलयोद्धतवस्तुचयं), ज१, ज२-तुलगतेंगिकारसि (तुलागतेंऽगिरसि)

९५ (ब) ज१, सुतलं, ज२-सुतरं (सुलभं), ज१, ज२-भूतमसस्यार्थ (तूत्तमसस्यार्घ)

९६ (अ) ज१-विलयधरा, ज२-विलधरा (अखिलधरा), ज१, वहुवधसस्यार्य, ज२-वहुविधसस्यार्घ (बहुविधधान्यार्घ)

९६ (ब) ज१, ज२-राशिस्थे (राशौ), ज१, ज२-जातिलय: वा.-जातिविलय: (जाति विलय: स्यात्

९७ (अ) ज१-ज२-शवरा (शवर) ज२-धनुषी (धनुषि)

९७ (ब) ज१, ज२-नलसदृशीषुद (चलसदृशाम्बु)

९८ (अ) ज१-ज२-वा.-वुधरा (अम्बुधरा:), ज१, पर्यनिवार्येय, ज२-यर्घृनिवार्येघ, वा.-वर्षतिधान्यौध (वर्षन्ति वाप्यौध)

९८ (ब) ज१, मतिदर्थी, ज२-मानिदितार्थि (नामानन्ददा)

९९ (अ) ज१-सर्वजनाधिया, ज२-सर्वजनाधरिञ्या, (सर्वधराधिनाथा:)

९९ (ब) ज२, पुष्यै, वा.-पुष्यौ (पुष्यै:)

१०० (ब) वा.-मीनस्थीते (मीनस्थिते), ज१, क्षितीशा (क्षितिसा:), ज२, सुखिन (सुखिन:)

१०१ (अ) ज१, प्रतार, ज२-प्रवार (प्रवाल)

१०१ (ब) वा., एवं विधे (एवंविधो), वा., शुभप्रदा: (शुभप्रद:)

***

अथ शुक्रचाराध्यायः

शुक्रवीथियां

मध्यमरेखानियतं गोवीथिर्भवति मध्यरेखातः।
वृषभैरावतगजनागाख्या वीथयः कुबेरदिग्भागे॥१॥

आकाश में मध्य रेखा तो नियत मानी गई है और मध्यरेखा से उत्तर की ओर गो, वृष, ऐरावत, गज और नाग नामक वीथियां (गलियां) होती हैं॥१॥

क्रमागत–

नारदः–

सौम्यमध्यमयाम्येषु मार्गेषु त्रि त्रिवीथयः।
शुक्रस्य दस्रभाद्यैश्च पर्यायश्च त्रिभिस्त्रिभिः॥
नागेभैरावताश्चैव वृषभो गोजरदवा।
मृगाजदहनाख्यास्स्युर्याम्यान्ता वीथयो नव॥

(ना.सं. २, १-२)

कश्यपः–

त्रि त्रिवीथ्यात्मका भागास्त्रयः प्राग्ग्रहगा भृगोः।
त्रिभिस्त्रिभिर्दस्रभाद्यैर्याम्यान्यैर्नववीथयः॥
नागेभैरावत प्रख्य वृष धेनुजरद्गवाः।
मृगाजदहना सौम्यमार्गस्था नव पार्श्वतः॥

(क.सं. ७, १-२)

नौ विथियों के नाम

दक्षिणतोऽपि जरद्गवमृगाजदहनाश्च नवभेदाः।
वीथेरेकैकस्यार्क्षत्रितयं क्रमेण धिष्ण्यानि॥२॥

मध्य रेखा से दक्षिण मार्ग में जरद्, गव, मृग, अज एवं दहन नाम की वीथियां मानी जाती हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर नौ (९) वीथियां हुईं। एक-एक वीथि में तीन-तीन नक्षत्रों के मण्डल पाए जाते हैं॥२॥

क्रमागत–

सौम्यमर्गेषु तिसृषु चरन् वीथिषु भार्गवः।
धान्यार्घं वृष्टिसस्यानां परिपूर्तिं करोति सः॥
मध्यमार्गेषु तिसृषु तेषामेवाधमं फलम्।
पूर्वास्यां दिशि जलदःशुभकृत् पितृपञ्चके॥

स्वातित्रये पश्चिमायां सम्यक् शुक्रस्तथा विधिः।

(ना.सं. २, ३-५)

नागगजैरावतपृतभगोजरद्गवमृगाजदहनाख्याः।
अश्विन्याद्याः केश्चित्त्रिभाः क्रमाद्वीथयः कथिताः।।

(व.सं. १-१)

दिनकरधिष्ण्यात्त्रितयं गोवीथिगतं द्विदैवधिष्ण्यातः।
द्वादश भानि क्रमशो दक्षिणवीथेश्चतुष्टयस्थानि।।३।।

हस्त, चित्रा, स्वाती इन तीन नक्षत्रों में शुक्र गोवीथि में रहता है, विशाखा से बारह १२ नक्षत्र क्रमशः दक्षिण वीथि में चार मार्ग शुक्र के प्रसिद्ध है।।३।।

आश्विनभादिद्वादशधिष्ण्यान्युत्तरवीथेश्चतुष्टयस्थानि ।
अथ कथयामि नवानां वीथीनां फलानि तान्यधुना।।४।।

अश्विनी नक्षत्र में १२वें नक्षत्र तक उत्तर वीथि में चार मार्ग शुक्र के माने जाते हैं। अब मैं (वसिष्ठ ऋषि) नौ ९ वीथियों के फल कहता हूँ।।४।।

नववीथियों में शुक्र का फल

नागवीथिविचरन्भृगोः सुतः पश्चिमदिशि च वृष्टिनाशकृत्।
क्षेमकृत् सुखकरो गजवीथ्यामर्घवृद्धिमतुलां करोति सः।।५।।

नाग वीथि में गमन करता हुआ शुक्र पश्चिम दिशा में वृष्टि नाश करता है। गज वीथि में शुक्र सुख, कल्याणप्रद, पर्याप्त समर्घता (महंगाई) कारक होता है।।५।।

शालीक्षुगोधूमयवादिसस्यसम्पूर्णधात्री नितरां विभाति।
ऐरावतोक्षाह्वययोश्च वीथ्योः स्थिते सिते संयति राजनाशः।।६।।

ऐरावत वीथि में शुक्र संचार से पृथ्वी शाली ईख, गोधूम, यव एवं धान्यों से परिपूर्ण हो; किन्तु युद्ध में राजाओं का नाश हो।।६।।

गोवीथिगे दैत्यपुरोहिते भूर्विभाति नानाविधसस्यवृद्ध्या।
जरद्गवायां मृगसंज्ञितायां मध्यार्घवृष्टिर्महदाहवश्च।।७।।

गोवीथि में शुक्र संचार से पृथ्वी पर नाना प्रकार से धान्यों की समृद्धि हो। जरद्गव एवं मृग वीथियों में मध्यम रूप से समर्घता, मध्यम वृष्टि तथा महायुद्ध भय होता है।।७।।

क्षितीशसंग्रामजभीतिरीतिर्बह्नेर्भयं वारिभयं जनानाम्।
अजाग्निवीथ्योरतुलाग्निभीतिः क्वचित्क्वचिद्वर्षति वासवोऽपि।।८।।

अज और दहन वीथियों में शुक्र संचार से लोगों में राजाओं के परस्पर

युद्ध के कारण भय, ईति, अग्नि तथा जलभय हो, कहीं-कहीं बूंदाबादी व वर्षा भी हो॥८॥

शुक्र का वीथियों में उदयास्त फल

उदग्वीथिषु दैत्येज्यश्चास्तगश्चोदितोऽपि वा।
सुभिक्षकृन्मध्यवीथ्यां सामान्यो याम्यगोऽशुभः॥९॥

उत्तर वीथियों में शुक्र अस्त होकर पुनः उदय हो जाए तो सुभिक्षकारक जानना, मध्य वीथियों में सामान्य फलप्रद एवं दक्षिण में अनिष्टकारी हो॥९॥

स्वातित्रये पूर्वदिशि पश्चिमे पितृपञ्चके।
अनावृष्टिकरः शुक्रो विपरीतः सुवृष्टिकृत्॥१०॥

स्वाती, विशाखा और अनुराधा में पूर्वदिशा में, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त एवं चित्रा नक्षत्रों में पश्चिम दिशा में शुक्र अनावृष्टि कर्त्ता तथा वक्र होने पर सुवृष्टिप्रद होता है॥१०॥

दृष्टः समस्तदिवसे भयदश्चामयोद्भवः।
दिनार्द्धं प्रति दृष्टश्चेत्परेषां बलभेदकृत्॥११॥

सम्पूर्ण दिवस पर्यन्त दिखाई देने वाला शुक्र भय और रोगों की उत्पत्ति करता है। आधे दिन तक दिखाई दे तो शत्रु सेना का विनाशक होता है॥११॥

रोहिणी शकट एवं योगताराभेदनफल

भिनत्ति रोहिणीचक्रं शुक्रः पैतृभतारकाम्।
यदा तदा करोत्येनां कपालास्थिमयीं धराम्॥१२॥

रोहिणी शकट एवं मघा योगतारा का भेदन करता हुआ शुक्र संचार पृथ्वी को कपाल एवं अस्थियों से आच्छन्न करता है। अर्थात् पृथ्वी पर बहुत लोगों की मृत्यु होती है॥१२॥

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा।
केशास्थिशकलशबलाकापालमिव व्रतं धत्ते॥

(वृ.सं. ९, २५)

कृष्णपक्ष में तिथ्यानुसार शुक्रोदयास्तफल

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्याममायां यदि भार्गवः।
उदयं चास्तमनं च करोतयम्बुमयीं क्षितिम्॥१३॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और अमावास्या को शुक्र यदि उदय या अस्त हो तो सुवृष्टि से भूमि को जलमयी करता है।।१३।।

क्रमागत–

नारदः–

विपरीते त्वनावृष्टिद्वधसञ्युतः।
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्याममावास्यां यदा सितः।
उदयास्तमयं याति तदा जलमयी क्षितिः।
मिथः सप्तमराशिस्थौ पश्चात्प्राग्वीथिसंस्थितौ।।

(ना.सं. २, ६, ७

कश्यपः–

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यामयायामथ वासितः।
उदयास्तमयं याति तदा वारिभयी क्षिति।।

(क.सं. ७, ९)

वराहमिहिरः–

चतुर्दशीं पञ्चदशीं तथाष्टमीं तमिस्त्रपक्षस्य तिथिं भृगो सुतः।
यदा व्रजेद्दर्शनमस्तमेति वा तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते।।

(वृ.सं., शुक्रचाराध्याय ३६)

शुक्रवृहस्पति का स्थितिवश फल

प्राक्पश्चिमस्थौ सुरदानवेज्यौ परस्परं सप्तमराशि संस्थौ।
तदा जनानां भयदो जलाग्निरोगास्त्रचौराग्निनिशाचरेभ्यः।।१४।।

यदि शुक्र पूर्व में और बृहस्पति पश्चिम में विद्यमान होकर परस्पर सप्तम राशि में दिखाई दे तो जलकाण्ड, अग्निकाण्ड, महामारी, शस्त्र-अस्त्रभय, चौरभय, सर्पभय तथा निशाचरादि का भय हो।।१४।।

क्रमागत–

कश्यपः–

प्राक्पश्चिमस्थौ शुक्रेज्यावन्योऽन्यसप्तमगौ
दुर्भिक्षवृष्टिभयदौ पशूनामतिभीतिदौ।।

(क.सं. ६, १०)

वराहमिहिरः:–

गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः परस्परं सप्तमराशिगौ यदा।
तदा प्रजारुग्भयशोकपीडिता न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्झितम्।।

(वृ.सं. ९, ३७)

अग्रगाः पृष्ठगा वापि खेटाः सन्निहिता रवेः।
तदाऽतिवृष्टिं कुर्वन्ति न चेन्नीचारिरराशिगाः॥१५॥

शुक्र से आगे और पीछे की राशियों में निकटवर्ती सभी ग्रह दृग्गोचर हों तो अतिवृष्टिकारक होते हैं; किन्तु नीच एवं शत्रु राशि में जाने पर अनावृष्टिकारक समझना॥१५॥

एकराशिगत चार से अधिक ग्रहों का फल

चत्वारः पंच वा खेटा बलिनस्त्वेकराशिगाः।
राज़ाहवभयं दध्युरर्घमामयभीतिदाः॥१६॥

यदि चार अथवा पाँच ग्रह बल सहित एक राशि में हों तो राजाओं के परस्पर युद्ध से भय, वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि और रोगभयप्रद हो॥१६॥

क्रमागत–

नारदः–

गुरुशुक्रावनावृष्टिदुरुर्भिक्षमरणप्रदौ ।
कुजज्ञीवरविजाः शुक्रस्याग्रेसरा यदा।
युद्धातिवायुदुर्भिक्षं जलनाशकरास्तदा।
कृष्णरक्तस्तनुः शुक्रो पवनानां विनाशकृत्॥

(ना.सं. २, ८, ९)

कश्यपः–

शुक्रस्याग्रेसराः खेटा भवन्ति बहवो यदि।
दुर्भिक्षवृष्टिपवनवह्निभूहवप्रदा ॥
एकराशिगताखेटाश्चत्वारः पञ्च वा यदि।
बलाबलावशात्तेऽपि भूपानामहवप्रदाः॥

(क.सं. ७, ११, १२)

दो ग्रहों का वक्र होने पर फल

यदा प्रतीपगौ खेटौ नृपसंक्षोभदौ तदा।
प्रतीपगास्त्रयो यत्र युद्धवृष्टिभयप्रदाः॥१७॥

यदि दो ग्रह वक्रत्व को प्राप्त हों तो राजाओं में क्षुब्धता देने वाले होते हैं। यदि तीन ग्रह एक साथ वक्र हों तो युद्ध भय एवं वृष्टिभय करते हैं॥१७॥

क्रमागत–

कश्यपः–

सम एको वक्रगतो वक्रितो द्वावनर्थदौ।
त्रयो नृपाहवकराश्चत्वारो हन्ति भूमिपान्

पञ्चग्रहा वक्रगास्ते राज राष्ट्रविनाशदाः।
शुक्रर्क्षं कूर्मवशतो ज्ञात्वा त्फलमादिशेत्।।

(क.सं. ७, १३, १४)

चार ग्रहों के वक्र होने पर फल

राजान्यत्वं च कुर्वन्ति चत्वारो यदि वक्रिताः।
प्रतीपगाः पंच खेटा राजराष्ट्रविनाशदाः।।१८।।

यदि चार ग्रह वक्र हो जाएं तो राष्ट्र विप्लव, पाँच वक्र हो तो राजा और राष्ट्र दोनों का नाश करते हैं।।१८।।

वक्रेन्दुकुन्दकुमुदस्फटिकप्रवालवैदूर्यशंखदधिपुष्पहिमोपमाभः।
मुक्ताफलप्रकरतुल्यविशालकान्तिरेवं विधो भृगुसुतः शुभदो नराणाम्।।१९।।

यदि शुक्र बिम्ब वक्र चन्द्रमा, कुन्द कुमुद (नीलकमल), पुष्प, स्फटिक, प्रवाल, वैदूर्य, शंख, दही, पुष्पराग, हिमखण्ड मुक्ताफल समूह तुल्य विशाल कान्ति सम्पन्न दृग्गोचर हो तो मनुष्यों के लिए शुभफलप्रद समझना चाहिये।।१९।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते।
कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये।।
हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः।
पतति न सलिंखाद् भस्मरूक्षासिताभे।।
दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत् स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः।
सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः।।

(वृ.सं. ९, ४४,-४५)

।।इति श्रीबृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षि विरचितायां संहितायां
शुक्रचाराध्यायः सप्तमः।।७।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के शुक्रचाराध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त।।७।।

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, गोवीथि, ज२-गोवातिथि, वा.-गोविधीन (गोवीथिः)

१ (ब) ज१, ज२, नागास्था (नागाख्या), ज१, विथयः, ज२, वीक्थयं: (वीथयः), ज१, कविरूग्भागे, ज२, कविरूग्भावे, ज.मो. कवेरूदग्भागे (कुवेरदिग्भागे)

२ (अ) ज१, श्रंगाजन, ज२-जरह्ननवभृंगाजन, (जरद्गवमृगाजदहनाश्च)

२ (ब) ज१, ज२, विदेरेकेकस्यात्र्क्षत्रितयं, ज. मो. वीथेरेकेकस्यास्त्रितस (वीथेरेकेकस्यार्क्षत्रितयं)

३ (अ) ज१, धिष्ण्याः, ज२-धिष्ण्यां, ज.मो. सर्वधिष्ण्यानि (धिष्ण्यास्त्रितयं), ज१, गोवीथ, ज२., गोवीथकरं, वा. गोवीथित (गोवीथिगतं), ज१, द्विदैवधिनल्पातः, ज२-द्विदैवधिष्ण्यन्यातः, ज.मो. द्विदवनक्षजात (द्विदैवाधिष्ण्यातः)

३ (ब) ज१, ज२-वीथीचतुष्टमानैः (वीथेचतुष्टयस्थानि)

४ (अ) ज१, वीथी, ज२-पाठोनास्ति (वीथेश्चतुष्टय)

४ (ब) वा. कथयामी (कथयामि), ज१, ज२-वीथि, वा. वीथीना (वीथीनां), ज१, यानीतान्यत्र, ज२-पानितान्यत्र, ज.मो.-यानितान्यत्र (तान्यधुना)

५ (अ) ज१, ज२-वदृष्टि (वृष्टि)

५ (ब) ज२, स्वस्वकरो (सुखकरो), ज.मो. सर्ववृद्धिमतुलां, वा. वृद्धिरतुलां (वृद्धिमतुलां), ज.मो. कुरूते, (करोति सः)

६ (अ) ज१, ज२-निरतां, वा.-नितरा (नितरां)

६ (ब) ज१, वीथयो, ज२, वीथयोमिष्यते (वीथ्योः), ज१, संपति (संयति)

७ (अ) वा.-भूविभाति (भूर्विभाति), ज१-वृषसस्यै, ज२ वृष्टसस्यैः, ज.मो. वृष्टिसस्यै (नानाविधसस्यवृद्धया)

७ (ब) ज१, संक्षितायां, ज२, संहितायां (संज्ञितायां), ज१ मध्यार्यवृष्टिंमहदाश्चसर्वे, ज२, महदाश्चसर्वे, ज.मो. महदाहवः स्यात् (मध्यार्घवृष्टिर्महदाहवश्च)

८ (ब) ज१-अजाग्निवीथीरतुलां, ज१-अजान्नषोथीरमुलांत, ज.मो.-रमलान्तभीतिः (अजाग्निवीथयोरतुलाग्नि भीतिः), ज१-दर्शन, ज२-दर्शनु (वर्षति) ज१, ज२-वासवेपि (वासवोऽपि)

९ (अ) ज१, ज२-उदग्वीथया (उदग्वीथिषु), ज१, ज२-सुदैत्येज्य (दैत्येज्य), ज१-पस्चास्तंगोश्चो, ज२-चास्तगोचोदिते, ज.मो. दितोऽथवा, वा.-श्चास्तगश्चोदितोपिवा (श्चास्तगश्चोदितोऽपि वा)

९ (ब) ज१, ज२, सामान्येषां भृगुशुभः, वा. सामान्योयाग्यगोशुभः (सामान्यो याम्यगोऽशुभः)

१० (अ) ज१, ज२-स्वातित्रयं (स्वातित्रये), ज१-पश्चिम (पिश्चमे), ज१, ज२-पितृपंचकं (पितृपंचके)

१० (ब) ज१, ज२-विपरीतेषु वा. विपरितः (विपरीतः), ज१, ज२-वृष्टिकृत (सुवृष्टिकृत्)

११ (अ) ज१, ज२-दृष्टं, वा.-दृष्ट (दृष्टः), ज१, ज२-दिवसं, वा. दिवसं (दिवसे), ज१-भयोद्भवैः, ज२-मघोद्भवः, वा.-भपदाश्चाभयोदभवैः (भयदश्चामयोद्भवः)

११ (ब) ज१-विनार्द्धम्, वा. दिनार्थ (दिनार्द्ध), ज१, ज२-स्मिर्दृष्टश्चेत्, वा. वृष्टस्चेत्परेषां (दृष्टश्चेत्परेषां)

१२ (अ) ज२-भिन्नंति (भिनत्ति), ज१, ज२-पैतृभतारका, वा: पैतृभतारकं (पैतृभतारकाम्)

१२ (ब) ज२-करोत्येषां, वा.-करोत्येनी (करोत्येनां), ज१, ज२-कपालमयांधरां, वा. कपालस्थिप्रामयी (कपालस्थिमयीं)

१३ (ब) वा.-उदयां (उदयं), ज१-चास्तमतंवापि, ज२-चास्तमनंवपि (चास्तमानं)

१४ (ब) ज१-जानां, ज२-जनानां (तदाजनानां), ज१-वयांदा, ज२-चपदा (भयदो), ज२-रोगैस्त्र (जलग्रिरोगास्त्र), ज२-चौराहिनिसाचरेत्य:, मु.पु. चौराग्निनिशाचरेभ्य: (चौराहिनिशाचरेभ्य:)

१५ (अ) ज२-खेदा (खेटा:), मु.पु. रवे: (कवे:)

१५ (ब) वा.-कुर्वति (कुर्वन्ति)

१६ (अ) वा.-बलित: स्वेक (बलिनस्त्वेक)

१६ (ब) ज१-दधुरच्यैयमपि, ज२-दधुरथवा भय (दध्युरर्घमामय)

१७ (अ) ज१-प्रतिपगौ (प्रतीपगौ)

१७ (ब) ज१, ज२, वा.-पाठोनास्ति

१८ (अ) ज१, ज२-वत्रि:, मु.पु. वक्रिता: (वक्रिण:)

१८ (ब) ज१-प्रतिपगा: (प्रतीपगा:)

१९ (अ) ज१, ज२-वा.-वज्रेन्दु (वक्रेन्दु), ज१-कंदस्फटिक, वा.-कुदस्फटिक (कुमुदस्फटिक), ज१-ज२-प्रतार, वा.-प्रवालं (प्रवाल), ज२-वैदर्य, वा. वैड्र्य (वैडूर्य)

१९ (ब) वा.-सुमुक्ता (मुक्ता), वा.-विशालं (विशाल), वा.-विधौ (विधो)

***

८

अथ शनिचाराध्यायः

रौद्रार्कवारीशमरुद्द्विदैवमुकुन्दभेष्वश्वर्कसुतः करोति।
चरन् सुभिक्षं विपुलं पृथिव्यां गौडाश्मकाश्मीरपुलिन्दहानिः॥१॥

आर्द्रा, हस्त, शतभिषा, स्वाती, विशाखा, श्रवण नक्षत्रों में शनि संचार पृथ्वी पर पर्याप्त सुभिक्ष; परन्तु गौड़ (बंगाल), अश्म (आसाम), काश्मीर और पुलिन्द देशों में हानिप्रद होता है॥१॥

क्रमागत–

नारदः–

श्रवणानिलहस्तार्द्राभरणीभाग्यभेषु च।
चरन्शनैश्चरो नृणां सुभिक्षारोग्यसस्यकृत्॥

(ना.सं. २, १)

वराहमिहिरः–

श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणीभाग्योयगः सुतोऽर्कस्य।
प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्धः॥

(वृ.सं. १२, १)

मैत्राख्यसंक्रन्दनपौष्णभेषु चरन् सदा सूर्यसुतः करोति।
ईतेर्भयं व्याधिभयं प्रजानां कलिङ्गवाह्लीकजनाभिवृद्धिम्॥२॥

अनुराधा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रों में शनि संचार हो तो जनवर्ग में ईतिभय और व्याधिप्रद हो; परन्तु कलिङ्ग (पूर्वी बिहार, उड़ीसा का मध्यभाग) और वाह्लीक (वलखवुखरा) देशों में वृद्धिकारक होता है॥२॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्नचातिजलम्।
क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपि वक्ष्ये॥

(वृ.सं. १०-२)

वराहमिहिरः–

जलेशसार्पमाहेन्द्रनक्षत्रेषुसुभिक्षकृत्।
क्षुच्छस्त्रावृष्टिदोमूलेऽहिर्बुध्न्यान्त्युभयोर्भयम्॥

(ना.सं. २-२)

तयोरहिर्बुध्न्यभयाम्ययोश्च धराधिपानां कलहस्त्ववृष्टिः।
अनुक्तभेष्वर्कसुतः प्रजानां चरन् तदा मध्यमवृष्टिदः स्यात्॥३॥

उत्तराभाद्रपदा और भरणी नक्षत्रों में शनि संचार राजाओं में कलह और वर्षा में ह्रास करता है। अनुक्त (न कहे हुए) नक्षत्रों में जनवर्ग के लिए मध्यम वृष्टिप्रद होता है॥३॥

कीटाजपञ्चाननकर्कटेषु चरञ्छनिः क्षुद्रप्रदः प्रजानाम्।
वृष्टेर्भयं कुत्रचिदामयश्च तथापि जीवन्ति जनाः कथञ्चित्॥४॥

वृश्चिक, मेष, सिंह, एवं कर्कादि राशियों में शनि सञ्चार हो तो क्षुद्र जन्तु व जनवर्ग के लिए वर्षा का भय, कहीं-कहीं रोग भय होता है, फिर भी किसी तरह जनवर्ग जीवित रहता है॥४॥

कन्यानृयुग्गोघटचापसंस्थः स्वक्षेत्रसंस्थोऽपि शुभप्रदः स्यात्।
वङ्गाङ्गकाश्मीरकलिङ्गगौडसौराष्ट्रदेशेष्वशुभप्रदः स्यात्॥५॥

कन्या, मिथुन, वृष, कुम्भ, धनु तथा मकर एवं कुंभ राशियों में शनि सञ्चार शुभप्रद होते है; परन्तु बंग, अंग, कश्मीर, कलिङ्ग, गौड और सौराष्ट्र देशों में अशुभफलप्रद होता है॥५॥

प्रक्षुभ्यन्ति क्षितीशाः प्रचलितवसुधा मोदते दस्युवर्गो।
धीभ्रंशो बुद्धिभाजां जनपदहरणं चित्रवर्षी पयोदः॥
चन्द्रार्कौ मन्दरश्मी ग्रहगणसहितो वान्ति वाताः प्रचण्डा-
श्चक्राकारं समग्रं भ्रमति जगदिदं मीनगे सूर्यसूनौ॥६॥

मीन राशि में शनि सञ्चार हो तो राजागण क्षुब्ध, भूकम्पभय, डाकू वर्ग प्रसन्न रहें, बुद्धिजीवियों की बुद्धिभ्रष्ट, बड़े-बड़े नगरों का संहार, मेघमण्डली अनावृष्टि और अतिवृष्टिकारी, ग्रहवर्ग सहित सूर्यचन्द्रमा के बिम्ब रश्मिहीन, प्रचण्ड वायु तथा समस्त भूमण्डल चक्रवत् घूमता प्रतीत होता है॥६॥

॥इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां शनिचाराध्यायोऽष्टमः॥८॥

॥वृद्ध वसिष्ठ संहिता के शनिचाराध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त॥८॥

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, भेष्वर्क, ज२-मेघर्क, वा.-मेघर्कसूत: (भेष्वश्वर्कसत:)

१ (ब) ज१-चर:, ज-चार: (चरन्) ज२-सुभिक्षे (सुभिक्षं), ज१-पृथव्यां, ज२-पृथिव्यो (पृथिव्यां), ज२-गौडास्मा (गौडाश्म)

२ (अ) ज१-चरत्तु, ज२-चरत्तदा (चरन्सदा), ज२-सूर्यसुतं (सूर्यसुत:)

२ (ब) ज२-ईतिभयं (इतेर्भयं), वा.-जनाभिवृद्धि (जनाभिवृद्धिम्)

३ (अ) ज१-तयोरहिर्बु ध्न, ज२-तयोरहिवुध्न् (तयोरहिर्बुध्न्य), वा.-कलहत्ववृष्टि: (कलहस्त्ववृष्टि:)

३ (ब) ज१, ज२, ज.मो.-चरं (चरन् तदा)

४ (अ) ज१-कीटाजयंवानन कर्क भेषुचरछछानिः, ज२-कीटाजयंवाननकर्कभेषुचरक्वतिः (कीटाजपञ्चाननकर्कटेषु चरञ्छनिः) ज१-क्षुद्भयदः, ज२-क्षद्भयदः (क्षुद्रप्रदः)

४ (ब) ज१-वृषेभयं (वृष्टेर्भयं), वा.-जनां (जनाः)

५ (अ) वा.-संस्था (संस्थः), ज२-शुभप्रदा, वा.-शुभप्रदः (शुभप्रदः)

६ (अ) ज१, ज२-वा.-प्रचलति (प्रचलित), वा.-दस्युवर्गा (दस्युवर्गो)

६ (ब) ज१, विभ्रंशो, ज२-विभ्रंशोवु, ज.मो.-दिग्भ्रंशो, वा.-धधिंशौ (धीभ्रंशो), वा.-चित्रवर्षाः (चित्रवर्षी), वा.-पयोदाः (पयोदः)

६ (स) ज१, ज२-सहितौ (सहितो)

६ (द) ज१-समस्तं, ज२-समस्त (समग्रं), वा.-सूर्यसुतो (सूर्यसून)

***

९

अथ राहुचाराध्यायः

प्रच्छन्नामररूपं धृत्वा राहुः सुधाप्रदानेऽभूत्।
हरिरपि निखिलं ज्ञात्वाच्छिनद्धि चक्रेण तच्छीर्षम्॥१॥

अमृत बाँटने के समय गुप्त रूप से देवताओं का रूप धारण करके राहु भी उसमें समाविष्ट हो गया। इस रहस्य को भगवान् श्रीविष्णु ने समझ कर चक्र से उसका सिर काट दिया॥१॥

क्रमागत–

नारदः–

अमृतस्वादनाद्राहुः शिच्छिन्नोऽपि सोऽमृतः।
विष्णुना तेन चक्रेण तथापि ग्रहतां गताः॥

(ना.सं. २, १)

कश्यपः–

छिन्नोऽपि विष्णुचक्रेणसुधामयशिरास्तमः।
केशवस्य वरेणासौ तथापि ग्रहतां गतः॥

(क.सं. ९, १)

वराहमिहिरः–

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम्।
प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहनां यातं वदन्त्येके॥

(वृ.सं. ५, १)

अमृतमयत्वान्नत्वा हरिं शिर उवाच विस्मिते सदसि।
दातव्या ग्रहसमता गतोऽस्मि मां रक्ष तव शरणम्॥२॥

अमृतमय होने के कारण भगवान् श्रीविष्णु को प्रणाम करके विनम्रता से विस्मित देव सभा में राहु के सिर ने कहा हे प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा करते हुए मुझे भी ग्रहों में समता दीजिए॥२॥

दत्त्वाष्टमग्रहत्वं पीतो विससर्ज तं राहुम्।
धातृवराच्चन्द्रमसं तुदति ततः सर्वपर्वणि च॥३॥

आठवें ग्रह का स्थान देते हुए पीताम्बरधारी भगवान् श्रीविष्णु ने राहु को विसर्जित किया। भगवान् ब्रह्म के वरदान से प्रत्येक पर्व पर चन्द्रमा को पीड़ित करता है॥३॥

क्रमागत–

नारदः–

वरेण धातुरर्केन्दू ग्रस्तेसर्वपर्वणि।
विक्षेपावनतेर्वशाद्राहुर्दूरंगतस्तयोः ।।

(ना.सं. २, २)

कश्यपः–

धातृवरेण सूर्येन्दुनुदते सर्व पर्वणि।
तयोर्दूरं गतो राहुर्विक्षेपावनतेर्वशात्।।

(क.सं. ९, २)

अवनतिविक्षेपवशाद्दूराद्दूरं गतः सततम्।
षणमासांसाभ्यन्तरितादग्रहणं प्रायेण सम्भवति।।४।।

विक्षेप और अवनति के कारण (राहु) निरन्तर सूर्य चन्द्रमा से दूर चलता है। छः (६) मासों के भीतर ही प्रायशः ग्रहण सम्भव होता है।।४।।

क्रमागत–

नारदः–

षण्मासवृद्धया ग्रहणं शोधयेद्रविचन्द्रयोः।
पर्वेशः स्युस्तथा सप्त देवाः कल्पादितः क्रमात्।।

(ना.सं. २, ३)

कश्यपः–

रवीन्द्वोर्ग्रहणं सम्यक्षण्मासोत्तरवृद्धितः।
कल्पादितः क्रमाज्ज्ञेया पर्वेशाः सप्तदेवता।।

(क.सं. ९, ३)

राहुरसौदनुजत्वाद् भुजगाकारेण गृह्णाति।
भूगोलाधोभागे दर्पणसदृशे रवौ सदा भ्रमति।।५।।

राहु राक्षस होने के कारण अपना भुजगाकार रूप ग्रहण करता है, भूगोल के निचले भाग में सदैव भ्रमण कर दर्पण के समान रविबिम्ब में ग्रहण उत्पन्न करता है।।५।।

उद्भूताखिलधरणीछाया छादयति सेन्दुमुपरिस्थम्।
स्थगयति रविमुपरिस्थं पश्चादागत्य शीघ्रगश्चन्द्र।।६।।

चन्द्रग्रहण में समस्त भूमि ऊपर स्थित चन्द्रमा को ढक लेती है और सूर्यग्रहण में शीघ्रगतिवान चन्द्रमा पीछे से आकर उपरि स्थित सूर्य को ढक लेता है।।६।।

गणितस्कन्धाज्ज्ञात्वा सृष्ट्यादेरिष्टपर्वपर्यन्तम्।
पर्वसमूहं यत्तत्सप्तभिरवशिष्टपर्वेशाः।।७।।

सृष्टि से लेकर इष्ट पर्व तक सात प्रकार के पर्वेशों का ज्ञान गणित स्कन्ध से करना चाहिये।।७।।

धातृशशीन्द्रकुवेरा वरुणाऽग्नियमाश्च विज्ञेयाः।
एषां पर्वेशानां क्रमशस्तु फलानि वक्ष्यन्ते।।८।।

ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम ये सात देवता पर्वों के स्वामी हैं। क्रमशः इनका फलादेश कहते हैं।।८।।

क्रमागत–

कश्यपः–

द्विगुणीकृतकल्पाब्दाः सप्तभक्ताश्चशेषतः।
धातृचन्द्रेन्द्रयक्षेशकीलालेशानलान्तकाः ।।

(क.सं. ९, ४)

ब्राह्मये पर्वणि सम्यग्द्विजगोपसुवृद्धिरपरमिता।
सौम्ये पर्वणि तद्वत्सज्जनहानिस्त्ववृष्टिजाद्भीतिः।।९।।

ब्राह्म नामक पर्व में ग्रहण होने से समस्त ब्राह्मण गोपादि सुवृद्धि को प्राप्त होते हैं। सौम्य पर्व में भी ब्रह्म पर्व सदृश फल होते हैं; परन्तु सज्जनों की हानि तथा अवृष्टि भय भी होता है।।९।।

क्रमागत–

नारदः–

ब्रह्मेंद्विंद्रधानाधीशवरुणाग्निमाह्वयाः।
पशुसस्यद्विजातीनां वृद्धिर्ब्राह्मे च पर्वणि।।

(ना.सं. २, ४)

कश्यपः–

द्विजगोपशु सस्यानां वृद्धिः स्याद्धातृ पर्वणि।
अवृष्टिर्विदुषां पीडा महर्घं चन्द्रपर्वणि।।

(क.सं. ९, ५)

शारदसस्यविनाशः क्षितिपतिकलहः सुवृष्टिरैन्द्रे स्यात्।
धनिकानां धनहानिस्त्वतुला वृष्टिश्च कौबेरे।।१०।।

ऐन्द्र नामक पर्व में शारद् फसलों का नाश, राजाओं में कलह; परन्तु सुवृष्टि भी हो। कौबेर पर्व में धनाढ्य लोगों के धन की हानि; परन्तु अतुल वृष्टि भी होती है।।१०।।

क्रमागत-

नारदः-

अर्थेसानामर्थहानिः कौवेरे धान्यवर्धनम्।
नृपाणामशिवं क्षेममितरेषां तु वारुणे।।

(ना.सं. २, ५-६)

कश्यपः-

भूपाहवं सस्यहानिः प्रजापीडेन्द्रपर्वणि।
कौवेरे धान्यवृद्धिः स्याद् धनिनां धननाशनम्।।
तद्वदेव फलं सौम्ये बुधपीडा च पर्वणि।
विरोधो भूभुजां दुःखमैन्द्रे सस्यविनाशनम्।।

(क.सं. ९, ६)

निखिलजनानां वृद्धिः क्षेमकरी वारुणे च नृपहानिः।
आग्नेये चाग्निभयं त्वतुला वृष्टिः क्षितीशकलहश्च।।११।।

वारुण पर्व में ग्रहण होने से समस्त जनवर्ग का कल्याण तथा वृद्धि हो; किन्तु राजा की हानि हो। आग्नेय पर्व में अग्निभय अतुल वृष्टि और राजाओं में कलह हो।।११।।

क्रमागत-

नारदः-

प्रवर्षणं सस्यवृद्धिः क्षेमं हौताशपर्वणि।
अनावृष्टिः सस्यहानिर्दुर्भिक्षं याम्यपर्वणि।।

(ना.सं. २, ७)

कश्यपः-

वारुणे सर्वजन्तूनां क्षेमराज्ञामशोभनम्।
आग्नेयेऽम्बुहरं सस्याभयारोग्य करम्मतम्।।

(क.सं. ९, ७)

दुर्भिक्षकरं याम्यं लोकानां भीतिदं सततम्।
पर्वाधिपफलमुक्तं यत्तज्ज्ञातव्यमिनेन्द्वोर्ग्रहणे।।१२।।

याम्यपर्व में लोगों में निरन्तर भीति एवं दुर्भिक्ष हो। पर्वेशों का कहा हुआ फल सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण में भी समझना।।१२।।

यद्येकस्मिन्मासे चन्द्रार्कोपपप्लवो यदा भवति।
आतङ्कानर्घभयं क्षितिपतिकलहं विजानीयात्।।१३।।

यदि एक मास में सूर्य तथा चन्द्रग्रहण दोनों हों तो आतङ्क एवं अनर्घता का भय तथा राजाओं में परस्पर कलह हो, ऐसा समझना चाहिये।।१३।।

क्रमागत–
कश्यपः–

याम्यपर्वश्यनावृष्टिर्दुर्भिक्षं कलहागमः।
वलाहीने गर्भ भयमतिवेलेऽर्घनाशनम्।।
एकमासेन्दुतिग्मांशोरुपरागद्वयं यदिः।
राजाहवमनर्घत्वमवृष्टि व्याधितो भयम्।।
ग्रस्तोदितावस्तमितौ नृपधान्यविनाशदौ।
सर्वंग्रस्तौ चन्द्रसूर्यौ दुर्व्याधीतिभयप्रदौ।।
सौम्यायने विप्र भूपान्हन्त्यन्यान्दक्षिणायने।
उदगादिदृष्टोराहुर्द्विजादीन् हन्ति च क्रमात्।।

(क.सं. १, ८-११)

उदयनेऽर्कग्रहणं भवति च यदि वा शशांकस्य।
द्विजसज्जननृपहानिर्भवति परेषां च दक्षिणेत्वयने।।१४।।

उत्तरायण में सूर्य अथवा चन्द्र ग्रहण हो तो ब्राह्मण, सज्जन और राजा की हानि हो; किन्तु दक्षिणायन में दूसरे लोगों के लिए अनिष्टकारक होता है।।१४।।

क्रमागत–
नारदः–

वेलाहीन सस्यहानिर्नृपाणां दारुणं रणम्।
अतिवेले पुष्पहानिर्भयं सस्यविनाशनम्।।
एकस्मिन्नेव मासे तु चन्द्रार्कग्रहणं यदा।
विरोधं धरणीशानामर्थवृष्टिविनाशनम्।।
ग्रस्तोदितावस्तमितौ नृपधान्यविनाशदौ।
सर्वग्रस्ताविनेन्दूभौ क्षुद्व्राय्वाग्निभयप्रदौ।।

(ना.सं. २, ८-१०)

ग्रस्तोदयगेऽस्तमिते शारदसस्यावनीशनाशः स्यात्।
क्षुद्भयमामयभयदं निखिलग्रहणं भवेद्यदि वा।।१५।।

ग्रस्तोदय ग्रस्तास्त ग्रहणों में शारद फसलों तथा राजा का नाश, सर्वग्रास में भूखमरी (क्षुद्भय) और रोग भय होता है।।१५।।

सूर्य चन्द्रमा के दश ग्रासों के नाम

सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्द्दनामर्द्दाः ।
आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त इति ते दश ग्रासाः।।१६।।

सव्य, अपसव्य, लेहन, ग्रसन, निरोध, आमर्द्द, मर्द्द, आघ्रात, मध्यतम और तमोन्त्य ये दश प्रकार के सूर्य एवं चन्द्रमा के ग्रास कहे गए हैं।।१६।।

क्रमागत–

नारदः–

> द्विजार्दीश्चक्रमाद्हन्तिराहुर्दृष्टो दिगादितः।
> दशैव ग्रासभेदाः स्युर्मोक्षभेदास्तथा दश।।

(ना.सं. २, ११)

कश्यपः–

> ग्रासभेदादशविधा मोक्षभेदास्तथा दश।
> न शक्ता लक्षितुं देवाः किं पुनः प्राकृता जनाः।।

(क.सं. ९, १२)

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

> सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः।
> आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः।।

(व.सं. ५, ४३)

सव्यगते तमसि सति सर्वग्रासः शुभप्रदो जगतः।
अपसव्ये तमसि-सति त्वपसव्याख्या क्षितीशसंक्षोभः।।१७।।

ग्रहण समय में सूर्य या चन्द्र के सव्य (दक्षिण भाग) में राहु गमन करे तो संसार के लिए शुभप्रद होता है। यदि अपसव्य (वामभाग) में होकर चले तो अपसव्य नामक कहलाता है। यह राजाओं में संक्षोभ पैदा करता है।।१७।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

> सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयं च।
> अपसव्ये नरपतितस्करावमर्दैः प्रजानाशः।।

(वृ.सं. ५, ४४)

परितो जिह्वालीढः स ग्रासो मण्डलस्य लेहनो नाम्ना।
प्रीतिदमखिलजनानां सुवृष्टिदं सर्वसस्यानाम्।।१८।।

यदि सूर्य या चन्द्र बिम्ब को जिह्वा के समान राहु चाटता हो तो लेह नामक ग्रास होता है। इसे समस्त जनवर्ग में प्रीति और सभी फसलों के लिए सुन्दर वृष्टि होती है।।१८।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

> जिह्वोपलेढिपरितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः।
> प्रमुदितसमस्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही।।

(वृ.सं. ५, ४५)

अर्द्धादूनं ग्रहणं ग्रसनं विविधाभयप्रदं जगतः।
स्पर्शविमर्द्दान्मोक्षविमर्द्दमधिकं यदा भवति॥१९॥

सूर्य तथा चन्द्रमा का बिम्ब आधा या आधे से कम राहु द्वारा ग्रस्त हो तो ग्रसन नामक ग्रास होता है। इसमें संसार में अनेक प्रकार के रोगों का भय होता है। यदि स्पर्श विमर्दन से मोक्ष विमर्दन अधिक होता है॥१९॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

ग्रसनमितियदा त्र्यंशः पादो वा गृह्यतेथवाऽप्यर्द्धम्।
स्फीतनृपवित्तहानिः पीडा च स्फीतदेशानाम्॥

(वृ.सं. ५, ४६)

स निरोधो विज्ञेयस्त्वनिष्टदः सर्वभूतानाम्।
मण्डलमधिकं पीत्वा किंचित्कालं विलम्ब्य स निवृत्तः॥२०॥

वह निरोध नामक ग्रास सब प्राणियों के लिए अनिष्टदायक होता है। सूर्य या चन्द्रमण्डल को चारों ओर से ग्रस्त करता हुआ राहु विलम्ब से निवृत्त होता है॥२०॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

पर्यन्तेषु गृहीत्वामध्ये पिण्डीकृतं तमस्तिष्ठेत्।
स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत् सर्वभूतानाम्॥

(वृ.सं. ५, ४७)

स विमर्द्दो विज्ञेयः स च हानिकरश्च जन्तूनाम्।
मागधगौडकिरातद्रविडानामामयश्च नियमेन॥२१॥

वह विमर्द्द नामक ग्रास समस्त जन्तुओं के लिए हानिकारक समझें। मगध, गौड़, द्रविड़, किरात देशों के निवासियों को निश्चित रूप से रोगों से पीड़ित रखता है॥२१॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

अवमर्दनमिति निःशेषमेव सञ्छाद्य यदि चिर तिष्ठेत।
हन्यात् प्रधानभूपात् प्रधानदेशांश्च तिमिरभयः॥

(वृ.सं. ५, ४८)

आवृत्यारोहणवच्चक्राकारेण दृश्यते तमः पटलम्।
स च मर्द्दो विज्ञेयः समस्तराष्ट्रस्य नाशकरः॥२२॥

आवृत्यारोहन चक्राकारवत राहु पटल पर दिखाई दे तो वह मर्द्द नामक ग्रास होता है। इसमें समस्त राष्ट्र का नाश होता है॥२२॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमावृत्यदृश्यते भूयः।
आरोहणमित्यन्योऽन्यमर्दनैर्भयकरं राज्ञाम्।।

(वृ.सं. ५, ४९)

मुकुरोपरि निश्वासानीलसदृशं दृश्यते तमश्छन्नम्।
आघ्राताह्वयमखिलं शुभप्रदं सर्वजन्तूनाम्।।२३।।

यदि वाष्पयुत निश्वास वायु से मलिन नील सदृश दर्पण की तरह सूर्य या चन्द्रबिम्ब दिखाई दे तो इसे आघ्रात नामक ग्रास कहते हैं। यह सभी जन्तुओं के लिए शुभप्रद होता है।।२३।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिःश्वासमारुतोपहतः।
दृश्येताऽऽघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः।।

(वृ.सं. ५, ५०)

मध्ये तमसाऽविष्टं वितमस्तकं सर्वमण्डलं परितः।
तन्मध्यतमस्पर्शो मध्यमदेशस्य नाशकरः।।२४।।

यदि छाद्यबिम्ब का मध्यम भाग राहु से ढका हो शेष चारों तरफ निर्मल हो तो मध्यतम नामक ग्रास होता है। यह मध्य देश के लिए अनिष्टकारक होता है।।२४।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

मध्ये तेमः प्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः।
तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामयभयं च।।

(वृ.सं. ५, ५१)

पर्यन्ते भवति तमो न तु मध्ये तमोऽन्तकः सोऽपि।
ईतिभयं सस्यानां डामरमधिकं भवेत्तत्र।।२५।।

यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल के प्रान्त भाग में अधिक और मध्य भाग में थोड़ा, या न दिखाई दे तो तमोऽन्तक नामक ग्रास होता है। इसमें सस्यों को ईतिभय तथा उपद्रव भी अधिक हो।।२५।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

पर्य्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये।
सस्यानामीतिभयं भयमंस्मिंस्तस्कराणां च।।

(वृ.सं. ५, ५२)

ग्रहणकालिक राहु का वर्णानुसार फल

क्षेमसुभिक्षं श्वेते राहौ पीडां च विप्रमुख्यानाम्।
अनलभयं त्वनिलनिभे पीडा स्याद्वह्निजीविनां सम्यक्॥२६॥

यदि सूर्य या चन्द्रग्रहणकाल में राहु का वर्ण श्वेत हो तो क्षेम तथा सुभिक्ष हो; परन्तु ब्राह्मणादि चारों वर्णों को पीड़ाकारक हो। अग्नि के समान वर्ण होने पर अग्नि भय और अग्नि से जीवन यात्रा चलाने (लोहार, सुनारादि) वालों को पीड़ा हो॥२६॥

क्रमागत-
वराहमिहिरः-

श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशद्राहौ।
अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम्॥

(वृ.सं. ५, ५३)

हरितेत्वामयभीतिः सस्यानामीतिरोगभयम्।
कपिले शीघ्रगसत्वैर्भयमत्युग्रं च शबरजातीनाम्॥२७॥

हरित होने पर रोगभय, फसलों को ईति और रोगभय हो। कपिल वर्ण होने पर शीघ्र चलने वाले पशुओं को भय और शबर जाति के लोगों में भी भय हो॥२७॥

क्रमागत-
वराहमिहिरः-

हरिते रोगोल्बणता सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः।
कपिले शीघ्रगसत्त्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम्॥

(वृ.सं. ५, ५४)

दिनकररश्मिसमाने दुर्भिक्षं पक्षिसंघपीडा च।
धूम्रनिभाः क्षेमकराः सस्यानां मन्दवृष्टिदः सततम्॥२८॥

सूर्य किरणों के समान वर्ण हो तो दुर्भिक्ष और पक्षी समूह को पीड़ा हो, धुएं के समान हों तो फसलों के लिए कल्याणकारी और निरन्तर थोड़ी-थोड़ी वर्षा भी हो॥२८॥

क्रमागत-
वराहमिहिरः-

अरुणकिरणानुरुपे दुर्भिक्षवृष्ट्यो विहगपीडा।
आधूम्रे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च॥

(वृ.सं. ५, ५५)

कपोतारुणासदृशः श्यामनिभो वाऽऽमयं च दुर्भिक्षम्।
अति कृष्णं शूद्राणां व्याधिकरं भीतिदं च नरपाणाम्॥२९॥

कबूतर की तरह, लाल वर्ण अथवा श्याम वर्ण हो तो रोगभय एवं दुर्भिक्ष हो। अति कृष्ण वर्ण हो तो शूद्रों को व्याधिकारक और राजाओं के लिए भयकारक होता है।।२९।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

कपोतारुणकपिलश्यामाभे क्षुद्भयं विनिर्देश्यम्।
कापोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च।।

(वृ.सं. ५, ५६)

मरकतमणिपीतश्चेद्वैश्यध्वंसी सुभिक्षकरः।
गैरिकसदृशे युद्धं विद्युत्सदृशे च वह्निभयम्।।३०।।

मरकतमणि (पन्ना) की तरह अथवा पीत वर्ण हो तो वैश्यों का नाश; परन्तु सुभिक्षकारक भी होता है। गैरिक (गेरी) सदृश युद्धप्रद, बिजली सदृश अग्नि भयकारक होता है।।३०।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

विमलकमणिपीताभो वैश्वध्वंसी भवेत् सुभिक्षाय।
सार्चिष्यत्यग्निभयं गैरिकरूपे तु युद्धानि।।

(वृ.सं. ५, ५७)

दूर्वासमानवर्णे हारिद्रे वायुरुग्भयं जगतः।
पाटलकुसुमसमानस्त्वशनाद्भीतिप्रदो राहुः।।३१।।

दूर्वा समान श्यामवर्ण अथवा हल्दी सदृश पीतवर्ण होने पर संसार में वायु एवं रोग भयप्रद, पाटल (गुलाब) कुसुम समान राहु का वर्ण हो तो वज्र गिरने का भय होता है।।३१।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम्।
अशनिभयसम्प्रदायी पाटलकुसुमोपमो राहुः।।

(वृ.सं. ५, ५८)

पंकविदूषितरूपः क्षत्रियकुलनाशदस्त्ववृष्टिकरः।
बालार्काम्बुजसदृशस्त्वाहवदस्त्विन्द्रचापसदृशश्च।।३२।।

पंकविदूषित (कीचड़ लिप्त सदृश) राहु क्षत्रिय कुलनाशक एवं अल्पवृष्टि का

द्योतक होता है। बालार्कांबुज (प्रातः सायं कालिक बाल रवि कमल) और इन्द्रचाप सदृश राहु का वर्ण हो तो युद्धकारक होता है।।३२।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

पांशुविलोहितरूपः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च।
बालरविकमलसुरचापरूपभृच्छस्त्रकोपाय ।।

(वृ.सं. ५, ५९)

सूर्यचन्द्रग्रहण समय शुभाशुभलक्षण

ग्रहणसमयेऽतिवृष्टिः पवनोत्पाता भवन्ति यदा।
आतंकमरकभीतिर्विपुला स्यात्क्षुद्भयं चैव।।३३।।

सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के समय अतिवृष्टि, वायु द्वारा उत्पात हो तो आतंक, उपद्रव भीति हो तथा अधिक भुखमरी का योग भी हो।।३३।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः पुनर्ग्रहोमासषट्कपरिवृद्ध्या।
पवनोल्कापातरजः क्षितिकम्पतमोऽऽशनिनिपातैः।।

(वृ.सं. ५, ६३)

मङ्गलग्रस्त होने पर राहु फल

आवन्तिकावेरीनार्मदतीराश्रिताश्च ये च जनाः।
सहकौशलिका विलयं प्रयान्ति वसुधात्मजे ग्रस्ते।।३४।।

मङ्गल के ग्रस्त होने पर आवन्तिक, कावेरी, नर्मदा के किनारों पर बसने वाले तथा कौशलवासी लोगों का नाश होता है।।३४।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः।
दृप्ताश्च मनुजपतयः पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते।।

(वृ.सं. ५, ६४)

शशितनये ग्रस्ते सति सरयूनेपालसिन्धुतीराश्च।
स्त्रीबुधसज्जनशिशवः पीड्यन्ते विविधरोगैश्च।।३५।।

बुध के ग्रस्त होने पर सरयू नदी, नेपाल तथा सिन्धु तट के लोग स्त्री, विद्वान् सज्जन तथा बच्चे विविध रोगों से पीड़ित होते हैं।।३५।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

अन्तर्वेदीं सरयूं नेपालं पूर्वसागरं शोणम्।
स्त्रीनृपयोधनकुमारान् सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति।।

(वृ.सं. ५, ६५)

ग्रहणोपगते जीवे बुधमित्रसमुद्रतीरसम्भूताः।
डामरभूतविकारैर्विलयं यान्ति प्रकाशिताद्यैश्च।।३६।।

बृहस्पति के ग्रस्त होने पर विद्वान्, मित्र, समुद्र के किनारे बसने वाले, उत्पात एवं पञ्चभूत विकारों द्वारा विलय को प्राप्त होते हैं।।३६।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

ग्रहणोपगते जीवे विद्वन्नृपमन्त्रिगजहयध्वंसः।
सिन्धुतटवासिनामप्युदाग्दिशंसंश्रितानां च।।

(वृ.सं. ५, ६६)

भृगुतनये राहुगते दशार्णजाः कैकयाः समाद्रेयाः।
आर्यावर्त्ताः सुखिनः पीड्यन्ते सलिलनिलयाश्च।।३७।।

शुक्र के ग्रस्त होने पर दशार्ण, कैकय (काश्मीर), समाद्रेय (पर्वतवासी), आर्यावर्त्त स्थित स्त्री-पुरुषगण सुखी होते हैं; परन्तु जलचर जलजीवी दुःखी होते हैं।।३७।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

भृगुतनये राहुगते दाशेरककैयाः सयौधेयाः।
आर्यावर्त्ताः शिबयः स्त्रीसचिवगणाश्च पीड्यन्ते।।

(वृ.सं. ५, ६७)

दिनकरतनये ग्रस्ते सौराष्ट्राः संकराश्च कैवर्त्ताः।
बर्बरकुत्सितधान्यं विलयं यान्ति प्रभूतधनिकाश्च।।३८।।

शनि ग्रस्त हो तो सौराष्ट्र (गुजरात) देशवासी वर्णसंकर, कैवर्त्त (धीवर नाविकादि), बर्बर (हिंसक) जाति के लोग तथा क्षुद्रधान्य का नाश करते हैं; परन्तु धनाढ्य लोग प्रवृद्ध होते हैं।।३८।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रिकधातवोऽर्बुदान्त्यजनाः।
गोमन्तपरियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु।।

(वृ.सं. ५, ६८)

ऊर्जेऽपि मासे ग्रहणं कृशानोर्भीतिं च सापत्नजनात्करोति।
काम्बोजं काश्मीरसुमागधांश्च सशूरसेनान्द्रविडान्निहन्ति।।३९।।

यदि कार्तिक अमावास्या को सूर्यग्रहण तथा पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो अग्नि एवं शत्रु वर्ग से भीति हो। काम्बोज, काश्मीर, मगध, शूरसेन, द्रविड़ देशवासियों की हानि हो।।३९।।

क्रमागत-

वराहमिहिरः-

कार्त्तिक्यामनलोपजीविमगधान् प्राच्याधिपान् कोशलान्।
कल्माषानथशूरसेनसहितान् काशींश्चसन्तापयेत्।।
हन्यादाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो।
दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम्।।

(वृ.सं. ५, ६९)

सुभिक्षकृत्क्षेममतीववृष्टिर्मासे सहे पर्वणि रुक्प्रदः स्यात्।
काश्मीरकान् कौशलकान्सपौण्ड्रान्दुनोति राहुः खलु यायजूकान्।।४०।।

यदि मार्गशीर्ष अमावास्या को सूर्यग्रहण तथा पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो सुभिक्ष, जगत् कल्याण, अतिवृष्टि एवं रोगभयप्रद हो, कश्मीर, कौशल, पौण्ड्र यज्ञकर्त्ताओं को राहु पीड़ित करता है।।४०।।

क्रमागत-

वराहमिहिरः-

काश्मीरकान् कौशलकान् सपुण्ड्रान् मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च।
ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये सुवृष्टिकृत्, क्षेमसुभिक्षकृच्च।।

(वृ.सं. ५, ७०)

पौषेद्विजनक्षत्रजनोपतापस्त्वनर्घवृष्टिः क्षितिपालभीतिः।
ध्वंसं व्रजन्त्यत्र विदेहपौण्ड्रमद्रात्रिगोत्रप्रभवाः सगौडाः।।४१।।

यदि पौषमास की अमा में सूर्यग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण हो तो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जनों को ताप, अनर्घना (मूल्यों में वृद्धि एवं ह्रास), अतिवृष्टि, अनावृष्टि, राजभय, विद्रोह, पौण्ड्र, मद्र अत्रिगोत्रोत्पन्न गौड़ ब्राह्मणों की हानि होती है।।४१।।

क्रमागत-

वराहमिहिरः-

पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः ससैन्धवाख्याः कुकुराविदेहाः।
ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विन्द्यादभिक्षयुक्तम्।।

(वृ.सं. ५, ७१)

गजाश्वसंघान्द्विजदेवभक्तान्धर्मेरतांस्तान्पितृमातृभक्तान्।
दुनोति राहुर्मनुजांश्च माघे सस्यार्घवृष्टिं प्रचुरां करोति।।४२।।

यदि माघ मास की अमावास्या में सूर्यग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण हो तो हाथी, घोड़ों के समूह, ब्राह्मण और देवताओं के भक्त, स्वसाध्य धर्म में निरत माता-पिता के भक्त जनों को राहु पीड़ित करता है; परन्तु अन्न, भाव एवं वृष्टि की वृद्धि भी हो।।४२।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

माघे तु मातृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान्।
स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान्।।
वङ्गाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहु-
र्वृष्टिं च कर्षकजनाभिमतां करोति।।

(वृ.सं. ५, ७२)

तपस्य मासि द्विजसज्जनानां काम्बोजवाह्लीककलिङ्गजानाम्।
हानिप्रदः सस्यसुवृष्टिदश्च दृष्टं तमो भूपविरोधकश्च।।४३।।

यदि फाल्गुन मास की अमावास्या को सूर्यग्रहण और पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो राहु ब्राह्मणों, सज्जनों, काम्बोज, बाह्लीक, कलिङ्गवासियों के लिए हानिप्रद, राजाओं में परस्पर विरोधकारक; परन्तु सुवृष्टि और फ़सलों को देने वाला होता है।।४३।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्व वङ्गास्मकावन्तिकमेकलानाम्।
नृत्यज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुष्करक्षत्रतपस्विनां च।।

(वृ.सं. ५, ७३)

रूपोपजीवाखिलपण्यजीविहास्यज्ञशिल्पाखिललेखकानाम्।
पीडाप्रदो देवपतिश्च राहुर्मासे मधौ पर्वणि मन्दवर्षी।।४४।।

यदि चैत्रमास की अमावास्या को सूर्यग्रहण तथा पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो राहु राजसेवक, रूपोपजीवी (वेश्यादि) दुकानदारों, हास्य विशेषज्ञों (विदूषकादि), चित्रकार अथवा शिल्पी, समस्त लेखकगण को पीड़ित करता है, फिर भी देवपति इन्द्र मध्यम वर्षादायक होते हैं।।४४।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

चैत्र्यां तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान्।
रूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण्यान्।।

पौण्ड्रौड्रकैकयजनानथ चाश्मकांश्च।
तापः स्पृशत्यमरपोऽत्र विचित्रवर्षी।।

(वृ.सं. ५, ७४)

कार्पासमुद्गाः सतिला विनाशमायान्ति मूलान्यखिलानि तत्र।
वैशाखमासे ग्रहणे कलिङ्गाश्चेक्ष्वाकुयोधाश्च तथा सुभिक्षम्।।४५।।

यदि वैशाख मास की अमावास्या को सूर्यग्रहण तथा पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो कपास, मूंगी, तिलादि, कलिङ्गवासी, इक्ष्वाकुवंशीय योध वर्ग समूल नाश हों; परन्तु सुभिक्ष रहे।।४५।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

वैशाखमासे ग्रहणे विनाशमायान्ति कर्पासतिलाः समुद्गाः।
इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः सोपल्लवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन्।।

(वृ.सं. ५, ७५)

नरेन्द्रपत्नीद्विजसस्यवृद्धिः सौम्या जनाश्चोरकिरातसंघाः।
प्रध्वंसमायान्ति तथा सुवृष्टिर्ज्येष्ठे च मासे ग्रहणं यदि स्यात्।।४६।।

यदि ज्येष्ठ मास की अमावास्या को सूर्यग्रहण तथा पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो राजपत्नी, ब्राह्मण, सस्यवृद्धि, श्रेष्ठ जनवर्ग, चोर, किरात (शिकार से जीविका चलाने वाले) तथा सुवृष्टि इन सबों का नाश होता है।।४६।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि वृष्टिश्च महागणाश्च।
प्रध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः साल्वैः समेताश्च निषादसङ्घाः।।

(वृ.सं. ५, ७६)

आषाढमासे ग्रहणं तडागवापीनदीदीर्घिकवप्रपूर्णाः।
काश्मीरगान्धारपुलिन्दचीनालयं प्रयान्त्यल्पजनाः सुतुष्टाः।।४७।।

यदि आषाढ मास की अमावास्या को सूर्यग्रहण तथा पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो तालाब, वापी, नदी, गृहवापी, ऊँची प्राचीरें, कश्मीर, गांधार, पुलिन्दवासी नाश हों; परन्तु कुछ लोग सन्तुष्ट भी रहें।।४७।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

आषाढपर्वण्युदपानवप्रनदीप्रवाहान् फलमूलवार्त्तान्।
गान्धारकाश्मीरपुलिन्दचीनान् हतान् वदेद्मण्डलवर्षमस्मिन्।।

(वृ.सं. ५, ७७)

काम्बोजकान्मागधशूरसेनान्पुलिन्दचीनानथ कौरवांश्च।
निहन्ति देवोऽपि च मन्दवर्षी दृष्टो नभो मासि च सैंहिकेयः॥४८॥

यदि श्रावण मास की अमावास्या को सूर्यग्रहण तथा पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो काम्बोज, मागध, सूरसेन, पुलिन्द, चीन और कौरबवासियों का नाश हो तथा इन्द्रदेवता मन्द वृष्टि करें॥४८॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

काश्मीरान् सपुलिन्दचीनयवनान् हन्यात् कुरुक्षेत्रजान्।
गान्धारानपिमध्यदेशसहितान् दृष्टो ग्रहः श्रावणे॥
काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तानिमा-
नन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम्॥

(वृ.सं. ५, ७८)

म्लेच्छान्सुराष्ट्रांश्चकलिङ्गवङ्गान्खशांश्च सौवीरभवान् किरातान्।
स्त्रीणां च गर्भं विनिहन्ति राहुर्नभस्यमासे भुवि भूरिवृष्टिः॥४९॥

यदि भाद्रपद में अमा और पूर्णिमा को क्रमशः सूर्य तथा चन्द्रग्रहण हो तो राहु म्लेच्छ, सौराष्ट्र, कलिङ्ग, बङ्ग, खश (नेपाल), सुवीर देशों में रहने वाले, भीलों एवं स्त्रियों के गर्भों का नाश होता है; परन्तु प्रचुर वर्षा भी होती है॥४९॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

कलिङ्गवङ्गान् मगधान् सुराष्ट्रान् म्लेच्छान् सुवीरान् दरदाश्मकांश्च।
स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति सुभिक्षकृद् भाद्रपदेऽभ्युपेतः॥

(वृ.सं. ५, ७९)

काम्बोजचीनान् यवनान्सशल्यान् त्रैगर्तिकान्दर्दुरमागधांश्च।
आनर्त्तपौण्ड्राभिषजश्च राहुर्निहन्ति मासे त्विषसंज्ञिकेऽपि॥५०॥

यदि आश्विन मास की अमावास्या को सूर्यग्रहण और पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण हो तो राहु काम्बोज, चीन, यवन शल्य, त्रैगर्तिक, दर्दुर, मगध, आनर्त, सौराष्ट्र, पौण्ड्र देशवासियों तथा औषधिकर्म करने वालों का नाश करता है॥५०॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

काम्बोजचीनयवनान् सहशल्यहृद्दि-
भर्बाह्लीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात्।

आनर्तपौण्ड्रभिषजश्च तथा किरातान्।
दृष्टोऽसुरोऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च।।

(वृ.सं. ५, ८०)

हनू च कुक्षीत्वथपायुभेदैः संछर्द्दनं यज्जरणं ततश्च।
मध्ये विदारं च विदारमन्ते मोक्षप्रभेदा दश चन्द्रभानवोः।।५१।।

दक्षिण हनु, वामहनु, दक्षिण कुक्षि, वाम कुक्षि, दक्षिण पायु, संछर्दन, जरण, मध्य विदरण, अन्त्य विदरण ये सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के दश मोक्ष कहे गए हैं।।५१।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः सञ्छर्दनं च जरनं च।
मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्ययोर्मोक्षाः।।

(वृ.सं. ५, ८१)

दक्षिणहनुभेदन लक्षण एवं फल

दक्षिणहनुभेदसंज्ञितमाग्नेय्यामपगमनमिन्दोश्च ।
अपिरुक् सस्यविमर्द्दनमतिवृष्टिर्नरपतेः क्षोभः।।५२।।

यदि चन्द्रग्रहण में अग्नि कोण में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् अग्नि कोण में मोक्ष हो तो दक्षिण हनु नामक मोक्ष होता है। इसमें रोग, धान्य का नाश, अतिवृष्टि और राजाओं में परस्पर क्षोभ होता है।।५२।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

आग्नेयामपगमनं दक्षिणहनुभेदसंज्ञितं शशिनः।
सस्यविमर्दो मुखरुग् नृप पीडास्यात् सुवृष्टिश्च।।

(वृ.सं. ५, ८२)

वामहनुभेदनलक्षण एवं फल

अभिगमनं चैशान्यां वामो हनुभेद संज्ञितः सोऽपि।
शस्त्रभयं रोगभयं करोति वृष्टिं च राजहानिं च।।५३।।

यदि ईशान कोण में राहु निवर्तित हो अर्थात् ईशान कोण में मोक्ष हो तो वाम हनुभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें शस्त्रभय, रोगभय, वृष्टि तथा राज हानि होती है।।५३।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकुमारभयदायी।
मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विन्धातसुभिक्षं च।।

(वृ.सं. ५, ८३)

दक्षिण कुक्षिभेद लक्षण और फल

दक्षिणपार्श्वविमोक्षो दक्षिणकुक्षिप्रभेदसंज्ञः सः।
नृपतिकुलेभ्यः पीडां करोति सापत्न्यजनसंघान्॥५४॥

यदि चन्द्रग्रहण में दक्षिण पार्श्व में मोक्ष हो तो दक्षिण कुक्षि भेद नामक मोक्ष होता है। इसमें राजकुल को तथा शत्रु जनसमूह को पीड़ा होती है॥५४॥

विशेष–गणित द्वारा दक्षिण दिशा से होकर राहु का निकलना असम्भव-सा प्रतीत होता है। यदि ऐसा हो तो इसे विशेष उत्पात समझना चाहिये। महर्षि वसिष्ठ के मतानुसार ऐसा उत्पात सम्भव है।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

दक्षिणकुक्षिविभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः।
पीडानृपपुत्राणामभियोज्यादक्षिणारिपवः॥

(वृ.सं. ५, ८४)

वामकुक्षिभेद लक्षण और फल

उत्तरमार्गे विचरति राहौ वामस्तु कुक्षिभेदः स्यात्।
गर्भविपत्तिः स्त्रीणां मध्यानि च तानि पूर्वसस्यानि॥५५॥

उत्तर दिशा में राहु मोक्ष हो तो वामकुक्षि भेद संज्ञक मोक्ष होता है। इसमें स्त्रियों के गर्भों का नाश तथा पूर्व फसलें मध्यम होती हैं॥५५॥

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

वामस्तुकुक्षिभेदो यदयुत्तरमार्गसंस्थितो राहुः।
स्त्रीणां गर्भविपत्तिः सस्यानि च तत्र मध्यानि॥

(वृ.सं. ५, ८५)

दक्षिण पायुभेद लक्षण और फल

दक्षिणपार्श्वाख्यः स च नैर्ऋतकोणाच्च याम्यदिग्गमनम्।
बहुविधसस्यामयकृत्त्वपरसस्यस्य नाशकरम्॥५६॥

यदि मोक्ष काल में राहु नैर्ऋत्य कोण से दक्षिण दिशा में चले तो दक्षिण पायु भेद होता है। इसमें बहुविध फसलों की हानि और पश्चिम धान्यों का नाश होता है॥५६॥

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

नैर्ऋतवायव्यस्थौ दक्षिणवामौ तु पायुभेदौ द्वौ।
गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे॥

(वृ.सं. ५, ८६)

उत्तरपायुभेद लक्षण और फल

आरभ्याऽनिलककुभश्चोत्तरमार्गस्थितो यदा राहुः।
उत्तरपार्श्वाख्यः स च नानामयभूपभीतिदः सततम्।।५७।।

यदि मोक्ष काल में राहु वायव्य कोण से उत्तर दिशा में चले तो उत्तरपार्श्वभेद होता है। इसमें नाना प्रकार के रोग और राजभय होता है।।५७।।

सञ्छर्दनमोक्ष लक्षण और फल

प्रग्रहणं चेत्प्राच्यां दिशि कृत्वा प्रागेव सर्पति च।
सञ्छर्दनाख्यमोक्षः सुभिक्षदः सर्वजन्तूनाम्।।५८।।

यदि चन्द्र बिम्ब के पूर्वभाग से स्पर्श करके राहु उसी तरफ से निकलता हो अर्थात् बिम्ब के पूर्व भाग में ही स्पर्श और मोक्ष हो जाते हैं तो संछर्दन नामक मोक्ष होता है इसमें सभी जन्तुओं के लिए सुभिक्ष होता है।।५८।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेत।
सञ्छर्दनमिति तत्क्षेमसस्यहार्दिप्रदं जगतः।।

(वृ.सं. ५, ८७)

जरणमोक्ष लक्षण और फल

प्रागेव प्रग्रहणं कृत्वा त्वपसर्पणं प्रतीच्यां च।
जरणाख्यो विज्ञेयः स च जन्तुविनाशनं कुरुते।।५९।।

चन्द्रबिम्ब के पूर्व भाग में स्पर्श और पश्चिम भाग में मोक्ष हो तो जरण नामक मोक्ष होता है। इसमें जन्तुओं का नाश होता है।।५९।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम्।
क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्ना न शरणमुपयान्ति तत्र जनाः।।

(वृ.सं. ५, ८८)

मध्यविदरणमोक्ष लक्षण और फल

आदौ मध्यविकासः पश्चादन्ते च विदरणं मध्यम्।
सततं त्वन्तः कलहं करोति सौभिक्षमतिवर्षम्।।६०।।

ग्रहण के आरम्भकाल में ही मण्डल के मध्य भाग में फिर अन्त में प्रकाश हो तो मध्यविदारण नामक मोक्ष होता है। इसमें निरन्तर कलह; परन्तु सुभिक्ष और वर्षा अधिक होती है।।६०।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरणं नाम।
अन्तःकोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम्।।

(वृ.सं. ५, ८९)

अन्त्यविदरणनामक मोक्ष लक्षण और फल

प्रत्यन्ते विमलतरः पश्चान्मध्यं च विदरणं चान्तम्।
मध्यान्तदेशनाशं करोति सस्यस्य वै नाशम्।।६१।।

ग्रहण समय में चन्द्र बिम्ब प्रान्त भाग में निर्मलता और पश्चिम में मध्यम अर्थात् निर्मलता कम हो तो अन्त्य विदरण नामक मोक्ष होता है। इसमें मध्यप्रदेश तक जनहानि एवं फसलों का नाश होता है।।६१।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

पर्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्त्यदरणाख्यः।
मध्याख्यदेशनाशः शारदसस्यक्षयश्चास्मिन्।।

(वृ.सं. ५, ९०)

पूर्वोक्त दश मोक्षों का विचार सूर्यग्रहण में भी

दशविधमोक्षाः कथिता विज्ञेया भास्करग्रहणे।
प्रग्रहणं प्रागिन्दोर्मोक्षः पश्चाद्विपर्ययाद्द्युमणेः।।६२।।

ये पूर्व कथित चन्द्रग्रहण के दश मोक्षों का विचार सूर्य ग्रहण में भी करना चाहिये। चन्द्रमा के मोक्षों की तरह ही दिग्वैपरीत्य से सूर्य के दश मोक्षों का फल एवं लक्षण है। वहाँ की पूर्व दिशा के स्थान में यहाँ पश्चिम दिशा, पश्चिम दिशा के स्थान पर पूर्व दिशा, उत्तर के स्थान पर दक्षिण, दक्षिण के स्थान पर उत्तर दिशा कल्पना करनी चाहिये।।६२।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र।
पूर्वादिक् शशिनि यथा तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या।।

(वृ.सं. ५, ९१)

।।इति श्री वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां राहुचाराध्यायो नवमः।।९।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के राहुचाराध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त।।९।।

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१-प्रछत्ता, ज२-प्रक्कन्नामयसमर, वा.-मछून्नामरूपै (प्रच्छन्नामरूपं) ज१-प्रधानसमयेभूत, ज२-स्थुप्रधानसमयेभू, ज.मो. प्रदानसमयेभूत (सुधाप्रदानेऽभूत्)

१ (ब) ज१-छिन्नति, ज२-छिन्नंति, ज.मो. छिन्नस्चक्रेण, वा. ज्ञात्वाद्धिनक्षिचक्रेत् (ज्ञात्वाच्छिंनद्धिचक्रेण)

२ (अ) ज१-अमृतत्वात्रत्वा, ज२-त्वान्नररवाहरि (अमृतमयत्वान्नत्वा), ज१, ज२-शिरो (शिर), ज१-वाचषिस्मतेरहसि, ज२-वाचविस्मितेरुदसि (उवाच विस्मिते सदसि)

२ (ब) ज१, ज२-ग्रहसमितां (ग्रहसमता), ज१, ज२-पाठोनत्ति (मां रक्ष तवशरणम्)

३ (अ) ज१-विसज्जर्पित, ज२-विसर्पितं (विससर्ज)

३ (ब) ज२-सर्वाणि (सर्वपर्वाणि च)

४ (अ) ज२-विक्षेपयस्यासादूराहुरंगतं सतभे (वशाद्दूराद्दूरं गतः सततम्)

४ (ब) ज२-षण्मासभ्यंतरिता, वा.-शतमासाभ्यतरितगहणं (षण्मासांसाभ्यन्तरिताद्)

५ (अ) ज२-पाठस्यलोपः (राहुरसौ), ज२, ज२-तद्नु (दनुज), मु.पु. भुजमाकारेण (भुजगाकारेण)

५ (ब) ज२-भूगोलगोभागेद (भूगोलाधभागे) ज२-यदा (सदा)

६ (अ) ज२-उदताखिल, ज२-उदिताखिर (उद्भूताखिल), ज२-चायेन्दुमु, ज२-छायेन्दुमु (छादयतिसेन्दुमुपरिस्थम्)

६ (ब) ज२-दामत्य (गत्य), ज२-शीम्रगः (शीघ्रगः)

७ (अ) वा-वृष्टया (सृष्टया), ज२-यैर्थेतं, वा.-पर्यतं (पर्यन्तम्)

७ (ब) ज१-पर्वसमूहे, ज२-सर्वसमूहे, वा.पर्वसुमुह (पर्वसमूहं), ज१-ज२-सप्तभिरविशिष्ट (सप्तभिरवशिष्ट), ज१-शर्वेशाः, ज२-प्रवेशः, वा.-पूर्वेशा (पर्वेशः)

८ (अ) वा.-वहण (वरुण)

८ (ब) ज१-सर्वेशानां, वा.-पर्येशानां (पर्वेशानां), ज१, ज२-क्रमशः (क्रमशस्तु) ज१-फलनितानि, ज२-फलानितानिवक्ष्यते, वा.-फलानिवक्ष्यते (फलानि वक्ष्यन्ते)

९ (अ) ज.मो. सुज्जनहानि (सज्जनहानिः), ज२-तुलावृष्टि, वा.-वृष्टिजाभीति (वृष्टिजाद्भीतिः)

१० (अ) ज२-क्षिति (क्षितिपति), ज१-ज२-सुदृष्टि (सुवृष्टिः), ज१-ज२-वृष्टिस्तु (वृष्टिश्च), वा.-कौवेरैः (कौबेरे)

११ (अ) ज१-ज२-क्षेमकरा (क्षेमरी)

११ (ब) ज२-वाग्निभयं (चाग्निभयं), ज२-त्वतुलावृष्टिः)

१२ (अ) ज१-द्वयोग्रहणे, ज२-द्वयोः गुरुयोः, ज.मो. द्वयोर्ग्रहयो, द्वयोर्ग्रहणयोः, मु.पु.-ज्ञातव्यं चेन्द्विनोर्ग्रहणे, वा.-द्वयोर्ग्रहणो (ज्ञातव्यमिनेन्द्वोर्ग्रहणे)

१३ (अ) ज१, ज२-प्लवौ, वा.-पर्वो (प्लवो)

१३ (ब) ज१-अनर्य, ज२, आनर्घ (आनर्घभयं)

१४ (अ) ज१-ज२-शशांकस्यात् (शशांकस्य)

१४ (ब) ज२-दक्षिणावयने (दक्षिणेत्वयने)

१५ (अ) ज१-वनिशनाश, ज२-वासारदशस्थाविनाशिताश (शारदसस्यावनीशनाश:)

१५ (ब) ज१-क्षुयुद्‌भमामनपदं, ज२-क्षुद्धयमामयतपरं (क्षुद्‌भयमामयभयदं)

१६ (अ) ज१-सस्तापसव्यज्ञेह, ज२-पाठोनास्ति, वा.-सव्यायासव्युलेहा (सव्यापसव्यलेह)

१६ (ब) ज२-पाठोनास्ति, वा.-आघ्रतं (आघ्रातं)

१७ (अ) ज१, ज२-सव्यगत (सव्यगते), ज२-सवोग्रास (सर्वग्रास:) वा.-शुभप्रदोज्जगत: (शुभप्रदोजगत:)

१७ (ब) ज१-सतितमसित्वपुरुषाख्या:, ज२-सतितमत्वपुरुव्याध्य (तमसिसतित्वप-सव्याख्या)

१८ (अ) ज१-ज२-संग्रामो (सग्रासो), ज१-मंडलहेलनांनाम, ज२-मंडलहेलनेनाम (मण्डलस्यलेहनोनाम्ना)

१८ (ब) वा.-जनाना (जनानां)

२० (अ) ज१, ज२-निखिलभूतानां (सर्वभूतानाम्)

२० (ब) वा.-विलंव्यमुनिवृत्त: (विलम्ब्य स निवृत्त:)

२१ (अ) ज१-पाठस्यलोप:, ज२-अवमर्द्दोविज्ञेयासवहानिश्चकरश्च (स विमर्द्दो विज्ञेय: स च हानिकरश्च जंतूनाम्)

२१ (ब) ज२-मागधो (मागध), ज१-नामयपश्चिमेषियमेन, ज२-नासंयश्चापिघमेन (मयश्चनियमेन)

२२ (अ) ज१-ज२-आवृत्तरोहिणाचक्रकारेणदृशंदृश्यततमछन्नं, (आवृत्यारोहण-वच्चक्राकारेण दृश्यते तम: पटलम्)

२२ (ब) ज१, ज२-पाठोनाऽस्ति

२३ (अ) ज१, ज२-पाठोनास्ति, वा.-तमछिन्नं, मु.पु. तमश्छत्रम् (तमश्छत्रम्)

२३ (ब) ज१-आघ्राताद्वयमतुलं, ज२-आघ्रातपहुमतुलंसुभप्रदं, वा.-आघ्राताद्वयनिखिलं शुभप्रद (आघ्राताह्वयमखिलं शुभप्रदं)

२४ (अ) ज१-ज२-तमसविष्टं (तमसाऽविष्टं), ज१; ज२-वित्तमस्कंधं, मु.पु. वितमस्कं (वितमस्कं), ज२-सर्वयमलं (सर्वमण्डलं), ज१, ज२-पतितं (परित:)

२४ (ब) ज१, ज२-तमसास्पर्शो (तन्मध्यतमस्पर्शो)

२५ (अ) ज१, ज२-पर्यन्त, वा. पर्यते (पर्यन्ते), वा.-सतमो (तमो), ज१-तमार्तसंज्ञक:, ज२-तमोतसंज्ञक:, वा.-मध्येतमोतक: (मध्येतमोऽन्तक:)

२५ (ब) वा.-सस्याना (सस्यानां)

२६ (ब) ज१, ज२-अनिलभयं, वा.-अनिलभीति (त्वनिलनिभे)

२७ (अ) ज१, ज२-हरित्वामपि (हरितेत्वामयभीतिः)

२७ (ब) मु.पु.-शीघ्रगतग्रासैः शीघ्रगसत्वैः

२७ (ब) ज१-सुचर, ज२-सचर (शबर)

२८ (अ) ज१-समादुभिक्षं, ज२-दिनकरस्मिदुर्भिक्षं, वा.-समानेदुर्भिक्षे (समानेदुर्भिक्षं) ज१-पक्षिसंघपीडास्यात्, ज२-पक्षपीडास्यात् (पक्षिसंघपीडा च)

२८ (ब) ज१, ज२-धूमनिभ (धूम्रनिभाः), वा.-सस्यान (सस्यानां)

२९ (अ) ज१-अरुणशदृश, ज२-तरुणशब्द (अरुणसदृशः), ज१-स्यामनिभो, ज२-सस्यामानिभो (श्यामनिभो), ज२-निभोर्भयं, वा-वाऽभयं (वाऽऽभयं) ज१, ज२-दुर्भिक्षात् (दुर्भिक्षम्)

२९ (ब) ज१-नरपालान, ज२-नरपालात्, वा.-नरपाणम् (नरपाणाम्)

३० (अ) ज१-वैश्यघ्नन्ति, ज२-द्वैश्यघनंती, वा.-दघसी (वैश्यध्वंसी), ज२-स्वभिक्षकरः (सुभिक्षकरः)

३० (ब) ज२-युद्ध (युद्धं)

३१ (अ) ज२-पूर्वा (दूर्वा), ज१-वहरिद्रैवं चरुदुभयं, ज२-हरिद्रैवंचरुद्रंघ, मु.पु.-वाऽथरुग्भयं, वा.-हरिद्रेचापरुक्भयं (हारिद्रे वायुरुग्भयं)

३१ (ब) ज२-पाटले, वा.-पाट (पाटल), वा.कंसुम (कुसुम), ज१-स्तिवंद्रचापसदृशश्च, ज२-स्त्वसना, वा.-भीतिप्रदोराहुः (वशनाद्भीतिप्रदो राहुः)

३२ (अ) ज१-पंकविभूषित, ज२-पंकचिबुदूषितरल्पः (पंकविदूषितरूपः)

३२ (ब) ज१, ज२-लालार्काम्बुज, वा.-वालाकाबुज (बालार्काबुज)

३४ (ब) ज१, वसुधात्मजे, ज२-पाठोनास्ति, मु.पु. वसुमगात्मजे (वसुधात्मजे)

३५ (अ) ज१, ज२-पाठोनास्ति, वा. सिधु (सिन्धु)

३५ (ब) ज२-संज्ञसिसंचपीड्यते (सज्जनशिशवः पीड्यन्ते)

३६ (अ) ज१-ग्रहनेपगते, ज२-ग्रहणोपाते (ग्रहणोपगते)

३६ (ब) ज२-प्रलौकिकावेश्यः, ज२-प्रलौकिकावेश्या (प्रकाशिताद्यैश्च)

३७ (अ) ज१, ज२-समुद्रेया, वा.-सर्मद्रेया (समाद्रेयाः)

३७ (ब) ज२-वार्त्ता (आर्यवर्त्ताः), ज२-पीडान्ते, वा.-विड्यते (पीड्यन्ते)

३८ (अ) ज१, ज२-शैकरी, ज.मो.-संकरश्च, वा.-सैकराश्च (संकराश्च)

३८ (ब) ज१-अर्वर, ज२-अर्षल (वर्वर), ज१, ज२-प्रभूतधनिनश्च, ज.मो.-प्राभूत (प्राभूतधनिकाश्च)

३९ (अ) ज१-कृशानोर्भतीव, ज२-कृशानोभवती (कृशानोर्भीतिं), ज१, ज२-सायल्पजनाकरोति (सापत्नजनात्करोति)

३९ (ब) ज१, ज२-समागधांश्च, ज.मो. कमागधांश्च, मु.पु. सुभागन्धांश्च (सुमागधांश्च) ज१-ज२-ससूरसेनाद्रविडानिहन्ति, वा.-ससूरसेनानविद्राविडान्तिहंति (सशूरसेनान्द्रविडान्निहन्ति

४० (ब) ज१, ज२-कौशलन्कान्तषोंडायुयोसिदुःखसुपायकृकान्, ज.मो.-धुनोतिराहुः (कौशलकान्सपौण्ड्रान्दुनोति राहुः)

४१ (अ) ज१, ज२-जनोपपात्तत्वनर्यवृष्टि (जनोपतापस्त्वनर्घवृष्टिः)

४१ (ब) ज१, ज२-प्रगंत्यत्र (ब्रजन्त्यत्र)

४२ (अ) ज१-गजाश्च, ज२-गजश्च (गजाश्च), ज१-सिंयान् (संघान्), ज१-ज२-धर्मेरतान्स्त्वान्वितमांश्च (धर्मेरतांस्तान्पितृमातृभक्तान्)

४२ (ब) ज१, ज२-धुनोति (दुनोति), ज१-माथेसस्यार्यवृष्टिः प्रचुरं, ज२-मार्धसस्यार्घवृद्धिः पुचुरं (माघेसस्यार्घवृष्टि प्रचुरां)

४३ (अ) ज१, ज२, ज.मो. वा.-तपस्यमासे (तपस्यमासि)

४३ (ब) ज१, ज२-ज.मो.-भूपविरोधकृच्च (भूपविरोधकश्च)

४४ (अ) मु.पु. भूपोपजीवा (रूपोपजीवा), ज२-यायजीव (पण्यजीवि)

४४ (ब) वा.-दवर्यतश्च (देवपतिश्च), ज१, ज२-राहौमासे (राहुर्मासे)

४५ (अ) ज१, ज२-कार्यासमुद्भाः, ज.मो. कार्पाशमुद्गाः (कार्पासमुद्गः), ज१-सुलिलाद्, ज२-सलिलाः (सतिला)

४५ (ब) ज१, ज२-ग्रहणं (ग्रहणे), मु.पु. कलाङ्गाश्चेक्ष्वाकुयोधाश्च (कलिङ्गाश्चेक्ष्वाकुयोधाश्च)

४६ (अ) ज२-वृष्टिः (वृद्धिः)

४६ (ब) वा.-प्रध्वंसमायाति (प्रध्वंसमायान्ति), ज१, ज२-मासि (मासे)

४७ (अ) ज१, ज२-दीर्घकविप्रपूर्णाः, वा.-वप्रपूरर्णोः (दीर्घकवप्रपूर्णाः)

४७ (ब) ज१-यजुश्चान्यजनांसंतुष्टाः, ज२-वील्वषंययुश्चान्यजनातुसुष्टा, वा.-ययुश्चान्यजनाः (प्रयान्त्यल्पजनाः सुतुष्टा)

४८ (अ) ज१, ज२, वा. सूर (शूर), ज२-वीनानथ (चीनानथ)

४८ (ब) वा.-सैहिकेयः (सैंहिकेयः)

४९ (अ) ज.मो.-सुन्दराष्ट्रांश्च, वा.-सुराष्ट्राश्च, मु.पु.-सुदांष्ट्रांश्च (सुराष्ट्रांश्च), ज१-खसांश्च, ज२-ससांश्च, वा.-खशा, मु.पु.-शशांश्च (खशांश्च)

४९ (ब) ज२-गालं (गर्भ), वा.-भूरिदृष्टिः (भूरिवृष्टिः)

५० (अ) ज१, ज२-वीरान्यवनात् (चीनान् यवनान्सशल्यान्), ज१-मगधाश्च, ज२-मार्गधाश्च (मागधांश्च)

५० (ब) ज१, ज२-संज्ञिकेच, ज.मो.-संज्ञिते च, वा.-संज्ञिकेपि (संज्ञिकेऽपि)

५१ (अ) ज२-हनुचक्षुक्षीत्व, वा.-हन्द्वचकुक्षीत्वथ (हनू च कुक्षीत्वथ) ज१, ज२, पायुभेदौ, वा.-पायुभेदौ, मु.पु.-पापभेदैः (पायुभेदैः), ज१, ज२-संघर्दनो, वा.-संघदेतं (संछर्दनं), ज१, ज२-मज्जराणां, वा.-यज्जरण (यज्जरणं)

५१ (ब) ज१-विधामत्ते, ज२-विधारमन्त्रे (विदारमन्ते)

५२ (ब) ज१, ज२-असिरुक्, मु.पु. अपिरुकू (अपिरुक्), ज१, ज२-विमदीनमति (विमर्दनमति), ज१, ज२-नरपतेक्षोभ (नरपतेः क्षोभः)

५३ (अ) ज१, ज२-गमनन्वैशान्वामो (अभिगमनं चैशान्यांवामो), वा.-सोपि (सोऽपि)

५३ (ब) ज२-शस्त्रमशांगभयं (शस्त्रभयं रोगभयं)

५४ (अ) ज२-दक्षिणयाश्च (दक्षिणपार्श्व), ज१, ज२-प्रभेदसंज्ञ: सा, ज.मो. प्रभेदः स, मु.पु.-कुक्षिभेदसंज्ञकः (कुक्षिप्रभेदसंज्ञः सः)

५४ (ब) ज१-सापत्यजनसंयानात्, ज२-करोसायत्यजनसंधानात् (करोति सापत्य-जनसंधान्)

५५ (अ) ज१, ज२-अन्नेममार्गे (उत्तरमार्गे), ज१, ज२-राहोवामाक्ष, ज.मो.-वामाख्यकुक्षिप्रभेदः (राहौवामस्तुकुक्षिभेदः)

५५ (ब) ज१-गर्भविव्यंपरस्त्रीमां, ज२-विपत्यस्त्रीणां (गर्भविपत्तिः स्त्रीणां)

५६ (अ) ज१-दक्षिणापाधाख्या, ज२-दक्षिणस्वाखः, ज.मो.-दक्षिणपायवाख्यः, वा.-दक्षिणयाद्याख्याः (दक्षिणपार्श्वाख्यः), ज१-नैऋतिकोणा, ज२-सुचनैऋतंकोणो च, वा.-स च नैकोणात्व (नैऋतकोणाच्च), ज२-धान्यामतं (याम्यादिग्गमनम्)

५६ (ब) ज१, ज२-बहुविधासस्यामयकृदपरंसस्यं च नाशयातं, ज.मो. सस्यनाशकरः, वा.-नाशरं (बहुविधसस्यामयकृत्वपरसस्यस्य नाशकरम्)

५७ (अ) ज१-ज२-आरभ्यमनिलवकुलश्चोत्तर (आरभ्याऽनिलककुभश्चोत्तर)

५७ (ब) ज१-उत्तरापादाख्यः, ज२-उत्तरापादाक्षः, ज.मो. उत्तरपटवाख्यः, वा.-उत्तरव्यः (उत्तरपार्श्वाख्यः) ज१-कृपमितिदः, ज२-कृपतिदः (भूपभीतिदः)

५८ (अ) ज१, वाचेन्प्राच्यं, ज२-वाच्यं (चेत्प्राच्यां), ज१-कृत्पात्वाप्रः, ज२-कृत्वाक्यं (कृत्वा प्रागेय), ज१-संपति च, ज२-सर्पणि न वा (सर्पति च)

५८ (ब) ज१-संघदनंख्येमोक्षः, ज२-संघर्दनंमोक्षः, ज.मो.-संघादनमोक्षः, मु.पु.-सर्छर्दनाख्यमोक्षः (सञ्छर्दनाख्यमोक्षः), ज१-मत्रिक्षदः, ज२-सचक्षुमिक्षुदः (सुभिक्षदः)

५९ (अ) ज२-प्रागवत्य (प्रागेव), ज२-प्रतीषा च, वा.-प्रतीच्यी (प्रतीच्यां च)

५९ (ब) ज१-करणाख्यौ, ज२-जरणाधौ, वा.-जारणाख्यो (जरणाख्यो)

६० (अ) ज१, ज२-विकाशः, ज.मो.-विकाश (विकासः), ज१-पश्चादत्तं वा, ज२-योश्चादत्तं वा, ज.मो.-पश्चादन्तं (पश्चादन्ते)

६० (ब) ज१-सततंत्वतः, ज२-सततंवतः (सततन्त्वन्तः), ज२-सुभिक्ष, ज२-सुभिक्षमतीववर्षे, वा.-सौभिक्षमतिवर्ष (सौभिक्षमतिवर्षम्)

६१ (अ) ज१, ज२-विमलतरं (मिलतरः), ज१-विदारणंचांतं, ज२-विनोदरणंभात्, ज.मो.-चान्ते (विदरणं चान्तम्)

६१ (ब) ज२-मध्यंतदेशमानं, वा.-मध्यांतरेश (मध्यान्तरदेशनाशं), ज२-सुरयस्यनासं वै., वा.-सस्यनाशं च (सस्यस्य वै नाशम्)

६२ (अ) ज२-भाग्नरग्रहणो, वा.-पास्करग्रहने (भास्करग्रहणे)

६२ (ब) ज१, ज२-प्रग्रहणप्रागिंदोमोक्षः, वा.-प्रगहणांप्रमिन्दोर्मोक्षः (प्रग्रहणं प्रागिन्दोर्मोक्षः)

***

१०

अथ केतुचाराध्यायः

केतु के उदय और अस्त का लक्षण

केतोरुदयास्तमयं ज्ञातुं गणितान्न शक्यते यस्मात्।
दिव्यान्तरिक्षभौमास्तस्मात्त्रिविधाश्च केतवो जगति।।१।।

केतु का उदयास्त ज्ञान गणित माध्यम से ज्ञात नहीं किया जा सकता। संसार में दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम ये केतुओं के तीन भेद हैं।।१।।

क्रमागत–

नारदः–

उत्पातरुपाः केतूनामुदयास्तमया नृणाम्।
दिव्यन्तरिक्षा भौमास्ते शुभाशुभफलप्रदाः।।

(ना.सं. २, १)

कश्यपः–

उत्पात एव केतूनामुदयास्तमया भुवि।
दिव्यान्तरिक्षभौमाः स्युर्ज्ञातव्या रूप भेदतः।।

(क.सं. १०, १)

वराहमिहिरः–

दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम्।
दिव्यान्तरिक्षभौमास्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात्।।

(बृ.सं. ११, २)

केतुओं की संख्या

एकोत्तरशतभेदा दृश्यन्ते वा सहस्रभेदास्ते।
औत्पातिकरूपत्वाद् भवन्ति बहवस्तथैको वा।।२।।

केतु के एक सौ एक अथवा हजार भेद माने जाते हैं। उत्पात रूप होने के कारण एक भी अनेक रूप में प्रकट होते हैं।।२।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

शतमेकाधिकमेके सहस्रमपरे वदन्ति केतूनाम्।
बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारदः केतुम्।।

(बृ.सं. ११, ५)

अन्तरिक्ष केतु लक्षण और फल

परिवेषेन्द्रधनुरुल्कागन्धर्वनगराणि निर्घातः।
गगनविकारजमेतन्मध्यमफलदं तथान्तरिक्षं च॥३॥

परिवेष (सूर्य चन्द्र बिम्ब के चारों ओर गोल घेरा पड़ जाना), इन्द्रधनु, उल्का (तारे टूटना), गन्धर्व नगर, निर्घात (वायु का भयङ्कर शब्द करके पृथ्वी पर गिरना और आकाश की ओर चले जाना) ये सभी आकाशीय विकार अथवा अन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फलप्रद होते हैं॥३॥

क्रमागत–

नारदः–

यज्ञद्वजास्त्रभवनरथवृक्षगजोपमाः।
स्तम्भशूलगदैकैरै अन्तरिक्षाः प्रकीर्तिताः॥

(ना.सं. २, २)

कश्यपः–

शस्त्राश्वध्वज वृक्षेभरथमण्डपसन्निभाः।
मालास्तम्भशिखाकारा अन्तरिक्षाः प्रकीर्तिताः॥

(क.सं. १०, ३)

वराहमिहिरः–

ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षस्ते।
दिव्या नक्षत्रस्था भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः॥

(बृ.सं. ११, ४)

भौम केतुओं के रूप और फल

भूमिभवा भौमाः स्युश्चरस्थिरा वस्तुसम्भवा ये च।
तेऽधमफलदास्तेषां कथयामि फलानि रूपाणि॥४॥

भूमि पर होने वाले चर एवं स्थिर वस्तुओं से उत्पन्न भूकम्प आदि उत्पातों को भौम उत्पात कहते हैं। वे अधम फलदायक हैं, उनके रूप और फलों को कहता हूँ॥४॥

क्रमागत–

कश्यपः–

नक्षत्रसम्भवा दिव्या भौमास्ते भूमिसम्भवाः।
एकोऽपि बहुरूपेण जन्तूनामशुभप्रदः॥

(क.सं. १०, ३)

वर्षैर्मासैः पक्षैः क्रमशः परिपाकमुपयान्ति।
स्निग्धः प्रसन्नरूपः शुक्लाभिनिभो ह्रस्वदण्डवत्सौम्यः॥५॥

स्निग्ध तथा छोटे आकार वाले केतु, प्रसन्न रच रूप वाले दण्डाकार केतु तथा शुभ (स्वच्छ) एवं सौम्य रच रूप वाले केतु उदय होने के बाद क्रमशः १ वर्ष, १ मास तथा १ पक्ष में फल प्रदान करते हैं॥५॥

क्रमागत–

नारदः–

ह्रस्वः स्निग्धः सुप्रसन्नः श्वेतकेतुः सुभिक्षकृत्।
क्षिप्रादस्तमयं याति दीर्घकेतुः सुवृष्टिकृत्॥

(ना.सं. २, ६)

कश्यपः–

एकद्वित्रिचतुः पञ्च दिवसादिषु सन्ततम्।
दृश्यते फलदः केतुर्मासैस्तद्दिनसम्मितैः॥
तीव्राल्पयाप्यफलदा दिव्याभौमान्तरिक्षजाः।
श्वेतकेतुः सुप्रसन्नो ह्रस्वः स्निग्धः सुभिक्षकृत्॥

(क.सं. १०, ४-५)

उदयास्त समय केतु

उदयास्तमयेत्वेवं सुभिक्षसौख्यावहः केतुः।
धूमनिभो धूमाख्यः केतुर्दोषप्रदो भवति॥६॥

उदयास्त समय में ऐसा केतु सौख्यप्रद; परन्तु धूम सदृश धूमाख्य केतु दोषप्रद होता है॥६॥

क्रमागत–

कश्यपः–

दीर्घकेतुर्वृष्टिकरः क्षिप्रादस्तमयं गतः।
सुभिक्षक्षेमदाः श्वेताः केतवः सोमसूनवाः॥
अनिष्टदो धूमकेतुः शक्रचापनिभोऽग्निदः।
द्वित्रिचतुश्शूलरूप क्षितीशानां विनाशकृत्॥
सुवर्णमणिहाराभा दीप्तिमन्तोऽर्कसूनवः।
उदिताः केतवः पूर्वापरयोर्नृपघातकाः॥

(क.सं. १०, ६-८)

इन्द्रशरासनरूपः स्थूलनिभो वार्घभीतिदः सम्यक्।
बहुभिः शिखाभिरतुला विद्युन्मणिहारहेमनिभाः॥७॥

इन्द्रधनुषाकार, स्थूलाकृति, बहुत शिखाओं से युक्त बिजली की तरह, मणिहार तथा सोने की कान्ति के समान केतु मूल्यों में ह्रास-वृद्धि की भीति उत्पन्न करता है॥७॥

क्रमागत–

कश्यपः–

अनिष्टदो धूमकेतुः शक्रचापस्य सन्निभः।
द्वित्रिचतुः शूलरूपः स च राज्यान्तकृत्तदा।।
मणिहारसुवर्णाभा दीप्तिमन्तोर्कसूनवः।
केतवोभ्युदिताः पूर्वापरयोर्नृपघातकाः।।
बन्धूकविम्बक्षतजशुकतुण्डाग्निसन्निभाः।
हुताशनप्रदास्तेपि केतवश्चाग्निसूनवः।।

(ना.सं. २, ७-९

अपरेन्द्रदिशोदृश्या महाहवं तद्दिगीशानाम्।
शुकमुखबंधूकनिभा वह्निसुताः क्षतजसन्निभाः रूक्षाः।।८।।

खून की तरह लाल, रूखा खुरदरा, तोते की चोंच की तरह, गुलदुपहिरिया फूल की तरह अग्नि पुत्र केतु पूर्व पश्चिम दिशाओं में उदय हो तो इन दिशाओं के राजाओं में परस्पर महायुद्ध का सूचक होता है।।८।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

हारमणिहेमरूपाः किरणाख्याः पञ्चविंशतिः सशिखाः
प्रागपरदिशोर्दृश्या नृपतिविरोधावहा रविजाः।।
शुकदहनबन्धुजीवकलाक्षाक्षतजोपमा हुताशसुताः।।
आग्नेय्यां दृश्यन्ते तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः।।

(वृ.सं. ११, १०-११)

दृश्यन्ते यद्यनलदिशि तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः।
मृत्युसुता वक्रशिखाः कृष्णा रूक्षाः प्रहीणकराः।।९।।

मृत्युपुत्र, कुटिल शिखा, काले, रूखे व खुरदरे, किरणों से हीन केतु यदि अग्नि दिशा में दिखाई दें तो इस दिशा के राजाओं के लिए भयप्रद होते हैं।।९।।

क्रमागत–

नारदः–

व्याधिप्रदा मृत्युसुता वक्रास्ते कृष्णकेतवः।
भूसुता जलतैलाभा वर्तुलाः क्षुद्भयप्रदाः।।

(ना.सं. २, १०)

कश्यपः–

कृष्णा ये केतवो वक्रा व्याधिदामृत्युसूनवः।
वर्तुला जलतैलाभा भूपुत्राः क्षुद्भयप्रदाः।।

(क.सं. १०, १०

वराहमिहिरः–

वक्रेशिखा मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णश्चतेऽपि तावन्तः।
दश्यन्ते याम्यायां जनमरकावेदिनस्ते च।।

(वृ.सं. ११-१२)

दृश्यन्ते याम्यायां जनमरकभयप्रदास्तेऽपि।
क्षितितनया द्वात्रिंशद्दर्पणसदृशाः सरश्मयो विशिखाः।।१०।।

शिखा तथा किरणों से युक्त, बत्तीस दर्पणों के सदृश भूमिपुत्र केतु दक्षिण दिशा में उदय हों तो राजा और प्रजा दोनों के लिए भयप्रद होते हैं।।१०।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः किरणान्विता धरातनयाः।
क्षुद्भयदा द्वाविंशतिरैशान्याामम्बुतैलनिभाः।।

(वृ.सं. ११-१३)

क्षुद्भयदाः सशिरस्कायमतनया मृत्युदाश्च तैलनिभाः।
शशितनयाः कुसुमनिभाः कुन्देन्दुक्षीररजतनिभाः।।११।।

यमपुत्र सशिर केतु दुर्भिक्ष (भूखमरी), चन्द्रपुत्र तैल सदृश, पुष्प सदृश, कुन्द, चन्द्र, स्फटिक, क्षीर, चाँदी सदृश स्निग्ध व कोमल केतु मृत्युप्रद होते हैं।।११।।

क्रमागत–

नारदः–

क्षेमः सुभिक्षदाः श्वेताः केतवः सोमसूनवः।
पितामहात्मजः केतुस्त्रिवर्णास्त्रिशिखान्विताः।।

(ना.सं. २, ११)

वराहमिहिरः–

शशिकिरणरजतहिमकुमुदकुन्दकुसुमोपमाः सुताः शशिनः।
उत्तरतो दृश्यन्ते त्रयः सुभिक्षावहाः शिखिनः।।

(वृ.सं. ११-१४)

उत्तरभागे शिखिनो जन्तूनां ते सुभिक्षकराः।
त्रिशिखस्त्रिवर्णयुक्तो ब्रह्मसुतो ब्रह्मदण्डनिभः।।१२।।

ब्रह्मदण्ड सदृश, ब्रह्मापुत्र, त्रिशिख, त्रिवर्ण युक्त केतु उत्तर भाग में उदय हों तो सभी जन्तुओं के लिए सुभिक्ष जनक होते हैं।।१२।।

क्रमागत–

नारदः–

ब्रह्मदण्डाह्वयः केतुः प्रजानामन्तकृत्सदा।
ऐशान्यां भार्गवसुताः स्वेतरूपास्त्वनिष्टदाः।।

(ना.सं. २, १२)

कश्यपः-

ब्रह्मदण्डाह्वयः केतुस्त्रिवर्णस्त्रिशिखान्वितः।
क्रूरो ब्रह्मसुतः सोऽपि प्रजानां दुःख शोकदः।।

(क.सं. १०-११)

वराहमिहिरः-

ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः।
अनियतदिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः।।

(वृ.सं. ११-१५)

अनियतदिग्प्रभवोऽसौ शान्तिकरो ब्रह्मदण्डाख्यः।
शनितनयास्तारास्थाः शुक्ला ऋजवश्च षट्संख्याः।।१३।।

ब्रह्मदण्ड नामक अनियत दिशाओं में उत्पन्न केतु शान्तिप्रद होते हैं। शनिपुत्र ताराओं में रहने वाले (६) छः प्रकार के सफेद केतु होते हैं।।१३।।

क्रमागत-

नारदः-

अनिष्टदाः पङ्गुसुता द्विशिखाः कनकाह्वयाः।
विकचाख्या गुरुसुता नेष्टा याम्यस्थिता अपि।।

(ना.सं. २, १३)

कश्यपः-

शुक्रात्मजा अपि श्वेता ईशान्यां दिश्यनिष्टदाः।
कनकस्याः शनिसुता द्विशिखा शस्त्रभीतिदाः।।

(क.सं. १०-१२)

वराहमिहिरः-

स्निग्धाः प्रभासमेता द्विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः।
अतिकष्टफला दृश्याः सर्वत्रैते कनकसंज्ञा।।

(वृ.सं. ११-१८)

दृश्यन्ते द्वित्रिदिनैः शुभदा मासैश्च रुग्भयदाः।
जीवसुता विकचाख्याः शुक्लास्ताराश्रिताः स्निग्धाः।।१४।।

दो तीन दिन दिखाई दें तो शुभ, मास पर्यन्त दिखाई दें तो रोगभयप्रद, विकच नामक बृहस्पतिपुत्र केतु चिकने, सफेद और ताराओं के आश्रित होते हैं।।१४।।

क्रमागत-

कश्यपः-

नेष्टा याम्ये गुरुसुता विकचाख्याः सिता अपि।
सूक्ष्मा बुधात्मजाः शुक्ला वायव्यां दिशि भीतिदाः।।

(क.सं. १०-१३)

वराहमिहिरः–

विकचा नाम गुरुसुताः सितैकताराः शिखापरित्यक्ताः।
षष्टिः पञ्चभिरधिका स्निग्धा याम्याश्रिताः पापाः।।

(बृ.सं. ११-१९)

याम्यायां दिशि संस्था बहवस्ते पापदाः सततम्।
बुधतनयाश्चौराख्याः शुक्लाः सूक्ष्मा यथेष्टदिक्प्रभवाः।।१५।।

याम्य दिशा में स्थित होने पर निरन्तर अनेक प्रकार से पापफलप्रद होते हैं। चौर नामक बुधपुत्र केतु सफेद, सूक्ष्म, तथा यथेष्ट दिशाओं में घूमने वाले होते हैं।।१५।।

क्रमागत–
नारदः–

सूक्ष्माः शुक्ला बुधसुता घोराश्चौरभयप्रदाः।
कुजात्मजाः कुंकुमाख्या रक्ताः शूलस्त्वनिष्टदाः।।

(ना.सं. २, १४)

वराहमिहिरः–

नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा दीर्घाः शुक्ला यथेष्टदिक्प्रभवाः।
बुधजास्तस्कर संज्ञाः पापफलास्त्वेकपञ्चाशत्।।

(बृ.सं. ११-२०)

आमयभयदाः सततं जन्तूनां पञ्चपञ्चाशत्।
कुजतनयाः कौजेयाः क्षतजानलसन्निभास्त्रिशूलधराः।।१६।।

ये पचपन (५५) प्रकार के केतु निरन्तर सभी जन्तुओं के लिए रोग भयप्रद होते हैं। कौजेय नामक भौमपुत्र (लाक्षा) लाख अथवा रुधिर एवं अग्निसदृश तथा त्रिशूलधारी होते हैं।।१६।।

क्रमागत–
कश्यपः–

अनिष्टदाः कुङ्कुमाभारक्तमूलाः कुजात्मजाः।
अग्निजा विश्वरूपाख्यास्तद्वर्णास्तद्भयप्रदाः।।

(क.सं. १०-१४)

वराहमिहिरः–

क्षतजानलानुरूपास्त्रिचूलताराः कुजात्मजाः षष्टिः।
नाम्ना च कौङ्कुमास्ते सौम्याशासंस्थिताः पापाः।।

(बृ.सं. ११, २१)

याम्यायां दिशि संस्थाः क्षुद्भयदाः षष्टिसंख्याकाः।
तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः सूर्यमण्डले दृष्टाः।।१७।।

याम्य दिशा में स्थित साठ संख्या से युक्त तामसकीलक नामक राहु के पुत्र सूर्य बिम्ब में दिखाई दें तो भूखमरी एवं भयप्रद होते हैं।१७।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

त्रिंशत् व्यधिकाराहोस्ते तामसकीलका इति ख्याताः।
रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फलमर्कचारोक्तम्।।

(वृ.सं. ११, २२)

तेषां तन्निखिलफलं सम्यक् कथितं च सूर्यचारेऽपि।
अग्निसुतास्त्वाग्नेय्यां विंशत्यधिकाश्च शतसंख्याः।।१८।।

उनके सम्पूर्ण फलादेश सूर्यचाराध्याय में पठित हैं। एक सौ बीस (१२०) अग्निपुत्र (केतु) अग्नि दिशा में होते हैं।।१८।।

क्रमागत–

नारदः–

अग्निजा विश्वरूपाख्या अग्निवर्णाः शुभप्रदाः।
अरुणा श्यामलाकाराः पापपुत्राश्च पापदाः।।

(ना.सं. २, १५)

वराहमिहिरः–

विंशत्याधिकमन्यच्छतमग्नेर्विश्वरूपसंज्ञानाम्।
तीव्रानलभयदानां ज्वालामालाकुलतनूनाम्।।

(वृ.सं. ११, ३३)

प्रलयानलसदृशाभा भुवि वह्निभयप्रदास्तेऽपि।
अरुणाख्याः श्यामनिभाः शुक्रसुता विविधरूपसंकीर्णाः।।१९।।

प्रलयकालीन प्रचण्ड अग्नि के समान रक्तवर्ण वाले भूभाग में अग्नि भयप्रद दृष्ट हों तो नीलवर्ण (श्यामवर्ण) वाले नाना रूपधारी शुक्रपुत्र होते हैं।।१९।।

क्रमागत–

नारदः–

शुक्रजा ऋक्षसदृशाः केतवः शुभदायकाः।
कङ्काख्य ब्राह्मजाः श्वेताः कष्टा वंशलतोपमाः।।

(ना.सं. २, १६)

सौम्ये शान्योरुदयं शुक्रसुता यान्ति चतुरशीत्याख्याः।
विपुलसिततारकास्ते स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः।।

शस्त्रक्षुद्भयदास्ते सप्तोत्तरसप्ततिश्च संख्याकाः।
दण्डकसंज्ञाश्चाष्टौ तारासदृशाः प्रजापतेस्तनयाः।।२०।।

सतहत्तर (७७) संख्या में केतु उदित हों तो शस्त्र एवं दुर्भिक्षप्रद तथा ताराओं के सदृश आठ (८) संख्यक दण्डनामक प्रजापति पुत्र होते हैं॥२०॥

क्रमागत–

नारदः–

कबन्ध्याख्याः कालसुता भस्मरूपास्त्वनिष्टदाः।
विधिपुत्राह्वयाः शुक्लाः केतवो नेष्टदायकाः॥

(ना.सं. २, १७)

कश्यपः–

श्वेतादंशोपमाः कृष्णाः कंकाख्याब्रह्मसूनयः।
कालात्मजा भस्मरूपाः कबन्धाख्यास्त्वनिष्टदाः॥

(क.सं. २, १७)

वराहमिहिरः–

तारापुञ्जनिकाश गणका नाम प्रजापतेरष्टा।
द्वे च शते चतुरधिके चतुरस्रा ब्रह्मसन्तानाः॥

(वृ.सं. ११, २५)

द्वाचत्वारिंशोत्तरशताधिकाः पापदा विधातृसुताः।
वरुणभवाः कंकाख्या द्वात्रिंशत् वंशगुल्मयष्टिनिभाः॥२१॥

तथा एक सौ बयालीस (१४२) विधाता पुत्र पापफलप्रद, बत्तीस (३२) संख्या बाँस, गुल्म, लघु दण्ड तुल्य कंक नामक वरुणपुत्र होते हैं॥२१॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

कङ्का नाम वरुणजा द्वात्रिंशद्वंशगुल्मसंस्थानाः।
शशिवत्प्रभासमेतास्तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः॥

(वृ.सं. ११, २६)

शशिवत्प्रभासमेता राजान्यत्वं प्रकुर्वते ते वै।
कालभवाः षण्णवतिः संख्यास्तेषां कबन्धनिभाः॥२२॥

चन्द्रमा के समान प्रकाशवान् होकर उदित हों तो राजपरिवर्तनकारी होते हैं। कबन्ध (शिररहित शरीर तुल्य), छयानवें (९६) संख्या के कालपुत्र नामक होते हैं॥२२॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

षण्णवतिः कालसुताः कबन्धसंज्ञाः कबन्धसंस्थानाः।
पुण्ड्रा भयप्रदाः स्युर्विरूपताराश्च ते शिखिनः॥

(वृ.सं. ११, २७)

तन्नामानः शिखिनो दुःखामयभीतिदा जगतः।
विमलास्ताराकारा दश दिक्षु समुद्भवाः शिखिनः॥२३॥

तत्तद् नामों वाले केतु संसार के लिए दु:ख, रोग एवं भयप्रद होते हैं। विमल ताराओं के सदृश दश दिशाओं में उत्पन्न होते हैं॥२३॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

शुक्लविपुलैकतारा नव विदिशां केतवः समुत्पन्नाः।
एवं केतुसहस्रं विशेषमेषामतो वक्ष्ये॥

(वृ.सं. ११, २८)

एवं सहस्त्रभेदाः पापश्चैषां विशेषमभिधास्ये।
पश्चिमदिशि संभूतश्चोत्तरनम्रश्च सौम्यकेतुः सः॥२४॥

इस प्रकार एक हजार (१०००) भेद पाप केतु के कहे गए हैं। उनमें विशेष केतुओं के सन्दर्भ में आगे कहेंगे। पश्चिम दिशा में उत्पन्न और उत्तर दिशा में झुका हुआ जो भी केतु हो, उसे सौम्य केतु कहते हैं॥२४॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

उदगायातो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतुः।
सद्यः करोति मरकं सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते॥
तल्लक्षणोऽस्थिकेतुः स तु रूक्षः क्षुद्भयावहः प्रोक्तः।
स्निग्धस्तादृक्प्राच्यां शस्त्राख्यो डमरमरकाय॥

(वृ.सं. ११, २९-३०)

कुरुते सुभिक्षमतुलं सितवर्णोऽसौ महास्निग्धः।
दक्षिणनम्रः प्राच्यां तथाविधो याम्यकेतुः सः॥२५॥

श्वेत वर्णयुक्त, अत्यन्त चिकना पूर्व दिशा में उत्पन्न और दक्षिण की ओर झुका हुआ याम्य नामक केतु अतुल सुभिक्षप्रद होता है॥२५॥

रूक्षः क्षुदभयदायी मरकभयं वा करोत्येवम्।
धूमिनिभो याम्यायां कपालकेतुर्वृहत्तनुः स्निग्धः॥२६॥

रूक्ष प्रकृति, अवर्षण दुर्भिक्षकारी तथा उत्पात भयप्रद होता है। धूमसदृश, अत्यन्त स्निग्ध, बृहदाकार कपाल केतु, दक्षिण दिशा में दृष्ट कपाल केतु महामारी जैसा भय उत्पन्न करता है॥२६॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

दृश्योऽमावास्वायां कपालकेतुः सधूम्ररश्मिशिखः।
प्रागनभसोऽर्द्धविचारी क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः॥

(वृ.सं. ११, ३१)

दिक्षु विदिक्षु प्रभवः क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः।
प्राच्यां दिशि संभूतः प्रदक्षिणं भ्रमति चक्रवद्रूक्षः॥२७॥

दिशा और विदिशाओं में उत्पन्न भूखमरी उपद्रव और रोगभयप्रद होता है। पूर्व दिशा में उत्पन्न चारों ओर चक्रवत घूमने वाला रुक्ष केतु—॥२७॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

प्राग्वैश्वानरमार्गेशूलाग्रः श्यावरूक्षताम्रार्चिः।
नभसस्त्रिभागगामी रौद्र इति कपालतुल्यफलः॥

(वृ.सं. ११, ३२)

स च चक्रकेतुरनिशं कपालकेतोश्च तुल्यफलः।
पश्चिमतः संभूतो याम्यायां दिशं भ्रमति चाप्रदाक्षिण्यम्॥२८॥

और चक्रकेतु निरन्तर कपाल केतु की तरह फलदायी होता है। पश्चिम दिशा से उत्पन्न होकर विपरीत प्रदक्षिण क्रम से भ्रमण करता हुआ इस प्रकार का केतु—॥२८॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

अपरस्यां चलकेतुः शिखया याम्यग्रयाङ्गुलोच्छ्रितया।
गच्छेद्यथायथोदक् तथा तथा दैर्घ्यमायाति॥
सप्तमुनीन् संस्पृश्य ध्रुवमभिजितमेव च प्रतिनिवृत्तः।
नभसोऽर्द्धमात्रमित्वा याम्येनास्तं समुपयाति॥
हन्यात्प्रयागकूलाद्यावदवन्तीं च पुष्करारण्यम्।
उदगपि च देविकामपि भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम्॥
अन्यानपि च स देशान् क्वचित्क्वचिद्हन्ति रोगदुर्भिक्षैः।
दशमासान् फलपाकोऽस्य कैश्चिदष्टादशः प्रोक्तः॥

(वृ.सं. ११, ३३-३६)

धूमनिभो विषमाख्यः केतुर्भूबारमपनयति।
कतिपयदिवसं गत्वा गमननिवृत्तिं करोति धूम्रनिभः॥२९॥

धूमसदृश विषम केतु कहलाता है। यह केतु पृथ्वी के भार को उतारता है। धूमकेतु कुछ दिन अनन्त में जाकर, परवलयाकार चक्र में घूमता हुआ धूम के समान ही पुनः (वापस) लौटता है॥२९॥

नरपतिकलहाज्जगतः करोति विलयं स चक्राख्यः।
गगनत्रिभागदीर्घः श्यामनिभोऽसौ महासटाकारः॥३०॥

जगत् में राजाओं की परस्पर कलह विलय करने वाला चक्र संज्ञक केतु दृश्य आकाश के तीन भाग तक फैला हुआ, लम्बा महापुच्छाकार श्याम वर्ण का होता है॥३०॥

ऋजुवक्रगतिं कुरुते क्रमशो जगतस्त्रिभागहरः।
गतिरहितो ध्रुवकेतुः प्रमाणवर्णाकृतिर्न भवेत्॥३१॥

मार्गी एवं वक्रगति करता हुआ क्रमशः संसार को तीन भागों में विभक्त करता है। गति रहित ध्रुव केतु प्रमाण, वर्ग और आकृति से वर्जित होता है॥३१॥

ग्रहनक्षत्रोपगमे नैवाशुभदो भवेत्केतुः।
उपकरणेषु च राज्ञांसुरगृहतरुपर्वतेषु सर्वेषु॥३२॥

ग्रहों और नक्षत्रों के बीच में चलता हुआ ध्रुव केतु राजाओं के छत्र, दण्ड, रथ, गजादि उपकरणों में, देवमन्दिर, वृक्षों तथा सभी पर्वतों में अशुभ नहीं होता॥३२॥

दर्शनमुपैति नियतं विनाशिनामे व नियमेन।
कुमुदनिभः कुमुदाख्यो दिवसैः षड्भिस्तु पश्चिमे दृष्टः॥३३॥

छः (६) दिन तक पश्चिम दिशा में दिखाई देता हुआ नीलकमल सदृश कुमुद केतु केवल उन्हीं को नियम से दिखलाई देता है, जिनका विनाश सन्निकट होता है॥३३॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

श्वेत इति जटाकारो रूक्षः श्यामो वियत्त्रिभागगतः।
विनिवर्त्ततेऽपसव्यं त्रिभागशेषाः प्रजाः कुरुते॥
आधूम्राया तु शिखया दर्शनमायाति कृतिकासंस्थः।
ज्ञेयः सरश्मिकेतुः श्वेतसमानं फलं धत्ते॥
ध्रुवकेतुरनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक्।
दिव्यान्तरिक्षभौगो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफलः॥
सेनाङ्गेषु नृपाणां गृहतरूशैलेषु चापिदेशानाम्।
गृहिणामुपस्करेषु च विनाशिनां दर्शनं याति॥

कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारूण्यां प्राक् शिखोविनाशमेकाम्।
दृष्टः सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति।।

(वृ.सं. ११, ३९-४३)

प्रागुत्तरदिशि यदि वा सुभिक्षमतुलं करोत्येव।
तारोपरि मणिकेतुर्याम्यायां दिशि सकृद् दृष्टः।।३४।।

पूर्वोत्तर दिशा में अथवा तारामण्डल के ऊपर दक्षिण दिशा में एक बार दिखाई देने वाला मणि केतु अत्यन्त सुभिक्षकारक होता है।।३४।।

उदयास्तमयसमये वा शुभदोऽसौ क्षीरधारेव।
जलधारेव हि ऋज्वी नतया शिखया परेण दृष्टः सः।।३५।।

प्रातः सायं क्षीर धारा के समान अथवा जलधारा के समान पश्चिम की ओर झुकी हुई सीधी शिखा से युक्त सबको दिखाई देने वाला केतु शुभप्रद होता है।।३५।।

जलकेतुर्जलसदृशः सुभिक्षकरस्तु सर्वजन्तूनाम्।
हरिलांगूलनिभो भवकेतुः कचसन्निभो वापि।।३६।।

जल सदृश अथवा वानर पुच्छ सदृश अथवा केशों के समान जलकेतु सभी जन्तुओं के लिए शुभप्रद होता है।।३६।।

बहुरोगभयं कुरुते सपर्वाकारस्तु तद्भयदः।
अपरोऽपि पद्मकेतुः पद्मनिभः पद्मगर्भसंकाशः।।३७।।

सर्पाकार भवकेतु सर्पभय और बहुरोगकारी होता है। कमल सदृश और कमल गर्भ सदृश अन्य पद्म केतु भी उसी प्रकार फलदायक होता है।।३७।।

क्षेमकरो नृपतीनां सुभिक्षदः सर्वजन्तूनाम्।
आवर्त्तः केतुरयं प्रादक्षिण्येन दीप्तिमाञ्छुक्लः।।३८।।

यह आवर्त नामक केतु श्वेत कान्ति युक्त दक्षिणावर्त दिखाई दे तो समस्त राजवर्ग के लिए कल्याणकारी, अखिल जन्तुओं के लिए सुभिक्षप्रद होता है।।३८।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

सकृदेकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः।
ऋज्वी शिखाऽस्यशुक्लास्तनोद्गता क्षीरधारेव।।
उदयन्नेवसुभिक्षं चतुरो मासान् करोत्यसौ सार्द्धान्।
प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तूनाम्।।
जलकेतुरपि च पश्चात् स्निग्धः शिखयाऽपरेणचोन्नतया।
नवमासान् स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य।।

भवकेतुरेकरात्रं दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः।
हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया शिखया।।
यावत एव मुहूर्तान् दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान्।
तावदतुलं सुभिक्षं रूक्षेप्राणान्तिकान् रोगान्।।

(वृ.सं. ११, ४४-४८)

शुभदो व्यत्ययकेतुस्त्वतुलामयभीतिरीतिकरः।
आक्रम्य गगनमखिलं संवर्त्ताख्यः स धूमनिभः।।३९।।

विपरीत केतु शुभ होता है। इससे भिन्न समस्त आकाश में व्याप्त होकर धूम सदृश विपरीत गति से युक्त संवर्त्त नामक केतु अतुल रोगभय और ईतिभीतिप्रद (टिड्डी आदि कीटों से भय देने वाला) होता है।।३९।।

क्रमागत–
वराहमिहिरः–

अपरेण पद्मकेतुर्भृणालगौरोभवेन्निशामेकाम्।
सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि।।
आवर्त इति निशार्द्धेसव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरेस्निग्धः।
यावत् क्षणान् स दृश्यस्तावन्मासान् सुभिक्षकरः।।
पश्चात् सन्ध्याकालेसंवर्त्तो नाम धूम्रताम्रशिखः।
आक्रम्य वियत्र्यंशंशूलाग्रावस्थितो रौद्रः।।
यावत एव मुहूर्त्तान् दृश्यो वर्षाणि हन्ति तावन्ति।
भूपान शस्त्रनिपातैरुदयर्क्षं चापि पीडयति।।

(वृ.सं. ११, ४९-५२)

शूलाग्रस्त्वितरो वा स केतुरसकृद्भयप्रदो जगतः।
शुभदाः शुक्लनिभा ये कृष्णास्त्वशुभप्रदा जगतः।।४०।।

इससे भिन्न शूलाग्र केतु जगत् में निरन्तर भयङ्कर फलदायी जानना। श्वेतवर्ण केतु और काले वर्ण के केतु क्रमशः संसार के लिए शुभ एवं अशुभप्रद होते हैं।।४०।।

केतूनां फलमुक्त्वा वक्ष्ये दस्त्रादिभेषु जातानाम्।
अश्विन्यां यदि केतुर्जातस्तदाश्वजीविनं हन्यात्।।४१।।

केतुओं का फल कहकर अश्विन्यादि नक्षत्रों में उदित होने वाले केतु का फल कहते हैं। अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न केतु घोड़ों से जीविका चलाने वालों का नाश करता है। (वाहनों से जीविका चलाने वाले भी कहा जा सकता है)—।।४१।।

याम्ये म्लेच्छाधिपतिं बहुलायां कलिङ्गकाधिपतिम्।
रोहिण्यामतुलबलं निहन्ति केतुश्च शूरसेनेशम्।।४२।।

भरणी नक्षत्र में म्लेच्छों के राजा, कृत्तिका में कलिङ्ग देश के राजा, रोहिणी में चलता हुआ केतु सूरसेन देश के राजा का अतुल बल सहित नाश करता है॥४२॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

अश्विन्यामश्मकषं भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात्।
बहुलासु कलिङ्गेशं रोहिण्यां शूरसेनापतिम्॥

(वृ.सं. ११, १४)

औशीनरमुख्यपतीन्सौम्ये रौद्रे च जलजन्तून्।
अश्मकदेशाधिपतिं त्वादित्ये पुष्यभे च मगधपतिम्॥४३॥

मृगशिरा में औशीनरादि राजाओं का, आर्द्रा में जल जन्तुओं का, पुनर्वसु में अश्मकदेश (आसान देश) के नरेश और पुष्य में उदित केतु मगधपति का नाश करता है॥४३॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

औशीनरमपि सौम्ये जलजा जीवाधिपं तथार्द्रासु।
आदित्येऽश्मकनाथान् पुष्ये मगधाधिपं हन्ति॥

(वृ.सं. ११-५५)

आर्याधिपतिं सार्पे पाण्ड्याधिपतिं च पितृधिष्ण्ये वै।
भाग्यर्क्षे तूज्जयिनं चोत्तरभे दण्डनायकान्त्वखिलान्॥४४॥

आश्लेषा में आर्याधिपति, मघा नक्षत्र में पाण्ड्यदेशाधिपति, पूर्वाफाल्गुनी में उज्जयिनी नरेश, उत्तराफाल्गुनी में समस्त दण्डाधिकारियों का नाश करता है॥४४॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

असिकेशं भौजङ्गेपित्र्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपिभाग्ये।
औज्जयिनिकमार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम्॥

(वृ.सं. ११, ५६)

हस्तर्क्षे धनिकवराञ्चित्रायां कुटभवान्निखिलान्।
काम्बोजनृपतिमुख्यं प्रभञ्जने जातकेतुरपि॥४५॥

हस्त में धनिक वर्ग, चित्रा में समस्त पर्वत प्रान्तीय जनों, स्वाति में कम्बोजाधिपति का केतु नाश करता है॥४५॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

चित्रासुकुरुक्षेत्राधिपस्यमरणं समादिशेत्तज्ज्ञः।
काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने न स्तः।।

(वृ.सं. ११, ५७)

इक्ष्वाकुवंशनाशं द्विदैवभे मित्रभे च खशगौडेशम्।
ज्येष्ठायां यदि जातः स हन्यते सर्वमण्डलाधीशम्।।४६।।

विशाखा में इक्ष्वाकुवंश का नाश, अनुराधा नक्षत्र में खश (नेपाल) और गौड़ (बंगाल) के राजाओं का, ज्येष्ठा में समस्त मण्डलाधीशों का नाश करता है।।४६।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

इक्ष्वाकुरलकनाथश्च हन्यते यदि भवेद्विशाखासु।
मैत्रे पुण्ड्राधिपतिज्येष्ठासु च सार्वभौमवधः।।

(वृ.सं. ११, ५८)

मूले मद्राधिपतिं कलिङ्गदेशाधिपतिं जलदैवे।
गुर्ज्जरिका ये देशास्तान्हन्याद्वैश्वधिष्ण्यजः सोऽपि।।४७।।

मूल नक्षत्र में मद्रदेश (डुग्गर) के राजा पूर्वाषाढ़ा में कलिङ्ग देश के स्वामी, उत्तरषाढ़ा में गुर्जर देश के स्वामी नाश हों।।४७।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

मूलेऽन्ध्रमद्रकपती जलदेवे काशिपो मरणमेति।
यौधेयकाजरनायनशिविचैद्यान् वैश्वदेवे च।।

(वृ.सं. ११, ५९)

कैकयनाथं हन्याच्छ्रवणर्क्षे वसुभवोऽखिलान् द्रविडान्।
नैमिषनृपतिं हन्याच्छतभिषजस्त्वजाङ्घ्रिजश्च पाञ्चालान्।।४८।।

श्रवण नक्षत्र में कैकय कश्मीर देशाधिपति, धनिष्ठा में समस्त द्रविड़ वासियों, शतभिषा में नैमिषारण्य के राजा पूर्वाभाद्रपदा में पाञ्चाल देश के राजा का नाश करता है।।४८।।

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

हन्यात् कैकयनाथं पाञ्चनदं सिंहलाधिपं वाङ्गम्।
नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः।।

(वृ.सं. ११, ६०)

अहिर्बुध्न्येर्क्षभवः संकरिकान् किरातकोणभवान्।
पौष्णार्क्षभवः केतुर्द्विजसज्जधर्ममार्गस्थान्।।४९।।

उत्तरभाद्रपदा में केतु वर्णसंकर और किरातों के स्वामियों को और रेवती में केतु ब्राह्मण, सज्जन, धर्म मार्ग पर चलने वालों के लिए अशुभ होता है।।४९।।

अभिजन्नक्षत्रभवः कोंकणदेशं निशिचरांश्चापि।
दिवि ऋक्षग्रहजास्ते दिव्याख्यकेतवो महफलदाः।।५०।।

अभिजित् नक्षत्र में केतु कोंकण देश (बम्बई प्रान्त) चोर, डाकू आदि निशाचरों का नाशक; परन्तु दिन में नक्षत्र ग्रहों से उत्पन्न दिव्य संज्ञक केतु महाफलदायक होते हैं।।५०।।

ये केतवश्चाश्विमुखर्क्षजातास्ताराग्रहादिष्वपि संभवाश्च।
कुर्वन्ति ते तीक्ष्णफलं जनानामन्येऽपि सामान्यफलप्रदाः स्युः।।५१।।

जो केतु अश्विन्यादि नक्षत्रों में और भौमादि तारों ग्रहों में उत्पन्न हुए दिखाई देते हैं। वे जनता के लिए तीक्ष्ण (दारुण) फलदायक एवं अन्य स्वतन्त्र केतु सामान्य फलप्रद होते हैं।।५१।।

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां केतुचाराध्यायो दशमः।।१०।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के केतुचाराध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त।।१०।।

पाठान्तरम्

---

१ (अ) वा.-केतोरुदयात्तमं (केतोरुदयास्तमयं), ज१, ज२-ज्ञानं (ज्ञातुं), ज१, ज२-गणिताद् (गणितान्न), ज१, ज२-दृश्यते (शक्यते)

१ (ब) ज१, ज२-द्विविधाश्च (त्रिविधाश्च), ज१, ज२-जगतः (जगति)

२ (ब) ज१, ज२-ज्ञात्वाधिकरूपत्वाद (औत्पत्तिकरूप), ज१, ज२-वहवस्त्वथैकोंवा (बहवस्तथैकोवा)

३ (अ) वा.-परिवेशेद्रे (परिवेषेन्द्र), ज१-नगरनिर्यति, ज२-नगरनिर्घातं, वा.-नगराणिनिर्घानं (नगराणि निर्घातः)

३ (ब) ज१-तथयांतिरिक्षं, ज२-त्तरांतरिक्ष, वा.-तथातरिंक्षं च (तथान्तरिक्षं च)

४ (अ) ज१-भूमितवा, ज२-भूमित्वियां (भूमिभवा), ज१-ज२-युश्चरास्थिरा, वा.-स्युश्चरस्थरास्तु (स्युश्चरस्थिरा)

४ (ब) ज१, ज२, वा.-तेधम (तेऽधम), ज१-फलदालानिरुपाणी, ज२-फलदारुपाणि (फलानि रूपाणि)

५ (अ) ज१-वर्षेमसिः, ज२-वर्षैः मासैः (वर्षैर्मासैः), वा.-पक्षेक्रमशः (पक्षैः क्रमशः), वा.-परियाक्मुपयाति (परिपाकमुपयान्ति)।

५ (ब) ज१, ज२-स्निग्ध (स्निग्धः), ज१, ज२-प्रसन्नरूपः (प्रसन्नरूपः), ज१-निरीद्रस्वं, ज२-भौद्रस्त्व, वा.-निमोहावदंडयवत् (निभोह्वस्वदण्डवत्)

६ (अ) ज२-सौख्यावहाः (सौख्यवहः)

६ (ब) ज२-धूमाक्षः (धूमाख्यः), वा.-केतुर्द्दोष (केतुर्दोष)

७ (अ) ज१-ऐन्द्रदिश्तिरण्मरूपः, ज२-ऐन्द्रदिशिनरसरूप, वा.-इन्द्रशराशनरूपः (इन्द्रशरासनरूपः), ज२-मूलनिभो (स्थूलनिभो), ज१-वार्षभीतिदः, ज२-वार्द्धभीतिदः, वा.-वर्षभीतिदः (वार्घभीतिदः)

७ (ब) ज१-बहुभि, ज२-वद्धमि (बहुभिः), ज१-हेतुविभाः, ज२-हिमनिभा (हेमनिभाः)

८ (अ) ज१-अपरंद्रदृशो, ज२-अपुरंद्रदृशो (अपरेन्द्रदिसो), ज१-ज२-तदगीशानां, वा.-तदिगीशानं (तद्दिगीशानाम्)

८ (ब) ज१-चवह्निसुता, ज२-वंवन्हिसुतस्य (वह्निसुताः), ज१-सतजसंनिभारुक्षाः ज२-तंशसांनिभारुक्षाः (तद्दिगीशानाम्)

९ (अ) ज२-दृश्यते (दृश्यन्ते), ज२-तावंतस्तपिशिभयदाः, वा.-तावंतेपिशिखिभयदाः (तावन्तेस्तेऽपि शिखिभयदाः)

९ (ब) ज१-ज२-प्रहरणाकाराः, ज.मो. प्रहरणाकाः, वा.-प्रहरणकाराः (प्रहीणकरा)

१० (अ) ज१-ज२-याम्यमांदिशि (याम्यायां), ज२-जन्मकरं (जनमरक)

१० (ब) ज१, ज२-क्षितितनये (क्षितितनया), ज१-दर्शनसदृशा, ज२-सददंशनंसदृशा, वा.-दर्पणसदशा (दर्पणसदृशाः), ज१, ज२-विशिखां (विशिखाः)

११ (अ) ज१-क्षुहुदय, ज२-सुहृदया (क्षुद्भयदाः), ज१-दाससिरस्का, ज२-सस्मिरस्का, वा.-सशिरका, ज.मो. सशिरस्था (सशिरस्का)

११ (ब) ज२-कुसुमनभः, वा.-कुसुमतिभावः (कुसुमनिभाः)

१२ (अ) ज१-तेषुभिक्षकराः, ज२-वुभिक्षुकराः (सुभिक्षकराः)

१२ (ब) पाठस्यलोपः

१३ (अ) ज१-अनियतदिक्यप्रभोसौ, ज२-अतियतदिवसप्रभवोसौ, वा.-अनियत-दिग्प्रभवोसौ (अनियतदिग्प्रभवोऽसौ), ज१-शांतकरो, ज२-कांकरी, ज.मो। लोकान्तकरो (शान्तिकरो)

१३ (ब) ज१-शनितनयातारास्था, ज२-शनितनयातारास्त्रा, ज.मो. शशितनयास्ता-राख्यः (शनितनयास्तारास्थाः), वा.-शुक्लो (शुक्ला), ज१-षड्याख्याः, ज२-वधाख्याः (षट्संख्याः)

१४ (अ) ज१, ज२-शुभदो (शुभदा), वा.-मासौश्च (मासैश्च)

१४ (ब) ज१-जावसुना (जीवसुता)

१५ (अ) ज१-वहवस्तेपापाद, ज२-वहवास्त्वेपापा (वहवस्तेपापदाः)

१५ (ब) ज१-ज२-सूक्ष्मार्यथष्टादिक्यभवाः (सूक्ष्मा यथेष्टदिक्प्रभवाः)

१६ (अ) ज१-आमयभयदा, ज२-अमयदा (आमयभयदाः)

१६ (ब) ज१-कैकेय, ज.मो. कौन्तेयाः, वा. कौकेयाः (कौज़ेयाः)

१७ (अ) ज२-याम्यां (याम्यायां), ज१-क्षुद्विपदाद, ज२-द्विपदाः (क्षुद्भयदाः), ज१-ज२-षष्टिसंख्याताः (षष्टिसंख्याकाः), ज२-तामश (तामस)

१७ (ब) मु.पु. सूर्यमण्डलेदृष्टाः (सूर्यमण्डलेदृष्टाः)

१८ (अ) ज१-सूर्यचारेपि, ज२-सूर्यवारेपि, मु.पु. सूर्यवारेऽपि (सूर्यचारेऽपि)

१८ (ब) ज१-अग्निसुतस्त्वाग्नेया, ज२-पाठस्यलोपः (अग्निसुतास्त्वाग्नेय्यां), ज१-शतसंख्याका, ज२-पाठोनोस्ति, ज.मो. शतसंख्याकाः, वा.-शतसंख्याकाः (शतसंख्याः)

१९ (अ) ज१-प्रदास्तेपि, ज२-पाठस्यलोपः (प्रदास्तेऽपि)

१९ (ब) ज१, ज२-अरुणाख्या (अरुणाख्याः), ज१, ज२-श्यामनिमा (श्यामनिभाः)

२० (अ) ज१, ज२-सप्ततेश्च, ज.मो. सप्ततीश्च (सप्ततिस्च), ज.मो.-संख्याताः (संख्याकाः)

२० (ब) ज१-दण्डसंज्ञाचाष्टां, ज२-मंडलसंज्ञाचाष्टै (दण्डकसंज्ञाश्चाष्टौ), ज१, ज२-तारासदृशा, वा.-तारासंज्ञा (तारासदृशाः), ज१-प्रजापतेनंर्स्तयाः, ज२-प्रजायतेस्तनयाः (प्रजापतेस्तनयाः)

२१ (अ) ज१-विधात्रिसुताः, ज२-विधात्रिसुता (विधातृसुताः)

२१ (ब) ज१-वरणाभवा, ज२-चरणाभया, वा.-वरुणाभवाः (वरुणभवाः)

२२ (अ) ज२-प्रभातेमेजा (प्रभासमेता), ज२-एजान्यत्वं (राजान्यत्वं), ज१-प्रकुर्वीति, ज२-प्रर्वति, ज.मो.-प्रकुर्वन्ति, वा.-प्रकुवेति (प्रकुर्वते ते वै)

२२ (ब) ज१-कालभव, ज२-केलेभवा, वा.-कालभुवाः (कालभवाः), ज१-षमानवति, ज२-यस्मवति, ज.मो. षण्णवर्तिः, वा.-षरातवति (षण्णवतिः), ज२-संख्याकास्ते (संख्यास्तेषां)

२३ (अ) ज१-तन्नामान, ज२-तन्नामन + (तन्नामानः), ज१-सिंखिनः, ज२-शिखिन, वा.-शिखिनुः (शिखिनो), ज१-पंडूमय, ज२-पंयुर्मथ, ज.मो.-युद्धमय, वा.-युद्धभयं (दुःखामय)

२३ (ब) ज१, ज२-दशदिभिक्षु (दशदिक्षु), ज२-शिखिनाः (शिखिनः)

२४ (अ) ज१-पापाश्चैवां, वा.-पापैश्चैवं (पापाश्चैषां), ज.मो-विशेषभेदास्ते, वा. विशेषमधिधास्ये (विशेषमभिधास्ये)

२४ (ब) वा.-सौम्यके (सौम्यकेतुः)

२५ (अ) ज.मो. क्षुद्भयमतुलं (सुभिक्षमतुलं), ज१-सीतवर्णोसौ, ज२-पीतवणौसौ, वा.-सितवर्णोसौ (सितवर्णोऽसौ)

२५ (ब) ज१-दक्षिणानम्र, ज२-दक्षिणनम्र, वा.-दक्षिणनग्नः (दक्षिणनम्रः), ज१, ज२-तथाविधा (तताविधो)

२६ (अ) ज१, ज२-कुक्षः (रूक्षः), ज१-करोत्येव, ज२-चाकरोत्तिवः, ज.मो.-करोत्येव (करोत्येवम्)

२६ (ब) ज१-याम्यंयां, ज२-मायायं (याम्यायां), ज१-केतुर्वहंतुसु, ज२-केतुर्वहंतिसु (केतुर्बृहत्तनुः), ज१, ज२-स्निग्धा (स्निग्धः)

२७ (अ) ज१, ज२-प्रभवे (प्रभवः)

२७ (ब) वा.-माच्या (प्राच्यां), ज२-संभूत (संभूतः), वा.-प्रदक्षिण (प्रदक्षिणं), ज१-वक्रवतरूक्षः, ज२-चक्रदुक्षः, वा.-चक्रवदरुक्ष (चक्रवद्रुक्षः)

२८ (अ) ज१-ज२-ज.मो.-सचक्रकेतु (स च चक्रकेतु), ज१, ज२-तुल्यफलं (तुल्यफलः)

२८ (ब) ज२-पश्चिमतो (पश्चिमतः) ज१-याम्य, ज२-याम्यं, वा.-याम्या (याम्यायां), ज१, ज२-वाप्रदक्षिण्यम्, वा.-चाप्रदक्षिरायं (चाप्रदाक्षिण्यम्)

२९ (अ) ज२-विषमांख्यः, वा.-विषमाख्य (विषमाख्यः)

२९ (ब) ज१-वृनिति, वा.-निवृत्तं (निवृत्तिं)

३० (अ) ज१-सचक्राख्य (चक्राख्यः)

३० (ब) ज१, ज२-स्यामनिभोसोसटाकारः (श्यामनिभोऽसौमहासटाकारः)

३१ (अ) ज१, ज२-रिक्षु (ऋजु)

३१ (ब) ज१, ज२-वर्णाकृतिर्भवेत् (वर्णाकृतिर्न भवेत्)

३२ (अ) ज१, ज२-ग्रनक्षत्रोपरिगमने, वा.-पहनक्षत्रोपगमे (ग्रहनक्षत्रोपगमे), ज१-नेवाशुभप्रदः केतुः, ज२-वाशुभप्रदः केतुः, वा.-नैवाशुषुभप्रदः केतुः (नैवाशुभदो भवेत्केतुः)

३२ (ब) ज२-ऊपकणेषु, ज.मो. अपकरणेषु, वा.-उपकरोषु (उपकरणेषु), वा.-सुरहतरुपर्वतेषु (सुरगृहतरुपर्वतेषु), ज१, ज२-ज.मो.-सदनेषु, वा.-सवदेषु (सर्वेषु)

३३ (अ) ज.मो. विनाशमेव (विनाशिनामेव)

३३ (ब) ज१-कुमुदाख्योदिवधिकैः, ज२-कुमुदाख्योदिनाधिक्यैः, ज.मो.-कुमुदाख्योदिनाधिके, वा.-कुमुदाख्योदिक्से: (कुमुदनिभः कुमुदाख्यो दिवसैः), ज१-षड्भिमेहष्टिः, ज२-षट्मिदृष्टः (षड्भिस्तु पश्चिमे दृष्टः)

३४ (अ) ज१, ज२-प्रागुत्तरदिवंशियदि (प्रागुत्तरदिशि यदि)

३४ (ब) ज१, ज२-तारपति (तारोपरि), ज१, ज२-सकृदृष्टः, वा.-सकृद्दष्ट (सकृद्दृष्टः)

३५ (अ) उदयास्तमयसम, ज.मो.-उदयास्तमनसमये (उदयास्तमयसमये), वा.-शुभदोसौ (शुभदोऽसौ), ज१-तीक्षीरधारेव, ज२-सौक्षीराधातेव, वा.-क्षीरदारेव (क्षीरधारेव)

३५ (ब) ज१, ज२-शिखयो (शिखया)

३६ (अ) सुभिक्षकरंसजंतूनां (सुभिक्षकरस्तु सर्वजन्तूनाम्)

३६ (ब) ज१-हरिलांगूलनिपनीनां (हरिलांगूलनिभो)

३७ (अ) ज१-पाठस्यलोपः, ज२-कुसेते (कुरुते), ज१-पाठोनाऽस्ति, ज२-भयदा (तद्भयदः)

३८ (अ) पाठोनास्ति, ज२-भूसुभिक्षतः (सुभिक्षदः)

३८ (ब) ज१, ज२-ज.मो., वा.-आवर्त (आवर्त्तः)

३९ (अ) ज१-ज२-तुलामय भीतिकराः (तुलामयभीतिरीतिकरः)

३९ (ब) ज१-ज२-आक्रमागमनमखिलं (आक्रम्य गगनमखिलं)

४० (अ) ज१-सम्पूर्णश्लोकस्यलोपः, ज२-केतुरसः (केतुरसकृद्)

४० (ब) वा.छप्रनिभा (शुक्लनिभा), ज१-पाठस्यलोपः, ज२-स्मात्वशुभशुभपदाजगतः पाठभेदः, वा.-कृष्णाखाशुभप्रदाजगतः (कृष्णास्त्वशुभप्रदा जगतः)

४१ (अ) वा.-फलमुत्कार्यक्षो (फलमुक्त्वा वक्ष्ये), ज१, ज२-षट्टस्त्रभेजंतूनाम्, वा.-दास्त्रादिभेषु जाताना (दस्रादिभेषु जातानाम्)

४१ (ब) ज१-कुरुजातस्तांनाश्वजीवितं, ज२-करुजातिस्त्वाननाश्वजीवनं, ज.मो.-केतुर्जातस्तानश्वजीविनो, वा.-केतुतातस्तदाश्वजीविनं (केतुर्जातस्तदाश्वजीविनं)

४२ (अ) ज१, ज२-ज.मो.-कलिङ्गपतिं (कलिङ्गकाधिपतिम्)

४२ (ब) वा.-रोहिण्यामतुव्यवलं (रोहिण्यामतुल बलं), ज१-स्वरसेनेशं, ज२-सूरसेनेशं, वा.-सूरसेनेशं (शूरसेनेशम्)

४३ (अ) ज१, ज२-जातिनमुख्यपतिं, वा.-अंशीनरमुख्यपतीन् (औशीनरमुख्यपतीन्), ज१, ज२-रौदेवलंजन्तूनां (रौद्रेचजलजन्तून)

४४ (ब) ज१-सोत्तरभेदुं, ज२-सोत्तरभेदुं, ज.मो.-उत्तरभे (चोत्तरभे), ज१, ज२-दुनिधकान्त्वाखिलां, ज.मो.-दण्डनायकांस्त्वखिलात् (दण्डनायकान्त्वखिलान्)

४५ (अ) ज१-हस्तर्क्षं, ज२-हस्तेर्क्षे, वा.-हस्तादौ (हस्तर्क्षे), ज१, ज२-धनिकधराचित्रायां (धनिकवराश्चित्रायां), ज१, ज२-क्षुरभवामखिलान्, वा.-कुरुभवानिखिलान् (कुटभवान्निखिलान्)

४५ (ब) ज१-नृपतिसुं, ज२-नृपतीसुखं, (नृपतिमुख्यं), ज१, ज२-प्रभंने, वा.-प्रभजनं (प्रभञ्जने)

४६ (अ) ज१-द्विदैवजो, ज२-द्विदैवं (द्विदैवभे), ज१-ज२-यगौशंड, ज.मो. खसगोडेशान् (खशगौडेशम्)

४७ (अ) ज१-मार्दाधपतिं, ज२-मार्याधिपतिं (मद्राधिपतिं)

४७ (ब) ज१-गुर्जरिका, ज२-गुरर्जरका, ज.मो.-गुर्जरकान् (गुर्ज्जरिका), ज१-न्योदयान्निदृश्यन्ते, ज२-अन्योदेयान्निहते (ये देशास्तान्हन्याद्), ज१-वैत्राधिप्लाज, ज२-वैश्वधिष्मजः (वैश्वधिष्ण्यजःसोऽपि)

४८ (अ) ज१-वसुभयोखिलंविडान्, ज२-वसुत्रयोखिंद्रविडान् (वसुभवोखिलान् द्रविडान्)

४८ (ब) ज१-स्त्वजाध्रिजाश्चपंचालान, ज२-स्त्वजाग्रिजाश्च, वा;-पाचालान (स्त्वजाङ्घिजश्च पाञ्चालान)

४९ (ब) ज१-प्रीन्लप्रभवः, ज२-पौष्म्रप्रभवः, ज.मो.-पौष्णप्रभवः (पौष्णर्क्षभवः)

५१ (अ) ज१-ग्रहादिव्यपि, ज२-ग्रहादिव्याधि (ग्रहादिष्वपि)

५१ (ब) ज१-ज२-वीक्ष्णफलं (तीक्ष्णफलं), ज१-अनामन्येपि (जनानामन्येऽपि), ज१-मासान्यफलप्रदा, ज२-मासानान्यफलंप्रदास्युः (सामान्यफलप्रदाः स्युः)

***

११

अथ वर्षेशादिनिर्णयफलाध्यायः

अथ राजफलम्

ब्राह्मं च दिव्यं मनुपित्र्यमानं सौरं च चान्द्रं गुरुसावनर्क्षम्।
एषां नवानां च पृथक्पृथग्यत्प्रयोजनं तत्क्रमशः प्रवक्ष्ये।।१।।

ब्राह्म १, दिव्य २, मनु ३, पैत्र ४, सौर ५, चान्द्र ६, बार्हस्पत्य ७, सावन ८ और नाक्षत्र ये ९ नवविध मान हैं। इन ९ मानों का पृथक्-पृथक् प्रयोजन कहते हैं।।१।।

ब्राह्म (ब्राह्म सम्बन्धी), दिव्य (देवताओं से सम्बन्धित), मनु (मनु सम्बन्धी), पैत्र (पितरों के सम्बन्ध में), सौर (सूर्य सम्बन्धी), चान्द्र (चन्द्र सम्बन्धी), बार्हस्पत्य (गुरु सम्बन्धी), सावन (सूर्योदय से अग्रिम सूर्योदय तक), नाक्षत्र (नक्षत्र सम्बन्धी)।

क्रमागत–

नारदः–

ब्राह्मं दैवं मानुषं च पित्र्यसौरं च सावनम्।
चान्द्रमार्क्षं गुरोर्मानमिति मानानि वै नव।।
एषां तु नवमानानां व्यवहारोऽत्र पञ्चभिः।
तेषां पृथक्पृथक्कार्यं वक्ष्यते व्यवहारतः।।

(ना.सं. ३, १-२)

कश्यपः–

ब्राह्मं दैवं मनोर्मानं पैत्र्यमानं तथा गुरोः।
सौराख्यं सावनं चान्द्रमार्क्षमानानि वै नव।।
चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौर चान्द्रर्क्ष सावनैः।
षष्ट्यब्द व्यवहारोऽत्र गुरुमानेनगृह्यते।।

(क.सं. ११, १-२)

मानं विधातुः खलु नित्यमायुः प्रमाणविज्ञानविधौ च कार्यम्।
गीर्वाणमन्वोरपि मानमेवं पैत्र्ये च माने शशिनः प्रवृत्तम्।।२।।

ब्राह्ममान को केवल ब्रह्मा की आयु प्रमाण विज्ञान विधान में ही प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार दिव्यमान, मनुमान, पैत्रमान तथा चान्द्रमानों की प्रवृत्ति होती है।।२।।

षष्ट्यब्दजन्मप्रभवादिकानां फलं च सर्वं गुरुमानतः स्यात्।
मासे यदा तत्तपससिन्द्रवन्द्ये त्वाद्ये लवे वासवतारकायाः।।३।।

प्रभवादि षष्ठी संवत्सरों का फल गुरुमान से करना चाहिये। बृहस्पति माघ मास में सर्वप्रथम धनिष्ठा नक्षत्र के प्रथम भाग में आता है, तभी से गौरवमान की प्रवृत्ति होती है।।३।।

सौरं च सङ्क्रान्तिवशाद्दिनस्य नाक्षत्रमिन्दोर्भगणभ्रमाच्च।
त्रिंशद्दिनं सावनमानमाद्यं दिनादमान्तं खलु चान्द्रमानम।।४।।

सूर्य की राशिगत सङ्क्रान्ति से सौर मान, चन्द्रमा के भगणभ्रमानुकूल नाक्षत्रमान, तीस दिनों का सावन मास, अमान्त से अमान्त तक अथवा पूर्णिमा से पूर्णिमान्त तक चान्द्रमान होता है।।४।।

दिनप्रमानं त्वयनं च सर्वं सङ्क्रान्तिकालस्य विनिर्णयं च।
कृतादिमानं निखिलग्रहाणां यत्कर्म सौरेण विगृह्यतेऽत्र।।५।।

दिनमान, रात्रिमान, अयन प्रवृत्ति, सङ्क्रान्ति काल का निर्णय, कृत युगादिमान तथा समस्त ग्रहों के स्पष्टीकरण हेतु सौर मान को ग्रहण किया जाता है।।५।।

क्रमागत–

नारदः–

गृहणं निखिलं कार्यं गृह्यते सौर मानतः।
विधेर्विधानं स्त्रीगर्भं सावनेनैवगृह्यते।।

(ना.सं. ३, ३)

कश्यपः–

निखिलगृहचारश्च सङ्क्रान्तेः कालनिर्णयः।
दिनरात्रि प्रमाणं च सौर मानेन गृह्यते।।

(क.सं. ११, ३)

जीमूतगर्भं निखिलं सुसम्यगृक्षेण मानेन निरीक्षितव्यम्।
नृगर्भवृद्धिः प्रबलर्तुकालं यत्सूतकाद्यं खलु सावनेन।।६।।

समस्त मेघ गर्भ भली भाँति नाक्षत्र मान से देखने चाहिए। स्त्रियों में गर्भ वृद्धि, ऋतुकाल और समस्त सूतकादि सावन मान से ग्रहण करें।।६।।

क्रमागत–

कश्यपः–

वृद्धेर्विधानं स्त्रीगर्भ मृतसूतक निर्णयः।
ग्रहाणां मध्यमा भुक्तिः सावनेन प्रगृह्यते।।
भचभ्रमणं मेघगर्भं नाक्षत्रमानतः।
उपवासव्रतोद्वाह यात्राक्षौरोपनायनम्।।

तिथि वर्षादिनिखिलं चान्द्रमानेनगृह्यते।
गुरुमानेनषष्ट्यब्दफलं नाथ च कथ्यते।।

(क.सं. ११, ५-६)

उद्वाहयज्ञोपनयप्रतिष्ठातिथिव्रतक्षौरमहोत्सवाद्यम् ।
पर्वक्रिया वास्तुगृहप्रवेशः सर्वं च चान्द्रेण विगृह्यते तत्।।७।।

विवाह, यज्ञ, उपनयन, प्रतिष्ठा, तिथिव्रत, क्षौरकर्म महोत्सवादि, पूर्वक्रिया, वास्तु तथा गृहप्रवेश ये सभी कार्य चान्द्रमान से करने चाहिए।।७।।

क्रमागत–

नारदः–

प्रवर्णणं मेघगर्भो नाक्षत्रेणप्रगृह्यते।
यात्रोद्वाहव्रतक्षौरतिथिवर्षादिनिर्णयः ।।
पर्ववास्तूपवासादि कृत्सनं चान्द्रेण गृह्यते।
गृह्यते गुरुमानेन प्रभवाद्यब्दलक्षणम्।।
भचक्रगतिरार्क्षं स्यात्सावनं त्रिंशता दिनैः।
सौरं सङ्क्रमणं प्रोक्तं चान्द्रं प्रतिपदादिकम।।

(ना.सं. ३, ४-६)

चैत्रस्य शुक्लाद्यतिथेश्च वारनाथोऽब्दपस्तस्य चमूपतिः सः।
मेषस्य सङ्क्रान्ति तिथेश्च वारनाथस्तु सस्याधिपतिर्भवेत्सः।।८।।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन जो वार हो उसी का स्वामी वर्ष का राजा, मेष सङ्क्रान्ति के दिन जो वार हो वही सेनापति (मन्त्री) तथा वही अन्नाधिपति भी होता है।।८।।

क्रमागत–

कश्यपः–

चैत्रादिवारपोऽब्देशश्चमूपोमेषवारपः ।
सस्याधिपः कर्कटेशस्तुलेशः स्याद्रसाधिपः।।
अङ्गवङ्गकलिङ्गेषुषवारोऽवरोऽब्दयः ।
तद्वर्णस्य प्रचुरं तद्देशे निखिलफलम्।।

(क.सं. ११, ७६-७७)

कुलीर सङ्क्रान्तिजवारनाथो रसाधिपस्तौलिनिवासरेशः।
फलं तथैषां क्रमशश्चतुर्णां पृथक् पृथग्यत्प्रयतः प्रवक्ष्ये।।९।।

कर्क सङ्क्रान्ति के दिन जो वार हो उसका स्वामी सस्याधिपति, तुला

सङ्क्रमण के दिन जो वार हो उसका स्वामी रसों का स्वामी होता है। इन चारों स्वामियों का भिन्न-भिन्न क्रमशः भली-भाँति फल कहता हूँ।।९।।

वर्षाधिपो मेषदिनस्य वारश्चमूपतिश्चैत्रदिनादिवारः।
हूणेषु वङ्गेषु खशेषु मागधेष्वेवं च पौण्ड्रेष्वपि कोंकणेषु।।१०।।

हून, वङ्ग, खश, मगध, पौण्ड्र और कोंकण देशा में मेष सङ्क्रान्ति का वारेश वर्षराट् एवं चैत्र कृष्णअमान्त प्रतिपदा के स्वामी मन्त्री होते हैं।।१०।।

अब्दाधिपेदिनपतौ खलु मध्यवृष्टिर्मन्दप्रभक्षेगणशीतकर नभश्च।
हन्तुंसपत्नविषयान्निखिलक्षितीशानित्यं चरन्ति भुविभूरिबलावृताश्च।।११।।

वर्षपति, राजा (मन्त्री) सूर्य हो तो मध्यम वृष्टि तारागणों सहित चन्द्रमा आकाश मण्डल में प्रभाहीन रहे। शत्रुओं को मारने के लिए समस्त राजा उद्यत हों तथा पृथ्वी पर बलशाली योद्धा विचरण करते रहें।।११।।

क्रमागत–
कश्यपः–

सूर्याब्दे प्रचुरा रोगामध्यसस्यार्घवृष्टयः।
वरावहोत्सुकाः क्षेमेशाश्चतुरङ्गबलान्विताः।।

(क.सं. ११, ७८)

गोधूमशालीक्षुमती धरित्री पुष्पैर्विचित्राऽध्वरवेदनादैः।
विभान्ति गावः पयसः प्रभूता दुग्धाब्धिजे वर्षपतौ च सोमे।।१२।।

जिस वर्ष में वर्ष पति, राजा चन्द्रमा हो उस वर्ष पृथ्वी गोधूम, शाली, इक्षु (गन्ना) फसलों, विचित्र पुष्पों से युक्त, यज्ञों में वेद ध्वनि हो, गौऊएं पर्याप्त दूध देने वाली होती हैं।।१२।।

क्रमागत–
कश्यपः–

चन्द्राब्दे निखिलागावः प्रभूतपयसो धराः।
भाति सस्यार्घपानीय द्युचरस्यर्धिमानवैः।।

(क.सं. ११-७९)

चौराग्निसापत्नगणप्रभूता मही महीशाखिलयुद्धकीर्णा।
कुंजेऽब्दनाथे पिटकामयाद्यैः सदाऽऽकुलावारिसुसस्यपूर्णा।।१३।।

अब्द पति, राजा मङ्गल हो तो चोर, अग्नि, पतित गणों से पृथ्वी भरपूर, राजा लोग युद्ध के लिए उत्सुक, व्रणादि फोड़े-फुन्सी रोगों से जनवर्ग सदैव व्याकुल रहे; परन्तु जल तथा फसलें परिपूर्ण रहें।।१३।।

क्रमागत–

कश्यपः–

अग्नितस्कर रोगाः स्युर्नृपाविग्रहदायकाः।
हतसस्य जला भौमेवर्षेपु भूसुदुखता।।

(क.सं. ११, ८०)

प्रभूतवायुर्भुवि मध्यवृष्टिर्गदाहवप्रोद्धतराजकोपः।
बुधेऽब्दनाथेत्वपरं च सस्यं श्रेष्ठं च वृद्धिर्लिपिलेखकानाम्।।१४।।

बुध वर्षेश होने पर पृथ्वी पर प्रभूत वायु मध्यम वृष्टि, रोग, युद्ध, उद्दण्ड राजाओं का प्रकोप हो; किन्तु पश्चिम फसलों में श्रेष्ठता तथा लिपि लेखकों की भी वृद्धि होती है।।१४।।

क्रमागत–

कश्यपः–

प्रभूतः सौम्याब्दे मध्य सस्यार्घवृष्टयः।
नृप संक्षोभ संभूत भूरि क्लेशभुजः प्रजाः।।

(क.सं. ११, ८१)

भूदेवसंघोऽध्वरतत्परश्च भूपाः प्रजापालनशीलयुक्ताः।
दोषालयं यान्ति गुरोस्तु वर्षेस्वकर्मसक्ता निखिलाः प्रजा स्युः।।१५।।

अब्दपति बृहस्पति हो तो वर्ष में ब्राह्मण समूह यज्ञों में तत्पर, राजा प्रजापालन में लीन तथ शीलयुक्त, सभी दोष समाप्त हों, समस्त जनवर्ग अपने-अपने कार्यों में आसक्त रहें।।१५।।

क्रमागत–

कश्यपः–

गुरोः संवत्सरे विप्राः सञ्जाताध्वरशालिनः।
सम्पूर्णवृष्टिः सस्यार्घनीरोगैः सुन्दराधरा।।

(क.सं. ११, ८२)

नानाविधोद्यानतडागवप्रपरेक्षुवाटाखिलसस्यपूर्णा।
मही महीदेवमहीभुजाद्यैर्जनैर्विचित्रा भृगुजेऽब्दनाथे।।१६।।

वर्षपति शुक्र हो तो नाना प्रकार के बाग, तालाब, खेत, गन्ना तथा समस्त फसलों से पृथ्वी परिपूर्ण हो, ब्राह्मणों और क्षत्रियों से पृथ्वी सुशोभित रहे।।१६।।

क्रमागत–

कश्यपः–

यवगोधूमशालीक्षुफल पुष्पार्घ वृष्टिभिः।
सम्पूर्णा निखिला धात्री भृगुपुत्रस्य वत्सरे।।

(क.सं. ११, ८३)

मध्यानि सस्यानि विचित्रवृष्टिश्चौरामयप्रोद्धतराजकोपः।
यदुत्तरं सस्यभयं कुधान्यं सम्पूर्णमस्मिन् रविजेऽब्दनाथे॥१७॥

इति राजफलम्

शनि वर्षराट् हो तो फसलें मध्यम, विचित्र वृष्टि (कहीं कम तो कहीं अधिक वृष्टि) चौरभय, रोगभय, भीष्मराजप्रकोप, सस्यभय और कुधान्य प्रचुर मात्रा में हो॥१७॥

क्रमागत–

कश्यपः–

सौराब्दे मध्यमावृष्टिरीतिभीतिरेनेकधा।
सङ्गामाद्युक्त धात्रीश बल क्षणाखिलाधरा॥

(क.सं. ११, ८४)

अथ मन्त्रिफलम्

दिनकृति मन्त्रिणि सततं विचित्रवर्णानि सर्वसस्यानि।
क्षितिपतिकोपं विपुलं विपिनारामाश्च सीदन्ति॥१८॥

सूर्य मन्त्री हो तो निरन्तर विचित्र वर्णों से भूषित फसलें हों, भीष्मराजप्रकोप भी हो; परन्तु वन (पार्क) विश्राम भवनों की वृद्धि हो॥१८॥

क्रमागत–

कश्यपः–

यस्मिन्नब्देशशाङ्कज्ञजीवशुक्राश्चमन्त्रिणः।
तस्मिन्नब्देऽतुलक्षेमबहुसस्यार्घ वृष्टयः॥
सस्येशानां फलन्त्वेवं पापाश्चेद् अर्घनाशनम्।
बलाबलं सुसंवीक्ष्य वदेत्फलनिरूपणम्॥

(क.सं. ११, ८३-८५)

तुहिनकरे सचिववरे नानाविध सस्य सम्पूर्णा।
द्विजसज्जनपशुवृद्धिः काननफलपुष्पतोयजन्तूनाम्॥१९॥

चन्द्रमा मन्त्री हो तो अनेक प्रकार की प्रचुर फसलें, ब्राह्मण, सज्जन, पशुओं; जङ्गली फलों, पुष्पों तथा जल जन्तुओं की वृद्धि हो॥१९॥

दहनप्रहरणडमरमरुदामयभीतिरतुला स्यात्।
क्षितितनये मन्त्रिणि सति शोषं समुपैति निम्नसस्यचयम्॥२०॥

मङ्गल के मन्त्रित्व में अग्निकाण्ड, शस्त्रकाण्ड, दंगा-फसाद, वायुप्रकोप, रोगादि से भय तथा छोटी फसलें नष्ट हों॥२०॥

मन्त्रिणि शशाङ्कतनये प्रभूतवायुर्निरन्तरं वाति।
मध्यमफलदा धरणी विभाति सुरसदृशलोकैश्च॥२१॥

बुध मन्त्री हो तो निरन्तर सुन्दर वायु चले, धरा मध्यम फलदायिनी हो तथा लोग देवताओं के तुल्य प्रतीत हों॥२१॥

सुरसचिवे मन्त्रिणि सति सुवृष्टिबहुसस्यसम्पूर्णम्।
जगदखिलं जलपूर्णं प्रोद्धतराजाहवो ज्ञेयः॥२२॥

बृहस्पति मन्त्री होने पर सुन्दर वर्षा, प्रचुर सस्यपूर्ति संसार में जल पर्याप्त हो; परन्तु राजाओं का परस्पर युद्ध भय भी समझना॥२२॥

उच्चलिताऽध्वनिरनिशं विप्राणामध्वरे चरत्यखिलम्।
अनिमिषहृदयानन्दं कुर्वन् सचिवे सुरारिगुरौ॥२३॥

शुक्र मन्त्री हो तो यज्ञों में निरन्तर दिनरात वैदिक ब्राह्मणों द्वारा उच्चारण की गई मन्त्रों की ध्वनि से जगत् व्याप्त हो तथा सभी को एकटक हृदयानन्द की प्राप्ति हो॥२३॥

मन्दफला निखिलधरा न वारि मुञ्चति वारिधराः।
दिनकरतनये सचिवे प्रभया रहितं वियत्सततम्॥२४॥

इति मन्त्रि फलम्

शनि मन्त्री हो तो समस्त पृथ्वी मन्दफलदायक, मेघ प्रभूत वर्षा नहीं करते और आकाश निरन्तर प्रभाहीन रहता है॥२४॥

अथ धान्याधिपफलम्

सस्याधीशे भास्वति भूमौ विरलानि सर्वसस्यानि।
अतिविपुलंत्वीतिभयं कुलित्थचणकादिसम्पूर्णम्॥

सूर्य सस्याधीश हो तो भूमि पर सभी फसलें न्यून होती हैं। प्रचुर मात्रा में ईतिभय हो; परन्तु कुलथी और चने अधिक हों॥२५॥

सस्यपतौ तुहिनकरे रमणीया सुविस्तृता धरणी।
फलपुष्पसस्यवारिभिरमिताविकगोभिरन्नाद्यैः॥२६॥

चन्द्रमा सस्याधिपति होने पर विस्तारपूर्वक पृथ्वी रमणीय हो, फल-फूल, फसलें तथा जल पर्याप्त हो और भेड़, बकरी, गौ अन्नादि से भूमि प्रसन्न होती है॥२६॥

सीदन्ति सस्यनिचया भुवि भौमे सस्यपे महोष्णभयात्।
अपराखिलधान्यचयं क्वचित्क्वचिद्भवति शस्त्रभयम्॥२७॥

मङ्गल सस्याधिपति हो तो सस्य संग्रहों का भूमि पर नाश तथा महान् उष्णता का भय भी हो। समस्त पश्चिम धान्यों का संग्रह हो; परन्तु कहीं-कहीं शस्त्रभय भी हो॥२७॥

अनिलहतं सस्यचयं त्वतिमध्यमवृष्टिसम्पन्नम्।
शशितनये सस्यपतौ त्वपरं धान्यं प्रभूतफलम॥२८॥

बुध सस्याधीश हो तो सस्य संग्रहों की वायु से हानि हो, मध्यम वृष्टि हो किन्तु अन्य धान्यों में वृद्धि हो॥२८॥

सस्यपतौ त्रिदशगुरौ बहुविधसस्यर्घसम्पूर्णम्।
कोंकणमागधदेशे मध्यमसस्यर्घवृष्टिः स्यात्॥२९॥

सस्याधीश बृहस्पति हो तो अनेक प्रकार से सस्यार्घ सम्पूर्णता हो। कोंकण, मगध देशों में मध्यम सस्यार्घ और मध्यम वृष्टि हो॥२९॥

दैत्येज्ये सस्यपतौ बहुविधफलपुष्पसम्पूर्णम्।
अमरविडम्बितजनता सम्पूर्णमाभाति निखिल जगत्॥३०॥

शुक्र सस्याधिपति होने पर अनेक प्रकार के फल-फूलों की वृद्धि, दैव विडम्बना से सम्पूर्ण जगत् प्रभावित हो॥३०॥

मध्यमसस्यक्षितितलमिनतनये सस्यपे च राजभयम्।
कोद्रवकुलित्थचणकैर्माषैर्मुद्गैश्च विपुलतरम्॥३१॥

इति धान्याधिपफलम्

सस्याधिपति शनि हो तो पृथ्वी पर मध्यम फसलें हों और राजभय भी हो। कोद्रव, कुलथी चनें, माष, मुदग् (मूंगी) फसलें प्रचुर मात्रा में हों॥३१॥

अथ रसेशफलम्

चन्दनकुंकुम गुग्गुलतिलतैलैरण्डतैलमुख्यानि।
प्रचुराणि रसान्यतुलं रसनाथे भास्करे सततम्॥३२॥

सूर्य रसनाथ हो तो निरन्तर चन्दन, कुंकुम, गुग्गल, तिल तैल, अरण्डतैल विशेषतया प्रचुर मात्रा में ऐसे रसों की वृद्धि होती है॥३२॥

इक्षुविकारंत्वखिलं क्षीरविकारं च सर्वतैलानि।
गन्धयुतानि च सर्वाण्यपि सुलभान्येव रसपतौचन्द्रे॥३३॥

रसाधीश चन्द्रमा हो तो गन्ना और दूध के द्वारा उत्पन्न होने वाली चीजें, सभी प्रकार के तैल सुगन्धित पदार्थ सर्वत्र सुलभ होते हैं॥३३॥

भुविः रसनिचयाः सर्वे चन्दनकर्पूरकुंकुमाद्यं च।
दुर्लभमवनीसूनौ रसाधिपे मधुर वस्तूनि॥३४॥

मङ्गल रसाधिप हो तो पृथ्वी पर सभी चन्दन, कर्पूर, कुंकुमादि रसों के भण्डार हों; परन्तु मधुर वस्तुएं दुर्लभ हों॥३४॥

शशितनये रसनाथे पिप्पलिशुण्ठी च हिंगुलशुनानि।
घृततैलाद्यं निखिलं दुर्लभमिक्षूद्भवं सकलम्॥३५॥

रसाधिपति बुध हो तो पिप्पली, शुण्ठी, हींग, लशुन, घृत तैलादि सभी पदार्थ दुर्लभ हो; परन्तु गन्ने की फसलें पर्याप्त हों॥३५॥

रसनाथे देवगुरौ चन्दनकर्पूरकन्दमूलानि।
सुलभानि रसान्यखिलान्यतुलं सीदन्ति कुंकुमाद्यानि॥३६॥

रसाधीश बृहस्पति होने पर चन्दन, कर्पूर, कन्दमूल सुगमता से प्राप्त हों, सभी रसादि प्रचुर मात्रा में हों; परन्तु कुंकुमादि पदार्थों का नाश हो॥३६॥

सुगन्धवस्तूनि सिते रसेशे निर्गन्धवस्तूनि रसादिकानि।
क्षाराणि सर्वाणि च कन्दमूलफलानि पुष्पाणि बहूनि तानि॥३७॥

शुक्र रसेश हो तो सुगन्धित चीजें, सुगन्ध रहित रसादि, समस्त क्षारादि पदार्थ, कन्दमूल फल पुष्पादि की प्रचुरता जनता को आनन्दित रखे॥३७॥

रसेश्वरे सूर्यसुते धरित्र्यां सुदुर्लभान्येव रसानि यानि।
सुगन्धवस्तूनि घृतेक्षुकन्दमूलानि चान्यत्सुलभं भुविस्यात्॥३८॥

इति रसेश फलम्

शनि रसेश्वर हो तो पृथ्वी पर सभी रसादि दुर्लभ हों। सुगन्धित वस्तुएं, घृत, इक्षु कन्दमूलादि सुगमता से प्राप्त हों॥३८॥

अथ क्षेपाः

त्रिघ्ने शकाब्दे मुनिभिर्विभक्ते द्विनिघ्नशेषं शरयुक्तु वृष्टिः।
धान्यं तृणं शीतमथोष्णवायू प्रजासमृद्धिः क्षयराजविग्रहौ॥३९॥

अर्थ क्षेपाः—अभीष्ट शकाब्द को तीन से गुणा कर सात से भाग देकर शेष को द्विगुणित कर पाँच धन करने पर वृष्टि, धान्य, तृण, शीत, उष्ण, वायु, प्रजा समृद्धि, क्षय राज विग्रहादि—॥३९॥

वृष्टि धान्यादि लाने के लिए गणित उदाहरण—

अभीष्ट शकाब्द—१९१८×३= ५७५४÷७ लब्धि ८२२

शेषः =२×२+५= (५) वृष्टिः

पुनः लब्धि—८२२×३=२४६६÷७ लब्धिः ३५२

शेषः २×२+५= (९) धान्यम्

पुनः लब्धि— ३५२×३=१०५६÷७ लब्धि १५०

शेषः ६×२+५=(१७) तृणानि

पुनः लब्धि—१५०×३=४५०÷७ लब्धि ६४

शेषः =२×२+५=(९) शीतम्

पुनः लब्धि— ६४×३=१९२÷७ लब्धिः २७

शेषः =३×२+५=(११) उष्णवायुः

पुनः लब्धि—२७×३=८१÷७ लब्धिः ११

शेषः =४×२+५=(१३) प्रजा समृद्धिः

पुनः लब्धि—११×३÷७ लब्धि ४ शेषः ५×२+५=(१५) क्षयः

पुनः लब्धि—४×३=१२÷७ लब्धि १ शेषः ५×२+५=(१५) राज़विग्रहः

उग्रं च पुण्यं परतश्चपापं क्रमेण लब्धच्छकवत्सराच्च।
निरीक्ष्य सम्यक् प्रतिवर्षमेवं सर्वं वदेज्ज्यौतिषिकः पुनश्च॥
स्वस्वामिवर्षाधिपवत्सरैक्यं त्रिघ्नं शराढ्यं तिथिभक्तशेषम्।
आयोऽथलब्धिस्त्रिगुणा शराढ्या तिथ्युद्धृता शेषमितो व्ययः स्यात्॥४०॥

उग्र, पुण्य, पाप, शकाब्द से क्रमशः प्राप्त होते हैं सम्यगतया प्रतिवर्ष निरीक्षण करके ही सभी फल ज्योतिषयों को कहने चाहिये। अपने स्वामी और वर्षाधिप संख्या को जोड़कर तीन से गुणा करें पाँच धन करके पन्द्रह (१५) से भाग दें, शेष लाभ होगा। पुनः लब्धि को तीन से गुणा कर पाँच जोड़कर तिथि संख्या १५ से भाग देने पर शेष हानि होगी॥४०॥

लाभव्ययानयनम्

मेषवृश्चिकयोः— गुरु वर्षाधिपः

१६+७ = २२×३ = ६९+५ = ७४

७४ ÷ १५ लब्धिः ४ शेषः (१४) लाभम्

पुनः लब्धिः ४×३+५ = १७ ÷ १५ लब्धिः १

शेषः (२) हानिः

वृषतुलायाः १६+२० = ३६×३ = १०८+५ = ११३

११३÷१५ लब्धिः ७ शेषः (८) लाभम्

पुनः लब्धिः = ७×३ = २१÷५ = २६÷१५ लब्धिः १

शेषः (११) हानिः

कन्यामिथुनयोः १६+१७ = ३३×३ = ९९+५ = १०४

१०४÷१५ लब्धिः ६ शेषः (१४) लाभम्
पुनः लब्धिः = ६×३ = १८+५ = २३÷१५ लब्धिः
शेषः (८) हानिः

कर्कस्य १६+१० = २६×३ = ७८+५ = ८३
८३÷१५ लब्धिः ५ शेषः (८) लाभम्
पुनः लब्धिः ५×३ = १५+५ = २०÷१५ लब्धिः १
शेषः (५) हानिः

सिंहस्य १६+६ = २२×३ = ६६+५ = ७१
७१÷१५ = लब्धिः ४ शेषः (११) लाभम्
पुनः लब्धिः ४×३ = १२+५ = १७÷१५ लब्धिः १
शेषः (२) हानिः

धनुमीनयोः १६+१६ = ३२×३ = ९६+५ = १०१
१०१÷१५ लब्धिः ६ शेषः (११) लाभम्
पुनः लब्धिः ६×३ = १८+५ = २३÷१५ लब्धिः १
शेषः (८) हानिः

मकरकुम्भयोः १६+१९ = ३५×३ = १०५+५ = ११०
११०÷१५ लब्धिः ७ शेषः (५) लाभम्
पुनः लब्धिः ७×३ = २१+५ = २६÷१५ लब्धिः १
शेषः (११) हानिः

सौविध्यर्थं विंशोत्तरीमतेनायव्ययचक्रं प्रस्तूयते

राश्यः	मे.	वृ.	मि.	कं.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
लाभ	१४	८	१४	८	११	१४	८	१४	११	५	५	११
व्यय	२	११	८	५	२	८	११	२	८	११	११	८

शाकं च वेदगुणितं सप्तभिर्भागमाहरेत्।
शेषं च द्विगुणीकृत्य रूपं चैव तु मिश्रयेत्॥४१॥

अभीष्ट शकाब्द को चार से गुणा कर सात से भाग देकर लब्धि को पृथक् स्थापित करें शेष को द्विगुणित करके रूप (एक) जोड़ें॥४१॥

क्षुधा तृषा च निद्रा च आलस्यं तूद्यमस्तथा।
शान्तिः क्रोधस्तथा लोभो भेदो मैत्री तथैव च॥४२॥

क्षुधा, तृषा, निद्रा, आलस्य, उद्यम, शान्ति, क्रोध, लोभ, भेद, मैत्री—॥४२॥

क्षुधातृषादीनांमानानि–

शकाब्दः	१९०८×४ = ७६३२÷७ लब्धिः १०९०
	शेषः = २×२+१ = (५) क्षुधामानम्
पुनः लब्धिः	१०९०×४ = ४३६०÷७ लब्धिः ६२२
	शेषः ६×२+१ = (१३) तृषामानम्
पुनः लब्धिः	६२२×४ = २४८८÷७ लब्धिः ३५५
	शेषः ३×२+१ = (७) निन्द्रामानम्
पुनः लब्धिः	३५५×४ = १४२०÷७ लब्धिः २०२
	शेषः ६×२+१ = (१३) आलस्यम्
पुनः लब्धिः	२०२×४ = ८०८÷७ लब्धिः ११५
	शेषः ३×२+१ = (७) उद्यम्
पुनः लब्धिः	११५×४ = ४६०÷७ लब्धिः ६५
	शेषः ५×२+१ = (११) क्रोधः
पुनः लब्धिः	६५×४ = २६०÷७ लब्धिः ३७
	शेषः १×२+१ = (३) लोभः
पुनः लब्धिः	३७×४ = १४८÷७ = लब्धिः २१
	शेषः १×२+१ = (३) भेदः
पुनः लब्धिः	२१×४ = ८४÷७ लब्धिः ११
	शेषः ७×२+१ = (१५) मैत्री

क्रमागतः

पुनः लब्धिः	३७×४ = १४८÷७ लब्धिः २१
	शेषः १×२+१ = (३) लोभः
पुनः लब्धिः	२१×४ = ८४÷७ लब्धिः १२
	शेषः = ०×२+१ = (१) भेदः
पुनः लब्धिः	१२×४ = ४८÷७ लब्धिः ६

शेष: = ६×२+१ = (१३) मैत्री

पुन: लब्धि: ६×४ = २४÷७ लब्धि: ३

शेष: ३×२+१ = (७) उत्साह

पुन: लब्धि: ३×४ = १२÷७ लब्धि: १

शेष: = ५×२+१ = (११) पुण्याणि

पुन: लब्धि: १×४ = ४÷७ लब्धि:

शेष: = ३×२+१ = ६+१ = (-५) पापानि

उत्साहपुण्यपापानि ज्ञातव्यानि यथाक्रमम्।
त्रिघ्नः शाकः सप्तभक्तो लब्धं राम३हतं भवेत्॥४३॥

उत्साह, पुण्य, पाप इत्यादि का क्रमशः ज्ञान करें, पुनः शक संवत् की संख्या को तीन से गुणा कर सात से भाग देकर जो लब्ध हो उसको तीन से गुणा करें—॥४३॥

वृष्टिधान्यादिमानम्

१९१८×३ = ५७५४÷७ लब्धि: = ८२२

शेष: = ०×२ = ०+५ = (५) वर्षा

शेषं तु द्विगुणीकृत्यं शरेणैव तु मिश्रयेत्।
वृष्टिरन्नं तृणं शीतं तेजो वायुश्च संज्ञकाः॥४४॥

शेष को द्विगुणित करके पाँच जोड़ दें तो वृष्टि, अन्न, तृण, शीत, तेज, वायु का मान होता है॥४४॥

विग्रहः सर्वलोकानां ज्ञायते च पुनः पुनः।
शाको वेदमितैर्निघ्नः शैलैर्लब्धयुगाहतैः॥४५॥

पुनः-पुनः गणित करने से विग्रह (स्वरूप) सभी लोकों का ज्ञात होता है। शकाब्द संख्या को चार से गुणा कर सात से भाग देकर लब्धि को चार से गुणा करें—॥४५॥

यच्छेषं तत्पुनर्द्विघ्नं सैकं प्राग्वत्प्रजायते।
क्षुधा तृषा तथा निद्राऽऽलस्योद्यमविषं तमः॥४६॥

जो शेष हो उसको फिर दूना करके एक-एक जोड़ा जाए तो क्षुधा, तृषा, निद्रा, आलस्य, उद्यम, विष, तम—॥४६॥

क्रोधो दण्डश्च भेदः स्यादिच्छाग्निश्च रसाः क्रमात्।
शाकं पञ्चगुणं कृत्वा शैलैर्लब्धं शराहतम्॥४७॥

क्रोध, दण्ड, भेद, इच्छा, अग्नि और रस क्रमशः जाने जा सकते हैं। पुनः शकाब्द को पाँच से गुणा कर सात से भाग देकर लब्धि को पाँच से गुणा करके—॥४७॥

यच्छेषं तत्पुनर्द्विघ्नं पञ्चयुग्जायते फलम्।
शेषं सौख्यं भयं क्लेशो युद्धं वातोत्सवाः क्रमात्॥४८॥

जो शेष बचे उसको द्विगणित करके पाँच जोड़ते जाएँ तो शेष क्रमशः सौख्य, भय, क्लेश, युद्ध, वायु, उत्सव जाने जा सकते हैं॥४८॥

शकादग्निहतान्नंदहृताच्छेषं द्विनिघ्नितम्।
त्रिभिर्युतं पुनर्लब्धा सप्तधैवं प्रजायते॥४९॥

शकाब्द को तीन से गुणा कर नौ (९) से भाग दे कर शेष को दो (२) से गुणा कर के तीन जोड़ कर इसी प्रकार सात बार करें—॥४९॥

शलभामूषकाश्चैव दैविकं हिममेव च।
ताम्रं स्वचक्रं च तथा परचक्रमिति क्रमात्॥५०॥

तो शलभ, मूषक, दैविक हिमपात, ताम्र स्वचक्र, परचक्र क्रमशः जाने जाते हैं॥५०॥

॥इति ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठविरचितायां संहितायां वर्षेषादिनिर्णयफलाध्यायः एकादशः॥११॥

॥वृद्ध वसिष्ठ संहिता के वर्षेशादिनिर्णयफलाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त॥११॥

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, ज२-पैतृमानं (पित्र्यमानं), ज१-साववर्क्षे, ज२-सावतर्क्षे (सावनर्क्षम्)

१ (ब) ज१, ज२-येषां (एषां), ज१-थंप्रयोजनं, ज२-कृत्यप्रयोजनं (यत्प्रयोजनं), ज१-तत्कमशः, ज२-तत्क्रमसः (तत्क्रमशः)

२ (अ) ज१, ज२-विधातश्च (विधातुः), ज१, ज२-पुनित्यमायुः (खलुनित्यमायुः)

२ (ब) ज१-गीर्वाणमन्योरपि, वा.-गीर्वाणामचोरपि (गीर्वाणमन्वोरपि), ज१-प्रवृत्ताः, ज२-प्रवृत्तां (प्रवृत्तम्)

३ (अ) ज१-गुरुमानतत्स्यात्, ज२-मानतत्स्यात् (गुरुमानतः स्यात्)

३ (ब) ज१, ज२-वासवतारकाया (वासवतारकायाः)

४ (अ) ज१, ज२-वशादिनस्य (वशाद्दिनस्य), ज२-भगणभ्रमाश्च (भगणभ्रमाच्च)

४ (ब) ज१, ज२-त्रिंशद्दिने (त्रिंशद्दिनं), ज१-सावज्ञमानं, ज२-संज्ञमानं (सावनमानमाद्यं), ज१, ज२-दिनादिमानं (दिनादमान्तं)

५ (अ) ज१-त्वयितं, ज२-त्वघनं (त्वयनं), ज१-संजातिकस्वस्य, ज२-संजातिकालस्य, वा.-पाठस्यलोपः (सङ्क्रान्तिकालस्य)

५ (ब) ज१, ज२-त्वखिलग्रहाणं (निखिलग्रहाणां), ज१-विग्रह्यते, ज२-विष्टह्यतेथ, वा.-पाठोनास्ति (विगृह्यवेऽत्र)

६ (अ) ज१-सुसम्यक्त्दभंगमार्गेण, ज२-सुसस्यत्दभक्ततद्भंगमार्गेण (सुसम्यगृक्षेण), ज१-निरिक्षितव्यं, ज२-निरीक्षितव्यां (निरीक्षितव्यम्)

६ (ब) ज१, ज२-त्रिगर्भवृद्धिः (नृगर्भवृद्धिः), ज१-प्रवलस्तुकालं, ज२-प्रबलस्तकालं (प्रबलर्तुकालं)

७ (अ) ज१, ज२-उद्वाहयज्ञोपतयः, (उद्वाहयज्ञोपनय)

७ (ब) ज१, ज२-सर्वक्रिया (पर्वक्रिया), ज१, ज२-ग्रहप्रवेशं (गृहप्रवेशः), ज१-सर्वयचाद्रेण, ज२-सवेयं चांद्रेच (सर्वं च चान्द्रेण)

८ (अ) ज१, ज२-शुक्लाष्वतिवैश्वर (शुक्लाद्यतिथेश्च), ज१, ज२-नाथोद्वयस्तस्य (नाथोऽब्दपस्तस्य), ज१-चसूपतिसः, ज२-चमूपतीसः (चमूपतिः सः)

८ (ब) ज१-मेषश्च, ज२-मेषाश्च (मेघस्य), ज१-तिथैवाश्वर, वा.-तिथैश्चै (तिथेश्ववार)

९ (अ) ज१, ज२-संक्रान्ति (सङ्क्रान्ति), ज१-रसाधियस्तेमिनिवासरेशः, ज२-रसाधियस्तैभिनिवासरेव (रसाधिपस्तौलिनिवासरेशः)

९ (ब) ज१, ज२-फलंत्वथैषां (फलं तथैषां), ज१-प्रयतः, ज२-प्रयतप्रवक्षे, वा-यत्प्रयतः पवक्ष्यै (यत्प्रयतः प्रवक्ष्ये)

१० (अ) ज१-वारधश्चमूपति चैत्र, ज२-ववारययश्चमूपतिचैत्र (वारश्चमूपतिश्चैत्रादिनादिवारः)

१० (ब) ज१-यःद्वयेषु, ज२-यडूयेषु (हूणेषु), ज१-खसेषु, ज२-श्वसेषु (खशेषु), ज१-पौंड्रेषुचगंकणेष्वपि, ज२-पाड्रेषु च टंकणोष्वपि, वा.-पांड्रेष्वपिटंकरेषु, मु.पु.-पौण्ड्रेष्वपिटंकरेषु (पौण्ड्रेष्वपि कोंकणेषु)

११ (अ) प्रभक्षगणाश्येतकरोतभश्च, ज२-प्रभक्षणशीतकरोनभश्च, वा.-प्रभक्षगणाशीतरंनभश्च (प्रभक्षेगणशीतकरनभश्च)

११ (ब) ज१, ज२-विषयोनिखिला, वा.-विषयनिखिल (विषयान्निखिल), वा.-क्षितीशाः (क्षितीशा), ज१, ज२-नृलावृताश्च, वा.-वलावृताश्च (भूरिबलावृताश्च)

१२ (अ) ज१-धूषखेदनादैः, ज२-घ्वरखेदनादैः, वा.-ध्वखेदनादै (ऽध्वखेदनादैः)

१२ (ब) ज१, ज२-वा. विभाति (विभान्ति), ज१-संभूताः, ज२-प्रभूताः (प्रभूता), ज१-दुग्धोब्धिजे, वा.-धामिने (दुग्धाब्धिजे), ज१, ज२-चमासौ (च सोमे)

१३ (अ) ज१, ज२-सापत्य (सापल), ज१-महीशाविल (महीशाखिल), ज१, ज२-वा.-सदाकुला (सदाऽकुला), ज२-वारित्युसस्यपूर्णा (वारिसुसस्यपूर्णा)

१४ (अ) ज१-मदवृष्टिर्गदाहच, ज२-संदवृष्टिर्गदाहू (मध्यवृष्टिर्गदाहव), ज१-प्रदभूतराजकोप, ज२-प्रद्धतराजकोपा (प्रोद्धतराजकोपः)

१४ (ब) ज१-नाथेव्ययपरं, ज२-नाथेप्यपरं (नाथेत्वपरं), ज१, ज२-सर्वश्रेष्ठ (सस्यं श्रेष्ठं)

१५ (अ) ज१, ज२, वा.-भूदेवसंधोध्वर (भूदेवसंघोऽध्वर), ज२-शालयुक्ता: (शीलयुक्ता:)

१५ (ब) ज१, यागुरोः सुवर्षे, ज२-धातिगुरोः सुवर्ष, वा.-यातिगुरोस्तुवर्षं (यान्तिगुरोस्तुवर्षे), ज१-स्वकर्मरक्ता, ज२-सुकर्मरक्ता (स्वकर्मसक्ता)

१६ (अ) ज१-ज२, ज२-वरेक्षु (परेक्षु), वा.-वाटीखिल (वाटाखिल)

१६ (ब) ज१, ज२-वा-भृगुजेब्द (भृगुजेऽब्दनाथे)

१७ (अ) ज१-मध्यावि (मध्यानि), ज१-यज्जकोपः, ज२-यज्वकोपः (राजकोपः), वा.-रविजेब्द (रविजेऽब्दनाथे)

१८ (अ) ज१, ज२-दिनकृन्मंत्रिणिससततं (दिनकृतिमन्त्रिणिसततं), ज१, ज२-विचित्रवर्षाणि (विचित्रवर्णानि)

१८ (ब) ज१, ज२-क्षितिकोपं (क्षितिपतिकोपं), ज१-विपिनिरामणिसंदति, ज२-विपिनारामणि (विपिनारामाश्चसीदन्ति)

१९ (अ) ज२-सस्यपूर्णा (सस्यसम्पूर्णा)

१९ (ब) ज१, ज२-काननं (कानन)

२० (अ) ज१, ज२-संचरमहदामय (डमरमरुदामय)

२० (ब) ज१, ज२-भिन्नसस्यभयं, मु.पु.-सस्यमयं (निम्नसस्यचयम्)

२१ (ब) ज१, ज२-पुरसदृशा (सुरसदृश), वा.-लोकैश्च (लोकैश्च)

२२ (अ) ज१-सचिवेवावामीशे, ज२-सचिवेवाचामीशं (सुरसचिवेमन्त्रिणिसति), ज२-वद्धसस्य (बहुसस्य), वा.-सम्पूर्णा (सम्पूर्णम्)

२२ (ब) ज१-जमदलं, ज२-जयदलं (जगदखिलं)

२३ (अ) ज१, ज२-उच्चरिताध्वनिरतीशं, वा.-उच्चलिताध्वनिरतिशं (उच्चलिताऽध्वनिरनिशं), ज२-श्वेतात्रयखिलं, ज२-खेतान्याखिलं (चरत्यखिलम्)

२३ (ब) वा.-सुरारिगुणौ (सुरारिगुरौ)

२४ (अ) ज१-चातिमुंचति, ज२-नचामुंचति (न वारि मुञ्चति)

२४ (ब) ज१, ज२-विधत्ससततं (वियत्सततम्)

२५ (अ) ज१, ज२-भवति (भास्वति)

२५ (ब) ज२-धतिनुपुलंत्भीतिभयं (अतिविपुलंत्वीतिभयं), वा.-सम्पूर्णा (सम्पूर्णम्)

२६ (अ) ज१-सस्याधीशे, ज२-सस्याधिपे (सस्यपतौ), वा.-तुहिनकरै (तुहिनकरे)

२६ (ब) ज१-सस्यवारिभिरमिताचिकगोभिरुत्रादे, ज२-फलयुवासस्यवारिभिरमिताविकोभिरुत्रादे (फलपुष्पसस्यवारिभिरमिताविकगोभिरन्नाद्यैः)

२७ (अ) ज१, ज२-सस्यानिच (सस्यनिचया), ज१-यंभुविभेषे, ज२-धंभुविभैवेसस्य (भुवि भौमे सस्यपे), ज१, ज२-सहोशल्यभया (महोष्णभयात्)

२७ (ब) ज१, ज२-धान्यभयं (धान्यचयं)

२८ (अ) ज१, वा.-अविलहतं, ज२-अखिलंहतं (अनिलहतं), ज१, ज२-सस्यभयंत्वमपि, वा.-सस्यचयंत्वपि (सस्यचयंत्वति)

२९ (अ) ज१, ज२-दिविजगुरौ (त्रिदशगुरौ), वा.-सम्पूर्ण (सम्पूर्णम्)

२९ (ब) ज२-कुंकणदेशेमागधदेशे, वा.-गंकरणामागधेदेशे, मु.पु. टंकणमागधदेशे (कौंकणमागधदेशे)

३० (अ) ज१, ज२-सस्यसंपूर्णा, वा.-पुष्पसम्पूर्णा (पुष्पसम्पूर्णम्)

३० (ब) ज१, ज२-सम्पूर्णावापि (सम्पूर्णमाभाति)

३२ (अ) वा.-चंदनकुंम (चन्दनकुंकुम), ज१, वा.-गुगुल (गुग्गुल), ज१, ज२-पाठोनास्ति, वा.-तिलतैलरण्डतैडतै (तिलतैलैरण्डतैल)

३२ (ब) ज२-सतरेसततं (सततम्)

३३ (अ) ज१-सर्वतेलानि (सर्वतैलानि)

३३ (ब) ज१-रसाधिपेवंद्रे, ज२-रसादिपेचंद्रे (रसपतौचन्द्रे)

३४ (अ) ज१, ज२-भुविसस्यनिचयं, वा.-भुविरसेनिचयाः (भुविरसनिचयाः)

३४ (ब) ज१, ज२-दुर्लभमवनिसूतौ (दुर्लभमवनीसूनौ)

३५ (अ) ज१, ज२-विषालिसंठी (पिप्पलिशुण्ठी), ज१, ज२-च हिंगुलवणानि (च हिंगुलशुनानि)

३६ (अ) ज१, ज२-दिविजगुरौ (देवगुरौ)

३६ (ब) ज१-शुभाक्षि, ज२-सुभाभाति (सुलभानि), ज१, ज२-रसान्याखिलान्याखिलं (रसान्यखिलान्यतुलं)

३७ (अ) ज२-रसैशे (रसेशे), ज१-निगंध (निर्गन्ध), ज१, ज२-सस्यादिकानि (रसादिकानि)

३८ (अ) ज१-सूर्यसुधते (सूर्यसुते), ज१-रसायनानि, ज२-रसाधवानि (रसानियानि)

३८ (ब) ज१, ज२-धान्यंसुलभं (चान्यत्सुलभं)

३९ (अ) ज१, ज२-त्रिधे, वा.-त्रिघ्ने, ज१, ज२-द्विघ्नः शशेषः, वा.-द्विनेघ्नशेष (द्विनिघ्नशेषं) ज१, ज२-शरयुक्त, वा.-शारयुक्तु (शरयुक्तु)

३९ (ब) ज१-क्षुयराजविग्रहे, ज२-क्षपराजविग्रहं (क्षयराजविग्रहौ)

४० (अ) वा. क्रमेणा (क्रमेण), ज१, ज२-लब्धाशकवत्सराधाः (लब्धाच्छकवत्सराच्च)

४० (ब) ज१-वदेक्षौतिथिकः, ज२-ददक्षौतिथौकः (वदेज्यौतिषिकः)

४० (स) वा.-शरव्य (शराढ्यं)

४० (द) श्लोकात्परं ज१, ज२-हस्तलेखयोः ४१-५० श्लोकाः न सन्ति

४३ (अ) वा.-अलस्यं (आलस्यं)

४३ (ब) वा.शाति (शान्ति)

४३ (ब) वा.-त्रिग्न (त्रिघ्नः), वा.-लयं (लब्धं)

४४ (अ) वा.द्विगुणंकृत्य (द्विगुणीकृत्य)

४४ (ब) वा.-संक्षया (संज्ञकाः)

४५ (अ) वा. तायते (ज्ञायते)

४५ (ब) वा.-शार्का (शाको) वा.-वुदमितैर्निघ्नः (वेदमितैर्निघ्नः), वा.-युगाहतेः (युगाहतैः)

४६ (अ) वा.-यद्येषं (यच्छेषं), वा.-तत्प्रतुद्विघ्रं (तत्पुनर्द्विघ्नं), वा.-पंचयुकजायते (प्राग्वत्प्रजायते)

४७ शुद्धपाठः

४७ शुद्धपाठः

***

१२

अथ तिथिस्वरूपाध्यायः

दिनाधिपा धातृविधातृविष्णुयमेन्दुषड्वक्त्रशचीश्वराश्च।
वस्वाख्यनागौ परतश्च धर्मशिवार्ककामाः कलिविश्वसंज्ञौ॥१॥

धाता, विधाता, विष्णु, यम, चन्द्रमा, स्कन्द, ईन्द्र, वसु, नाग, धर्म, शिव, सूर्य, काम, कलि, विश्वेदेव (पितृ) से क्रमशः तिथियों के स्वामी हैं॥१॥

क्रमागत–

नारदः–

वह्निर्विरिंचिर्गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिन्कृन्महेशः।
दुर्गान्तको विष्णुहरी स्मरश्च शर्वः शशी चेतिपुराणदृष्टः।
अमायाः पितरः प्रोक्तास्तिथीनामधिपाः क्रमात्॥

(ना.सं. ४, १-२)

कश्यपः–

अथातः संप्रवक्ष्यामि तिथ्याध्यायं च तत्क्रियाम्।
तिथिशाः क्रमशो धातृवह्निधौकमलासनौ॥
विष्णुगौर्यौ गणाधीशयमौ सर्प निशाकरौ।
गुहोऽर्केन्द्रौच वस्वीशौ दुर्गानागौ च धर्मपः॥
विश्वेश्वरौ हरिरवीस्मरः शर्वकली शशी।
दर्शाह्नायास्थितेरीशा भवन्ति पितरः सदा॥

(क.सं. १२, १-३)

सदैव नष्टेन्दुतिथीश्वराः स्युर्नूनं च एते पितरः क्रमेण।
धनाधिपं केचिदुशन्ति सन्तस्त्वधीश्वरं वै हरिकामतिथ्योः॥२॥

सदैव अमावास्या तिथि के स्वामी पितर माने जाते हैं। कई विद्वद्जन द्वादशी और त्रयोदशी के स्वामी कुबेर को स्वीकार करते हैं॥२॥

वह्निर्विधाताऽद्रिसुता गणेशः सर्पः कुमारो दिनपो महेशः।
दुर्गा यमो विश्वहरी च कामः शिवो निशीशश्च पुराणदृष्टः॥३॥

अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, सर्प, कुमार, सूर्य, महेश, दुर्गा, यम, विश्वेदेव, विष्णु, काम, शिव और चन्द्रमा ये क्रमशः पुराणोक्त प्रतिपदादि तिथियों के स्वामी हैं॥३॥

क्रमागत–

वराहमिहिरः–

कमलजाविधातृहरियमशशाङ्कषड्वक्त्रशक्रवसुभुजगाः।
धर्मेशसवितृमन्मथकलयो विश्वे च तिथिपतयः।।

(वृ.सं. १९, १)

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति सर्वास्तिथयः क्रमात्स्युः।
शुक्लेऽधमामध्यमकोत्तमास्ताः पक्षेऽसितेऽप्युत्तममध्यहीनाः।।४।।

समस्त तिथियाँ क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा में विभक्त हैं। शुक्लपक्ष में क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम कहलाती हैं। कृष्णपक्ष में क्रमशः उत्तम, मध्यम और हीन कहलाती हैं।।४।।

क्रमागत–

नारदः–

तिथीनामपराः संज्ञाः कथ्यन्तेता यथाक्रमात्।
पर्यायत्वेन विज्ञेयानेष्टमध्येष्टदा सिते।
कृष्णपक्षेपीष्टमध्यनेष्टदाः क्रमशः सदा।।

(ना.सं. ४, ३, ४)

कश्यपः–

नन्दाभद्रा जयारिक्तापूर्णाद्याः स्युः पुनः पुनः।
नेष्टमध्यनेष्टफलदाः शुक्ले कृष्णे प्रतीपगः।।

(क.सं. १२-४)

नोद्वाहयात्रोपनयप्रतिष्ठासीमन्तचौलाखिलवास्तुकर्म्म।
गृहप्रवेशाखिलमङ्गलाद्यं कार्यं हि मासादितिथौ कदाचित्।।५।।

विवाह, यात्रा, उपनयन (जनेऊ), प्रतिष्ठा (मूर्ति प्रतिष्ठा, गृहप्रतिष्ठा इत्यादि) सीमन्त, चौल (मुण्डन), समस्त वास्तु कर्म, गृहप्रवेश, समस्त मङ्गलकृत्य प्रतिपदा तिथि में कदाचित नहीं करने चाहिये।।५।।

क्रमागत–

नारदः–

चित्रलेख्यासवक्षेत्रतैलशय्यासनादि यत्।
वृक्षच्छेदो गृहाश्माथ कर्मप्रतिपदीरितम्।।

(ना.सं. ४, ५)

कश्यपः–

लोहाश्म वृक्षशय्यादि चित्रलेख्यासवादि यत्।
रथोपकरणं क्षेत्रं तिथौ प्रतिपदीरितम्।।

(क.सं. १२, ५)

सप्ताङ्गचिह्नानि नृपस्य वास्तुव्रतप्रतिष्ठाखिलमङ्गलानि।
यात्राविवाहाखिलभूषणं यत्कार्यं द्वितीयादितिथौ सदैव॥६॥

राजा के सप्ताङ्गचिह्न, वास्तु व्रत प्रतिष्ठा, समस्त मङ्गलकृत्य, यात्रा, विवाह, भूषणादि धारण करना सदैव द्वितीया तिथि में करना चाहिए॥६॥

क्रमागत–
नारदः–

विवाहामौंजीयात्राश्चसुरस्थापनभूषणम् ।
गृह पुष्ट्यखिलं कर्म द्वितीयायां विधीयते॥

(ना.सं. ४, ६

कश्यपः–

मैंजीविवाहयात्राश्च प्रतिष्ठा भूषणादिकम्।
पुष्टिवास्त्वादिकं कर्म द्वितीयायां विधीयते॥

(क.सं. १२, ६)

सङ्गीतविद्याखिलशिल्पकर्म सीमन्त चौलान्नगृहप्रवेशम्।
कार्यं द्वितीये दिवसे यदुक्तं सदा तृतीये दिवसेऽपि कार्यम्॥७॥

सङ्गीतविद्या, शिल्पकर्म, सीमन्त, चौल (मुण्डन), अन्नप्राशन, गृहप्रवेशादि समस्त कार्य जो द्वितीया तिथि में करने के लिए कहे हैं, वे तृतीया तिथि में भी विहित हैं॥७॥

क्रमागत–
नारदः–

मौंजी प्रतिष्ठाश्च शिल्पविद्या निखिलमङ्गलम्।
पश्विभोष्ट्रांबुयानोक्तं तृतीयायां विभूषणम्॥

(ना.सं. ४, ७)

कश्यपः–

शिल्पमौंजी प्रतिष्ठाश्च विद्योद्वाहादिमङ्गलम्।
यात्रेभोष्ट्राम्बुगोकर्म तृतीयायां विधीयते॥

(क.सं. १२, ७)

रिक्तासु शत्रोर्वधबन्धशस्त्रविषाग्निघातादि च याति सिद्धिम्।
सन्मङ्गलं तासु कृतं च मूढैर्विनाशमायाति तदा तु नूनम्॥८॥

चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियों में शत्रु का वध, बन्धन, शस्त्र, विष, अग्नि तथा घातादि घोर कर्म सिद्ध होते हैं। उन्हीं रिक्ता तिथियों में मूर्खों द्वारा यदि माङ्गलिक कृत्य हो जाए तो निश्चिय से विनाश का कारण बनता है॥८॥

क्रमागत–

नारदः–

अर्थवविद्याशास्त्राग्निबन्धनोच्चाटनादिकम् ।
मारणाद्यखिलं कर्म रिक्तास्वेव विधीयते।।

(ना.सं. ४, ८)

कश्यपः–

बन्धनोच्चाटनाग्न्यस्त्र विषाद्यखिल दारुणम्।
आथर्वणादिकं कर्म रिक्तास्वेव विधीयते।।

(क.सं. १२, ८)

शुभानि कार्याणि चरस्थिराणि चोक्तान्यनुक्तन्यपि यानि तानि।
सिद्धिं प्रयान्त्याशु ऋणप्रदानं विना सदा नागतिथौ प्रभूतम्।।९।।

जो कहे हैं अथवा नहीं कहे हैं सभी चरस्थिरादि कर्म, ऋण आदान-प्रदान के अतिरिक्त पञ्चमी तिथि में अति शीघ्र सिद्ध होते हैं।।९।।

क्रमागत–

नारदः–

यानोपनयनोद्वाहग्रहशान्तिकपौष्टिकम् ।
चरस्थिराखिलं कर्म पञ्चम्यां मङ्गलोत्सवम्।।

(ना.सं. ४, ९)

कश्यपः–

यात्रोपनयनोद्वाह वास्तु शान्तिकपौष्टिकम्।
चरस्थिराखिलं कर्म पञ्चम्यां समुदीरितम्।।

(क.सं. १२, ९)

अभ्यङ्गयात्रापितृकर्मदन्तकाष्ठं विना पौष्टिकमङ्गलानि।
षष्ठ्यां विधेयानि रणोपयोग्यशिल्पानि वास्त्वम्बर भूषणानि।।१०।।

तैलाभ्यंग, यात्रा, पितृकर्म, दन्तधावन के अतिरिक्त पौष्टिक, मङ्गलकार्य, युद्ध के योग्य सामग्री, शिल्पादि, वास्तु, वस्त्र एवं भूषणादि का घटनविघटनादि कार्य षष्ठी तिथि में शुभ जानना।।१०।।

क्रमागत–

नारदः–

पशु वास्तु महीसेवा पण्यांबु क्रय विक्रये।
भूषणं व्यवहारादिकर्म षष्ट्यां विधीयते।।

(ना.सं. ४, १०)

कश्यपः-

सेवा भूपण्यगो वास्तु समरं क्रय विक्रयम्।
भूषणं कर्म भैषज्यं सर्वं षष्ठ्यां विधीयते।।

(क.सं. १२, १०)

द्वितीयायां तृतीयायां पञ्चम्यां कथितान्यपि।
तानि सिद्धयन्ति कार्याणि सप्तम्यामखिलान्यपि।।११।।

द्वितीया, तृतीया एवं पञ्चमी तिथियों में कहे गऐ समस्त कार्य सप्तमी तिथि में भी सिद्ध होते हैं।।११।।

क्रमागत-
नारदः-

यानस्थापनवाहादि राजसेवादि कर्म यत्।
विवाह वास्तुभूषाद्यं सप्तम्यां चोपनायनम्।।

(ना.सं. ४, १२)

कश्यपः-

वास्तूपनयनोद्वाहः प्रतिष्ठादि चरं स्थिरम्।
कृषि भूषणं सङ्ग्राम सप्तम्यां समुदीरितम्।।

(क.सं. १२, ११)

सङ्ग्रामयोग्याखिलवास्तुशिल्पनृत्यप्रभेदाखिललेखनानि।
स्त्रीरत्नचर्याखिल भूषणानि कार्याणि कर्माणि महेशतिथ्याम्।।१२।।

युद्ध सम्बन्धी वस्तुएं, वास्तु, शिल्प, नृत्य, दुर्गभङ्ग, समस्त लेखन कार्य, स्त्री, रत्नचर्या, भूषण धारणादि समस्त कर्म अष्टमी तिथि में प्रशस्त हैं।।१२।।

क्रमागत-
नारदः-

कृषिवाणिज्यधान्याश्मलोहसंग्रामभूषणम् ।
शिवस्थापनखाताम्बुकर्माष्टम्यां विधीयते।।

(ना.सं. ४, १२)

कश्यपः-

सेवा पण्यलोहाश्म वृक्षवाणिज्य भूषणम्।
खातक्षेत्ररणोद्वेगमष्टम्यां समुदीरितम्।।

(क.सं. १२, १२)

नवमी तिथि फल अमुक्त है।

द्वितीयायां तृतीयायां पञ्चम्यां सप्तमी तिथौ।
उक्तानि यानि सिद्धयन्ति दशम्यां तानि सर्वदा।।१३।।

द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी तिथियों में सिद्ध होने वाले कार्य सर्वदा दशमी तिथि में भी सिद्ध होते हैं, ऐसा समझना चाहिये॥१३॥

क्रमागत–

नारदः–

प्रासादस्थापनं यानमुद्वाहो व्रतबन्धनम्।
शान्तिपुष्ट्यादिकं कर्म दशम्यां तु प्रशस्यते॥

(ना.सं. ४, १३)

कश्यपः–

घातबन्धन शस्त्रादि तथाग्नेर्दहनक्रिया।
द्यूतचौर्यादिकं कर्म रिक्तायां समुदीरितम्॥
यात्रोपनयने वास्तु प्रतिष्ठामङ्गलन्तु यत्।
महोत्सवादिकं सर्वं दशम्यां च विधीयते॥

(क.सं. १२, १३, १४)

व्रतोपवासाखिलधर्मकार्यसुरोत्सवाद्याखिलवास्तुकर्म्म।
सङ्ग्रामयोग्याखिलवास्तुकर्म विश्वे तिथौ सिद्ध्यति शिल्पकर्म॥१४॥

व्रत, उपवास, समस्त धार्मिक कार्य, देव उत्सव समस्त वास्तु कर्म, युद्ध सम्बन्धी सभी वास्तु कृत्य (दुर्गादिनिर्माण), शिल्प कार्य एकादशी तिथि में सिद्ध होते हैं॥१४॥

क्रमागत–

नारदः–

व्रतोपवासवैवाहकृषिवाणिज्यभूषणम्।
शिल्पं नृत्यं गृहं कर्म एकादश्यां विचित्रकम्॥

(ना.सं. ४, १४)

कश्यपः–

विवाहकृषिवाणिज्यमुपवासादि भूषणम्।
भूपण्यशिल्पनृत्याद्यमेकादश्यां विधीयते॥

(क.सं. १२-१४)

पृथिव्यां यानि कार्याणि कर्मपुष्टिशुभानि च।
चरस्थिराणि द्वादश्यां यात्रान्नग्रहणं विना॥१५॥

यात्रा—एवं अन्नप्राशन के अतिरिक्त पृथ्वी पर जितने भी शान्तिक, पौष्टिक कर्म और चर एवं स्थिरादि कार्य हैं, वे सभी द्वादशी में सिद्ध होते हैं॥१५॥

क्रमागत–

नारदः–

चरस्थिराखिलं कर्म दान शान्तिकपौष्टिकम्।
यात्रान्नग्रहणं त्यक्त्वा द्वादश्यां निखिलंहितम्।।

(ना.सं. ४, १५)

कश्यपः–

चरस्थिराखिलं कर्म स्थापनोद्वाहभूषणम्।
द्वादश्यां सर्वमुक्तं यद् यात्रान्नग्रहणं विना।।

(क.सं. १२-१६)

विधातृगौरीभुजगभान्वन्तकदिनेषु च।
उक्तानि तानि सिद्धयन्ति त्रयोदश्यां विशेषतः।।१६।।

द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी और अष्टमी तिथियों में जो कार्य करने को कहे हैं, वे कार्य विशेष रूप से त्रयोदशी में भी विहित हैं।।१६।।

क्रमागत–

नारदः–

अग्न्याधानं प्रतिष्ठा च विवाहाव्रतबन्धनम्।
निखिलं मङ्गलं यानं त्रयोदश्यां प्रशस्यते।।

(ना.सं. ४, १६)

कश्यपः–

वास्तूपनयनोद्वह प्रतिष्ठायानभूषणम्।
माङ्गल्यमखिलं कर्म त्रयोदश्यामुदीरितम्।।

(क.सं. १२, १७)

यज्ञक्रियापौष्टिकमङ्गलानि सङ्ग्रामयोग्याखिलवास्तुकर्म।
उद्वाहशिल्पाखिलभूषणाद्यं कार्यं प्रतिष्ठा खलु पौर्णमास्याम्।।१७।।

यज्ञक्रिया, पौष्टिक, माङ्गलिक, युद्ध सम्बन्धी समस्त वास्तु कर्म, विवाह, शिल्पभूषण घटनादि कार्य और प्रतिष्ठा कार्य सभी पूर्णिमा को प्रशस्त कहे हैं।।१७।।

क्रमागत–

नारदः–

तैलस्त्रीसङ्गमं चैवदन्तकाष्ठोपनायनम्।
सक्षौरं पौर्णमास्यां च विनान्यदखिलं हितम्।।

(ना.सं. ४, १८)

कश्यपः–

दन्तधावनतैलस्त्रीमांस यात्रोपनायनम्।
विना सक्षौरमितरत्पौर्णमास्या मुदीरितम्।।

(क.सं. १२, १९)

सदैव दर्शे पितृकर्म चैव नान्यद्विधेयं शुभपौष्टिकाद्यम्।
मूढैः कृतं तत्र शुभोत्सवाद्यं विनाशमायात्यचिराद्ध्रुवं तत्।।१८।।

अमावस्या को सदैव पितृकर्म करने चाहिए, शुभपौष्टिक कर्म नहीं। अमावास्या में मूर्खों द्वारा मूढ़ता से बिना पूछे किए गए सभी शुभ कार्य निश्चित रूप से शीघ्र ही विनाश का कारण बनते हैं।।१८।।

क्रमागत–

नारदः–

पितृकर्मत्वमावास्यामेकं मुक्त्वा कदाचन।
न विदध्यात् प्रयत्नेन यत्किंचिन्मङ्गलादिकम्।।

(ना.सं. ४, १९)

कश्यपः–

अमायां पितृकर्मैकं कर्त्तव्यमितरं न तु।
रिक्ताख्या स्तिथयश्चामा सर्वकर्म निगर्हिता।।

(क.सं. १२, १८)

चतुर्दश्यष्टमी कृष्णात्वमावस्या च पूर्णिमा।
पुण्यानि पञ्च पर्वाणि सङ्क्रान्तिर्दिनपस्य च।।१९।।

कृष्ण अष्टमी, कृष्ण चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और सूर्य सङ्क्रान्ति ये पाँच पुण्य पर्वदिन कहे हैं।।१९।।

पञ्चपर्वसु नन्दासु न कुर्याद्दन्तधावनम्।
तत्र कुर्यादनादृत्य स नरो विधिहन्तकः।।२०।।

उक्त पाँच पर्व दिनों में तथा नन्दा (१, ६, ११) तिथियों में दन्तधावन (दातुन) नहीं करना चाहिये। जो पुरुष ऐसा बार-बार करे वह विधिहन्तक (निजभाग्य घातक) कहलाता है।।२०।।

स्त्रीसेवनं पर्वसु पक्षमध्ये मांसं हि षष्ठीसु च तैलवर्ज्यम्।
नृणां विनाशाय चतुर्दशीषु क्षुरक्रिया स्यादसकृत्तदाऽशु।।२१।।

पर्व दिनों में स्त्री सेवन, पक्ष मध्य में माँस भक्षण और षष्ठी तिथि में तैल लगना वर्जित है। चतुर्दशी में बार-बार क्षौर कृत्य करवाने से शीघ्र ही मनुष्यों के लिए घातक होता है।।२१।।

कलि १४ वसु ८ गणपति ४ षण्मुख ६
हरि १२ दुर्गा ९ तिथिषु पक्षरन्ध्रासु
शर ५ मनु १४ वसु ८ गोदशभिस्त-
त्वविहीनान्त्यनाडिकाः शुभदाः।।२२।।

चतुर्दशी, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी, नवमी इन पक्षरन्ध्र या पक्षछिद्र तिथियों में क्रमशः ५, १४, ८, ९, १०, २५ घटियों को त्याग करके अन्य घटियों में शुभकार्य करना विहित है॥२२॥

क्रमागत–

नारदः–

अष्टमी द्वादशी षष्ठी चतुर्थी च चतुर्दशी।
तिथयः पक्षरंध्राख्या दुष्टास्ता अतिनिंदिताः॥
चतुर्थमनुरन्ध्रान्तकतत्त्वसंज्ञास्तु नाडिकाः।
त्याज्या दुष्टासु तिथिषु पञ्चस्वेतासुसर्वदा॥

(ना.सं. ४, २०-२१)

कश्यपः–

अष्टमी द्वादशीषष्ठी पक्षरन्ध्रास्तु तासु च।
मङ्गलेसर्वदा त्याज्यां नूनं हि दशनाहिका॥

(क.सं. १२, २०)

नवमी त्रिविधा ज्ञेया प्रवेशनवमी प्रयाण नवमी च।
नवमदिनं निर्गमतः प्रवेशनवमीति विख्याता॥२३॥

नवमी तीन प्रकार की है—प्रवेश नवमी, प्रयाण नवमी, निर्गम से नवम दिन प्रवेश नवमी के नाम से विख्यात है॥२३॥

नवमदिनं प्रवेशाद्यत्प्रयाण नवमी च नवमदिनम्।
सततं नवमीत्रितयं यात्रायां प्राणहानिदं यातुः॥२४॥

प्रवेश से नवमदिन प्रयाण नवमी, निर्गम तिथि से नवमी तिथि (प्रवेश नवमी) में यात्रा करना प्राण हानिकारक है॥२४॥

एकान्तरा हि तिथयो दिवसाद्द्वितीया-
च्चापान्त्ययोर्वृषभकुम्भभयोश्च तद्वत्।
कर्काऽजयोर्मिथुनकन्यकयोश्च कीट-
हर्योस्तुलामकरयोः खलु मासदग्धा॥२५॥

धनु तथा मीनस्थ सूर्य में द्वितीया, वृष कुम्भस्थ सूर्य में चतुर्थी, कर्क मेष के सूर्य में षष्ठी, मिथुन कन्या के सूर्य में अष्टमी, सिंहवृश्चिक के सूर्य में दशमी और मकर तुला के सूर्य में द्वादशी तिथियाँ दग्ध संज्ञक होती हैं॥२५॥

मासदग्धासु तिथिषु कृतं यन्मङ्गलादिकम्।
तत्सर्वं नाशमायाति ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥२६॥

दग्ध मास, दग्ध तिथियों में जो मङ्गलकृत्य किए जाते हैं, वे सभी नष्ट होते हैं। जैसे गर्मी में क्षुद्र नदियाँ सूख जाती हैं॥२६॥

पुण्यं लोकमभिप्रेप्सुरष्टम्यादिषु वर्जयेत्।
शीर्षाकलापालन्त्राणि नखचर्मतिलानि च॥२७॥

पुण्य लोक में जाने के इच्छुक महानुभावों को अष्टमी में शीर्ष (नारियल), नवमी में कपाल (पेठा), दशमी में अन्त्र (नाड़ी शाक, खसरोड़ साग), नख (वल्ल शाक), एकादशी में चर्म (केला), द्वादशी में तिल आदि वस्तुओं को खाना और प्रयोग करना वर्जित रखें॥२७॥

कामदुर्गान्तकविधिनष्टेन्द्वर्कदिनेषु च।
सकृदामलकस्नानं सम्पत्पुत्रविनाशनम्॥२८॥

त्रयोदशी, नवमी, दशमी, अमावास्या, द्वितीया और रविवार के दिन बार-बार आमलक स्नान करने से सम्पत्ति तथा पुत्र के लिए हानिप्रद होता है॥२८॥

क्रमागत–

नारदः–

अर्थपुत्रक्षयं तस्य द्वितीयायां न संशयः।
अमायां च नवम्यां च सप्तम्यां च कुलक्षयः॥

(ना.सं. ४, २७)

पञ्चपर्वसु पाते च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
नरश्चाण्डालयोनिः स्यात्तैलस्त्रीमांससेवनात्॥२९॥

पञ्च पर्वों (कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, अमावस, पूर्णिमा, सूर्य सङ्क्रान्ति), व्यतिपात और वैधृति, सूर्यचन्द्रग्रहण काल में तैल, स्त्री व माँस सेवन से मनुष्य चाण्डालयोनि प्राप्त करता है॥२९॥

क्रमागत–

नारदः–

व्यतीपाते च सङ्क्रान्तौ एकादश्यां च पर्वसु।
अर्कभौमदिने षष्ठ्यां नाभ्यङ्गं च न वैधृतौ॥

(ना.सं. ४, २५)

दिवा चन्द्रवती राका पूर्णिमानुमती निशि।
सा पूर्णिमात्यनुमती तथाऽपि द्विविधा भवेत्॥३०॥

रात्रि पूर्ण चन्द्रवती अनुमति, दिवा पूर्णचन्द्रवती राका, एक ही दिन में दिवा और रात्रिवर्तिनी पूर्ण ६० घटी से युक्त पूर्णिमा अत्यनुमति कहलाती है॥३०॥

सिनीवाली दृष्टचन्द्रा नष्टचन्द्रा कुहूस्तथा।
तिथीनां निर्णयार्थं हि एतत्सर्वमुदीरितम्।।३१।।

चतुर्दशी के दिन ही अमावास्या लग गए चन्द्रदर्शन भी हो वह सिनीवाली, एवं जो ६० घटी पूर्ण हो चन्द्रमा दर्शन न हो तो उसे कुहू अमावास्या कहते हैं। तिथियों के निर्णयार्थ ही सब कुछ वर्णन किया गया है।।३१।।

क्रमागत–
नारदः–

यापूर्णमास्यनुमतिर्निशि चन्द्रवती यदा।
दिवा चन्द्रवती राका ह्यामावस्या तथा द्विधा।।
सिनीवाली सेन्दुमती कुहूर्नेन्दुमती मता।
कार्तिके शुक्ल नवमी त्वादिः कृतयुगस्य सा।।

(ना.सं. ४, २८-२९)

कश्यपः–

सप्तम्यां च नवम्यां च अमायां कुलनाशनम्।
निशि चन्द्रवती यातु पूर्णिमानुमतिश्च सा।।
दिवा चन्द्रवती राका तद्वदेव द्विधाप्यमा।
सिनीवाली चन्द्रवती नष्टचन्द्राकुहूर्मता।।

(क.सं. १२, २६-२७)

मन्वादितिथियाँ

(ईषे) च शुक्ला नवमी कार्तिके द्वादशी तथा।
मासद्वये तृतीया स्याच्चैत्रे भाद्रपदेऽपि च।।३२।।

आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी चैत्र और भाद्रपद इन दो मासों में पाई जाने वाली तृतीया (चैत्र शुक्ल तृतीया, भाद्रपद शुक्ल तृतीया)।।३२।।

क्रमागत–
नारदः–

त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुंण्यसंज्ञिता।
कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरा द्विरुदीरिता।।
कल्पादि स्यात्कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी।
द्वादश्यूर्जे शुक्लपक्षे नवम्याश्वयुजे सिते।।
चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्लसंज्ञिता।
एकादशी सिता पौषेऽप्याषाढे दशमी सिता।।
माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्येप्यसिताष्टमी।
श्रावणे मास्यमावास्या फाल्गुने मासि पूर्णिमा।।

आषाढे कार्तिके मासि चैत्रे ज्येष्ठे च पूर्णिमा।
मन्वादयः स्नानदानश्राद्धेष्वानन्त्यपुण्यदा॥
भाद्रकृष्णे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रविः।
गजच्छाया तदा ज्ञेया श्राद्धेत्यन्तफलप्रदा॥

(ना.सं. ४, ३०-३५)

अमावस्याश्रावणे च पौषस्यैकादशी सिता।
आषाढे शुक्ल नवमी माघमासे तु सप्तमी॥३३॥

श्रावण में अमावास्या, पौष शुक्ल एकादशी, आषाढ़ शुक्ल नवमी, माघ में शुक्ल सप्तमी—॥३३॥

क्रमागत–
कश्यपः–

कार्तिक शुक्ला नवमी ह्वादिकृतयुगस्य सा।
त्रेतादि माधवेर्शुक्ला तृतीया पुण्यसंज्ञिता।
माघे पञ्चदशी कृष्णा द्वापरादिरुदीरिता।
कल्पादिः स्यात्कृष्ण पक्षे नभस्य च त्रयोदशी॥
द्वादशपूर्जे शुक्ल पक्षे वम्याऽऽश्वजुजे सिते।
चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्ल पक्षगा॥
एकादशी सिता पौषेप्याषाढे दशमी सिता।
माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्येऽप्यसिताष्टमी॥
श्रावणेमास्यमावास्या फाल्गुने मासि पूर्णिमा।
आषाढ़े कार्तिके मासि चैत्रे ज्येष्ठे च पूर्णिमा॥
मन्वादयः स्नानदान श्राद्धेष्वत्यन्त पुण्यदाः।
यदाकृष्णत्रयोदश्यां मघास्विन्दुः कररविः॥
गजच्छाया तदा ज्ञेया पितृणां दत्तमक्षयम्।
एकस्मिन्वासरे तिस्रस्तिथयः स्युः क्षयातिथिः॥

(क.सं. १, २८-३४)

कृष्णाष्टमी नभस्ये च आषाढ़ी कार्तिकी तथा।
फाल्गुने चैत्रमासे च ज्येष्ठ मासे च पूर्णिमा॥३४॥

श्रावण कृष्णाष्टमी (भाद्रपदकृष्णाष्टमी), आषाढ़ कार्तिक, फाल्गुन चैत्र एवं ज्येष्ठ पूर्णिमाएँ—॥३४॥

मन्वन्तरादितिथयः पुण्याः स्युः पितृकर्मसु।
तासु जप्तं हुतं दत्तं फलं भवति चाक्षयम्॥३५॥

ये सभी मन्वन्तरादि तिथियाँ पितृकृत्य में अत्यन्त पुण्यशालिनी कही जाती हैं। इन तिथियों में जप, होम, दानादि का फल अक्षय हो जाता है॥३५॥

कृष्णा पञ्चदशी माघे नभस्ये च त्रयोदशी।
शुक्ले तृतीया वैशाखे नवम्यूर्जे युगादयः॥३६॥

माघ कृष्ण अमावास्या, भाद्रपदकृष्ण त्रयोदशी, वैशाख शुक्ल तृतीया, कार्तिक शुक्ल नवमी ये सत्ययुगादि तिथियाँ मानी जाती हैं।

अक्षय तृतीया सतयुगारम्भ, कार्तिक शुक्ल नवमी त्रेतायुग, भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी द्वापर तथा माघ अमावस को कलयुग का आरम्भ हुआ था॥३६॥

यदा कृष्णत्रयोदश्यां पैतृभेन्दुः करे रविः।
गजच्छाया तदा ज्ञेया पितृणां भूरिपुण्यदा॥३७॥

यदि कृष्ण त्रयोदशी में मघा नक्षत्र में चन्द्रमा, हस्त नक्षत्र में रवि हो तो गजच्छाया नामक योग पितृकृत्य में अत्यन्त पुण्यप्रद माना जाता है॥३७॥

स्युस्तिस्त्रस्तिथयो वारेऽप्येकस्मिन्सावमा तिथिः।
तिथिर्वारत्रयेऽप्येका त्रिद्युस्पृकद्वेऽतिनिन्दिते॥३८॥

तीन तिथियाँ एक बार में पाई जाएँ, उन दोनों तिथियों के मध्यस्थ तिथि अवम या क्षय कहलाती है। तीन दिन में एक ही तिथि पाई जाए उसे त्रिघुस्पृक कहते हैं, दोनों अवम और त्रिघृस्पृक अत्यन्त निन्दित कही गई है॥३८॥

कृतं यन्मंङ्गलं तत्र विद्युस्मृगवमे दिने।
भस्मीभवति तत्क्षिप्रमग्नौ स्यग्यथेन्धनम्॥३९॥

त्रिद्युस्पृक और अवम तिथि के दिन किया हुआ माङ्गलिक कृत्य शीघ्र ही अग्नि में लकड़ियों की भाँति भस्म हो जाता है॥३९॥

खण्डाखण्ड संज्ञक तिथियाँ

उपैत्यस्तमवाप्यार्कमुहूर्त्तत्रयवाहिनी।
या तिथिः स्यादखंडाख्या न्यूना चेत्खण्डसंज्ञिता॥४०॥

सूर्यास्त के पश्चात् ३ मुहूर्त या ६ घटी व्याप्त तिथि अखण्ड संज्ञक, ६ घटी से कम खण्ड संज्ञक कहलाती है॥४०॥

क्रमागत–

नारदः–

एकस्मिन्वासरे तिस्रस्तिथयः स्युः क्षयातिथिः।
तिथिर्वात्रयैष्का त्वधिकात्यन्तनिन्दिता॥

सूर्यास्तमनवर्यन्तं यस्मिन् वारेऽपि या तिथिः।
विद्यते सा त्वखण्डा स्यादूना चेत्खंडसंज्ञिता।।

(ना.सं. ४, ३६-३७)

मासि मार्गशिरस्यैव व्रतानां समुपक्रमम्।
अखण्डायां तिथौ कुर्यादनस्ते गुरुशुक्रयोः।।४१।।

व्रतों का उपक्रम मार्गशीर्ष मास से प्रारम्भ होता है। अखण्ड तिथियों में तथा बृहस्पति, शुक्र के उदय होने पर ही व्रतारम्भ एवं उद्यापनादि करने चाहिये।।४१।।

सप्तम्यां माघशुक्लायामादित्यं पद्मकैः सुधीः।
गव्येन पयसान्नेन मृणालैः सम्यगर्चयेत्।।४२।।

माघ शुक्ल सप्तमी के दिन श्रेष्ठ विद्वानों को पद्मपुष्प, कमलगट्टा, कमलनाल, पञ्चगव्य दुग्ध, अन्न पायसादि से भगवान् सूर्य नारायण का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये।।४२।।

प्रतिवर्षं भक्तियुक्त्या यावज्जीवं च यो नरः।
अरोगी श्रियमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते।।४३।।

जीवन पर्यन्त प्रतिवर्ष भक्तियुक्त उपर्युक्त विधि से सूर्य पूजन करने वाला व्यक्ति आरोग्य और धनधान्य को प्राप्त करता है, रोगी रोगनिवृत्त होता है।।४३।।

पूजाकर्मणि सा ग्राह्या मध्याह्न व्यापिनी तिथिः।
उपवासे व्रते ज्ञेया मुहूर्तत्रयवाहिनी।।४४।।

पूजा कर्म में मध्याह्न व्यापिनी तिथि ग्रहण करनी चाहिये, व्रतोपवास में तीन मुहूर्ती तिथि ग्राह्य है।।४४।।

नक्तव्रतेषु सर्वत्र प्रदोषव्यापिनी स्मृता।
ह्रासवृद्धिसमत्वं च चिन्तयित्वा विनिर्णयम्।।४५।।

नक्त व्रतों (एक समय सूर्यास्त से पूर्व मीठा भोजन करने वाला व्रत) में सर्वत्र प्रदोष व्यापिनी तिथि ग्राह्य है। ह्रास वृद्धि समत्व विचार निर्णय के समय कर लेना चाहिए।।४५।।

माघे कृष्णचतुर्दश्यामुपोषित्वा शिवं व्रजेत।
यः कुर्याज्जागरं भक्त्या तस्य नास्ति पुनर्भवः।।४६।।

माघ कृष्ण चतुर्दशी में विधिपूर्वक भक्तियुक्त उपवास कर के शिवालय में भगवान् शङ्कर के पास उपस्थित होकर भक्तिपूर्वक जो रात्रि जागरण करे उसका पुनः जन्म नहीं होता।।४६।।

यत्रार्द्धरात्रसंयुक्ता भवेदुग्रा चतुर्दशी।
शिवरात्रिव्रतं तत्र नृत्यगीतादिनाऽर्चयेत्॥४७॥

अर्द्धरात्रसंयुक्त चतुर्दशी उग्रा चतुर्दशी कहलाती है। इस चतुर्दशी में शिवरात्रि व्रत होता है। इस व्रत में नृत्यगीतादि द्वारा अर्चना करनी चाहिए॥४७॥

फाल्गुनाद्यत्रयोदश्यां कामं दग्ध्वा शिवं व्रजेत्।
त्रिदिनं भस्मना तेन तेजस्वी श्रियमाप्नुयात्॥४८॥

फाल्गुन आद्य त्रयोदशी को सभी कामनाओं का त्याग कर शिव मन्दिर में भगवान् शिवशङ्कर के पास उपस्थित होकर तीन दिन भस्म धारण करता हुआ तेजस्वी होकर धन सम्पत्ति को प्राप्त करता है॥४८॥

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां दमनेनार्चयेच्छिवम्।
अब्दपूजाफलं प्राप्य स नरो धनिको भवेत्॥४९॥

जो मनुष्य चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को दमनक से (चौदहा २ ग्रन्थियों से युक्त चौदहा २ सूत्र के डोरों से) शिवार्चन करे तो वर्षभर की पूजा का फल प्राप्त करके धनवान् हो जाता है॥४९॥

वैशाखे च तृतीयायां योऽर्चयेच्चसुरान् पितृन्।
नाश्नुते मनसा दुःखं स नरः स्वर्गलोकभाक्॥५०॥

वैशाख तृतीया (अक्षयातीज) को देवताओं और पितरों को पूजने वाला पुरुष मानसिक दुःख को प्राप्त नहीं करता; बल्कि स्वर्गलोक का अधिकारी हो जाता है॥५०॥

वैशाख्यां विप्रमुख्येभ्यो धर्मप्रीत्या प्रयच्छति।
पादुकापानहौ छत्रं दध्यन्नं करपात्रकम्॥५१॥

वैशाख पूर्णिमा के दिन धर्मराज प्रीत्यर्थ पादुका, जूते, छत्र, दही, अन्न, कमण्डलू श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रदान करें तथा—॥५१॥

व्यञ्जनं गन्धपुष्पान्नप्रदानं सर्वजन्तुषु।
श्रीमान् भोगी च तेजस्वी विमानच्छत्रचामरः॥५२॥

सभी जन्तुओं के लिए गन्धपुष्प, व्यञ्जन सहित अन्न प्रदान करने से व्यक्ति, धनवान्, भोगी, तेजस्वी और छत्र चामर से युक्त विमान का स्वामी—॥५२॥

नृत्यगीतादिसञ्युक्तः सर्वाभरणभूषितः।
दिव्याङ्गनासमाकीर्णः स नरः स्वर्गमश्नुते॥५३॥

नृत्यगीतादि से सम्पन्न, समस्त अलङ्कारों से विभूषित, कोमलाङ्गी स्त्री से युक्त होकर वह पुरुष स्वर्ग को प्राप्त करता है॥५३॥

शुचिशुक्ले च पंचम्यां यजेत्स्कन्दमुपोषितः।
पिष्टान्नप्राशनं कृत्वा व्रणरोगात्प्रमुच्यते॥५४॥

आषाढ़ शुक्ल पञ्चमी के दिन स्कन्द भगवान् का पूजन करके पीठी से बने अन्न का प्राशन करे तो व्रण रोग से मुक्त हो जाता है॥५४॥

पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या पिष्टान्नप्राशने व्रते।
पिष्टान्नप्राशनं नृणां रात्रावेव विधीयते॥५५॥

पिष्टान्न प्राशन व्रत में पूर्व विद्धा तिथि ग्रहण करनी चाहिए, पिष्टान्न प्राशन मनुष्यों के लिए रात्रिकाल में प्रशस्त है॥५५॥

शुचिमासे चतुर्दश्यां पवित्रेनार्चयेच्छिवम्।
अब्दपूजाफलं लब्ध्वा स नरो धनवान्भवेत्॥

आषाढ़ मास की चतुर्दशी को सूत्रमय पवित्रों से (डोरकों से) शिवार्चन करने से मनुष्य वर्षभर की पूजा का फल प्राप्त करके धनवान् होता है॥५६॥

श्रावणस्यासिताष्टम्यां रोहिणी निशि संयुता।
यदा भवेत्तदा साक्षाद् देवो जातो जनार्दनः॥५७॥

भाद्रपद (गुर्जर में श्रावण माने जाने वाले) कृष्णपक्ष की अष्टमी रोहिणी नक्षत्र संयुक्ता (अर्धरात्रव्यापिनी) होने पर साक्षात् भगवान् जनार्दन का श्रीकृष्ण रूप में अवतार हुआ था॥५७॥

तस्य वै जन्मचिह्नानि यः कुर्यात्समुपोषितः।
जागरं जातकर्माद्यं स वैष्णवपदं व्रजेत्॥५८॥

व्रत धारण करके भगवान् श्रीकृष्ण के जन्मचिह्नों को जो उपस्थित करके रात्रि जागरण एवं जात कर्मादि संस्कार मनाता हुआ मनुष्य वैष्णव पद को प्राप्त करता है॥५८॥

मासि भाद्रपदे शुक्ले चतुर्थ्यां गणनायकम्।
अर्चयेन्मोदकाद्यैश्च सर्वविघ्नोपशान्तये॥५९॥

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को भगवान् श्रीगणेश जी की सर्वविघ्नों की शान्ति के लिए लड्डुओं द्वारा विधिपूर्वक अर्चना करनी चाहिए॥५९॥

मासि भाद्रपदे यस्मिन् दिवसे सुरराजभम्।
मध्याह्नादधिकं तत्र ज्येष्ठायाः परिपूजनम्॥६०॥

भाद्रपद मास में जिस दिन मध्याह्न से अधिक ज्येष्ठा नक्षत्र हो उस दिन भगवती ज्येष्ठा (निद्रा) देवी का पूजन करना विहित है॥६०॥

नवम्यामश्वयुक्छुक्ले लक्ष्मीं देवीं समर्चयेत्।
सरस्वतीमायुधानि युद्धे जयमवाप्नुयात्।।६१।।

आश्विन शुक्ल महानवमी के दिन लक्ष्मी सरस्वती और शस्त्रों की पूजा करने से युद्ध में जय प्राप्त होती है।।६१।।

विजयादशमी तत्र सर्वकार्येष्वनिन्दिता।
यात्रायां जयदा राज्ञां सम्यक्सम्पत्प्रयच्छति।।६२।।

विजयादशमी सभी कार्यों में स्वयं सिद्ध मुहूर्त होने के कारण प्रशस्त है। राजाओं के लिए यात्रा में जयप्रद और भली-भाँति सम्पत्तिप्रद होती है। (लोकराज में राजा का अभिप्राय सभी जनवर्ग के लिए है)।।६२।।

ऊर्जे शुक्ल चतुर्थ्यां यो भुजगान्भक्तितो भजेत्।
क्षीरपिष्टगुडाद्यैश्च न तेभ्यो भयमश्नुते।।६३।।

कार्तिल शुक्ल चतुर्थी तिथि के दिन जो मनुष्य सर्पों की दूध, पीठी, गुडादि से भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं, उन्हें कभी सर्प भय नहीं होता।।६३।।

आरभ्यैकादशीं तत्र यावच्च दिनपञ्चकम्।
तद्भीष्मपञ्चकं ज्ञेयं नृणामघविनाशनम्।।६४।।

कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त भीष्म पञ्चक कहे हैं। भीष्मपञ्चक मनुष्यों के लिए पापविनाश कारक होते हैं।।६४।।

वत्सरं तप्यते पुण्यं तपसः कार्तिके लभेत्।
कार्तिके तपसः पुण्यं लभते भीष्म पञ्चके।।६५।।

सम्पूर्ण वर्ष भर में तप करने का पुण्य केवल कार्तिक मास में तप करने से प्राप्त हो जाता है। कार्तिक मात्र तप पुण्य भीष्मपञ्चक मात्र तप से प्राप्त हो जाता है।।६५।।

कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे गरुडध्वजदर्शनात्।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।।६६।।

कार्तिक पूर्णिमा एवं कृत्तिका नक्षत्र के योग में (नीकण्ठ लीलड़ी) गरुड़ध्वज दर्शन से सात जन्मों में किया हुआ पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है।।६६।।

उत्सृजेद्वृषभं तत्र उपोषित्वा यथाविधि।
कुमारं वा यजेत्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते।।६७।।

कार्तिक पूर्णिमा के दिन व्रत रख कर यथाविधि वृषोत्सर्ग करे एवं कार्तिकेय भगवान् की विधिवत् पूजा करे तो सब पापों से मुक्त हो जाता है।।६७।।

तिथियों के नियम

शुद्धा त्रेधा तथा विद्धा भिन्ना न्यूना समाधिका।
त्रिविद्धैका पुनर्भिन्ना द्वादश्यूनसमाधिकैः॥६८॥

(प्रत्येक तिथि का नियम भिन्न-भिन्न हुआ करता है उनके नियम यहाँ उपस्थित हैं) तीन प्रकार की शुद्धातिथियाँ, विद्धा, भिन्ना, न्यूना और अधिका, त्रिविद्धा, पुनः भिन्ना ऊन सम और अधिक द्वादशी होती है॥६८॥

आद्यासु षट्सु पूर्वैव व्यवस्थानान्तरद्वये।
गृहमेधियतीनां च नवम्यां तु परेऽहनि॥६९॥

पहली ६ प्रकार की पूर्व विद्धा की व्यवस्था, उसके पश्चात् अन्तर विद्ध की व्यवस्था, गृहमेधि (गृहस्थी) एवं सन्यासियों के लिए नवमी में आगे दशमी के दिन नवमी पाई जाए तो वेध होता है॥६९॥

विद्धात्रयेऽपि पूर्वैव व्यवस्थाऽनन्तरद्वये।
अपरैरनिशेषाः स्युः सप्तम्यां तु व्यवस्थितिः॥७०॥

तीन दिन पहले नवमी से विद्ध होने पर एकादशी विद्ध मानी जाती है। अष्टमी के दिन प्रातः सप्तमी तीन प्रहर से अधिक—॥७०॥

यामत्रयाधिका यत्र वृद्धिगामीत्वमा यदि।
पितृकर्मणि सा ग्राह्या तिथिः पूर्वा क्षयात्मिका॥७१॥

अमावास्या तीन याम से अधिक वृद्धिगामी हो तो पितृकर्म में वही अमावास्या ग्रहण की जाती है क्षय होने पर पूर्वतिथि ग्राह्य होती है॥७१॥

अपराह्णे सुसम्पूर्णा सायंस्पृक्स्याद्यदा तिथिः।
सैव प्रत्यब्दिकी ग्राह्या नापरा पुत्रहानिदा॥७२॥

अपराह्न तक सायं को छूने वाली तिथि प्रति वर्ष ग्राह्य करनी चाहिये, पर तिथि को ग्रहण करने से पुत्र हानि होती है॥७२॥

क्षये पूर्वतिथौ शोध्यं योज्यं वृद्धौ तिथिर्भवेत्।
तिथ्यन्तरदलं श्राद्धे स्वाध्यायेऽथ व्रतेऽपि तत्॥७३॥

क्षय तिथि होने पर पहली तिथि छोड़ कर वृद्ध तिथि होने पर पहली तिथि जोड़ कर जो तिथि का आधा भाग हो उसको श्राद्ध, स्वाध्याय एवं व्रत में ग्रहण करना चाहिए॥७३॥

क्षणिक तिथि ज्ञानम्

तिथेः पञ्चदशो भागः पक्षयोः स्यात्क्षणा तिथिः।
यत्कर्मोक्तं तिथौ यस्यामस्यामप्यखिलं भवेत्॥७४॥

तिथि का पञ्चदशांश भाग दोनों पक्षों में क्षणिक तिथि कहा गया है। जिस तिथि में जो कर्म विहित है, वो क्षणिक तिथि में भी किया जा सकता है।।७४।।

यो जानाति हि पञ्चाङ्गं स्फुटं लोके स दैववित्।
कालरूपेश्वरं भ्राजन्मूर्तीनामृतमुद्भवनम्।।७५।।

जो मनुष्य स्पष्टतः पञ्चाङ्ग का ज्ञान रखता है, वह इस लोक में दैवज्ञ कहलाता है। वह काल रूपी परमेश्वर के प्रत्यक्ष चमक दमक से युक्त मूर्तिमान् स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है।।७५।।

इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां
तिथिस्वरूपाध्यायो द्वादशः।।१२।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के तिथिस्वरूपाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त।।१२।।

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१-विष्णोथमेंदु, ज२-विष्णोयमेदु (विष्णुयमेन्दु)

१ (ब) ज१-वश्चाख्य, ज२-वरचाख्य (वस्वाख्य), वा.-शिवाक (शिवार्क), ज१-संज्ञः, ज२-संज्ञा (संज्ञौ)

२ (अ) ज१-वष्टेंदुतिधीश्चरा (नष्टेन्दुतिथीश्वराः), ज१-वपेतेपितरः, ज२-वयेतेपितर (च एते पितरः)

२ (ब) वा.-धनाधिवं (धनाधिपं), ज.मो.-त्तीदश्वर, वा.-संतसत्वधीशश्च (सन्तस्त्वधीश्वरं)

३ (अ) ज१, ज२-वैहरकामतिथया, वा.-वह्निविधाताद्रिसुता (वह्निर्विधाताद्रिसुता), ज१, ज२-गणोश्सूर्यो (गणेशः सर्पः), ज१, ज२-विशाखोदिनयो (कमारोदिनपो)

३ (ब) ज१-शर्वे, ज२-सर्वे, वा.-शैवो (शिवो), ज१, ज२-पुराणादृष्टा (पुराणादृष्टः)

४ (अ) वा.-क्रममात्सु: (कक्रमात्स्युः)

४ (ब) ज१, ज२-शुक्लेपमामध्यमचोत्तमास्ता (शुक्लेऽधमामध्यमकोत्तमास्ताः), ज१-पक्षेसितेष्ठुत्तम, ज२-पक्षेसितेषूत्म, वा.-पौषेसितेप्युतम (पक्षेऽसितेऽप्युत्तममध्यहीनाः)

५ (अ) ज१, शीमंत, ज२-सीत (सीमन्त)

५ (ब) ज१, ज२-मंगलादिकार्ये (मङ्गलाद्यं कार्यं)

६ (अ) ज१-द्वितीयेदिवसेसदैव, ज२-यत्कार्यद्वितीयोदिवसेसदैव (यत्कार्यं द्वितीयादितिथौ सदैव)

७ (अ) ज१, ज२-चौलानिगृहंप्रवेशः (चौलान्नगृहप्रवेशम्)

७ (ब) ज१-द्विये, वा.-द्वितीय (द्वितीये), ज१, ज२-त्रित्रीये (तृतीये)

८ (ब) ज१, यन्मंलं, ज२-जन्मंगलै (सन्मङ्गलं), ज१, ज२-मूढोविनाशमागति, वा. मूढैवेनाशमायाति (मूढैर्विनाशमायाति), ज१, ज२-तदाशु (तदा तु)

९ (अ) ज१, ज२-चोक्तानियुक्तानिपि (चोक्तान्यनुक्तान्यपि)

९ (ब) ज१, ज२-प्रयात्याशु (प्रयान्त्याशु), ज१-ऋणाप्रदानां, ज.मो. शतप्रदानं (ऋणप्रदानं), ज१, ज२-भोगलिथौ (नागतिथौ)

१० (अ) ज१, ज२-अभंगयात्रापितृकर्मदंतकाष्टं, वा.-पाठोनास्ति, ज.मो. अभ्यङ्गयात्राप्रतिकर्मदन्तकाष्ठं (अभ्यङ्गयात्रापितृकर्मदन्तकाष्ठं)

१० (ब) ज.मो. वास्तुं वरभूषणानि (वास्त्वम्बरभूषणानि)

११ (अ) ज१-त्रितीयायां (तृतीयायां)

११ (ब) वा.-सिध्यते (सिद्धयन्ति)

१२ (अ) ज१, ज२-वृत्तप्रमेदा (नृत्यप्रभेदा), ज१, ज२-खिललेखाकानि (खिललेखनानि)

१२ (ब) ज१, ज२-स्त्रीरत्लयाना, ज.मो. स्त्रीरत्नपाना (स्त्रीरत्लचर्या), ज१, ज२-कार्याणि, ज.मो. सिद्धयन्ति, वा. कार्याणि (कर्माणि), ज२-महेसतिथ्यां, व.-महेशतिथ्या (महेशतिथ्याम्)

१३ (अ) ज१, ज२-त्रितीयायां (तृतीयायां)

१३ (ब) वा.-सिद्धयति (सिद्धयन्ति)

१४ (अ) ज१, ज२-पुत्रोत्सववा, वा.-सुत्सुवा (सुरोत्सवा), ज१, ज२-वस्तुकर्म, ज.मो. शिल्पकर्म (वास्तुकर्म्म)

१५ (अ) धर्मपौष्टिक (कर्मपुष्टि)

१६ (अ) ज१, ज२-विधातात्रिगोभुजग (विधातृगौरीभुजक), ज१-भात्वंत, ज२-भात्वंतक (भान्तान्तक)

१७ (ब) वा.-शिल्परिवव (शिल्पाखिल), वा.-पौणमास्या (पौर्णमास्याम्)

१८ (अ) ज१, ज२-सदैवदर्शेपि, वा.-सदैवदशैव (सदैवदर्शे), ज१, ज२-नान्यं (नान्यद), वा.-शुभपौटिकायै (शुभपौष्टिकाद्याम्)

१८ (ब) ज१-शुभोत्समापात्य, वा.-शुभोत्सावाध (शुभोत्सवाद्यं)

१९ (अ) ज१, ज२-कृष्णाप्यमावास्या (कृष्णात्वमावास्या)

१९ (ब) ज१, ज२-दिवसास्य (दिनपस्य)

२० (अ) ज१-कुयाद, वा.-कुर्या (कुर्याद्)

२० (ब) ज१, ज२-विधिदंतकः (विधिहन्तकः)

२१ (अ) ज१, ज२-पलं च, वा.-मासं (मांसं), ज१, ज२-षष्ठी च, वा.-षष्ठीशु (षष्ठीसु च), ज१, ज२-पर्वतैलं (तैलवर्ज्यम्)

२१ (ब) ज१, ज२-स्याद्शक्तदासु (स्यादसकृत्तदाऽशु)

२२ (अ) ज१, षरांमुख (षण्मुख), ज२-पंचरंध्रासु (पक्षरन्ध्रासु)

२२ (ब) ज१, ज२-गोदर्शा (गोदश), ज१, ज२-भस्त्व (भिस्तत्व), ज१, ज२-वहितान्यनाडिका (विहीनान्त्यनाडिका:)

२३ (ब) ज१-नवमादिनं, जा.-नवामदिनं (नवमदिनं)

२५ (अ) ज१, ज२, वा-दिनपतौदिवसाद्वितीया (तिथयो दिवसाद्द्वितीया)

२५ (ब) ज१, ज२-वा.-मोक्षयोश्च (कुम्भभयोश्च)

२५ (स) ज१, ज२-वा.-कर्काजयोमिथुन (कर्काऽजयोर्मिथुन)

२५ (द) ज१, ज२-कंठीकौय्र्योतुला, वा.-कीहयोर्स्तुला (कीटहर्योस्तु)

२६ (अ) ज१-२ मासादग्धा (मासदग्धासु)

२६ (ब) वा.-ग्रीष्म (ग्रीष्मे), ज१, ज२-कैः सरितां (कुसरितो)

२७ (अ) ज१-पुस्त्यलोकमभिप्रेसु, ज२-पुण्यलोकमभिप्रेम्सु (पुण्यंलोकमभिप्रेत्सु)

२७ (ब) ज१, ज२-शीर्षकपालयंत्राणि, वा.-शीर्षकपालात्राणि (शीर्षाकपालान्त्राणि)

२८ (अ) ज१-ज२-दुंगतिक (दुर्गान्तिक), ज१-२विधिर्नष्टैद्वर्क (विधिनष्टेन्द्वर्क)

२८ (ब) ज१, ज२-स्नातुः (स्नानं)

२९ (अ) वा.-पञ्चपर्वषु (पञ्चपर्वसु), वा.-पाति (पाते)

२९ (ब) ज१, २-स्यात्तैल (स्यात्तैल), वा-रतश्चांड्राल (नरश्चाण्डाल)

३० (अ) ज१, ज२-पूणोमानु (पूर्णिमानुमती)

३१ (अ) ज१, ज२-दृष्टिचंद्र (दृष्टचंद्रा), ज१, ज२-कुहूतथ (कुहूस्तथा)

३१ (ब) ज१, ज२-एतत्सर्वेमितिरितं, ज.मो.-चैतत्सर्वमुदीरितम् (एतत्सर्वमुदीरितम्)

३२ (अ) ज१-इषे, ज२- ईशे मु.पु. इषे (ईषे), ज२-शुक्ल, वा.-शुक्ल (शुक्ला), ज१, २-सिता (तथा)

३२ (ब) ज१, ज२-स्याच्चैत्र (स्याच्चैत्रे), ज१, ज२-भाद्रपदेतथापि वा (भाद्रपदेऽपि च)

३३ (अ) वा.-श्रावर्णा (श्रावणे), ज१-पौषस्यकादशी (पौषस्यैकादशी)

३३ (ब) ज१, २-आषाढ़ (आषाढ़े), ज१, २-दशमी (नवमी)

३४ (अ) ज१, २-आषाढ़े (आषाढ़ी)

३४ (ब) वा. ज्योष्ट (ज्येष्ठ)

३५ (अ) वा.-मन्वरारितिधयः (मन्वन्तरादितिथयः)

३५ (ब) वा.-हतं (हुतं), ज१-जपत्वं (जप्तं), वा.-चासपं (चाक्षयम्)

३६ (अ) वा.-पञ्चदशं (पञ्चदशी)

३६ (ब) ज१, २-शुक्ल (शुक्ले)

३८ (अ) ज१-यदष्ण, ज२-यद्कृष्ण (यदाकृष्ण), वा.-त्रयोदश्या (त्रयोदश्यां)

३८ (ब) ज१, २-पाठस्यलोपः

३८ (अ) ज१, ज२-वारेएकस्तअवमातिथिः (वारेऽप्येकस्मिन्सावमा)

३८ (ब) ज१, ज२-स्त्रिधुस्पगितिनिंदते, वा.-त्रिद्युस्पृकद्वेतिथिदिते (त्रिद्युस्पृकद्वेऽति-निन्दिते)

३९ (ब) वा.-सभ्ययुधेधने (सम्यग्यधेन्धनम्)

४० (अ) ज१-मवाषर्को, ज२-मयाकर्षो, वा.-मुवके (मवाप्यार्क)

४० (ब) ज१-यंतिथीः (या तिथिः), ज१, ज२-खंडासान्यूना (स्यादखंडाख्यान्यूना), ज१, ज२-वैखंडसंज्ञिता (चेतखण्डसंज्ञिता)

४१ (अ) ज१, २-मार्गसिरस्यैव (मार्गशिरस्यैव)

४१ (ब) ज१, २-कुयदिनस्त, वा.-कुवदिनस्ते (कुर्यादनस्ते)

४२ (अ) ज१-पद्ममासुतं, ज२-पद्मभास्वतां (पद्मकैः सुधीः)

४२ (ब) ज१, २-यममात्रेणाधृतानां (पयसान्नेनमृणालैः)

४४ (अ) ज१, २-पूजाकर्मरसाग्राह्या (पूजाकर्माणि सा ग्राह्या), ज१,२-मध्याहू (मध्याह्न)

४४ (ब) ज१, २-उपवास, वा.उपर्वसे (उपवासे), ज१, २-व्रताज्ञेया (व्रतेज्ञेया)

४५ (अ) ज१, २-ससा (स्मृता)

४५ (ब) वा.-ह्रासवृद्धासमव (ह्रासवृद्धिसमत्वं), ज१-चित्तहत्वा, वा.-चितायेत्वा (चिन्तयित्वा), ज१-विनिर्णयेत, ज२-विनिर्स्मयेत् (विनिर्णयम्)

४६ (अ) ज१, २-माघ (माघे), ज१-मुपोषइत्वा, ज२-मुपोषियित्वा (मुपोषित्वा)

४६ (ब) ज१, २-पुनर्भवं, वा.-पुनर्भवः (पुनर्भवः)

४७ (अ) ज१, २-भवेदग्रे, वा.-वेदधा (भवेदुग्रा)

४७ (ब) ज१, २-गीतादिनाचरेत् (गीतादिनाऽर्चयेत्)

४८ (अ) ज१, २-कामदग्धा (कामंदग्ध्वा), ज१-वंव्रजेत्, वा.-व्रजेव्रजेत् (व्रजेत)

४८ (ब) ज१, २-तेजस्त्री (तेजस्वी)

४९ (अ) ज१, २-त्रयोदश्यां (चतुर्दश्यां)

५० (अ) ज१, २-योर्च्चयेच्चसुसुरन्पितृन् (योऽर्चयेच्चसुरान्पितृन्)

५० (ब) ज१, २-वा.-नासुते (नाश्नुते), ज१, २-स्वर्गभोग (स्वर्गलोकभाक्)

५१ (अ) ज१-प्रीतीप्रयछति (प्रीत्याप्रयच्छंति)

५१ (ब) ज१, २-पादुकोपानह (पादुकोपानहौ), ज१, २-सिद्धान्नं (दध्यन्नं), ज१, २-जलपात्रकं (करपात्रकम्)

५२ (अ) ज१, २-पुष्पाद्यंप्रमाणं (गन्धपुष्पान्नप्रदानं)

५२ (ब) ज१, २-श्रीमान्नरोगी (श्रीमान् भोगीच), ज१, २(विमानंछत्रचामरं) (विमानच्छत्रचामर:)

५३ (अ) ज१, २-युक्तो (सन्युक्त:)

५३ (ब) ज१-स्वर्गमश्रुते, ज२-स्वर्गमुच्यते, (स्वर्गमश्नुते)

५४ (अ) ज१, ज२-जयेत्सदमुपोषित: (यजेत्स्कन्दमुपोषित:)

५४ (ब) ज१, ज२-पिष्ठामप्राशनं (पिष्ठान्नप्राशनं), ज१, २-ऋणरोगात् (व्रणरोगात्)

५५ (ब) वा.-रात्राबव (रात्रावेव)

५६ (अ) ज१-पवित्रेणावियेधिवं, ज२-पवित्रेणार्च्ययेविवं (पवित्रेनार्चयेच्छिवम्)

५६ (ब) ज१-अब्धं (अब्ध)

५७ (ब) ज१-साक्षाद्दैवो, ज२-साक्ष्याव्देवो (साक्षाद्देवो), वा.-जाते (जातो)

५८ (अ) ज१, २-जन्मवित्मानि (जन्मचिह्नानि), ज१, २-कुर्यात्समुपोषितु, वा.-कुर्यान्समुपेषित (कुर्यात्समुपोषित:)

५९ (अ) ज१, २-शुक्ला (शुक्ले)

६० (अ) वा.-वसे (दिवसे), ज१, २-सुरराजितं (सुरराजभम्)

६० (ब) ज१, २-ज्येष्टाया: (ज्येष्ठाया:)

६१ (ब) ज१-सरस्वतीमायुद्धे, ज२-सरस्वतीमायुधनि (सरस्वतीमायुधानि), ज१-जयमवाप्यवाप्यते, ज२-जयमवाप्यते (जयमवाप्नुयात्)

६२ (ब) ज१-जयदाराक्ष्यं (जयदाराज्ञां), ज१-संधिर्धामि, ज२-सधिधामि (सम्यक्सम्पत्)

६३ (अ) ज१, २-शुक्ला (शुक्ल), ज१, २-चतुर्दश्यां (चतुर्थ्यां), ज१, २-वा.-भुजंगाभुक्तितो (भुजगान्भक्तितो)

६३ (ब) ज१, २-क्षीरइष्टरुदाधैश्च (क्षीरपिष्ठगुडाद्यैश्च), ज१, २-भयमश्रुते (भयमश्नुते)

६४ (अ) ज१, २-वा.-आरभ्येकादशी (आरभ्यैकादशीं), ज१, २-दिनंपंचकम् (दिनपञ्चकम्)

६४ (ब) ज१, २-नृणांम्घौघ (नृणामघ), ज१-विनाशकं, वा.-विनाशम् (विनाशनम्)

६५ (अ) ज१-वत्सुरातृभते, ज२-वत्सराल्लभते (वत्संरतप्यते), वा.-पण्यं (पुण्यं), ज२-भवेत्, वा.-मते (लभेत्)

६६ (ब) ज१-२-श्लोकस्यलोप:

६६ (अ) वा. परारिध्वजदर्शनात् (गरुडध्वजदर्शनात्)

६६ (ब) वा.-ससुजन्म (सप्तजन्म)

६७ (ब) ज१, कुमारि, ज२-कुमारीं (कुमारं)

६८ (अ) ज१-२-समाधिकार (समाधिका)

६८ (ब) ज१, त्रैधैकैका (त्रिविद्धैका), ज१, २-पुनिर्भिन्ना (पुनाभन्ना)

६९ (अ) ज१-२-रवस्युफचैव (षट्सुपूर्वैव), ज१, २-व्यवस्थानंतरद्वये (व्यवस्थानान्तरद्वये)

६९ (ब) ज१-मेधीपतीमांच, ज२-मेथीयतीनाच (गृहमेधियतीनां)

७० (अ+ब) ज१, २-पाठोनास्ति

७३ (अ) ज१, २-विधिभरेत्, वा. तिथिचेत् (तिथिर्भवेत्)

७३ (ब) वा.-तिथ्यंतदलं (तिथ्यन्तरदलं)

७४ (अ) ज१, २-पक्षेया (पक्षयोः)

७४ (ब) ज१, २-स्यामस्थाखिलं (यस्यामयामप्यखिलं)

७५ (अ) ज१, २-योजनातिहि (योजानातिहि), ज२-पंचाग (पञ्चाङ्ग), ज१२, ३-स्फुटे (स्फुटं)

७५ (ब) ज१, २-भूयांमूर्तीनामृतभूभयं, वा.-भ्राजवमूत्तीनामृदुभुवं (भ्राजन्मूर्तीनामृतदुद्भवम्)

***

१३

अथ वारस्वरूपाध्यायः

सूर्यवार के कृत्य

राजाभिषेकोत्सवमङ्गलाश्च सेवाहवस्त्वौषधचित्रकर्म।
धातुक्रियाभूषणलाक्षचर्मधान्योर्णकोष्ट्रादि रवौ विदध्यात्॥१॥

राज्याभिषेक, मङ्गलकृत्य, सेवा, युद्ध, औषध, चित्रकारी, धातुक्रिया, आभूषण, लाख, चर्म, धान्य, रत्न तथा ऊष्ट्रादि कर्म रविवार को करने चाहिए॥१॥

क्रमागत–

नारदः–

नृपाभिषेकमाङ्गल्यसेवायानास्त्रकर्मयत् ।
औषधावहधान्यादि विधेयं रविवासरे॥

(ना.सं. ५, २)

कश्यपः–

राजाभिषेकमाङ्गल्यसेनायानाश्वभेषम् ।
वर्णसंग्रामधान्यादि विदध्याद्रविवारे॥

(क.सं. १३, २)

सोमवार के कृत्य

मुक्ताम्बुशङ्खस्फटिकेक्षुरौप्यक्षीरौषधोद्यानकृषिक्रियाद्यम्।
स्त्रीनृत्यगीताखिलवास्तुकर्म शशाङ्कवारे रविवासरोक्तम्॥२॥

मुक्ता (मोती), जल, शङ्ख, स्फटिक, मन्ना, चाँदी, दूध, औषध, बगीचा, कृषिकर्म, स्त्री नृत्यगीतादि, समस्त वास्तुकर्म और रविवारोक्त सभी कृत्य सोमवार को करने चाहिए॥२॥

क्रमागत–

नारदः–

शंखमुक्ताम्बुरजतवृक्षेक्षुस्त्रीविभूषणम्।
पुष्पगीतक्रतुक्षीरकृषिकर्मेन्दुवासरे॥

(ना.सं. ५, २)

कश्यपः–

शंखमुक्ताब्जरजतवृक्षेक्षुस्त्रीविभूषणम्।
क्रतु कृष्यम्बुनृत्याद्यं शृङिगकर्मेन्दुवासरे॥

(क.सं. १३, ३)

मङ्गलवार के कृत्य

विषाग्निशस्त्राहवभेददम्भस्तेयानृतोग्रावधबन्धकर्म।
छेदप्रवालाखिलधातुकर्म सदाभिचारं च कुजेऽह्नि कुर्यात्॥३॥

विष, अग्नि, शस्त्रयुद्ध, भेद, दम्भ, चोरी, झूठ, उग्रकृत्य, वधबन्धकर्म, छेदन, प्रबालादि समस्त धातु कर्म अभिचार सदैव मङ्गलवार को विहित हैं॥३॥

क्रमागत–

नारदः–

विषाग्निबन्धनस्तेयं सन्धिविग्रहमाहवे।
धात्वाकर प्रवालास्त्रकर्मभूमिजवासरे॥

(ना.सं. ५, ३)

कश्यपः–

प्रवालाकर धात्वस्त्र विषाग्नि समरादिकम्।
सन्धिविग्रह भूकर्म भूमिपुत्रस्य वासरे॥

(क.सं. १३, ४)

बुधवार के कृत्य

नैपुण्यवादावहशिल्पसन्धिर्व्यायामपण्याखिललेखनाद्यम्।
धातुक्रियाविद्रुमभूषणाद्यं बुधेऽह्निकार्यं गणितप्रपञ्चम्॥४॥

नैपुण्य (चातुर्य) वादविवाद, युद्ध, शिल्पकला, सन्धि, व्यायाम, व्यापार, पुण्यकृत्य, समस्त लेखन कार्य, धातुक्रिया, विद्रुम (मूगा) भूषणादि तथा गणित साधन इत्यादि कर्म बुधवार को करने चाहिए॥४॥

क्रमागत–

नारदः–

नृत्यशिल्पकलागीतलिपिभूरसंग्रहम्।
विवाहधातुसंग्रामकर्मसौम्यस्य वासरे॥

(ना.सं. ५, ४)

कश्यपः–

गीतनृत्यकलाशिल्प लिपि भूरस संग्रहः।
संग्राम वार्तावाग्वाद भूषणाद्यं बुधेऽहनि॥

(क.सं. १३, ५)

बृहस्पतिवार के कृत्य

यज्ञक्रियामङ्गलपुष्टिविद्याहेमाम्बरोद्यानविभूषणाद्यम्।
भैषज्यशास्त्राहवनृत्यगीतचरस्थिराद्यं सुरपूज्यवारे॥५॥

यज्ञ क्रिया, माङ्गलिक पौष्टिककृत्य, विद्या, स्वर्ण वस्त्र, उद्यान, भूषणादि, औषध निर्माण, शस्त्रयुद्ध, नृत्यगीत चरस्थिरादि सभी कर्म बृहस्पति वार को करना शुभ हैं।।५।।

क्रमागत–

नारदः–

यज्ञपौष्टिकमाङ्गल्यं स्वर्णवस्त्रादिभूषणम्।
वृक्षगुल्मलतायानकर्म देवेज्यवासरे।।

(ना.सं. ५, ५)

कश्यपः–

पौष्टिकाध्वर माङ्गल्य हेमाम्बर विभूषणम्।
वृक्षगुल्मलतायान कर्म देवेज्य वासरे।।

(क.सं. १३, ६)

शुक्रवार के कृत्य

स्त्रीगीतमुक्ताफलवज्ररौप्यसुगन्ध्यशय्याभरणाम्बराद्यम्।
उद्यानकृष्यम्बुलतास्त्रपण्यमाङ्गल्यपुष्पादिसितेऽह्निकुर्यात्।।६।।

स्त्री, गीत, मुक्ताफल, वज्र (हीरक), चाँदी, सुगन्धित द्रव्य, शय्या और पहनने वाले वस्त्र, बगीचा सम्बन्धी कार्य, अस्त्रों का निर्माण, पुण्य माङ्गलिक कृत्य, पुष्पोद्यानादि शुक्रवार को करने हेतु विहित हैं।।६।।

क्रमागत–

नारदः–

नृत्यगीतादिवादित्रस्वर्णस्त्रीरत्नभूषणम्।
भूपण्योत्सवगोधान्यकम भार्गववासरे।।

(ना.सं. ५, ६)

कश्यपः–

स्त्रीगीतनृत्यहेमाश्च कृषि रत्न विभूषणम्।
गोधान्योत्सवयागादि कर्म भार्गव वासरे।।

(क.सं. १३, ७)

शनिवार के कृत्य

समस्तवस्तुग्रहणाश्मसीसदीक्षात्रपुस्थैर्यगृहादिकर्म।
खरोष्ट्रगोहेमतुलायदासपापानृताद्यं रविपुत्रवारे।।७।।

समस्त वस्तुओं का आदान प्रदान, पाषाणकृत्य सीसकृत्य, दीक्षा, कलि (जस्ता) धातुकृत्य, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, गधा, ऊँट, बैल कृत्य, तुला (व्यापार), आयव्यय, नौकर का कार्य, असत्य भाषणादि पापकृत्य शनिवार को विहित हैं।।७।।

क्रमागत–

नारदः–

त्रपुसीसायसोऽश्मास्त्रविषपापासवानृतम्।
स्थिरकर्माखिलं वास्तुसंग्रहं सौरिवासरे॥

(ना.सं. ५, ७)

कश्यपः–

क्रूरानृताऽऽसवस्तेयसीसाश्मायसवास्तु यत्।
स्थिरकर्माखिलं धान्सयसंग्रहं सौरिवासरे॥

(क.सं. १३, ८)

सूर्यादि ग्रहों की संज्ञा

सूर्यः स्थिरः शीतकरश्चरात्मा धराज उग्रः शशिजो विमिश्रः।
देवेन्द्रपूज्यो लघुरिन्द्रशत्रुः पूज्यो मृदुस्तीक्ष्णतनुश्च सौरिः॥८॥

सूर्य स्थिर (ध्रुव), चन्द्रमा चर (चल), मङ्गल उग्र (क्रूर), बुध मिश्र (साधारण), बृहस्पति लघु (क्षिप्र), शुक्र मृदु (मैत्र) तथा शनि तीक्ष्ण (दारुण) संज्ञक है॥८॥

क्रमागत–

नारदः–

रविः स्थिरश्चरश्चन्द्रः कुजः क्रूरो बुधोखिलः।
लघुरीज्यो मृदुः शुक्रस्तीक्ष्णो दिनकरात्मजः॥

(ना.सं. ५-८)

कश्यपः–

रविस्थिरश्चरश्चन्द्रः कुजः क्रूरोऽखिलो बुधः।
इज्यो लघुमृदुः शुक्रस्तीक्ष्णो दिनकरात्मजः॥

(क.सं. १३, ९)

रव्यादि वारों के कृत्य

अभ्यङ्गो रविवासरे तनुभृतां दुःखप्रदः कान्तिदः।
सोमाहे कुजवासरे निधनदः श्रीकीर्तिदश्चन्द्रजे॥
जीवे शत्रुविवृद्धिदः सितदिने रोगप्रदः सूर्यजे।
भोगारोग्यविवृद्धिदश्च नियतं श्रीकीर्तिलक्ष्मीप्रदः॥९॥

रविवार के दिन (तैलाऽभ्यङ्ग) उवटन तैलादि का लगाना दुःखदायक, सोमवार को कान्तिप्रदायक, मङ्गलवार को मृत्युप्रद, बुधवार को लक्ष्मी तथा कीर्तिदायक, बृहस्पतिवार को शत्रुवृद्धि, शुक्रवार को रोगप्रद, शनिवार को निश्चित रूप से भोग, शारीरिक सुखों में वृद्धि, लक्ष्मी और कीर्तिप्रद समझें॥९॥

क्रमागत–

नारदः–

अभ्यक्तोभानुवारे यः स नरः क्लेशवान्भवेत्।
ऋक्षेशे कान्तिभाग् भौमे व्याधिः सौभाग्यमिन्दुजे।।
जीवे नैःस्वं सिते हानिर्मन्देसर्वसमृद्धयः।
उदयादुदयं वार इति पूर्वविनिश्चितम्।।

(ना.सं. ५, ९-१०)

कश्यपः–

क्लेशः कान्तिर्गदोलक्ष्मीर्धनहानिर्विपत्तिथा।
सौभाग्यमर्कादिवारेष्वभ्यङ्गफलमीरितम्।।

(क.सं. १३, १०)

रव्यादिवार कृत्यों में परिहार

अनुक्तवारतिथिषु-त्वमायां विष्टिपातयोः।
औषधेन युतं तैलं न दुष्यं ग्रहणं विना।।१०।।

वर्जित वारों और तिथियों में, अमावास्या, भद्राकाल, वैधृति, व्यतिपात; परन्तु ग्रहण के बिना औषधियुक्त (महानारायणादि तैल) तैला लगाना दोषकारक नहीं होता।।१०।।

वार प्रवृत्तिः

प्रभाकरस्योदयनात्पुरेस्याद्वारप्रवृत्तिर्दशकन्धरस्य।
चरार्द्धदेशान्तरनाडिकाभिरूर्द्धं तथाधोऽप्यपरत्र तस्मात्।।११।।

रावण की नगरी लङ्का के सूर्योदयकाल से दिनादि आरम्भ होता है तथा उसके नीचे और ऊपर के देशों में देशान्तर से आनीत नाड़ी से अन्तरित सूर्योदय होता है अर्थात् वारप्रवृत्ति सब जगह एक कालिक नहीं होती।।११।।

क्रमागत–

नारदः–

लंकोदयात् स्याद्वारादिस्तस्मादूर्ध्वमधोऽपिवा।
देशान्तर चरार्द्धाभिर्नाडीभिरयरो भवेत्।।

(ना.सं. ५, ११)

कश्यपः–

वारप्रवृत्तिः सर्वेषां लङ्कायां भास्करोदयात्।
देशान्तर चरार्धाख्य नाडीभिस्तदधोऽपरे।।

(क.सं. १३, ११)

वारप्रवृत्ते घटिका दिनेशात्कालाख्यहोरापतयः क्रमेण।
सार्द्धेन नाडीद्वितयेन षष्ठः षष्ठश्च षष्ठश्च पुनः पुनश्च।।१२।।

वार प्रवृत्ति काल से ढाई घटी क्रम से होरापति होते हैं। वर्तमान वार से प्रथम, उससे छठा द्वितीय, पुनः द्वितीया से छठा तृतीय इस क्रम से होराधिपति होते हैं। जिस वार में होरा काल ज्ञात करना हो तो प्रथम होरा उसी वार की, दूसरी आदि होरा छठें-छठें वार की क्रम से होती है। एक काल होरा २ घटी ३० पल की होती है अर्थात् एक होरा एक घण्टे की होती है॥१२॥

क्रमागत–

नारदः–

प्रहरार्धप्रमाणास्ते विज्ञेया सूर्यवासरात्।
यस्मिन्वारे क्षणोवार इष्टस्तद्वासराधियः॥
आद्यष्षष्ठो द्वितीयोऽस्मात्तस्मात्षष्ठस्तृतीयकः।
षष्ठषष्ठश्चैतरेषां कालहोराधियाः स्मृताः॥

(ना.सं. ५, १८-१९)

कश्यपः–

यो वासराधिपस्त्वाद्यस्तस्मात्षष्ठोद्वितीयकः।
तस्मात्षष्ठस्तृतीयः स्यादेवमेव ततः परम्॥

(क.सं. १३, १८)

वारप्रवृत्तिविज्ञानं क्षणवारार्थमेवतत्।
अखिलेष्वन्यकार्येषु दिनादिरुदयो रवेः॥१३॥

वार प्रवृत्ति विज्ञान क्षणिकवार ज्ञानार्थ है। होरा, प्रहरार्ध के अतिरिक्त समस्त कार्यों में वार प्रवृत्ति स्टै० सूर्योदय से ही लेनी चाहिए॥१३॥

क्रमागत–

कश्यपः–

वार प्रवृत्तिविज्ञानं क्षणववारार्थमेवतत्।
अखिलेष्वन्यकार्येषु दिनादिरुदयोरवेः॥
यस्यग्रहस्य वारेऽपि यत्कर्मसमुदीरितम्।
तत्तस्यकाल होरासु सर्वमेव विधीयते॥

(क.सं. १३, १९-२०)

यस्य ग्रहस्यैव च वासरे यत्कर्म प्रदिष्टं विपुलं च कार्यम्।
तत्कालहोरासु च तस्य नूनं दिक्छूलपूर्वादि विचिन्तनीयम्॥१४॥

जिस ग्रह के वार में जो कार्य करने के लिए कहा है, वे सभी पूर्वादि दिक्शूलादि क्षणिक होरा में आने वाले क्षणिक वारों में विहित हैं॥१४॥

क्रमागत–

नारदः-

सार्धनाडीद्वयनैवं दिवा रात्रौ यथा क्रमात्।
यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते।
ग्रहस्य कर्म वारेऽपि तत्क्षणे तस्य सर्वदा।।

(ना.सं. ५, २०)

बलप्रदस्य ग्रहवासरे यच्चोद्दिष्टकार्यं समुपैति सिद्धिम्।
सुदुर्बलस्य ग्रहवासरे तत्प्रयत्नपूर्वं त्वपि नैव साध्यम्।।१५।।

जिस वार में जो कृत्य निश्चित हैं, उसी वार की क्षणिक होरा में भी अवश्य सिद्धिप्रद होता है। किसी भी कृत्य में अनुक्तवार में कभी कृत्य न करें।।१५।।

काल होरा चक्र

वार प्रवेश से घण्टात्मक काल	रवि	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	×	होरा संख्या
० से १	सू	चं	मं	बु	वृ	शु	श	×	१
१ - २	शु	श	सू	चं	मं	बु	वृ	×	२
२ - ३	बु	वृ	शु	श	सू	चं	मं	×	३
३ - ४	चं	मं	बु	वृ	शु	श	सू	×	४
४ - ५	श	सू	चं	मं	बु	वृ	शु	×	५
५ - ६	वृ	शु	श	सू	चं	मं	बु	×	६
६ - ७	मं	बु	वृ	शु	श	सू	चं	×	७
७ - ८	सू	चं	मं	बु	वृ	शु	श	×	८
८ - ९	शु	श	सू	चं	मं	बु	वृ	×	९
९ - १०	बु	वृ	शु	श	सू	चं	मं	×	१०
१० - ११	चं	मं	बु	वृ	शु	श	सू	×	११
११ - १२	श	सू	चं	मं	बु	वृ	शु	×	१२
१२ - १३	वृ	शु	श	सू	चं	मं	बु	×	१३
१३ - १४	मं	बु	वृ	शु	श	सू	चं	×	१४
१४ - १५	सू	चं	मं	बु	वृ	शु	श	×	१५
१५ - १६	शु	श	सू	चं	मं	बु	वृ	×	१६
१६ - १७	बु	वृ	शु	श	सू	चं	मं	×	१७
१७ - १८	चं	मं	बु	वृ	शु	श	सू	×	१८

१८ - १९	श	सू	चं	मं	बु	वृ	शु	×	१९
१९ - २०	वृ	शु	श	सू	चं	मं	बु	×	२०
२० - २१	मं	बु	वृ	शु	श	सू	चं	×	२१
२१ - २२	सू	चं	मं	बु	वृ	शु	श	×	२२
२२ - २३	शु	श	सू	चं	मं	बु	वृ	×	२३
२३ - २४	बु	वृ	शु	श	सू	चं	मं	×	२४

पूर्णेन्दुशुक्रज्ञसुरेज्यवाराः सर्वेषुकार्येषुसुपूजिताः स्युः।
ये सूर्यसूर्यात्मजभौमवाराः प्रोक्तेषु कार्येष्वपिशोभनाः स्युः॥१६॥

पूर्ण चन्द्रमा, शुक्र, बुध और बृहस्पतिवार सभी कार्यों में श्रेष्ठ हैं। सूर्य, शनि और मङ्गलवार में कहे हुए कृत्य भी उन्हीं में करना शुभ है और इन्हीं वारों में सिद्ध भी होते हैं॥१६॥

क्रमागत–

नारदः–

बुधेन्दुजीवशुक्राणां वासराः सर्वकर्मसु।
सिद्धिदाः क्रूरवारेषु यदुक्तं कर्म सिध्यति॥

(ना.सं. ५, १३)

कश्यपः–

चन्द्रसौम्येज्य शुक्राणां वारास्त्वखिलकर्मसु।
पूजितास्त्वन्यवारेषु प्रोक्तं कर्मैव सिध्यति॥

(क.सं. १३, १३)

नवग्रहों के वर्ण

रक्तो रविर्गौरनिभः शशाङ्कः कुजोऽतिरक्तः शशिजश्च पीतः।
सुवर्णवर्णो गुरुरास्फुजिच्च रौप्योपमः कृष्णतनुश्च सौरिः॥१७॥

रक्तवर्ण सूर्य, गौरवर्ण चन्द्रमा, मङ्गल अतिरक्त (लोहितवर्ण), बुध पीला, बृहस्पति स्वर्ण सदृश, चाँदी सदृश शुक्र तथा शनि कृष्णवर्ण होता है॥१७॥

क्रमागत–

नारदः–

रक्तवर्णो रविश्चन्द्रोगौरो भौमास्तु लोहितः।
दूर्वावर्णो बुधो जीवः पीतः श्वेवस्तु भार्गवः।
कृष्णः शौरिः स्ववारेषु स्वस्ववर्णाः क्रियाः शुभाः॥

(ना.सं. ५, १४, १५)

कश्यपः–

सूर्योरक्तः शशी गौरवर्णोभौमस्तु लोहितः।
दूर्वाच्छविर्बुधो जीवः स्वर्णः सितः सितः।
सौरिः कृष्णः स्वस्व वर्णः क्रियाः शुभः।।

(क.सं. १३, १४-१४.५)

सूर्यादिवारों में वस्त्र धारण फल

जीर्णं जलार्द्रं दहनप्रदग्धं लक्ष्मीकरं लाभकरं प्रियाप्तिम्।
मलप्रदिग्धं धृतमबरं यत्करोति सूर्यादिखगः स्ववारे।।१८।।

रव्यादि वारों में वस्त्रधारण से क्रमशः रविवार में जीर्णवस्त्र, सोमवार में आर्द्रवस्त्र, मङ्गल में अग्निदग्ध, बुध में कान्तियुक्त, बृहस्पति में लाभप्रद, शुक्र में प्रियसङ्गमप्रद, शनि में मलिन वस्त्र होने का सूचक होता है।।१८।।

दन्तधावन तथा क्षौर कर्म में उपयुक्त समय

आदित्यभौमार्किदिनेषु धीमान्न दन्तकाष्ठं क्षुरकर्म कार्यम्।
कुर्वन्नवाप्नोति फलं समग्रं शस्त्रेण सम्यक् स्वशरीर घातम्।।१९।।

रवि, भौम, शनिवारों में बुद्धिमान् कभी दन्तधावन तथा क्षौर कृत्य नहीं करना चाहिये। यदि कराये तो उसे शस्त्र के द्वारा शरीर घात पातादि का फल प्राप्त करता है।।१९।।

गृहप्रवेश में निषेध

सूर्यारयोर्वासरवर्गकालहोरासु यन्निर्मितमन्दिरं तत्।
अपि प्रविष्टं गृहमग्निना तद् द्राक् दह्यते पावकतारकासु।।२०।।

रवि और मङ्गल के वार या वर्ग और काल होराओं में यदि कोई गृहादि का निर्माण अथवा ग्रहप्रवेश करे तो शीघ्र ही वह घर अग्नि द्वारा जलकर भस्म हो जाता है।।२०।।

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां वारस्वरूपाध्यायः त्रयोदशः।।१३।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के वारस्वरूपाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त।।१३।।

पाठान्तरम्

१ (अ) वा.-रांजाभषको (राजाभिषेको)
१ (ब) ज१, २-वा.-काष्टादि (क्रोष्ट्रादि)
२ (अ) ज१-कृषिकृयाश्च, ज२-कृषिक्रियाश्च (कृषिक्रियाद्यम्)

३ (अ) ज१, २-वृतोग्रासवधंधर्म (नृतोग्रावधबन्धकर्म)

३ (ब) ज१, २-शाढयाभिचारं (सदाभिचारं)

४ (अ) ज१-नैपण्याहव, ज२-पुण्याहव, मु.पु.-नैपुण्यवाहावह (नैपुण्यवादावह), ज१-व्याजाम् (व्यायाम्), ज१, २-पुण्याखिल (पण्याखिल)

४ (ब) ज१-विदुम् (विद्रुम), ज१-सुधेह्नि (बुधेऽह्नि)

५ (ब) ज१-शस्त्रद्भाव, ज२-शस्त्राहव, मु.पु. शास्त्रस्व (शास्त्राहव)

६ (अ) ज१-फलंयज्ञ, ज२-फलयज्ञ (फलव्रज), ज१, २-शारवाभरणंचराधं (शय्याभरणाम्बराद्यम्)

६ (ब) ज१, २-कृष्णांबुजशास्त्र, वा.-कृष्णवुतास्त्र उ(कृष्यम्बुलतास्त्र), ज१, २-पुण्यादि (पुष्पादि), ज१-सितेद्रिक्यात्, ज२-सितेन्हि (सितेऽह्निकुर्यात्)

७ (अ) ज२-ग्रहणाश्च (ग्रहणाश्म), ज१-सीसु (सीस)

७ (ब) ज१-लेहेवलुलाय, ज२-लोहेचलुलाय (गोहेमतुलाय)

८ (अ) ज१-२-शीतकरश्चलात्मा (शीतकरश्चरात्मा)

८ (ब) ज१, २-देवेज्यपूज्या (देवेन्द्रपूज्यो), वा.-पूज्या (पूज्यो), ज१, २-बुधस्तीक्ष्णकरश्च (मृदुस्तीक्ष्णतनुश्च)

९ (अ) ज१-अभ्यंगेरविवासरे, ज२-सभ्यंगगतर्क्षवासरे (अभ्यङ्गोरविवासरे)

९ (ब) ज१-सोमाह, ज२-सोमादे (सोमाहे)

९ (स) ज१-सितादिनं, वा.-सितादिने (सितदिने)

९ (द) ज१-भागान्भोग्य, ज२-भोगान्भोग्य (भोगारोग्य), वा-नितं (नियतं)

११ (अ) ज१-मकरोस्योद्भृतनात्परे, ज२-भकरोस्योद्भृहतनात्पुरे (पप्रभाकरस्योदय-नात्पुरे)

११ (ब) ज१-तथाप्योप्यपरत्रत, ज२-तथोप्यपरत्रतस्मात् (तथाधोऽऽप्यपररत्रतस्मात्)

१२ (अ) ज१, २-वारप्रवृत्तिं (वारप्रवृत्ते)

१३ (अ) ज१-वारंप्रतिविज्ञेया:; ज२-वारप्रवृत्तिंविज्ञानं (वारप्रवृत्तिविज्ञानं), ज१, २-क्षणवार्रमेव (क्षणवारार्थमेव)

१३ (ब) ज१, २-दिनादिनरुदयोभवेत्, वा.-दिनादिरुदयोरवे (दिनादिरुदयोरवे:)

१४ (अ) ज१, २-वारे (वासरे), ज१, २-निखिलं (विपुलं)

१४ (ब) ज१, २-वरस्य (तस्य), ज१, २-दिवव्यल (दिक्छूल)

१५ (अ) ज१, २-यथोदिष्ट (यच्चोदिष्ट)

१५ (ब) ज१-तत्प्रयत्नापूर्वे, ज२-तत्प्रयरत्नपूर्वे (तत्प्रयत्नपूर्वात्विपि), ज१, २-नासाध्यं (नैवसाध्यम्)

१६ (ब) मु.पु.-सूर (सूर्य)

१७ (अ) ज१, २-कुजोतिरक्तः, वा.-कुजोजिरिक्तः (कुजोऽतिरक्तः), ज१-शशिनश्च (शशिजश्च)

१८ (अ) ज१, २-जलार्दे, वा.-जलार्द्र (जलार्द्र), ज१, २-मदनप्रदग्धं (दहनप्रदग्धं), ज१, २-धनकरं (लक्ष्मीकरं), ज१, २-धनाप्तिम्)

१८ (ब) ज१, २-सूर्यादिखलं (सूर्यादिखग:), ज१, २-स्वरेच (स्ववारे)

१९ (अ) वा.-भौमार्क्क (भौमार्कि)

१९ (ब) ज२-शरीरघातम् (स्वशरीरघातम्)

२० (अ) ज१, २-कलिहोरासुखं (कालाहोरासु), ज१-निर्मितमंदिरंयत्, ज२-निर्मितमंदरयत् (यन्निर्मितमन्दिरं नत)

२० (ब) ज१, २-तदासंदह्यते (तद्द्राक्दह्यते), ज१, २-ताराकास्यु (पावकतारकासु)

***

१४

अथ नक्षत्रस्वरूपाध्यायः

नक्षत्रों के अधिपति

नासत्यान्तकवह्निधातृनिशिपा रुद्रोऽदितिश्चाङ्गिरा।
वाताशाः पितरो भगोऽर्यमरवीत्वष्टासमीरः क्रमात्।।
इन्द्राग्नीत्युडुपाश्च मित्रसुरपौ कोणेश्वरः शम्बरं।
विश्वे विष्णुवसूदपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः।।१।।

दोनों अश्विनी कुमार (दस्र, नासत्य), अन्तक (यम), अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, रुद्र, अदिति, अंगिरा (बृहस्पति), सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इन्द्र, नैर्ऋत, जल, विश्वेदेव, ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अज़पाद, अहिर्बुध्न्य और पूषा ये क्रमशः अभिजित् सहित अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों के स्वामी हैं।।१।।

क्रमागत–

नारदः–

नक्षत्रेशाः क्रमाद्दस्रयमवह्निपितामहः।
चन्द्रेशाऽदितिजीवाहिपितरो भगसंज्ञितः।।
अर्यमार्कत्वष्टृमरुच्छक्राग्निमित्रवासवाः।
निर्ऋत्युदग्विश्वविधि गोविन्दवसुतोयपाः।।
ततोजपादहिर्बुध्न्यः पूषा चेति प्रकीर्तिताः।
वस्त्रोपनयनं क्षौरः सीमन्ताभरणक्रिया।।

(ना.सं. ६, १-३)

कश्यपः–

क्रमाद्भेशादस्रयमवह्नि धातृ निशाकराः।
ईशोऽदितीज्याहि पितृ भगार्यम दिवाकराः।।
त्वष्टवायु सहस्राक्षवह्नी मित्रमखेश्वराः।
निऋत्युदक विश्वश्री वत्सांकवासवाम्बुपाः।।
अजपादाभिधानाहिर्बुध्न्यपूषाह्वयाअमी।
यात्रोपनयनक्षौरवस्त्रसीमन्त भूषनम्।।

(क.सं. १४, १-४)

वराहमिहिरः–

अश्वियमदहनकमलजशशि शूलभृददितिजवफणिपितरः।
योन्यर्यमदिनकृत्त्वष्ट्रपवनशक्राग्निमित्राश्च ।

शक्रोनिर्ऋतिस्तोयं विश्वे ब्रह्मा हरिर्वसुर्वरुणः।
अजपादोऽहिर्बुध्न्यः पूषा चेतीश्वरा भानाम्।।

(वृ.सं. १८, ४-५)

नक्षत्राधिपति चक्र

नक्षत्र	स्वामी	नक्षत्र	स्वामी	नक्षत्र	स्वामी	नक्षत्र	स्वामी
अश्विनी	अ.कु.	पुष्य	गुरु	स्वाती	वायु	अभिजित्	ब्रह्मा
भरणी	यम	आश्लेषा	सर्प	विशाखा	इन्द्राग्नि	श्रवण	विष्णु
कृत्तिका	अग्नि	मघा	पितर	अनुराधा	मित्र	धनिष्ठा	वसु
रोहिणी	ब्रह्मा	पू.फा.	भग	ज्येष्ठा	इन्द्र	शतभिषा	वरुण
मृगशिरा	चन्द्रमा	उ.फा.	अर्यमा	मूल	नैर्ऋत (राक्षस)	पू.भा.	अजपाद
आर्द्रा	रुद्र	हस्त	सूर्य	पूर्वा.षा.	जल	उ.भा.	अहिर्बुध्न्य
पुनर्वसु	अदिति	चित्रा	त्वष्टा	उ.षा.	विश्वेदेव	रेवती	पू.षा.

अश्विनी नक्षत्र में विहित कृत्य

यात्राभेषजभूषणविद्याश्वेभाजशिल्पवस्त्राद्यम्।
उत्सवमङ्गलकार्यं कर्त्तव्यं दस्र नक्षत्रे।।२।।

यात्रा, औषधि सेवन, भूषण धारण, विद्यारम्भ, अश्व, हाथी, बकरादि पशुकृत्य, वाहन कृत्य, शिल्पकला, वस्त्रधारण, मङ्गलकार्य उत्सवादि अश्विनी नक्षत्र में करना श्रेयस्कर है।।२।।

भरणी नक्षत्र में विहित कृत्य

साहसदारुणशत्रुप्रशमननिक्षेपकूपकृष्याद्यम्।
विषवधबन्धनदहनप्रहरणकार्याणि भरणीषु।।३।।

साहस, दारुणकृत्य, शत्रुप्रशमन, निक्षेप (धन विनियोग), कूप खनन, कृषिकृत्य, विषयोग, वधबन्धन, दहन, प्रहरण ये सभी कार्य भरणी नक्षत्र में करने चाहिए।।३।।

क्रमागत–

कश्यपः–

प्रतिष्ठाश्ववेभ विद्यास्त्रकृषिकर्माश्विभेशुभम्।
विलप्रवेशगणितविषशस्त्राग्निदासगम् ।।
वापीकूपतडागादि निक्षेपं याम्यभें शुभम्।
विषाग्नि शस्त्रसंग्राम दारुणाद्यखिल क्रियाः।।

सन्धि विग्रह वादित्रयविषादाश्चाग्निभे शुभाः।
वस्त्रोपनयनोद्वाह सीमन्तश्चकृषिक्रिया॥
देव प्रतिष्ठा वास्त्वादि स्थिर कार्याणिधातृभे।
प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्त यात्रोपनयन क्रिया॥
क्षौर वास्तुस्वर्णरत्न गजौष्टी च क्रियेन्दुभे।
तोरणध्वजसंग्राम प्राकारास्त्र क्रियामिलाः॥
सन्धि विग्रहवेतालरक्षादीनां च रुद्रभे।
यात्रा प्रतिष्ठा सीमन्त वास्तु वस्त्रोपनायनम्॥

(क.सं. १४, ५-१०)

कृत्तिका नक्षत्र में विहित कृत्य

अग्निपरिग्रहसाहसरिपुवधदहनास्त्रशस्त्रकर्माद्यम्।
धातुर्वादविधानं विवादलोहाश्म बहुलायाम्॥४॥

अग्निपरिग्रह, साहस, शत्रु वध, दहनकार्य, शस्त्रास्त्र कृत्य, धातु आदि से निर्माण कार्य, वादविवाद लोह और पत्थर के सभी कार्य कृत्तिका नक्षत्र में शुभ होते हैं॥४॥

क्रमागत–

कश्यपः–

क्षौरभूषण धान्याश्वकर्मभेदितिसंज्ञके।
चरस्थिराणि कार्याणि सर्वाण्यखिलदेहिनाम्॥
कार्याणि पुष्य नक्षत्रो विना पाणिग्रहं सदा।
धातुवादाहवद्यूतविष शस्त्रग्निबन्धनम्॥
वादवाणिज्य पिशुनं कर्म कटुजभेहितम्।
गोधान्य कृषि वाणिज्य रणोपकरणादिकम्॥
विवाहशिल्पनृत्याद्यनिखिलं कर्म पितृभे।
रणदासगशस्त्रानि धातुर्वाद विषादिकम्॥
विवादभेषजं कर्म कार्यं पूर्वत्रयेऽपि च।
वस्त्रोपनयनोद्वाह वास्तु सद्मप्रवेशनम्॥
अश्वप्रतिष्ठा सीमन्त गज कर्मोत्तरासु च।
प्रतिष्ठोद्वाहसमिन्त यात्राक्षौर विभूषम्॥

(क.सं. १४, ११-१६)

रोहिणी नक्षत्र में विहित कृत्य

सुरनरसद्माद्यखिलं विवाहधनधान्यसंग्रहोपनयम्।
उत्सवभूषणमङ्गलमजभे कार्यं सपौष्टिकं कर्म॥५॥

देवता और मनुष्यों के प्रासादनिर्माण, विवाह, धनधान्य संग्रह, यज्ञोपवीत, उत्सव, भूषण और सभी मङ्गलपौष्टिक कार्य रोहिणी नक्षत्र में प्रशस्त हैं।।५।।

क्रमागत–

कश्यपः–

वस्त्रोपनयनाश्वे भवास्तु कर्म दिनेशभे।
प्रवेश वस्त्र क्षौरादि प्रतिष्ठावास्तुभूषणम्।।
अश्वेभनयने भ्राष्ट सीमन्तोर्णादि चित्रभे।
प्रतिष्ठोद्वाह सीमन्त क्षौर वस्त्रोपनायनम्।।
भूषणाश्वेभपश्वम्वु वास्तुकर्मसमीरभे।
वाणिज्य वस्त्राभरण रस धान्यादि संग्रहः।।
शिल्पलेखननृत्याद्यं सर्वमिन्द्राग्निभेहितम्।
यात्रोपनयनोद्वाह प्रतिष्ठाश्च प्रवेशनम्।।
सीमन्त वस्त्राभरणं गजकर्म च मित्रभे।
आहारक्षौर वाणिज्य शिल्पवस्त्रादिलेखनम।
लोहाश्मपशुगीताद्यं कर्म पौरन्दरेहितम्।
विवाहाहव वाणिज्य कृषि भेषज्य कर्म च।।

(क.सं. १४, १७-२२)

मृगशिरा नक्षत्र में विहित कृत्य

शान्तिकपौष्टिकशिल्पव्रतकर्मोद्वाहकमङ्गलाद्यखिलम्।
सुरसंस्थापनवास्तुक्षेत्रारम्भादि सिद्धयते सौम्ये।।६।।

शान्तिक, पौष्टिक, शिल्पादि, विवाह, समस्त मङ्गलकार्य, देवप्रतिष्ठा, वास्तुक्षेत्र आरम्भादि समस्त कार्य मृगशरा में शुभ होते हैं।।६।।

क्रमागत–

कश्यपः–

सन्धि विग्रह शस्त्रास्त्र शिल्पकर्म च मूलभे।
यात्राप्रतिष्ठा सीमन्त व्रत बन्धनभूषणम्।।
क्षौरवास्तुपुशुरामनिखिलं श्रवणेहितम्।
यात्रावास्तूपनयनं प्रवेशक्षौर भूषनम्।।
कृषिकार्यश्वभूषादि वसुभे चौषधं हितम्।
प्रतिष्ठा वास्तु सीमन्त प्रवेश व्रतबन्धनम्।।
भूषणमश्वेभवास्त्वादिजलकर्म जलेषभे।
प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्त प्रवेश व्रत बन्धनम्।
वस्त्रक्षौरराश्व यात्रादि वास्तुकर्म च पौषणभे।।

(क.सं. १४, २३-२६.५)

आर्द्रा नक्षत्र में विहित कृत्य

प्रहरणदारुणबन्धनविग्रहविषसन्धिवह्निकर्माद्यम्।
छेदनदहनोच्चाटनमारणकृत्यं च रौद्रभे कुर्यात्॥७॥

प्रहरण (शस्त्र निर्माण), दारुण कृत्य, वधबन्धन विग्रह, विषयोग, सन्धि कार्य, अग्नि कार्य, छेदन, दहन, उच्चाटन, मारण कृत्य ये सभी आर्द्रा में प्रशस्त हैं॥७॥

क्रमागत–
नारद:–

वस्त्रोपनयनं क्षौर: सीमन्ताभरणक्रिया।
स्थापनाश्वादियानं च कृषिविद्यादयोऽश्विभे॥
वापीकूपतडागादि विषशस्त्रोग्रदारुणम्।
बिलप्रवेशगणितनिक्षेपा याम्यभे शुभा:॥
अग्न्याधानास्त्रशस्त्रोग्रसन्धिविग्रहदारुणा:।
सङ्ग्रामौषधवादित्रक्रिया:शस्ताश्चवह्निभे॥
सीमन्तोपनयनोद्वाहवस्त्रीभूषास्थिरक्रिया:।
गजवास्त्वभिषेकाश्च प्रतिष्ठा ब्रह्मभे शुभा:॥
प्रतिष्ठाभूषणोद्वाहसीमन्तोपनयन क्रिया:।
क्षौरवास्तुगजोष्ट्राश्चयात्रा शस्ता च चन्द्रभे॥
ध्वजतोरणसङ्ग्रामप्राकारास्त्रक्रिया: शुभा:।
सन्धिविग्रहवैतानरसाद्या: शवभे शुभा:॥

(ना.सं. ६, ३-८)

पुनर्वसु नक्षत्र में विहित कृत्य

शान्तिकपौष्टिकयात्राव्रतप्रतिष्ठानृपाहवाद्यखिलम्।
भूषणवास्तु विधानं वाहनकृषिकर्म सप्तमे धिष्ण्ये॥८॥

शान्तिक, पौष्टिक, यात्रा, व्रत, प्रतिष्ठा, राजकृत्य युद्धादि, भूषण और वास्तु विधान, वाहन और कृषिकर्म पुनर्वसु नक्षत्र में शुभ कहे हैं॥८॥

क्रमागत–
नारद:–

प्रतिष्ठायानसीमन्तवस्त्रवास्तूपनायनम्।
क्षौरास्त्रकर्मादितिभे विधेयं धान्यभूषणम्॥
यात्राप्रतिष्ठासीमन्तव्रतबन्धप्रवेशनम्।
करग्रहं विना सर्वंकर्मं देवेज्यभे शुभम्॥
अनृतव्यसनद्यूतक्रोधाग्निविषदाहकम्।
विवादरसवाणिज्यं कर्म कद्रुजभेशुभम्॥

कृषिवाणिज्यगोधान्यरणोपकरणादिकम्।
विवाहनृत्यगीताद्यं निखिलं कर्म पैत्रभे।।
विवादविषशस्त्राग्निदारुणोग्राहवादिकम्।
पूर्वात्रयेऽखिलं कर्मं कर्त्तव्यं मांसविक्रयम्।।
वस्त्राभिषेकलोहाश्मविवाहव्रतबन्धनम्।
प्रवेशस्थापनाश्वेभवास्तुकर्म्मोत्तरात्रये।।

(ना.सं. ६, ९-१४)

पुष्य नक्षत्र में विहित कृत्य

स्थिरचरशान्तिकपौष्टिकभूषणशिल्पव्रतोत्सवाद्यखिलम्।
वनिताकरसंग्रहणं त्यक्त्वान्यत्कर्म सिद्ध्यते पुष्ये।।९।।

स्थिर तथा चर कार्य, शान्तिक, पौष्टिक, भूषण और शिल्पकृत्य, व्रतोत्सव ये समस्त कार्य पुष्य नक्षत्र में सिद्ध होते हैं; परन्तु पाणिग्रहण संस्कार का पुष्य नक्षत्र में त्याग करना चाहिए।।९।।

क्रमागत–

नारदः–

प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्तयानवस्त्रोपनायनम्।
क्षौरवास्त्वभिषेकाश्च भूषणं कर्म भानुभे।।
प्रवेशवस्त्रसीमन्त प्रतिष्ठाव्रत बन्धनम्।
त्वाष्ट्रभे वास्तुविद्या च क्षौर भूषणकर्म यत्।।
प्रतिष्ठोपनयोद्वाहवस्त्रसीमन्तभूषणम्।
प्रवेशाश्वेभकृष्यादिक्षौरकर्म समीरभे।।
वस्त्रभूषणवाणिज्यवस्तुधान्यादिसंग्रहः।
इन्द्राग्निभेनृत्यगीतशिल्पलोहाश्मलेखनम्।।
प्रवेशस्थापनोद्वाहव्रतबन्धाष्टमङ्गलाः।
वास्तुभूषणवस्त्राश्वा मैत्रभे सन्धिविग्रहः।।
क्षौरास्त्रशस्त्रवाणिज्यगोमहिष्यंबुकर्मयत्।
इन्द्रभेगीतवादित्रशिल्पलोहाश्मलेखनम्।।
विवाह कृषिवाणिज्यदारुणाहवभेषजम्।
नैर्ऋते नृत्यशिल्पास्त्रशस्त्रलोहाश्मलेखनम्।।

(ना.सं. ६, १५-२१)

आश्लेषा नक्षत्र में विहित कृत्य

उद्धृतरिपुमदभञ्जनसाहसवाणिज्यकपटकर्म।
अनलायससङ्ग्रहणक्ष्वेडस्तेयादि सार्पभे कार्यम्।।१०।।

उद्दण्ड शत्रु का मदमर्दन, साहस कृत्य, वाणिज्य, छल, कूटकृत्य, अग्नि, लोहा संग्रहादि, विष, चौर्य कृत्य आश्लेषा नक्षत्र में विहित हैं॥१०॥

क्रमागत–

नारदः–

प्रतिष्ठाक्षौरसीमन्तयानोपनयनौषधम्।
पुराणैस्तुग्रहारम्भे विष्णु च समीरितम्॥
वस्त्रोपनयनं क्षौरं मौंजीबन्धनभेषजम्।
वसुभे वास्तुसीमन्तप्रवेशाश्च विभूषणः॥
प्रवेशस्थापनं क्षौरमौंजीबन्धनभेषजम्।
अश्वारोहण सीमन्तवास्तुकर्म जलेशभे॥
विवाहव्रतबन्धाश्च प्रतिष्ठायानभूषणम्।
प्रवेशवस्त्रसीमन्तक्षौरभेषजमन्त्यभे ॥

(ना.सं. ६, २२-२६)

मघा नक्षत्र में विहित कृत्य

युवतीकरसंग्रहणं वापीकूपतडागोत्सवाद्यं च।
क्षितिपत्याहवसर्वं पितृधिष्ण्ये च पैतृकं कार्यम्॥११॥

युवती कृत्य, विवाह, बावली, कुआँ, तालाब तथा उत्सवादि, राजकृत्य और युद्धादि समग्रकृत्य तथा पितृकृत्य मघा नक्षत्र में करने चाहिए॥११॥

पूर्वाफाल्गुनी में विहित कृत्य

शिल्पप्रहरणबन्धनदारुणचित्रकापटं कर्म।
नटनद्रुमासवाद्यं भाग्ये कुड्यप्रहरणं च॥१२॥

शिल्प, शस्त्र, बन्धन, दारुण, चित्रलेखन, कपटकृत्य, नटकृत्य, वृक्षारोपण, आसव (सुरा आदि निर्माण), पलस्तर करना, लीपना-पोतना, दीवार निर्माण (भित्तिनिर्माण), शस्त्र सम्बन्धी कार्य पूर्वाफाल्गुनी में विहित हैं॥१२॥

उपनयनं करपीडनमखिलं स्थिरशिल्पभूषणं त्वखिलम्।
पुरसदन प्रारम्भणमम्बररणकार्यमर्यमर्क्षेषु॥१३॥

उपनयन, विवाह, स्थिरकृत्य, शिल्पभूषण, नगर एवं प्रासाद निर्माण, नवीनवस्त्र और युद्धकार्य ये सभी कृत्य उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में करना श्रेयस्कर है॥१३॥

हस्त नक्षत्र में विहित कृत्य

भेषजयात्राविद्याविवाहशिल्पव्रताम्बराभरणम्।
सुरसंस्थापनमखिलं वास्तुप्रारम्भमर्कनक्षत्रे॥१४॥

औषधि सेवन, यात्रा करना, विद्या अभ्यास, विवाह, शिल्प व्रत, नवीन वस्त्र धारण करना, देवप्रतिष्ठा तथा समस्त वास्तु प्रारम्भिक कृत्य हस्त नक्षत्र में शुभ होते हैं।।१४।।

शान्तिकपौष्टिकमखिलं स्थिरकार्यवस्त्रभूषणं शिल्पम्।
उपनयनं वास्तुकृषिक्षितिपतिकार्यं च चित्रायाम्।।१५।।

समस्त शान्तिक, पौष्टिक, स्थिर कार्य, वस्त्राभूषण शिल्प, उपनयन, वास्तु, कृषि, राजकार्य चित्रा नक्षत्र में श्रेयस्कर है।।१५।।

स्वाती नक्षत्र में विहित कृत्य

सुरनरसद्मविधानं भूषणवैवाहमङ्गलाद्यखिलम्।
बीजारोपणशस्त्रक्षितिपतिसमरं विभूषणं स्वातौ।।१६।।

देवता और मनुष्यों के लिए गृहनिर्माण, भूषण, विवाहादि, समस्त मङ्गल कृत्य, बीजारोपण, शस्त्र, राजाओं का परस्पर युद्ध स्वाति नक्षत्र में शुभद होते हैं।।१६।।

विशाखा नक्षत्र में विहित कृत्य

उपचयवस्तुग्रहणं भूषणनववस्त्रचित्रकार्यं च।
भेषजशकटप्रहरणशिल्पविचित्रं द्विदैवभे कार्यम्।।१७।।

अभिवृद्धि वाली वस्तुओं को जमा करना, भूषण, वस्त्र, चित्रकारी, औषधि, गाड़ी, छकड़ा इत्यादि से भार ढोना तथा विचित्र शिल्प ये सभी कार्य विशाखा नक्षत्र में करना शुभफलदायक हैं।।१७।।

करमर्दनमुपनयनं यात्रासुरसद्मसंनिवेशाद्यम्।
स्थिरचरकार्यं त्वखिलं भूषणमश्वेभकर्म मित्रर्क्षे।।१८।।

विवाह, उपनयन, यात्रा, देवालय प्रतिष्ठा, गृहप्रवेशादि, समस्त स्थिर एवं चर कार्य, भूषण, अश्व, गजादि कृत्य अनुराधा नक्षत्र में करना श्रेष्ठ कहे हैं।।१८।।

रिपुवधभेदनदहनप्रहरणवह्निलोहकार्याद्यम्।
स्तेयविधानं विविधं शिल्पं चित्रं सुरेशभेकार्यम्।।१९।।

शत्रुवध, भेदन, दहन, प्रहरण, अग्नि एवं लोहकार्य चोरी का विधान, अनेक प्रकार से शिल्पकर्म और चित्रकारी ज्येष्ठा नक्षत्र में शुभप्रद हैं।।१९।।

मूल नक्षत्र में विहित कृत्य

कृषिभवनविपिनकार्यं वापीकूपादिबीजनिर्वापणम्।
समरविभूषणशिल्पं विग्रहसन्धिश्च मूलनक्षत्रे।।२०।।

कृषिकृत्य, भवननिर्माण, वनरक्षा, बावली, कुआँ, बीजारोपण, युद्ध, आभूषण, शिल्प, सन्धि एवं विग्रह ये सभी कार्य मूल नक्षत्र में श्रेयस्कर होते हैं।।२०।।

पूर्वाषाढ़ा में विहित कृत्य

शम्बरबन्धनमोक्षणवापीकूपादिनिग्रहं हननम्।
द्रुमखण्डनवनचारिणपक्षिणां च यत्कार्यमम्बुभेकार्यम्॥२१॥

जल सम्बन्धी नदी इत्यादि पर बांध निर्माण, बन्धन और मोक्षकृत्य, कुआँ, बावली इत्यादि का निर्माण निग्रह, अनुग्रहकृत्य, वृक्षछेदन, वन, पशु एवं पक्षियों के कृत्य पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में करने चाहिए॥२१॥

उत्तराषाढ़ा में विहित कृत्य

स्थापनमुण्डनमण्डनवास्तुनिवेशं प्रवेशनाद्यं च।
बीजारोपणवाहनभूषणवस्त्रं च वैश्वभे कार्यम्॥२२॥

प्रतिष्ठा, मुण्डन, विवाहादि, वास्तु निवेश त्रिविध प्रवेश, बीजारोपण, वाहन, भूषण, वस्त्र इत्यादि कृत्य उत्तराषाढ़ा में प्रशस्त हैं॥२२॥

श्रवण नक्षत्र में विहित कार्य

शान्तिकपौष्टिकमङ्गलविचित्रकृषिशिल्पमम्बराद्यं च।
धामविधानस्थापनमुपनयनं विष्णुभे कार्यम्॥२३॥

शान्तिक, पौष्टिक, विचित्रमङ्गलोत्सव, कृषि, शिल्प, वस्त्र, भवन निर्माण, देवप्रतिष्ठा, उपनयन इत्यादि कृत्य श्रवण नक्षत्र में विहित हैं॥२३॥

धनिष्ठा नक्षत्र में विहित कर्म

उपनयनं चौलविधिं जलतुरगोष्ट्रेभदेवनिर्माणम्।
कृषिभवनाहवम्बरविपिनोद्यानाश्मभूषणं वसुभे॥२४॥

उपनयन, चौलकृत्य, जलकृत्य, घोड़ा, ऊँट, गज सम्बन्धी कृत्य, कृषिकर्म, भवन, वस्त्र, वन-उपवनादि कृत्य, पाषाणकृत्य, भूषणघटनादि कृत्य धनिष्ठा में करना शुभ है॥२४॥

शतभिषा नक्षत्र में विहित कार्य

समरारम्भविभूषणगजबलतुरगोष्ट्रशस्त्रनावाद्यम्।
मुक्ताफलरजतमयं वरुणर्क्षे वास्तुकर्माद्यम्॥२५॥

युद्धारम्भ करना, आभूषण धारण करना, गज, सेना, घोड़ा, ऊँट के कृत्य, नौका, शस्त्रादि निर्माण, मुक्ताफल, चाँदी का काम, वास्तुकर्म ये सभी कार्य शतभिषा नक्षत्र में करने चाहिए॥२५॥

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में विहित कृत्य

अजचरणर्क्षे कुर्यात्साहजलयन्त्रशिल्पकर्माद्यम्।
मृदधातुर्वादच्छेदनकृषिमहिषोष्ट्राजेभविक्रयणम्॥२६॥

पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र में साहस, जलयन्त्रनिर्माण, शिल्पकार्य, मिट्टी और धातु के कृत्य, कृषिकर्म, भैंस, बकरी और ऊँटादि का क्रय-विक्रय करना शुभप्रद होता है॥२६॥

उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में विहित कृत्य

परिणयनं व्रतबन्धनसुरनरसदनप्रतिष्ठां च।
अहिर्बुध्न्ये भूषणमम्बरवास्तुप्रवेशमभिषेकम्।।२७।।

विवाह, व्रतबन्ध, देवता एवं मनुष्य के घर की प्रतिष्ठा (गृहप्रवेशादि), भूषण, वस्त्र, वास्तु, प्रवेश और अभिषेकादि कार्य उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में श्रेयस्कर हैं।।२७।।

रेवती नक्षत्र में विहित कृत्य

स्थलजलभूषणमखिलं धामविधानं त्वमर्त्यमर्त्यानाम्।
करपीडनमुपनयनं मङ्गलमखिलं च पौष्णभे कार्यम्।।२८।।

जलस्थल कृत्य, भूषण निर्माण, देवता एवं मनुष्यादि के लिए प्रासादादि निर्माण, विवाह, उपनयन तथा समस्त मङ्गलकार्य रेवती नक्षत्र में करने चाहिए।।२८।।

नक्षत्रों को ध्रुवतीक्ष्णादि नक्षत्रों में विहित कृत्य

स्थिरसंज्ञं भचतुष्टयमम्बुजयोन्युत्तरात्रितयम्।
नरपतिपत्तनसदनं प्रवेशबीजादि सिद्ध्यते तत्र।।२९।।

अम्बुजयोनि (रोहिणी), उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा ये चार नक्षत्र स्थिर (ध्रुव) संज्ञक हैं। इनमें राजगृह नगर निर्माण, त्रिविध प्रवेश, बीज बोना इत्यादि कार्य शुभ कहे हैं।।२९।।

दारुणभानि पुरन्दरकोणपशिवसर्पदेवतानि स्युः।
दारुणबन्धनदहनप्रहरणकर्माणि सिद्ध्यतां यान्ति।।३०।।

ज्येष्ठा, मूल, आर्द्रा तथा आश्लेषा ये चार नक्षत्र दारुण (तीक्ष्ण) संज्ञक हैं। इनमें दारुण कृत्य बन्धन, दहन शस्त्रादि कृत्य सिद्ध होते हैं।।३०।।

क्रमागत–

कश्यपः–

मर्त्यामर्त्य गृहारम्भप्राकारोद्यानयत्तनम्।
स्थिरं रोहिण्युत्तरभंक्षिप्रं पुष्याश्विसूर्यन्त्रम्।।
चरभं वसुवारीशापवादितिविष्णुभम्।
मिश्र वहि द्विदैवत्यमुग्र पूर्वामघान्तकम्।।
रौद्रकद्रुज मूलेन्द्र वृन्दं तीक्ष्णचतुष्ट्यम्।
मृदुवृन्दं त्वाष्ट्रमित्रउ पौष्णं शीतांशुभान्त्विदम्।।

(क.सं. १४, ३२-३४)

पूर्वात्रितयं पैतृभमुग्राख्यमिदं पञ्चकं याम्यम्।
मारणभेदनबन्धनविषदहनं पञ्चके कार्यम्।।३१।।

पूर्वात्रय (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपदा), मघा एवं भरणी ये पाँच नक्षत्र

उग्र (क्रूरसंज्ञक) हैं। इनमें कारण, भेदन, बन्धन, विषनिर्माण एवं अग्नि सम्बन्धिकृत्य करने चाहिए॥३१॥

क्रमागत–

नारदः–

स्थिरं रोहिण्युत्तराभं क्षिप्रं सूर्याश्विपुष्यभम्।
साधारणं द्विदैवत्यं वह्निभं चरसंज्ञिकतम्॥
वस्वादित्यम्बुपस्वातिविष्णुभं मृदुसंज्ञितम्।
चित्रान्त्यमित्रशशिभमुग्रं पूर्वामघान्तकम्।
मूलेन्द्राह्यार्द्रभं तीक्ष्णं स्वनामसदृशं फलम॥

(ना.सं. ६, ३३-३४)

सुरसचिवाश्विनिहस्ततारा: स्युः क्षिप्रसांज्ञितास्ताश्च।
औषधपण्यविभूषणशिल्पलताज्ञानकर्मसिद्धिः स्यात्॥३२॥

पुष्य, अश्विनी, हस्त और अभिजित् इनकी क्षिप्र (लघु) संज्ञा है। इनमें औषध निर्माण, पुण्यकृत्य आभूषण धारण करना, शिल्प एवं लता ज्ञानादि कर्म सिद्ध होते हैं॥३२॥

मृदुवृन्दं भचतुष्टयमन्त्यत्वाष्ट्राख्यसौम्यमित्रर्क्षम्।
मङ्गलवनिताभूषणमन्दिरगीतादि सिध्यते तत्र॥३३॥

रेवती, चित्रा, मृगशिरा और अनुराधा ये चार नक्षत्र मृदु (मैत्र) संज्ञक हैं। इनमें माङ्गलिक कृत्य, स्त्रियों के लिए भूषणादि निर्माण, मन्दिर निर्माण तथा गीतादि कृत्य सिद्ध होते हैं॥३३॥

भद्वितयं श्वसनसखं चेन्द्राग्निभं मिश्रसंज्ञे तत्।
निखिलानि च साधारणकार्याण्युग्राणि कार्याणि॥३४॥

कृत्तिका और विशाखा ये दोनों मिश्र (साधारण) संज्ञक हैं। इनमें समस्त साधारण और उग्र संज्ञक नक्षत्रों में बताए गए कर्म करने चाहिए॥३४॥

अदितिश्रुतिभात्त्रितयं चरसंज्ञं पञ्चमरुद्भं च।
वाहनकर्मविभूषणचरकार्योद्यानमन्त्रासिद्ध्यैतत्॥३५॥

पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और स्वाती ये नक्षत्र चर (चल) संज्ञक कहे गए हैं। इनमें वाहन कृत्य, भूषण कृत्य, चर कार्य, उद्यान कृत्य और मन्त्रादि सिद्धि करना शुभ रहता है॥३५॥

कथितान्यपि लघुवृन्दे चरसंज्ञे तानि कार्याणि।
मणिमुक्ताहेमफलसद्रजतत्रपुसीसकर्माणि ॥३६॥

लघुसंज्ञक नक्षत्रों में कहे हुए कार्य चर (चल) संज्ञक नक्षत्रों में भी किए जा

सकते हैं। मणि, मोती, स्वर्ण, चाँदी, कली और सिक्के के कृत्य लघु एवं चर संज्ञक नक्षत्रों में भी किए जा सकते हैं।।३६।।

मृदुवृन्दे कथितान्यपि स्थिर वृन्दे तानि कार्याणि।
चरधिष्ण्ये कथितान्यपि कार्याणि लघुगणे नूनम्।।३७।।

मदु (मैत्र) नक्षत्रों में कहे हुए कार्य (स्थिर) ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में भी किए जा सकते हैं। इसी प्रकार जो कार्य चर (चल) संज्ञक कहे हैं, वे सभी कार्य लघु क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों में भी किए जा सकते हैं।।३७।।

यद्यद्दारुणभोक्तं तत्तत्कर्म त्वथोग्रभे कार्यम्।
साधारणवृन्दोक्तं यत्कर्माद्यं क्रूरभे सदा कार्यम्।।३८।।

दारुण (तीक्ष्ण) संज्ञक नक्षत्रों में उक्त कृत्य उग्र (क्रूर) संज्ञक नक्षत्रों में भी विहित हैं। साधारण मिश्र में कथित कृत्य क्रूर (उग्र) तीक्ष्ण (दारुण) नक्षत्रों में भी विहित हैं।।३८।।

साधारणमिश्राख्यं क्रूरोग्रं तीक्ष्णदारुणं तुल्यम्।
ध्रुवमचलं क्षिप्रलघु चरं चलं मैत्रमृदुसंज्ञे।।३९।।

साधारण-मिश्र, क्रूर-उग्र, तीक्ष्ण-दारुण, ध्रुव-अचल (स्थिर), क्षिप्र (लघु), चर (चल), मैत्र (मृदु) नक्षत्रों की एकार्थक संज्ञाएं हैं।।३९।।

नक्षत्रसंज्ञा बोधक तालिका

संज्ञा	नक्षत्र
ध्रुव (स्थिर)	रोहिणी, उत्तराफालल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा ०
तीक्ष्ण (दारुण)	ज्येष्ठा, मूल, आर्द्रा, आश्लेषा ०
उग्र (क्रूर)	पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी ०
क्षिप्र (लघु)	पुष्य, अश्विनी, हस्त, अभिजित् ०
मृदु (मैत्र)	रेवती, चित्रा, मृगशिरा, अनुराधा ०
मिश्र (साधारण)	कृत्तिका, विशाखा ०
अधोमुख	मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वात्रय, भरणी, मघा ०
ऊर्ध्वमुख	आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा ३, रोहिणी ०
तिर्यङ्मुखअनुराधा	मृगशिरा, रेवती, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, अश्विनी ०

निखिलेष्वपि धिष्ण्येष्विह सामान्यं कार्यमित्युक्तम्।
तत्तत्प्रकरणकथितं तदेव मुख्यं विजानीयात्॥४०॥

समस्त नक्षत्रों में यहाँ सामान्य रूप से कृत्य विधान किया गया है। तत्तत् प्रसङ्गोक्त विधि को शास्त्र विहित जानना चाहिये॥४०॥

अथ कर्णवेध मुहूर्त

पुष्ये धनिष्ठास्वदितौ हरीन्द्वोस्त्वाष्ट्रे करान्त्ये तिसृषूत्तरासु।
दस्त्रे समैत्रेऽपि च कर्णवेधः शुभप्रदो व्यर्कजवासरेषु॥४१॥

पुष्य, धनिष्ठा, पुनर्वसु, श्रवण, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्रों में मङ्गल और शनिवार को छोड़कर (अन्य शुभवारों में) कर्णवेध मुहूर्त शुभ होता है॥४१॥

क्रमागत–

नारदः–

चित्रादित्याश्विविष्ण्वन्त्यरविमित्रवसूडुषु।
स मृगेषु च बालानां कर्णवेधक्रिया हिता॥

(ना.सं. ६, ३५)

कश्यपः–

पौष्णादितित्वाष्ट्रमित्रदस्रार्केन्दुवसूडुषु।
विष्णुपुष्येषु बालानां कर्णवेध उदीरितः॥

(क.सं. १४, ३५)

बीजवपण मुहूर्त

धातृद्वये कोणपपितृपुष्ये हस्तत्रये त्र्युत्तरमैत्रभेषु।
पौष्णे धनिष्ठाष्वथवाश्विनीषु बीजोप्तिरुत्कृष्टफलप्रदा स्यात्॥४२॥

रोहिणी, मृगशिरा, मूल, मघा, पुष्य, हस्त, चित्रा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, अनुराधा, रेवती, धनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्रों में बीज बोना उत्कृष्ट फलदायक होता है॥४२॥

क्रमागत–

नारदः–

मृदुध्रवक्षिप्रभेषु पितृवायुवसूडुषु।
समूलभेषुबीजोप्तिरत्युत्कृष्टफलप्रदा ॥
भवेद्भत्रितयंमूर्ध्नि धान्यनाशाय राहुभात्।
गले त्रयं कज्जलाय वृद्धयै च द्वादशोदरे॥

(ना.सं. ६, ४२-४३)

कश्यपः-

वसुवायुजनैर्ऋत्य क्षिप्रध्रुवमृदुड्डुषु।
सीतास्मृत्वाथ बीजोप्तिरत्युत्कृष्टफलप्रदा।।
राहुधिष्ण्यात्समारभ्य धिष्ण्येष्वष्टसु निष्फलम्।
ततः पञ्च नवर्क्षेषु धान्यवृद्धिस्तदन्तरे।।
चतुर्थाष्ट द्वादशर्क्षे ईतिः पञ्च चतुष्टये।
निष्फलं चिन्तयेत्सर्वं वीजोपिसमये क्रमात्।।

(क.सं. १४, ४१-४३)

विद्यारम्भ मुहूर्तः

पूर्वात्रये मूलमृगादिपञ्चस्वथाश्विनीषु त्रितयेषु हस्तात्।
सविष्णुधिष्ण्येष्वपि सर्वविद्याप्रारम्भ इष्टः शुभवासरेषु।।४३।।

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, मूल, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती और श्रवण सहित शुभवासरों में सब प्रकार की विद्यारम्भ करना शुभ है।।४३।।

नवीन वस्त्र धारण मुहूर्त

हस्तादिपञ्चस्वथ धातृपौष्णदास्त्रादितीज्ये तिसृषूत्तरासु।
नवाम्बरं धार्यमथो ज्ञजीवशक्रांशलग्नेषु शुभोदये वा।।४४।।

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, रोहिणी, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रों में शुभ लग्नों में बुध, बृहस्पति, शुक्रादि शुभ ग्रहों के नवांश में नवीन वस्त्र धारण करना विहित है।।४४।।

जलाशयनिर्माण मुहूर्त

मित्रेन्दुपौष्णोत्तररोहिणीषु देवेज्यवारीश्वरवारिभेषु।
प्रारम्भणं सर्वजलाशयानां कार्यं सितेन्द्वंशकवारलग्ने।।४५।।

अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, तीनों उत्तरा रोहिणी, पुष्य, शतभिषा, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रों में शुक्र चन्द्रमा के नवांश और इन्हीं के वार तथा लग्नों में सभी प्रकार के जलशयादि कृत्यारम्भ अत्युत्तम होता है।।४५।।

नवान्नभक्षण मुहूर्तः

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु नवान्नभुक्तिर्विहिता शिशूनाम्।
शुभांशलग्नेषु च वासरेषु समेषु मासेषु च षष्ठमासात्।।४६।।

छठे मास से सम मासों में शुभवारों में (चन्द्र, बुध, शुक्र) शुभ लग्नों में शुभ नवांशों में, मृदु (मृगशिरा, चित्रा, रेवती, अनुराधा) ध्रुव (स्थिर) रोहिणी उत्तराषाढ़ा, त्रय,

क्षिप्र लघु पुष्य, अहि. अभि. चर (चल) स्वाती, पुनर्वसु श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा संज्ञक नक्षत्रों में शिशुओं का नवान्न भक्षण विहित है॥४६॥

नवान्नभक्षण का फल

पूर्णेन्दुलग्नांशकवासरेषु नवान्नभोक्ता सततं सदन्नदः।
क्षीणेन्दुलग्नांशकवासरेषु स भिक्षुकः स्यादथ पीडितात्मा॥४७॥

पूर्ण चन्द्रमा (बलवान चन्द्रमा) शुभ लग्न, शुभनवांश एवं शुभ वारों में नवान्न भक्षण करना निरन्तर सदन्नप्रद होता है; परन्तु क्षीण चन्द्रमा (हीनबली चन्द्रमा) हो तो इन्हीं शुभलग्न, शुभनवांश तथा शुभवासरों में भी नवान्न भक्षण भिक्षुक तथा पीड़ितात्मा बनाता है॥४७॥

नक्षत्रानुसार धन व्यवस्था

ध्रुवोग्रसाधारणदारुणर्क्षे निक्षिप्तमर्थं त्वथवा प्रनष्टम्।
चौरैर्हृतं दत्तमुपप्लवे वा विष्ट्यां च पाते तु न लभ्यते तत्॥४८॥

ध्रुवसंज्ञक (रोहिणी उत्तरा ३), उग्र (मघा, भरणी, पूर्वा ३), साधारण (वि. कृ.) दारुण (आश्लेषा ज्येष्ठा मूला आर्द्रा) नक्षत्रों में दबाया हुआ अथवा (Fix deposit) किया हुआ धन नष्ट हो जाता है, चोरों द्वारा चुरा लिया जाता है। भद्रा काल, व्यतिपात एवं वैधृति में दिया हुआ धन भी नहीं मिलता॥४८॥

नक्षत्रानुसार सर्पदंष्ट्र विचार

मघाविशाखानलसार्पयाम्यनैर्ऋत्यरौद्रेषु च सर्पदंष्ट्रः।
सुरक्षितो विष्णुरथेन सोऽपि प्राप्नोति कालस्य मुखं मनुष्यः॥४९॥

मघा, विशाखा, कृत्तिका, आश्लेषा, भरणी, मूल तथा आर्द्रा में यदि सर्प काटे तो स्वयं गरुड़ द्वारा रक्षा किये जाने पर भी मनुष्य को कालमुख में ग्रसित होने से बचा नहीं सकते अर्थात् मृत्यु निश्चित जानें॥४९॥

नक्षत्रानुसार रोग विचार

पूर्वात्रयं स्वातिभुजङ्गरौद्रसुरेश्वरर्क्षेषु च यस्य रोगः।
स्याद्रक्षितुं देवचिकित्सकोऽपि क्षितावशक्तः किल रोगिणं तम्॥५०॥

पूर्वात्रय (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा), स्वाती, आश्लेषा, आर्द्रा तथा ज्येष्ठा नक्षत्रों में रोगग्रस्त रोगी को अश्विनी कुमार व धन्वन्तरि भी चाहें तो रोगमुक्ति नहीं करवा सकते॥५०॥

रोग निवृत्ति विचार

कृत्छ्रात्स्फुटं प्राणिनि मित्रपौष्णे
मासद्विभुक्तिः शशिविश्वधिष्ण्ये।

रोगस्य मुक्तिः पितृदैवधिष्ण्ये
वारैर्भवेद्विंशतिभिश्चनूनम् ॥५१॥

अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों में रोगारम्भ होने पर अत्यन्त कष्ट से मास के अनन्तर रोग से मुक्ति होती है। मघा नक्षत्र में रोग हो तो २० दिन के पश्चात् रोग निवृत्ति जानना॥५१॥

पुनः रोगनिवृत्ति विचार

पक्षाद्द्विदैवेन्द्रकरेषु भेषु मूलाश्विनाग्निन्त्रितये नवाहात्।
तोयेशचित्रान्तकविष्णुभेषु नैरुज्यमेकादशभिर्दिनैश्च॥५२॥

विशाखा, ज्येष्ठा, हस्त नक्षत्रों में रोगग्रस्त रोगी १५ दिन में, मूल, अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्रों में ९ दिन में, शतभिषा, चित्रा, रेवती, भरणी और श्रावण नक्षत्रों में ११ दिनों में रोग मुक्ति होती है॥५२॥

पुष्येत्वहिर्बुध्न्यपुनर्वसौ च ब्राह्मर्यमर्क्षेषु च सप्तरात्रात्।
ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिङ्गमन्त्रैश्च सुगन्धपुष्पैः॥५३॥

पुष्य, उत्तराभाद्रपदा, पुनर्वसु, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रों में रोगग्रस्त हो तो सात दिन में रोग मुक्ति जानना, नक्षत्राधिपति की स्वर्णमूर्ति बनाकर उस देवता के अनुसार मन्त्रों से सुगन्ध पुष्पों—॥५३॥

वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलधूपदीपैर्नैवेद्यताम्बूलफलैश्च सम्यक्।
पूजां च कृत्वामयनाशनाय द्विजाय दद्यादतुलं शिवाय॥५४॥

वस्त्र, अक्षत, गुग्गुल, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल इत्यादि से विधिपूर्वक रोग निवृत्ति के लिए पूजा करके शिवजी के नैमित्त श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान दे॥५४॥

हलप्रवहण मुहूर्त

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलमघाविशाखासुहलप्रवाहम्।
धान्याभिवृद्ध्यै प्रथमं प्रकुर्यात्समुष्कसम्पूर्णगुणैर्वृषैश्च॥५५॥

मृदु (चित्रा, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा) ध्रुव (रोहिणी, त्रय उ.), क्षिप्र (अश्वि., पु., ह., अभि.) एवं चर (पुनर्वसु, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) संज्ञक नक्षत्र, मूला, मघा और विशाखा नक्षत्रों में धान्याभिवृद्धि के लिए पुष्टांङ्ग बैलों (ट्रैक्टर) के द्वारा सर्वप्रथम हल जोतना शुभप्रद है॥५५॥

क्रमागत–

नारदः–

मृदुध्रुवक्षिप्रचरविशाखापितृभेषु च।
हलप्रवाहं प्रथमं विदध्यानमूलभे वृषैः॥

हलादौ वृषनाशाय भत्रयं सूर्यभुक्तभात।
अग्ने यच्चैव वै लक्ष्म्यै सौम्यं पार्श्वे च पञ्चकम्।।

(ना.सं. ६, ३९-४०)

गुल्मलतादि रोपण

द्विदैववारीशशशाङ्कमूलध्रुवेषु तिष्यार्यमपौष्णभेषु।
वनौषधीगुल्मलतादिकानामारोपणं नूनमुपैति शस्तम्।।५६।।

विशाखा, शतभिषा, मृगशिरा, मूल, ध्रुव (रो., त्रय उ.) संज्ञक नक्षत्र, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी और रेवती नक्षत्रों में वनौषधि, गुल्म, लतादि रोपण करना निश्चय से प्रशस्त समझना।।५६।।

वापीकूपादि निर्माण

शशाङ्कतोयेशकरान्त्यमित्रध्रुवाम्बु पित्र्ये वसुदैवते च।
उद्यानवाप्यादितडागकूपकार्याणि सिद्ध्यन्ति जलोद्धृतं तत्।।५७।।

मृगशिरा, शतभिषा, हस्त, रेवती, अनुराधा, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र (रो., त्रय उ.), पूर्वाषाढ़ा, मघा तथा धनिष्ठा नक्षत्रों में उद्यान, वापी, तालाब, कूप खननादि और जल से उद्धृत कृत्य सिद्ध होते हैं।।५७।।

गजकृत्यमुहूर्त

हस्तत्रये सौम्यहरित्रये च पौष्णद्वये पुष्यपुनर्वसौ च।
मैत्रे च सर्वाणि हि कुञ्जराणां कर्माणि शस्तान्यपि यानि तानि।।५८।।

हस्त, चित्रा, स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, पुष्य, पुनर्वसु और अनुराधा नक्षत्रों में सब प्रकार के गजकृत्य प्रशस्त हैं।।५८।।

क्षेत्रपालादि देवताओं का पूजन तथा आसवादि निर्माण मुहूर्त

साधारणे दारुणभे तथोग्रे रिक्तातिथौ सूर्यकुजार्किवारे।
दुर्गादिकानां यजनप्रशस्तं क्षेत्राधिपस्यापि सुरासवाद्यैः।।५९।।

साधारण (कृ.वि.), दारुण (आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूला), उग्र संज्ञक (भ., मघा., त्रय पू.) नक्षत्रों में रिक्ता तिथियों में (४, ९, १४) सूर्य मङ्गल और शनिवारों में भगवती दुर्गा, क्षेत्रपालादि देवताओं का पूजन, मदिरा आसावादि निर्माण कृत्य प्रशस्त है।।५९।।

पशुप्रवेशादि कालनिर्णयः

त्वाष्ट्रध्रुवश्रीपतिभेषु रिक्तादर्शाष्टमीपातदिने पशूनाम्।
यात्रा प्रवेशं न कदाचिदेव कुर्याच्च तेषामभिवृद्धिकांक्षी।।६०।।

चित्रा, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र (रो. उ. त्रय), श्रवण नक्षत्रों में, रिक्ता (४, ९, १४) तिथियों में, अमावास्या, अष्टमी व्यतिपात, वैधृति दिनों में पशुओं की वृद्धि की अकांक्षा करने वाले कभी भी पशु यात्रा और पशु प्रवेश व पशु कृत्य कदापि न करें॥६०॥

सङ्गीत नृत्यनाटकादि काल निर्णयः

तिस्रोत्तरामित्रगुरुश्रविष्ठाहस्तेन्दुवारीश्वरपौष्णभेषु।
सङ्गीतनृत्यादिसमस्तकर्म कार्यं विभौमार्कजवासरेषु॥६१॥

उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, हस्त, मृगशिरा, शतभिषा और रेवती नक्षत्रों में, मङ्गल, शनिवारों को छोड़कर शेष वारों में सङ्गीत नृत्यादि समस्त नाटक सम्बन्धी कृत्य विहित हैं॥६१॥

क्रमागत–

नारदः–

उत्तरात्रयमित्रेन्द्रवसुवारुणभेषु च।
पुष्यार्कपौष्णाधिष्ण्येयु नृत्यारम्भः प्रशस्यते॥

(ना.सं. ६, ४६)

कश्यपः–

उत्तरात्रय पुष्यार्क पौष्णमैत्र वसूडुषु।
सेन्द्र वासबधिष्ण्येषु नृत्यारम्भः प्रशस्यते॥

(क.सं. १४, ४५)

गौ क्रयविक्रय मुहूर्त

पूर्वात्रये पुष्यपुनर्वसौ च मित्रत्रये पौष्णवसुद्वये च।
दस्रेन्दुहस्तद्वितयेषु भेषु गवां प्रकुर्यान्क्रयविक्रयं हि॥६२॥

पूर्वात्रय, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मृगशिरा, हस्त, चित्रा नक्षत्रों में गाय का क्रयविक्रय कृत्य श्रेयस्कर है॥६२॥

राजदर्शन मुहूर्तः

पौष्णद्वयेन्दुश्रवणत्रये च हस्तत्रये पुष्यपुनर्वसौ च।
शस्तं नृपाणामवलोकनं तद्विशेषतस्तिग्मरुचेश्च वारे॥६३॥

रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, पुनर्वसु नक्षत्रों में राजदर्शन विहित है, विशेषतः रविवार या रविहोरा सर्वोत्तम है॥६३॥

क्षौर कृत्य मुहूर्तः

हस्तत्रये पुष्यपुनर्वसौ च शशाङ्कविष्णुत्रितयेऽश्विनीषु।
पौष्णेन्द्रधिष्ण्ये क्षुरकर्म शस्तं व्यर्कारशन्यंशककवारलग्ने॥६४॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, रेवती, ज्येष्ठा, नक्षत्रों में, सूर्य, मङ्गल, शनि के वार नवांशक व लग्न को त्यागकर शेष दिन और शुभ ग्रहों के लग्न नवांशक और वारों में क्षौर कृत्य प्रशस्त है॥६४॥

अष्टाब्जजर्क्षः पितृपञ्चकश्च षड्वह्निधिष्ण्यश्चतुरर्यमर्क्षः।
त्रिमैत्रभः पद्मजसंनिभोऽपि क्षौरी नरोऽब्दान्निधनं गतः सः॥६५॥

एक वर्ष के अन्दर रोहिणी में आठ बार, मघा में पाँच बार, कृत्तिका में छः बार, उत्तराफाल्गुनी में चार बार, अनुराधा में तीन बार क्षौर करने वाले व्यक्ति की प्रजापति ब्रह्मा के समान होने पर भी मृत्यु हो जाती है॥६५॥

महीभृता पञ्चमपञ्चमेऽह्नि क्षौरं च कार्यं हितमुक्तभेषु।
न लभ्यते चेत्तु तदुक्तधिष्ण्यं तद्भोदये वा निखिलं विधेयम्॥६६॥

राजा को एक क्षौर कर्म के पाँचवें-पाँचवें दिनों में द्वितीय तृतीयादिक क्षौर कर्म उक्त नक्षत्रों में अपने हितार्थ करने चाहिए। पाँचवें-पाँचवें दिन तथा उक्त नक्षत्रादिक के अभाव में उस दिवसीय नक्षत्र में क्षौर नक्षत्रीय मुहूर्त जिस समय प्राप्त हो उस समय समस्त क्षौर कर्म करवाना चाहिए। क्षौर मुहूर्त के अभाव में क्षौर वासरीय काल होरादिक अवयवीय काल में क्षौर कर्म किया जा सकता है॥६६॥

यात्राहवेऽप्युत्कटभूषिते वा भुक्तोत्तरे रात्रिषु सन्ध्योश्च।
क्षौरं न कुर्यात्खलु चात्मनश्च श्रियाभिलाषी न कदाचिदेव॥६७॥

यात्रा जाते समय, युद्ध जाते समय, स्नानोपरान्त, उवटन तैलादि लगाने के पश्चात्, भोजन खाने के पश्चात् त्रिसन्ध्या काल में, रात्रि काल में श्रियाभिलाषी को कभी भी क्षौर कर्म नहीं करना चाहिए॥६७॥

पुनः क्षौर कर्म में विशेष

भूदेवभूमीशनिमित्ततोऽपि बन्धाद्विमुक्तो मृतसूतकेऽपि।
आधानकाले निखिलाधराणां क्षौरं विधेयं खलु निन्दितर्क्षे॥६८॥

ब्राह्मण और राजा की आज्ञा से, कैदी के कारागार से मुक्ति के अवसर पर, मृत सूतक पर, आधान काल में निन्दित नक्षत्रों में भी क्षौर कर्म किया जा सकता है॥६८॥

पाणिग्रहणसंस्कार

स्वातौ मघायां निॠतौ ध्रुवेषु मित्रेन्दुहस्तेषु च कन्यकानाम्।
पाणिग्रहस्त्विष्टफलप्रदः स्यादविद्धभेष्वेव गुणान्वितानाम्॥६९॥

स्वाती, मघा, मूला, ध्रुव संज्ञक नक्षत्र (रो.उ. त्रय) अनुराधा, मृगशिरा एवं हस्तादि अविद्ध नक्षत्रों में गुणवती कन्याओं का पाणिग्रहण संस्कार शुभप्रद होता है।।६९।।

यात्रा मुहूर्त

पौष्णद्वये मित्रहरिद्वयेन्दुहस्तादितीज्येषु च भेषु नूनम्।
यानं नृणामिष्टफलप्रदे स्यात्त्यक्त्वा-त्रिपञ्चादिमसप्तभानि।।७०।।

रेवती, अश्विनी, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिरा, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य नक्षत्रों में अपनी राशि से ३य (विपत) ५म (प्रत्यरि) आदिम (जन्मतारा) सप्तम (वध) ताराएं छोड़कर मनुष्यों के लिए यात्रा शुभफल प्रद होती है।।७०।।

पुनः यात्रामुहूर्त विचार

मघाविशाखानिलमम्बुसार्परुद्रान्तकत्वाष्ट्रसमीरणानि।
यानेष्वनिष्टान्यपराणि भानि न शोभनान्येव न निन्दितानि।।७१।।

मघा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, आर्द्रा, भरणी, चित्रा, स्वाती ये नक्षत्र यात्रा में अनिष्टफलप्रद हैं। शुभाशुभ नक्षत्रों से भिन्न शेष नक्षत्र न शुभ न निन्दित हैं।।७१।।

दिक्शूल विचार

ऐन्द्राजपादाब्जजभार्यमाणि शूलानि भानि क्रमतश्च दिक्षु।
न याति याता यदि शूलभेषु सुरेश तुल्यः समरे बलेन।।७२।।

ज्येष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा में दक्षिण, रोहिणी में पश्चिम, उत्तराफाल्गुनी में उत्तर दिशा में नक्षत्र दिक्शूल जानना। विजय को चाहने वाला राजा उक्त नक्षत्रों में यात्रा न करे तो युद्ध में इन्द्रतुल्य बलयुक्त होता है।।७२।।

सर्वद्वारिकधिष्ण्यान्यमरेज्यादित्यमैत्रदस्रसंज्ञानि।
तत्र तु यायान्नियतं धन कीर्तिर्लभ्यतेऽप्यचिरात्।।७३।।

पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, अश्विनी ये नक्षत्र सर्वद्वारिक हैं। इन नक्षत्रों में किसी भी दिशा यात्रा हानिप्रद नहीं होती; अपितु शीघ्र ही धनकीर्तिदायक होती है।।७३।।

पुनः यात्रा में विशेष

स्थिरसाधारणधिष्ण्यैः पूर्वाह्णे नैव गमनं तत्।
गमनं न दारुणार्क्षे दिनदलसमये न कार्यमनवरतम्।।७४।।

स्थिर (रोह., उ. त्रय), साधारण (वि.कृ.) इन नक्षत्रों में पूर्वाह्न में, दारुण (ज्ये. मूला, आश्लेषा, आर्द्रा) नक्षत्रों में मध्याह्न में यात्रा न करे।।७४।।

क्षिप्रैर्नापरवासरसमये मृदुमिश्रैर्न रात्रिमुखे।
उग्रगणैर्निशिसमये चरधिष्ण्यैरुषसि न श्रेष्ठम्॥७५॥

क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) नक्षत्रों में अपराह्ण समय, मृदु (अनुराधा, चित्रा, मृगशिरा, रेवती) एवं मिश्रसंज्ञक (विशाखा, कृत्तिका) रात्रि प्रथम प्रहर समय, उग्रसंज्ञक (भरणी, पूर्वात्रय) अर्द्धरात्रि समय, चर संज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रों में 'पञ्चपञ्च उषाकाल:' (रात्र्यन्त) में यात्रा न करे॥७५॥

सर्वस्मिन्नपि समये सर्वासु च दिग्विदिक्ष्वेव।
सर्वद्वारिकधिष्ण्यान्यभिशुभदान्यतुलमखिलनृणाम्॥७६॥

किसी भी समय किसी भी दिशा में सर्वद्वारिक संज्ञक नक्षत्रों में यात्रा सब प्रकार से अतुल और अखिल कल्याणकारक मानी जाती है॥७६॥

पञ्चक कृत्य

वस्वपरार्द्धात्पञ्चकधिष्ण्ये गेहस्य गोपनं नैव।
दक्षिणदिङ्मुखगमनं दाहं प्रेतस्य काष्ठसंग्रहणम्॥७७॥

धनिष्ठा उत्तरार्द्ध से पाँच नक्षत्रों में घर का आच्छादन, दक्षिण दिशा यात्रा, प्रेतदाह तथा काष्ठ संग्रह न करे॥७७॥

पुष्यप्रशंसा

परकृतदोषं निखिलं निहन्ति पुष्यः परो न पुष्यकृतम्।
द्वादशनैधनगेन्दौ बलवान्पपुष्यस्त्ववभीष्टदः सततम्॥७८॥

पुष्य नक्षत्र (यात्राकाल के) सभी दोषों को नष्ट करने में समर्थ है। पुष्य नक्षत्र किसी विशेष दोष में पड़ा हो तो उस दोष को कोई अन्य योग नहीं हटा सकता। सबल पुष्य अष्टम द्वादशादि चन्द्रमा का दोष निवृत्त कर निरन्तर अभीष्ट फलप्रद होता है॥७८॥

क्रमागत–

नारदः–

त्रिपुष्करे द्वयं दद्यान्नदोषे ऋक्षमात्रतः।
पुष्यः परकृतं हन्तुं शक्तोऽनिष्टं च यत्कृतम्॥
दोषंपरो न शक्तस्तु चन्द्रेऽष्टमगेपिवा।
क्रूरो विधुयुतो वापि पुष्योयदि वलान्वितः॥
विना शनिगृहं सर्वमङ्गलेष्विष्टदः सदा॥

(ना.सं. ६, ५६-५८)

प्रत्यरिनैधनसंज्ञौ विपत्करौ वापि जन्मसंज्ञो वा।
पाणिग्रहणं मुक्त्वा नूनं सर्वार्थसिद्धिदः पुष्यः॥७९॥

प्रत्यरि ५, नैधन ७, विपत् ३, जन्म १ तारा में भी विवाह मुहूर्त को छोड़कर समस्त कार्यों में पुष्य नक्षत्र सर्वार्थसिद्धिप्रद माना जाता है अर्थात् चन्द्रतारादि दोष रहने पर भी पुष्य नक्षत्र सर्वार्थसिद्धिप्रद ही माना जाता है।।७९।।

मृगगणमध्ये सिंह उडुगणमध्ये तथैव पुष्यश्च।
निजबलसहितोऽप्येवं त्रिविधोत्पातैर्न शक्तिमान्निहितः।।८०।।

जिस प्रकार मृग समूह में शेर शक्तिमान होता है, उसी प्रकार निज बलयुक्त पुष्य नक्षत्र दिव्यभौम अन्तरिक्ष जनित उत्पातों द्वारा भय नहीं होने देता।। ८०।।

लघुधिष्ण्ये स्थिरमृदुभे विष्णुभेषु च सर्वदा कार्यम्।
वरतुरगाखिलकर्म त्राणं तनुमस्तकादीनाम्।।८१।।

लघु (पुण्य, अश्विनी, हस्त, अभिजित्), स्थिर (रो., उ. त्रय) मृदु (चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती), श्रवण इन नक्षत्रों में समस्त शुभ अश्वकृत्य, शरीर मस्तकादि अङ्गों की रक्षा के लिए उष्णीय (पगड़ी, मुकुट, पादत्राण, करत्राण) निर्माण सदैव शुभ है।।८१।।

अधोमुखी नक्षत्र एवं कृत्य

पूर्वात्रयभुजकान्तकपितृद्विदैववह्निमूलानि ।
पातालवदनभनित्वेषु तु कार्यंत्वधोमुखं कर्म।।८२।।

पूर्वात्रय (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा), आश्लेषा, भरणी, मघा, विशाखा, कृत्तिका, मूला इन अधोमुख नक्षत्रों में समस्त अधोमुखी कर्म (कूपवापी, तड़ाग, कुम्भकार चक्र गर्त, तहखानादि) निर्माण शुभ कहे गये हैं।।८२।।

क्रमागत–
कश्यपः–

मघान्तकद्विदैवाहि मूलापूर्वात्रयाग्निभम्।
अधोमुखन्तु नवकम्भानान्तत्र विधीयते।।
वापीकूपतडागादि निधेरुद्धरणं च यत्।
बिलप्रवेशगणित शिल्पभूतादिसाधनम्।।
मित्रेन्द्विन्द्रादिति त्वष्ट्र करणौष्णाश्विवायुभम्।
तिर्यङ्मुखम्भनवकन्तत्रनूनं विधीयते।।
नटाश्व पशुनावाष्ट्र हलादिकृषिकर्मयत्।
वसुधातृ हरीशार्य युत्तरावारि दैवतम्।
ऊर्ध्वास्यन्धिष्ण्यनवकमिदन्तत्र विधीयते।।

(क.सं. १४, २७-३१)

तिर्यङ्ग नक्षत्र एवं कृत्य

दस्रेन्द्विन्द्रकरादितिमैत्रमरुत्त्वाष्ट्रपौष्णानि।
पार्श्वननभान्येषु तु पार्श्वाननकार्यमखिलं तत्॥८३॥

अश्विनी, मृगशिरा, ज्येष्ठा, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, स्वाती, चित्रा, रेवती इन तिर्यङ्गमुख नक्षत्रों में तिर्यङ्गकृत्य (हलप्रवाहन, शकट चालन, सेतु निर्माण, पशुकृत्य इत्यादि) शुभ होते हैं॥८३॥

क्रमागत–
नारदः–

पूर्वात्रयाग्निमूलाहिद्विदैवत्यमघान्तकम्।
अधोमुखं तु नवकं भानां तत्र विधीयते॥
बिलप्रवेशगणितभूतसाधनलेखनम्।
शिल्पकर्म लताकूपनिक्षेपोद्धारणादि यत्॥
मित्रेन्दुत्वाष्ट्रहस्तार्द्रादितिभान्त्योश्ववायुभम्।
तिर्यङ्मुखाख्यं नवकं भानां तत्र विधीयते॥
हलप्रवाहगमनं गन्त्री यन्त्रगजोष्ट्रकम्।
अजादिग्रहणं चैव हयकर्म यतस्ततः॥
खरगोरथनौयानं लुलायहयकर्म च।
शकटग्रहणं चैव तथा पश्वादिकर्म च॥

(ना.सं. ६, २६-३०)

ऊर्ध्वमुख नक्षत्र एवं कृत्य

हरिहरधात्र्युत्तरवसुवारीशेज्यधिष्ण्यगणम् ।
उर्ध्वमुखाख्यंत्वत्र तु कार्याण्यखिलानि कार्याणि॥८४॥

श्रवण, आर्द्रा, रोहिणी, उत्तरात्रय (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा), धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य इन उर्ध्वमुख नक्षत्रों में समस्त उर्ध्वमुख कृत्य (मन्दिर, प्रासाद, भवन, सोपानमार्गादि) का निर्माण सर्वश्रेष्ठ जानना॥८४॥

क्रमागत–
नारदः–

ब्रह्मविष्णुमहेशार्यशततारावसूत्तराः।
ऊर्ध्वास्यं नवकं भानां प्रोक्तं चैव विधीयते॥
पुरहर्म्यगृहारामवारणध्वज कर्म च।
प्रासादभित्तिकोद्यानप्राकाराश्चैवमण्डपम्॥

(ना.सं. ६, ३१-३२)

पितृवसुतिष्येन्दुनलत्र्युत्तरभाग्यद्विदैवचित्राणि।
देवचिकित्सकोणपसहितान्येतानि कुलभानि॥८५॥

मघा, धनिष्ठा, पुष्य, मृगशिरा, कृत्तिका, उत्तरात्रय, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, चित्रा, अश्विनी, मूल ये कुल संज्ञक नक्षत्र हैं॥८५॥

कुलअकुलादि गुणों के स्पष्ट ज्ञानार्थ चक्र

संज्ञा	नक्षत्र	वार	फल
अकुल	पूर्वाभाद्रपदा, पुनर्वसु, रेवती रोहिणी, स्वाती, श्रवण, शतभिषा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, भरणी, अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा	मङ्गल शुक्र	यायी की विजय परधन भोगी
कुलाकुल	आर्द्रा, हस्त, मूल, अभिजित्	बुध	यायी और स्थायी की सन्धि सामान्य जीवन यापन
कुल	मघा, धनिष्ठा, पुष्य, मृगशिरा कृत्तिका, उत्तरात्रय, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा चित्रा, अश्विनी, मूल	सूर्य चन्द्र गुरु शनि	स्थायी की विजय कुल में मुख्य

अजचरणादितिपूषाधातृमरुद्विष्णुवारीशशक्राणि।
अहियममित्रजलान्युपकुलभान्यन्यानि कुलभानि॥८६॥

पूर्वाभाद्रपदा, पुनर्वसु, रेवती, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, शतभिषा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, भरणी, अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा ये उपकुल (अकुल) संज्ञक नक्षत्र हैं। इन से भिन्न कुलाकुल संज्ञक हैं अर्थात् आर्द्रा, हस्त, मूल एवं अभिजित्॥८६॥

क्रमागत–

कश्यपः–

वसवाग्नीन्दिज्या नैर्ऋत्यभाग्यत्वाष्ट्र त्रिरुत्तरा।
पितृद्विदैवहस्ताख्यास्तारा: स्यु: कुल संज्ञका:॥
धातृज्येष्ठादितिस्वाति पौष्णाम्बुहरिदेवता:।
अजपान्तभौजंग ताराश्चोपकुलाह्नया:॥
शेषा: कुलाकुलास्तारास्तासां मध्ये कुलोडुषु।
गम्यतेयदि भूनाथै: पराजयमवाप्यते॥

धिष्ण्येषूपकुलाख्येषु व्रजन जयमवाप्यति।
सन्धिर्भवेत् सम्यक् तथा कुलकुलोडुषु।।

(क.सं. १४, ४६-४९)

उपकुलभेषु च याता विजयं प्राप्नोत्यसंशयं क्षिप्रम्।
कुलभेषु च भङ्गः स्याद्यातुः सन्धिस्तयोः कुलाकुलभे।।८७।।

उपकुल (अकुल) नक्षत्रों में विजय यात्रार्थी शीघ्र ही निःसंदेह विजयी होता है। कुल संज्ञक नक्षत्रों में आक्रमण कर्त्ता का भङ्ग हो, कुलाकुल संज्ञक नक्षत्रों में आक्रमण करे तो यायी स्थायी दोनों की सन्धि होती है।।८७।।

क्रमागत–
नारदः–

पितृद्विदैवताख्यातास्ताराः स्युः कुलसंज्ञकाः।
धातृज्येष्ठाऽदितिस्वाती पौष्णार्कहरिदेवताः।।
अजपान्तकभौजङ्गताराश्चोपकुलाह्वयाः ।
शेषाः कुलाकुलासरास्तासां मध्ये कुलोडुषु।।
गम्यते यदि भूपालैः पराजयमवाप्यते।
भेषूपकुलसंज्ञेषु जयं प्राप्नोति भूमिपः।।
सन्धिर्भवेत्तयोः साम्यं तदा कुलकुलोडुषु।
अर्कार्किभौमवारे चेद्भद्राया विषमांघ्रिभे।।

(ना.सं. ६, ५१-५४)

कुलभेषु च जातास्ते मनुजा भवन्ति कुलमुख्याः।
उपकुलभे परविभवाद्भोक्तारस्त्वन्यभेषु सामान्याः।।८८।।

कुल संज्ञक नक्षत्रों में उत्पन्न मनुष्य अपने कुल में मुख्य होते हैं, उपकुल में उत्पन्न दूसरे के धन को भोगने वाले, कुलाकुल संज्ञक नक्षत्रों में उत्पन्न मनुष्य सामान्य जीवन यापन करते हैं।।८८।।

रविचन्द्रसुरेज्ययमाः कुलाख्याह्युपकुलौ च सितभौमौ।
कुलाकुलजः शशितनयः सन्धिकृदुभयोः क्षितीशयोर्नित्यम्।।८९।।

(नक्षत्रों में भाँति वारों की भी कुल, उपकुल एवं कुलाकुल संज्ञा निर्धारित है) सूर्य, चन्द्र, गुरु, शनि से कुल संज्ञक हैं। शुक्र मङ्गल की उपकुल संज्ञा है। कुलाकुल संज्ञक बुध कहा है तथा राजाओं में परस्पर नित्य सन्धिकारक है।।८९।।

नक्षत्रों की अन्धादि संज्ञा

अन्धकमथ मन्दाख्यं मध्यमसंज्ञं सुलोचनं पश्चात्।
पर्यायेण च गणयेच्चतुर्विधं ब्रह्मधिष्ण्यतः।।९०।।

रोहिणी नक्षत्र से क्रमशः अन्ध, मन्द, मध्यम, सुलोचन अभिजित् सहित सात आवृत्तियों में ये संज्ञाए नक्षत्रों में कही गई हैं॥९०॥

अन्धादि नक्षत्रबोधक तालिका

अन्ध	मन्द	मध्य	सुलोचन
रोहिणी, पुष्य	मृगशिरा, आश्लेषा	आर्द्रा, मघा	पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी
उ.फा., विशाखा	हस्त, अनुराधा	चित्रा, ज्येष्ठा	स्वाती, मूल
पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा	उ.षा., शतभिषा	अभिजित्, पू.भा.	श्रवण, उ.भा.
रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका

त्रिपुष्करादियोग

रविरविजभौमवारे भद्रायां विषमपादमृक्षं चेत्।
त्रिपुष्कराख्यो योगो त्रिगुणफलो यमलभैर्द्विगुणम्॥९१॥

रवि, शनि, मङ्गलवारों के दिन भद्रा (२, ७, १२) तिथियों में यदि विषमपाद संज्ञक नक्षत्र (एकपदी, त्रिपदी) आ जाएं तो त्रिपुष्कर नामक योग त्रिगुण फलप्रद माना जाता है। यदि द्विपाद नक्षत्रों के दिन उक्तवार तिथियाँ आ जाएँ तो द्विगुण फलकारक सिद्ध होता है॥९१॥

क्रमागत–

नारदः–

त्रिपुष्करे त्रिगुणदं द्विगुणं यमलांघ्रिभयम्।
दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा॥

(ना.सं. ६, ५५)

कश्यपः–

त्रिपुष्करं त्रिगुणदं द्विगुणं द्वयंघ्रिभे नृतौ।
दद्यात्तद्दोषं नाशायगोत्रयं द्वितीयं क्रमात्॥

(क.सं. १४, ५१)

त्रितयं गवां च दद्याद्दोषस्यापनुत्तये विद्वान्।
द्वितयं द्विपुष्करेऽपि च तिलपिष्टैर्विप्रमुख्येभ्यः॥९२॥

यदि अशुभ घटना इन द्विपुष्कर, त्रिपुष्कर योगों में घटे तो त्रिपुष्कर योग के दोष निवृत्यर्थ तीन गायों का दान और द्विपुष्कर योग में दो गायों का तिलपिष्टी सहित प्रमुख ब्राह्मण को दान देवे॥९२॥

गुणगुणत्रृतुपवनगुणेन्दुकृताग्निपवनशराः।
द्विभुजशरेन्द्विन्दुयुगयुगाग्निरुद्राब्धिनेत्रगुणाः॥९३॥

तीन, तीन, छः, पाँच, तीन, एक चार, तीन, पाँच, पाँच, दो, दो, पाँच, एक, एक, चार, चार, तीन, ग्यारह, चार, दो, तीन—॥९३॥

क्रमागत–

नारदः–

रामाग्निऋतुबाणाग्नि भूवेदाग्निशरेषवः।
नेत्रबाहुशरेंद्विंदुवेदवह्यग्निशंकराः ॥
वेदवेदाग्निवह्वयब्धि शतद्विद्विरदाः क्रमात्।
तारासंख्यास्तु विज्ञेया दस्रादीनांपृथक्पृथक्॥
या दृश्यते दीप्ततारा भगणे योगतारका॥

(ना.सं. ६, ५९-६१)

वेदशतद्विद्विरदा दास्रादीनां च तारकासंख्या।
हृतनष्टादिषु कार्यं तारकसंख्यैः पृथक् पृथग्रूपैः॥९४॥

चार, सौ, दो, दो और बत्तीस क्रमशः अश्विन्यादि नक्षत्रों की तारा संख्या जानना। (इस क्रम में अभिजित् नक्षत्र गणना न करें) हृतनष्टादि द्रव्यों में पृथक्-पृथक् तारा संख्याओं के द्वारा उक्त नक्षत्रों के आकार भी जानें॥९४॥

अश्विन्यादि नक्षत्रों के आकार

अश्वमुखसमानरूपं योन्याकारं च नापितक्षुरवत्।
सुरगृहसदृशं शश्वन्मस्तकसदृशं मृगस्यैव॥९५॥

घोड़े जैसा मुखवाला, योनिस्वरूप, नापित के छुरे (उस्तरे) के समान आकृति वाला, मन्दिर सदृश, हिरण सदृश मुखवाला—॥९५॥

मणिनिभमोकः सदृशमाशुगसदृशं च चक्रसंकाशम्।
प्राकारमञ्चशय्या हस्ताकारं च मौक्तिकाकारम्॥९६॥

मणि सदृश, नृतन गृह, वाण, बड़े भवन जैसा मंच आकृति, चारपाई जैसा, हस्ताकार, मोतियों जैसा—॥९६॥

रत्ननिभं तोरणवत् बलिसदृशं कुण्डलाकारम्।
केसरिविक्रसदृशं शय्याकारं गजेन्द्रदन्ताभम्॥९७॥

रत्न, तोरण, वलि, कुण्डल, सिंहाक्रान्त (केसरि), विक्रान्त, शय्या, गजदन्त के समान॥९७॥

वरशृङ्गाटकरूपं विकसितपद्मोपमं नित्यम्।
वरशय्यासदृशमतः फलसदृशं मातुलुङ्गस्य॥९८॥

श्रेष्ठशृङ्गाटक, विकसित कमल, शय्या, फल मातुलुङ्ग (मछली) मत्स्युयुग्म क्रमशः अश्विन्यादि नक्षत्रों के आकार कहे गये हैं॥९८॥

अश्वमुखतारकाणां कथितानीमानि मुखरूपाणि।
दैवविदखिलं सम्यग्ज्ञात्वा सर्वं वदेन्नियतम्॥९९॥

अश्वमुखादि ताराओं के आकार को भली-भाँति समझकर दैवज्ञ को सभी नियत फलादेश कहना चाहिए॥९९॥

हलचक्र विधान

अर्कगतागतसंस्थं भत्रितयं नेष्टमुभयतस्त्विष्टम्।
षोडशधिष्ण्यं नवकं शिष्टमनिष्टं च लाङ्गले चक्रे॥१००॥

सूर्य नक्षत्र से तीन नक्षत्र नेष्ट, तीन श्रेष्ठ, सोलाह श्रेष्ठ, शेष नौ अनिष्टकारक हैं। हलचक्र में ऐसे विचार कर लेना चाहिए॥१००॥

अभिजिद्भभोगमेतद्विस्वेदेवान्त्यपादमखिलं यत्।
आद्यश्चतस्त्रो नाड्यो हरिभस्यैतच्च रोहिणीविद्धम्॥१०१॥

अभिजित् नक्षत्र का भभोग, विश्वेदेवदैवत्य, उ.षा. नक्षत्र का समग्र अन्त्यपाद, मध्यममान १५ घटी एवं श्रवण नक्षत्र के १/१५ भाग अर्थात् आदि की चार घटी मिलाकर १९ घटी बनता है, यदि रोहिणी से विद्ध हो—॥१०१॥

आरार्कर्क्यहिकेतुभिराक्रान्तं विद्धभं च तत्सर्वम्।
मङ्गलकार्ये सततं त्याज्यं चोत्पातदूषितं धिष्ण्यम्॥१०२॥

अथवा मङ्गल, सूर्य, शनि, राहु एवं केतु से आक्रान्त या विद्ध हो तो समग्र नक्षत्र मङ्गल कार्यों में त्यागना चाहिए। इसी प्रकार पात से दूषित नक्षत्र भी त्याज्य समझें॥१०२॥

विवाह मुहूर्त्त में सप्तशलाका विचार

पञ्चशलाकाचक्रे पाणिग्रहणे भवेधविधिरुक्तः।
शस्तः शुभमित्रकृतः सप्तशलाकजमितरत्र॥१०३॥

विवाह में पञ्चशलाका चक्रानुसार नक्षत्र वेध विधि जाननी, अन्यत्र सभी मङ्गलकार्यों में सप्तशलाका चक्र का वेध ग्राह्य है। शुभ तथा मित्र ग्रहों का वेध भी प्रशस्त कहा है॥१०३॥

निहितं त्रिविधोत्पातैः क्रूराक्रान्तं च विद्धभं निखिलम्।
त्याज्यं तच्छुभकर्मणि न पादतः पातधिष्ण्यं च॥१०४॥

कोई भी नक्षत्र त्रिविध उत्पातों (भौम दिव्य अन्तरिक्ष) के द्वारा पीड़ित,

क्रूराक्रान्त नक्षत्र शुभकार्यों में त्याज्य मानना, पादभेद से समग्र नक्षत्र विद्ध नहीं होता एवं पातयुक्त नक्षत्र भी समग्र त्याज्य है।।१०४।।

तक्षकविषाग्निदग्धः स नरो मन्यते किमेकदेशो वा।
तं मृतधिष्ण्यं निखिलं मृतभे च कृतं मृत्युमेवैति।।१०५।।

जिस प्रकार तक्षक सर्प विषाग्नि द्वारा दग्ध प्राणी मरा हुआ जाना जाता है, इस प्रकार जिस नक्षत्र को राहु इत्यादि ने विद्ध किया है, उस प्रकार के समस्त मृत नक्षत्र में किया हुआ कृत्य मृत्युप्रद होता है।।१०५।।

नक्षत्र का बलाबल

नक्षत्रे यो दोषो न हन्ति राशिं न शक्यते हन्तुम्।
तद्गात्रमेव गरलं पित्रादीनां न हन्यते यद्वत्।।१०६।।

नक्षत्र में जो दोष है, वह समस्त राशि को पीड़ित नहीं कर सकता, न ही पीड़ित करने की शक्ति रखता है जैसे विष उसी शरीर में प्रभाव करता है, जिसमें विष हो नाकि उसके पिता आदि वंशीय मनुष्यों को प्रभावित करता है।।१०६।।

औषध सेवन विचार

लघुमैत्रध्रुवमृदुभे सितेन्दुबुधजीववारेषु।
हेमरजतादिभाजनभोजनमारोग्यममृतयोगेषु ।।१०७।।

लघु (अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्), मैत्र (कृत्तिका, विशाखा), ध्रुव (रोहिणी, उत्तरात्रय), मृदु (चित्र, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती) शुक्र, चन्द्र, बुध एवं बृहस्पतिवारों में सोना, चाँदी के बरतन, भोजन अमृत योगों में आरोग्यप्रद होता है।।१०७।।

हस्तत्रये पुष्यपुनर्वसौ च विष्णुत्रये चाश्विनपौष्णभेषु।
मित्रेन्दुमूलेषु च सूर्यवारे भैषज्यमुक्तं कुजवासरेषु।।१०८।।

हस्त, चित्रा, अनुराधा, स्वाती, पुष्य, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा तथा मूल नक्षत्रों में रवि और मङ्गलवार को औषध सेवन विहित है।।१०८।।

रोगमुक्ति पश्चात् स्नानविधान

अदितिस्थिरमरुदहिधिष्ण्यं शुक्रेन्दुवासरे त्यक्त्वा।
परवासरऋक्षेषुतु शुभदं स्नानं च रोगमुक्तानाम्।।१०९।।

पुनर्वसु, स्थिर संज्ञक (रोहिणी, तीनों उत्तरा) स्वाती, आश्लेषा, शुक्र एवं सोमवार को छोड़कर अन्य वारों एवं नक्षत्रों में रोगमुक्त मनुष्यों के लिए स्नान करना विहित है।।१०९।।

क्रमागत–

नारदः–

स्थिरेष्वदितिसर्पान्त्यपितृमारुतभेषु च।
न कुर्याद्रोगमुक्तश्चस्नानं वारेन्दुशुक्रयोः।।

(ना.सं. ६, ४५)

कश्यपः–

पितृमारुतसार्पान्त्य स्थिरर्क्षेष्विन्दुशुक्रयोः।
न कुर्याद्वारिणारोगमुक्तः स्नान कदाचन।।

(क.सं. १४, ४४)

भूषण धारण मुहूर्त

क्षिप्राचलचलमृदुभे रिक्तामावर्जितेषु दिवसेषु।
निखिलेषु च वारेषु त्रिपुष्करे भूषणं धार्यम्।।११०।।

क्षिप्र (अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्), अचल (रोहिणी, तीनों उत्तरा) चल (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), मृदु (चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती) नक्षत्रों में रिक्ता (४, ९, १४ तिथियों) अमावास्या रहित तिथियों में, समस्त वारों में, त्रिपुष्कर योग में भूषण धारण करना विहित है।।११०।।

स्थिरसाधारणचरभे लघुमैत्रे व्यर्कजेषु वारेषु।
तेषामेव विलग्ने मणिकनकमयं विभूषणं धार्यम्।।१११।।

स्थिर (रोहिणी, तीनों उत्तरा), साधारण (कृत्तिका, विशाखा), चर (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), लघु (अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्), मैत्र (अनुराधा) रवि, शनिवारों को छोड़ कर, शुभग्रहों के लग्नों में रत्न एवं स्वर्ण भूषण धारण करना विहित है।।१११।।

क्षिप्रमृदुध्रुवचरभे शशिसितयोर्वासरेषु तल्लग्ने।
मुक्ताफलरजतमयं भूषणमखिलं सवज्रकं धार्यम्।।११२।।

क्षिप्र (अश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्), मृदु (चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती), ध्रुव ((रोहिणी, तीनों उत्तरा), चर (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), सोम शुक्रवारों में, इन्हीं दोनों के राशिगत लग्नों में मोती, चाँदी का भूषण एवं हीरा धारण करना श्रेष्ठ है।।११२।।

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां नक्षत्रस्वरूपाध्यायश्चतुर्दशः।।१४।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के नक्षत्रस्वरूपाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त।।१४।।

पाठान्तरम्

१ (ब) ज१, २-भोंगाः (वाताशाः)

१ (स) ज१, २-मित्रसूरयो (मित्रसुरपौ)

१ (द) ज१-विष्णूवस्तूदयाज, ज२-विश्वमवसूदयाज (विष्णुवसूदपाज)

३ (अ) वा. सहसदारणा (साहसदारुण), ज१, २-शत्रुखनल (शत्रुप्रशमन), ज१, २-कूपकृत्याघा (कूपकृष्याद्यम्)

३ (ब) वा.-प्रहरणा (प्रहरण)

४ (अ) ज१-वंदेरेहनास्त्र, ज२-वरदहनास्त्र, वा.-वधदहनास्त्राशास्त्र (बधदहनास्त्र-शस्त्र), वा.-कमोघं (कर्माद्यम्)

४ (ब) वा.-विवाह (विषाद), ज१, २-लोहाश्च, वा.-लोहश्म (लोहाश्म), वा.-वहलाया (वहुलायाम्)

५ (अ) ज१, २-सुरनरसंघायखिलं, वा.-सुरनरसप्राद्यांखिलं (सुरनरसद्माद्यखिलं)

५ (ब) ज१, २-उत्सवंमंगलाकर्षणमज (उत्सवभूषणमङ्गलमजभे)

६ (अ) ज१, २-धर्मोद्वाह (कर्मोद्वाह)

६ (ब) ज१, २-क्षेत्ररंभाति (क्षेत्रारम्भादि), ज१-सिद्धौतौ, ज२-सिध्यातौ, वा.-सिध्येते (सिद्धयते)

७ (अ) ज१, २-वा.-प्रहरणा (प्रहरण), ज१, २-कमाघं, वा.-कर्माद्या (कर्माद्यम्)

७ (ब) ज१, २-कर्मादि (कृत्यं च)

८ (अ) वा.-हवाद्यलिलं (हवाद्यखिलम्)

९ (अ) ज१-व्रतोन्सवापखिलं (व्रतोत्सवाद्यखिलम्)

९ (ब) ज१-वनफर, ज२-नवफर (वनिताकर), वा.-संग्रहक्ष्वे (संग्रहणं), ज१, २-त्यक्तान्यकर्म, वा.-पाठोनास्ति (त्यक्त्वान्यत्कर्म)

१० (अ) ज१, २-उधृता, वा. पाठस्यह्रासः (उद्धृत), ज१-रिपुममंजन, ज२-रिपुमदाभंजन, वा.-पाठस्यलोप (रिपुमदभञ्जन)

१० (ब) ज१, २-अनलाशसंग्रहणत्वेस्तेप्रादि, वा. पाठस्यलोपः (अनलायसङ्ग्रहणक्ष्वेडस्तेयादि), ज१, २-सार्प्यभे (सर्पभे)

११ (अ) ज१, २-युवतिसंग्रहणं, वा.-युवतीवरसंग्रहणां (युवतीकरसंग्रहणं), ज१, २-तडागसस्योपद्यं, वा.-तडागस्तस्माद्यं (तडागोत्सवाद्यंच)

११ (ब) ज१, २-क्षितिराहवपूर्वे, वा.-क्षितिपत्याहवपूर्वं (क्षितिपत्याहवसर्वं)

१२ (अ) ज१-ग्रहणं, ज२-ग्रहण, वा.-प्रहरणा (प्रहरणं)

१२ (ब) ज१, २-विटनटमानवाप्यं, वा.-विट्टनमासवायं (नटनद्रुमासावाद्यं), ज१, २-कुटपप्रसारणं, वा.-कुटपप्रहरणं (कुड्यप्रहरणं)

१४ (अ) ज१, २-भिषज, वा.-भेषज (भेषज), मु.पु.-पात्रा (यात्रा)

१४ (ब) ज१-वास्त्वारंभमर्कनक्षेत्रे, ज२-वास्त्वांरमकर्मनक्षत्रे, वा.-पाठोनस्ति (वास्तु-प्रारम्भमर्कनक्षत्रे)

१५ (अ) ज१-२, कर्षणांशैन्यं, वा.-पाठोनास्ति (भूषणं शिल्पम्)

१६ (अ) ज१, २-सुरनरमग्नानिधानं (सुरनरसद्मविधानं)

१६ (ब) ज१, २-वास्तु (शस्त्र), ज१, २-वा.-रवातौ (स्वातौ)

१७ (अ) ज२-उपनयनं (उपचय), ज१-वास्तुसंग्रहणां, ज२-वास्तुग्रहणं, वा.-वसुग्रहणं (वस्तुग्रहणं)

१८ (अ) ज१, २-यात्रासु (यात्रासुर)

१८ (ब) ज१, २-भूषणवस्त्रे, वा.-पाठस्यलोपः (भूषणमश्वे), ज१, २-भमित्रनक्षत्रे, वा.-पाठस्यलोपः (भकर्ममित्रर्क्षे)

१९ (अ) ज१, २-भेदहनन, वा.-पाठोनास्ति (भेदनदहन), ज१-लोहवह्निकर्माणि, वा.-पाठस्यलोपः (वह्निलोहकार्याद्यम्)

१९ (ब) ज१, २-शिल्पविचित्रं, वा.-पाठस्यलोपः (शिल्पं चित्रं)

२० (अ) ज१, २-याकृषिभुवन, वा.-कृषिध्वनि (कृषिभवन)

२० (ब) वा.-समाविभूषण (समरविभूषण)

२१ (अ) ज१-विग्रह, ज२-निगहं, वा.-निग्रह (निग्रहं)

२१ (ब) ज१, २-वा.-दुमखंडन (द्रुमखण्डन), ज१, २-वनचरपक्षणां, वा.-वनचारणपक्षिणां (वनचारिणपक्षिणं), ज१, २, वा.-कार्यमं (यत्कार्यमम्बुभे)

२२ (अ) ज१, २-मडतमुंडन (मुण्डनमण्डन), ज१, २, वा.-निवेश (निवेशं), ज१-शनाद्यंच, ज२-शशनाद्यंच (प्रवेशनाद्यं च)

२३ (अ) ज१, २-शिल्पशंवराद्यंच (शिल्पमम्बराद्यंच)

२४ (अ) ज१, २-जलतुरगोष्ट्रादिदेवनिर्माणां (जलतुरगोष्ट्रेभदेवनिर्माणम्)

२४ (ब) ज१, २-कृषिवलनाहवमंववर (कृषिभवनाहवम्बर), ज१, २-विपिनोधानात्म (विपिनोधानाश्म)

२५ (अ) ज१, २-समरांरभणं (समरारम्भ)

२५ (ब) ज१, २-रजितमयं (रजतमयं), वा.-कर्मध्म (कर्माद्यम्)

२६ (अ) ज१-अजचरणाक्ष, ज२-अजवर्णार्क्षे, वा.अजचरणार्क्षे (अजचरणर्क्षे)

२६ (ब) ज१, २-धातुर्वादनच्छेदन, वा.-धातुर्वादछेदन (मृद्धातुर्वादच्छेदन), ज१, २-महिषोष्टाजविक्रमणं, वा.-महिषोष्ट्रजविक्रयणं (महिषोष्ट्राजेभविक्रयणम्)

२७ (अ) ज१, २, वा.-व्रतबंधं (व्रतबन्धन), वा.प्रतिष्टं च (प्रतिष्ठां च)

२७ (ब) ज१, २-भूषमंवर, वा.-भूषणमंव (भूषणमम्बर)

२८ (अ) ज१, २-वामनिधानं (धामविधानं), ज१, २-त्वमत्युमुत्यीनां (त्वमर्त्य-मर्त्यानाम्)

२८ (ब) ज१, २-कुर्यात्, वा.-कार्य (कार्यम्)

२९ (अ) ज१, २-भचतुष्टयमंवुजउत्तरात्रितयं, वा.-भचतुष्टयमंबुजमुत्तरात्रितयं, पी.धा.टी.-भचतुष्टयमंवुजस्यर्क्षमुत्तरात्रितम् (भचतुष्टयमम्बुजयोन्युत्तरात्रितयम्)

२९ (ब) ज१, २-शांति च हर्म्यसदन, पी.धा.टी., वा.-शुद्धपाठः (नरपतिपत्तनसदनं)

३० (अ) ज१, २, वा.,पी.धा.टी. दैवानि (देवतानिस्युः)

३० (ब) ज२-दहनं, वा.-दाहन, ज.मो. दहान, मु.पु. दहान (दहन)

३१ (ब) वा.-नेदतधधज (भेदबन्धन), पी.धा.टी.-विषहनन (विषदहनं)

३२ (अ) वा.-क्षिप्रसंज्ञाप्तासुः (क्षिप्रसंज्ञितास्ताश्च)

३२ (ब) पी.धा.टी.-शिल्पकला (शिल्पलता)

३३ (अ) ज१, २-मृदुसंज्ञं (मृदुवृन्दं)

३३ (ब) ज१, २-मंगलावानेता (मङ्गलवनिता), पी.धा.टी.-मंदिरगीतानि सिध्यन्ति (मन्दिरगीतादि सिध्यतेतत्र)

३४ (अ) ज१-श्वसनसख्य, ज२-स्वसनसख, वा.-श्वसनसंख (श्वसनसखं), ज१-मिन्द्राग्नीभं, ज२-मिंद्राग्नीभं, पी.धा.टी.-सेन्द्राग्निभकंऽहि (चेन्द्राग्निभं)

३४ (ब) ज१, २-विमिश्रसंज्ञकं तत्, वा.-मिश्रसंज्ञतत्, पी.धा.टी.-मिश्रसंज्ञंस्यात् (मिश्रसंज्ञे तत्)

३५ (अ) ज१, २-भत्रितयं, पी.धा.टी.-भात्रितयं (भात्रितयं), ज१, २-पंचकरुद्रं च, वा.-पंचकमराद्भं, पी.धा.टी.-पञ्चकंमरुद्भं (पञ्चमरुद्भं च)

३५ (ब) ज१, २-कार्याधान, वा.-कार्यापान (कार्योद्यान), ज१-मत्रसिद्धयेता, ज२-मत्रसिद्मेतं, वा.-मंत्रसिद्येतत् (मन्त्रसिद्ध्यैतत्)

३६ (अ) ज२-लघुवृदे (लघुवृन्दे), वा.-हेमलद्रजत (हेमफलसद्रजत)

३७ (ब) ज१-कार्याण्यखिलालाघुगुणे, ज२-कार्यान्यखिलालघुगुणे, वा.-कार्याण्यखिलानिलघुगणो (कार्याणि लघुगणं नूनम्)

३८ (अ) ज१, २-यद्यदारुणभेचोक्तं (यद्यद्दारुणभोक्तं)

३८ (ब) वा.-कूरभ (क्रूरभे)

३९ (ब) ज१, २-क्षिप्रं च लघुचरं (क्षिप्रलघुचरं), ज१, २-मैत्रमृदुसंज्ञं (मैत्रमृदुसंज्ञे)

४० (अ) ज१, २-धिष्ण्येपिह (धिष्ण्येष्विह), ज१, २-कार्यवृन्दामित्युक्तं (कार्यमित्युक्तम्)

४१ (अ) ज१-करात्यं, ज२-करांत्ययंति (करान्त्ये)

४१ (ब) ज१, २-भमैत्रासु, वा.-समैत्रेषु (समैत्रेऽपि), ज१-शुभःप्रदो (शुभप्रदो)

४२ (अ) ज१-धात्रि, ज२-धात्री (धातृद्वये), ज१, २-कोणायपैत्रपुष्य, वा.-कोणांपपैतृंपुष्ये (कोणपपितृपुष्ये), वा.-मैत्रकमेषु (मैत्रभेषु)

४२ (ब) ज१-धनिष्टास्त्वर्थ, वा.-यतिष्ठास्वथ (धनिष्ठास्वथ)

४३ (अ) ज१-त्रियते च, वा.-त्रितयेच (त्रितयेषु)

४३ (ब) ज१, २-सविष्णुधिष्ण्योप्यथ, वा.-स्त्रविषुविधिश्विन्यैपि (सविष्णुधिष्ण्येष्वपि)

४४ (ट) ज१-पंचस्वपि, ज२-पंचस्व, वा.-पंचास्वथ (पञ्चस्वथ), ज१, २-धातृयोष्णदस्रादितीत्ये, वा.-विधातृदस्रदितीज्योति (धातृपौष्णदास्रादितीज्ये), ज१-त्रिष्टूत्तरासुन, ज२-त्रिषत्तरासु, व.-त्रिसृपूत्ररासु (तिसृषूत्तरासु)

४४ (ब) ज२-नवांवरं, वा.-नवास्वरं (नवाम्बरं)

४५ (अ) वा.-मित्रंदुपोष्णात्तररोहिणीषु (मित्रेन्दुपौष्णोत्तररोहिणीषु)

४५ (ब) ज१, २-प्रारंभण (प्रारम्भणं)

४६ (ब) ज२-शुभांशलग्नेष्व (शुभांशलग्नेषु), ज१-धवासवेषु, ज२-वधवासवेषु (चवासरेषु), ज१, २-षष्टमासान् (षष्टमासात्)

४७ (अ) ज१-नवान्नभुक्ता, वा.-नवान्नभौक्ता (नवान्नभोक्ता), ज१-समग्रदः, ज२-समग्र, वा.-सप्तन्नाद (सदन्नदः)

४८ (अ) ज१-संतिक्षुकस्त्वामय, ज२-निक्षिप्यमर्थ (निक्षिप्तमर्थं)

४८ (ब) ज१-विष्यां (विष्ट्यां)

४९ (ब) ज१-सुरक्षितै (सुरक्षितो), वा.-ह्रस्वमनुष्य (मुखंमनुष्यः)

५० (अ) ज१-पूर्वात्रया (पूर्वात्रयं)

५० (ब) ज२-क्षितावसक्तः (क्षितावशक्तः), ज१, २-खलुरोगवंतं, वा.-लरोगिणांतं, पी.धा.टी.-खलुरोगिनं च (किलरोगिणं तम्)

५१ (अ) ज१, २-वा.-मित्रपौष्ण (मित्रपौष्णे), ज१-२-दिष्ण्योस्वमासात्वदिति, वा.-धिष्ण्ये चमासाघ पी.धा.टी.-मित्रपौष्णधिष्ण्ये (मासाद्विभुक्तिः), ज१, २-वा.-विश्वधिष्ण्ये (शशिविश्वधिष्ण्ये)

५२ (अ) ज१, २-मूलाश्विनाग्नौ (मूलाश्विनाग्नि)

५२ (ब) ज१, २-तोयेसचित्रांतक, वा.-तोयेशचित्रातंक (तोयेशचित्रान्तक), ज१, २नैऋतेकादशभिदिनैश्च नैरुज्यमेकादशभिर्दिनैश्च)

५३ (अ) ज१, २-सप्तरात्रान् (सप्तरात्रात्)

५३ (ब) ज१-सुगन्धपुष्यैः (सुगन्धपुष्पैः)

५४ (ब) वा.-शिवार्य (शिवाय)

५५ (अ) अ१, २-वा.-मूले (मूल)

५५ (ब) ज१-प्रकुर्यात्समुप्व (प्रकुर्यात्समुष्क)

५६ (अ) ज१-द्विदैववारि (द्विदैववारीश), पी.धा.टी.-तिर्ष्यार्कयमोष्णभेषु (तिष्यार्यमपौषणभेषु)

५६ (ब) ज१-नूनमतंवि, ज२-नूनमनंवि, वा.-पाठोनास्ति, पी.धा.टी.-तूत्तममत्र (नूनमुपैति)

५७ (अ) ज१, २-करार्य, वा.-पाठोनास्ति (करान्त्य), ज१, २-वसुदैवभेषु, वा.वसुवैवतेषु (वसुदैवते च)

५७ (ब) ज१, २-जलोघ्रतंयत् (जलोद्धृतं तत्)

५८ (अ) ज१, २-चकावणत्रये (सौम्यहरित्रये)

५८ (ब) ज१, २-हिसर्वामि हि, पी.धा.टी.-मिसर्वान्यपि (च सर्वाणि हि), पी.धा.टी.-शस्तान्याखिलानि यानि (शस्तान्यपि यानि तानि)

५९ (अ) ज१-धारुमभे (दारुण भे), ज१, २-वा.-चचोग्रे (तथोग्रे), ज१, २-शुक्रकुजार्कवारे (सूर्यकुजार्किवारे)

५९ (ब) ज१, २-क्षेत्राधियस्यैव (क्षेत्राधिपस्यापि)

६० (अ) ज.मो.-रिक्तादशाष्टमी (रिक्तादर्शाष्टमी)

६० (ब) ज१-तेषामधितृद्धकांक्षी, वा.-तेषामधिवृद्धिकीक्षी (तेषामभिवृद्धिकांक्षी)

६१ (अ) ज१, २-तिस्तोत्तरा (तिस्रोत्तरा), ज१, २-गुरुस्त्रविष्टा (गुरुश्रविष्ठा), ज१, २-हस्तेन्द्र (हस्तेन्दु), ज२-वीरीश्वर (वारीश्वर), वा.पौष्णेषु (पौष्णभेषु)

६२ (अ) ज१-दस्त्रेद, वा.-दस्त्रेदु (दस्त्रेन्दु), ज१-२-चैवगवां (भेषु गवां), ज१-प्रकुर्याक्रम, ज२-प्रकुर्यात्क्रय, वा.-प्रकुर्यात्कर्य (प्रकुर्यान्क्रय)

६३ (ब) ज१, २-तद्विशेषतस्मिमामहवैः सर्वारः, वा.-तशिशेषतत्चिग्मचेश्ववारौ (तद्विसेषतस्तिग्मरुचेश्ववारे)

६४ (अ) वा.-त्रितयेहिनीषु (त्रियेऽश्विनीषु)

६४ (ब) ज१-पौष्णन्येदु, ज२-पौष्णान्यद्र (पौष्णेन्द्र), ज१, २-वारलग्नं, वा.-वालग्नं (वारलग्ने)

६५ (अ) ज१, २-अष्टाग्वजर्क्षः वा.-अष्ठाज्वजर्क्षः (अष्टाब्जजर्क्षः), ज१, २-यद्वह्निधिष्ण्यस्चतुरुत्तरर्क्षः (षड्वह्निथिष्ण्यश्चतुरर्यमर्क्षः)

६५ (ब) ज१, २-नराष्द्रा (नरोऽष्द्धा)

६६ (अ) ज१-पेचमेहि (पञ्चममञ्चमेऽह्नि)

६६ (ब) ज१, २-तदूदये (तद्भोदये)

६७ (अ) ज१., ज२-उक्तट, वा.-वुटकट (ऽप्युत्कट), ज१-वानिशि, ज२-वानिसि (रत्रिषु), ज१, २-संध्योर्वा (सन्ध्ययोश्च)

६७ (ब) ज१, २-नात्मतश्चे (चात्मनश्च), ज१, २-भ्रेमेभिलाषीनवमेदिने च (श्रियाभिलाषी न कदाचिदेव)

६८ (अ) ज१निदेशनेपि, ज२-निदेशतपि (निमित्ततोऽपि), ज१, २-सूतकेपि (मृतसूतकेऽपि)

६८ (ब) ज१, २-निखिलनराणां (निखिलधराणां)

७० (अ) ज१, २-हरिद्वयेषु (हरिद्वयेन्दु)

७० (ब) ज१, २-नृणांष्टफलंप्रदं, वा.-नृणामिष्टफलंप्रदे (नृणामिष्टफलप्रदे)

७१ (अ) ज१, २-विशाखानलभानिसर्प, मु.पु. विशाखनिलमम्बुसार्प (विशाखा-नलमम्बुसार्प), वा.-समोरागनि (समीरणानि)

७१ (ब) ज१, २-यात्रास्व (यानेष्व)

७२ (अ) ज१-ऐन्द्राजयादाज्वल, ज२-ऐन्द्राजयादाङ्गज (ऐन्द्राजपादाब्जज), ज१, २-क्रमशश्च, वा.-क्रमश (क्रमतश्च)

७२ (ब) ज१, २-न यामातयदि (न याति याता यदि), ज२-षुलभेषु (शूलभेषु), ज१, २-तुल्येन (तुल्यः), ज१, २-नरोवलेन, वा.-समरेचलेन (समरे वलेन)

७३ (अ) ज१, २-दस्रमैत्राणि (मैत्रदस्रसंज्ञानि)

७३ (ब) ज१-तत्तनुयात्रानियतं, ज२-तत्तनुपात्रानियतं, वा.-तत्रनुष्यनियतं (तत्तरतु यायान्नियतं)

७४ (अ) ज२-पूर्वाहि (पूर्वा)

७५ (अ) ज२-क्षिप्रैनीपरवासरसमर्य, वा.-क्षिप्रैर्नापरवासरमति (क्षिप्रैर्नापरवासर समये), ज१, २-मृदुभिर्नारात्रीमुखे, वा.-मृदुभिर्वेचरात्रिमुखे (मदुमिश्रैर्न रात्रिमुखे)

७५ (ब) ज१, २-उग्रर्क्षेनिशि (उग्रगणैर्निशिसमये)

७६ (अ) ज१-दिधिदिक्ष्य, ज२-सुदिधिदिक्ष्ये (च दिग्विदिक्ष्वेव)

७७ (अ) ज१, २-चैव (नैव)

७७ (ब) शुद्धपाठः

७८ (ब) ज१, २-द्वादशनैधनगेंदो, वा.-द्वादशनैधनगैद्रो (द्वादशनैधनगेन्दौ), ज२-पुष्यस्वमिष्टदः, वा.-पुष्यन्नभीष्टदः (पुष्यस्त्वभीष्टदः)

७९ (अ) ज१, २-वित्करो (विपत्करौ), ज१, २-जन्मसंज्ञे (जन्मसंज्ञो)

७९ (ब) ज१, २-मुक्ता (मुक्त्वा)

८० (अ) ज१-सिंहर्यथोडुगणामद्ये, ज२-पाठोनास्ति (सिंह उडुमगणमध्ये)

८० (ब) ज१-शक्तिमन्निहतः (शक्तिमान्निहितः)

८१ (अ) ज१-लघुधष्ण्यौ, वा.-लघुधिष्ण्यै (लघुधिष्ण्यै), ज१, २-विप्लोचरभेषु, वा.-विष्णभेषु, ज.मो-चरभे (विष्णुभेषु)

८२ (ब) ज१, २-वलिसश्रेवदनभानिलिषु, वा.-वलिसमवदनयानित्विषु (पातालवदनभानित्वेषु), ज१, २-कार्यमंधोमुखं, वा.-कात्वधोमुखं (कार्यत्वधोमुखं)

८३ (अ) ज१, २-मैत्रमरुत्वाष्ट्रपौष्णभानि, वा.-मैत्रमृदुत्वाष्ट्रपौष्णानि (मैत्रमरुत्वाष्ट्रपौष्णानि)

८३ (ब) ज१, २-पार्श्वनत्वा (पार्श्वनन)

८४ (अ) ज१, २-धिष्णयग, वा.-धिष्ण्य्यगण (धिष्ण्यगणम्)

८४ (ब) ज१, २-उर्द्धमुखात्वत्र (उर्ध्वमुखाख्यंत्वत्र)

८५ (अ) ज१, २-तिष्योत्वनत्रयुत्तर (तिष्येन्द्वनलत्र्युत्तर)

८६ (अ) ज१, २-पुष्याधात्रि (पूषाधातृ), ज१-पाठोनास्ति, ज२-मरुद्विस्नुवारि (मरुद्विष्णुवारीश)

८६ (ब) ज१, २, वा.-पाठोनास्ति, मु.पु.-अहियमधातृ (अहियममित्र)

८७ (अ) ज१, २-सयंशनून् (संशय क्षिप्रम्)

८७ (ब) ज१, २-भंगस्याधातुः (भङ्गःस्याद्यातुः), ज१, २ वा.-कुलकुलेषु (कुलाकुलभे)

८८ (अ) ज१, २-ये जातामनु, मु.पु. यातास्ते (चे जातास्ते)

८८ (ब) ज१, २-परिभक्वा (परविमवाद्), ज१, २-सामान्य, वा.-सामान्यगः (सामान्याः)

८९ (अ) वा.-सितमो (सितभौमौ)

८९ (ब) ज१, २-कुलकुलज (कुलाकुलज:), वा.-क्षितीशयना:योर्नित्य (क्षितीशयोर्नित्यम्)

९० (अ) ज१, पी.धा.टी.-मन्दाक्षं, ज१-नंदाख्यं, वा.-मन्दाख्यं (मन्दाख्यं)

९० (ब) ज१, २-ब्रह्मधिष्यात् (ब्रह्मधिष्ण्यात:)

९१ (ब) ज१, २-त्रिपुष्कराख्ययोगोयं, ज.मो.-त्रिपुष्करारगोयोगो (त्रिपुष्कराख्योयोगो), ज१, २-वा.-भौद्धिगणं (भैर्द्विगुणम्)

९२ (अ) ज१-स्यात्सपनुतमेधोमान (स्यापनुत्तये विद्वान्)

९२ (ब) ज१, २-द्वितीये, ज.मो.-द्धितयं (द्वितयं)

९३ (ब) ज१, २-रुद्राक्षि, वा.-रुदोतत्र (रुद्राब्धि)

९४ (ब) ज१, २-पृथक्पृथग्रयं (पृथक्पृथग्रूपै:)

९५ (अ) ज१, २-नापित्तक्षुखत्, वा.-नापितेक्षुरवत् (नापितक्षुरवत्)

९५ (ब) ज१, २-शाश्वनमस्तक, वा.-शशश्वत्मस्तक (शश्वन्मस्तक), ज१-मृगास्यैच, ज२-मृगाक्ष्यैव, व.-मृगत्यंव (मृगस्यैव)

९६ (अ) ज१, २-मणिनिभभौक्ता: (मणिनिभमोक:), ज१, ज२-सदृशंह्युदमेदुनभ च, वा.-सदृशंब्दुयेदुविभं (सृशमाशुगसदृशं च), ज१-चक्रामव्रकार, ज२-भचक्राकार, वा.-भचक्रां (चक्रसंकाशम्)

९६ (ब) ज१, २-सदृश्येवहि, वा.प्राकारनिभंशय्ये (प्राकारमञ्चशय्या)

९७ (अ) ज१, २-तोरणवद्ध (तोरणवत्

९७ (ब) ज२-गव्याकारं (शय्याकारं), ज१, २-गजेन्द्रवेलासं, वा.-गजेन्दवेलातं (गजेन्द्रदन्ताभम्)

९८ (ब) ज१, मतुलिंगस्या, ज२-मतुलिंगस्यात्, वा.-मातुविगस्था (मातुलुङ्गस्य)

९९ (अ) ज१, २-कथितानि (कथितानीमानि), ज१, २-सुष्टुरूपाणि, वा.-मुखरूपाणि (मुखरूपाणि)

१०० (अ) ज१-पाठस्यलोप:, ज२-अर्कगतसंस्थ (अर्कगतागतसंस्थ), ज१-पाठस्यलोप:, ज२-नेष्टमुभयतास्त्विष्टं (नेष्टमुभयतस्त्विष्टम्)

१०० (ब) ज१-पाठस्यलोप:, ज२-मिष्टनिष्टं (शिष्टानिष्टं)

१०१ (अ) ज१, २-अभिजिच्चभोगमेतद्, वा.-अभिजिद्भोगमेतांत (अभिजिद्भ-भोगमेतद्), ज२-पादमखितत (पादमखिलंयत्)

१०१ (ब) ज१-आद्याचतस्त्र, ज२-आद्यावृत्तस्त्र (आद्यश्चतस्रो), ज२-नाम्रो, वा.-वस्यो (नाड्यो), ज१-२-हरिभस्येतस्व (हरिभस्यैतच्च)

१०२ (अ) ज१, २ पाउपैर्मुक्तंहिगंतव्यराक्रांतं, वा.-आरार्कावर्यहिकेतुभिरराकांतं (आरार्कार्क्य हिकेतुभिराक्रान्तं)

१०३ (अ) ज१, २-पाणिग्रहे च, वा.-पाणिपहरणो (पाणिग्रहणे), ज१-विधिरुक्त: ज२-विधिरुक्तं, वा.-भवेद्यविधिरुक्त (भवेधविधिरुक्त:)

१०३ (ब) ज२-शस्तं (शस्तः), ज१-सप्तशलाकाममितरत्, ज२-सप्तशकामभितरत् (सप्तशलाकजमितरत्र)

१०५ (ब) ज१-मृयते, वा.-त्रिपते (मृतभे)

१०४ (अ) ज१, २-विद्भंत्वखिलं (विद्धभं निखिलम्)

१०४ (ब) वा.-त्याज्यां (त्याज्यं), ज१, २ पादधिष्ण्यं च (पातधिष्ण्यं च)

१०६ (अ) ज१, २-निहंति (न हन्ति), ज१-२-नशवरतेहन्तु (न शक्यतेहन्तुम्)

१०६ (ब) ज१-सद्गात्रमेषगरलं, ज२-सद्गात्रमेयगरलं (तद्ग्रातमेव गरलं), वा.-निहन्ति (न हन्यते)

१०७ (अ) ज१, २-वाहषु (वारेषु)

१०७ (ब) वा.-नाजन, पी.धा.टी. भाजने (भाजन)

१०८ (ब) ज१-२-पैत्रेदुमूलेषु (मित्रेन्दुमूलेषु), ज१, २-शुभवासरे वा., वा.-कुजवसरेषु, पी.धा.टी. शुभवासरेऽपि (कुजवासरेषु)

१०९ (अ) ज१, २-मृदुधिष्ण्यं (मरुदहिधिष्ण्यं), ज१-वासरं (वासरे)

१०९ (ब) ज१, २-परवासरेषु (परवासरत्र्क्षेषु), ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-रोगमुक्तान: (रोगमुक्तानाम्)

११० (ब) पी.धा.टी.-वासरेष्वपि (च वारेषु), ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-चिपुष्करे (त्रिपुष्करे), ज१, २-भूषणंकार्यम्, वा.भूषणाधार्य, पी.धा.टी.-भूषणं कार्यम् (भूषणं धार्यम्)

१११ (अ) ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-व्यर्कजेयुवारेषु, पी.धा.टी.-व्यर्ककुजवारे (व्यर्कजेषु वारेषु)

१११ (ब) ज१, २-पाठोनास्ति, पी.धा.टी.-मणिक्यमयं (मणिकनकमयं), ज१, २-पाठोनास्ति, वा. धार्य, पी.धा.टी.-कार्यम् (धार्यम्)

११२ (अ) ज१, २-क्षिप्रमृदुचरभे (क्षिप्रमृदुध्रुवचरभे), ज१, २-शशितनयोर्वासुरे (शशिसितयोर्वासरेषु)

११२ (ब) ज१, २-वा.-धार्य, पी.धा.टी. कार्यम् (धार्यम्)

***

१५

अथ योगाध्यायः

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनाह्वयः।
अतिगण्डः सुकर्माख्यो धृतिः शूलोऽथ गण्डकः॥१॥

विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड—॥१॥

वृद्धिर्ध्रुवाख्यो व्याघातो हर्षणो वज्रसंज्ञकः।
सिद्धियोगो व्यतीपातो वरीयान्परिघः शिवः॥२॥

वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव—॥२॥

सिद्धिः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मैन्द्रो वैधृताह्वयः।
सप्तविंशति योगास्ते स्वनामफलदाः स्मृताः॥३॥

सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र, वैधृति ये २७ सत्ताईस योग अपने-अपने नामों के सदृश फल देते हैं॥३॥

विरुद्धयोगेषु य आद्यपादः शुभेषु कार्येषु विसर्जनीयः।
सवैधृताख्यो व्यतिपातयोगः सर्वोऽपिनेष्टः परिघार्द्धमाद्यम्॥४॥

सभी शुभकृत्यों में विरुद्धयोगों की प्रथमपाद की घड़ियाँ त्याग देनी चाहिए। वैधृति और व्यतीपात सभी कृत्यों में त्याज्य हैं। परिघ योग के प्रथम पाद का आधा भाग अशुभ है॥४॥

तिस्रस्तु नाड्यः प्रथमे च वज्रे
गण्डातिगण्डेऽपि च षट् च षट् च।
व्याघातयोगे नव पञ्च शूले
शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः॥५॥

वज्र योग के प्रथम पाद की पहली तीन घड़ियाँ, गण्ड अतिगण्ड की छः-छः, व्याघात योग की नौ, शूल योग की पाँच घड़ियाँ शुभकार्यों में वर्जित हैं॥५॥

योगवशशीर्षस्थ नक्षत्र

अन्त्यातिगण्डपरिघव्यतिपातपूर्व
व्याघात गण्डवरशूलमहाशनीषु।

चित्रानुराधपितृपन्नगदस्त्रभेषु सादित्य-
मूलशशिसूरिषु मूर्ध्नि भेषु॥६॥

वैधृति योग में शीर्षस्थान में चित्रा, अतिगण्ड में अनुराधा, परिघ में मघा, व्यतिपात में आश्लेषा, विष्कम्भ में अश्विनी, व्याघात में पुनर्वसु, गण्ड में मूल, शूल में मृगशिरा और वज्र योग होने पर शीर्षस्थान में पुष्य को स्थापित करके सूर्यचन्द्र दृष्टि से दोष का निर्णय करना चाहिए॥६॥

क्रमागत–

नारदः–

अदितीन्दुमघाश्लेषामूलमैत्रेन्यभानि च।
ज्ञेयानि सहचित्राणि मूधर्नभानि यथाक्रमात्॥

(ना.सं. ६-५)

कश्यपः–

व्याघात शूल परिघापातपूर्वेषु सत्स्वपि
गण्डातिगण्डकुलिश वैधृतेषु नवस्वपि।
अदितीन्दु मघाह्याद्य मूल मैत्रेज्य भानि च
ज्ञेयानि सह चित्राणि मूर्ध्निभानि यथा क्रमात्॥

(क.सं. १५, ५-६)

खार्जूर चक्र निर्माण विधि तथा एकार्गलदोष निर्माण

रेखामेकामूर्ध्वगां षट् च सप्त तिर्यक्कृत्वाप्यत्रखार्जूरचक्रे।
तिर्यग्रेखासंस्थयोश्चन्द्रभान्वोर्दृक्सम्पातो दोष एकार्गलाख्यः॥७॥

एक ऊर्ध्वाधः रेखा बना कर १३ तिरछी रेखा बनाने से खार्जूर चक्र बनता है। एक तीर्यक् रेखा स्थित सूर्य, चन्द्र का दृष्टि सम्पात होने से एकार्गल दोष होता है॥७॥

क्रमागत–

नारदः–

लिखेदूर्ध्वगतामेकां तिर्यग्रेखास्त्रयोदश।
तत्र खांर्जूरिके चक्रे कथितं मूद्र्ध्निभं न्यसेत्।
भान्येकरेखागतयोः सूर्याचन्द्रमसोर्मिथः।
एकार्गलो दृष्टिपातश्चाभिजिद्वर्जतानि वै॥

(ना.सं. १७, ६-७)

कश्यपः–

लिखेदूर्ध्वगतामेकां तिर्यग्रेखास्त्रयोदश।
तत्र खार्जूरिके चक्रे कथितं मूर्ध्निभं न्यसेत्॥

भान्येकरेखागतयोः सूर्याचन्द्रमसोर्मिथः।
एकार्गल दृष्टिपातश्चाभित्सहितानि वै।।

(क.सं. १५, ७-८)

वसिष्ठ, कश्यप तथा नारदादि ऋषियों द्वारा प्रतिपादित खार्जूर चक्र

अनुराधाशीर्षस्थान

वि.	ज्ये.
स्वा.	मू.
चि.	पू.षा.
ह.	उ.षा.
उ.फा.	श्र.
पू.फा.	ध.
म.	शत.
आश्ले.	पूर्वाभा.
पुष्य	उ.भा.
पुन.	रे.
आ.	अ.
मृ.	भ.
रो.	कृ.

मुहूर्तचिन्तामणि में श्री रामदैवज्ञ ने अभिजित् सहित खार्जूर चक्र को माना है। डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय द्वारा मुहूर्तचिन्तामणि चन्द्रिका टीका में भी पुष्टि की गई है।

खार्जूरचक्र

पुनर्वसु

पुष्य	आर्द्रा
आश्लेषा	मृ.
मघा	रो.
पू.फा	कृ.
उ.फा.	भ.
हस्त	अ.
चि.	रे.
स्वा.	उ.भा.
वि.	पू.भा.
अनु.	श.
ज्ये.	ध.
मू.	श्र.
पू.षा.	अभि.

उ.षा.

पात का जन्म व फल

खरकरतुहिनांशोर्दृष्टिसम्पात जात-
स्त्वनलमयशरीरश्चोद्भिरन्ववह्निसंघान्।
भुवि पतति जनानां मङ्गलध्वंसनाय।
गुणगणशतसंघैरप्यवार्योऽग्निकोपः॥८॥

सूर्य चन्द्रमा की दृष्टि सम्पात से उत्पन्न पात अग्निमय देहधारी भूमि में अग्नि पतित करता हुआ मनुष्यों के शुभ कार्यों का नाश करता है। इसका क्रोध सैंकड़ों गुणों से भी दूर नहीं होता॥८॥

योगानुसार शुभाशुभफल

चौलं च बीजरोपं च स्त्रीसङ्गं दन्तकल्पनम्।
काष्ठकर्म रिपूच्चाटं विष्कम्भे तु प्रकारयेत्॥९॥

चौलकृत्य, बीजारोपन, स्त्रीसङ्ग, दन्तधावन, काष्ठकृत्य, रिंपूच्चाटनादि सभी कृत्य विष्कम्भ योग में करने चाहिए।।९।।

मित्रत्वं लेपनं चैव भूषणं भूपरिग्रहम्।
राजवश्यं महोत्साहं प्रीतियोगे प्रकारयेत्।।१०।।

मित्रता, लेपनकार्य, भूषण, भूपरिग्रह (भूमि का लेन देन) राजवश्य, महोत्साहादि कृत्य प्रीति योग में श्रेयस्कर हैं।।१०।।

बीजवापं धनग्राहमायुरारोग्यकर्म च।
विवाहं व्रतबन्धं च ह्यायुष्मति च कारयेत्।।११।।

बीज वोना, धन ग्रहण करना, आयु आरोग्य कृत्य, विवाह, व्रतबन्धादि कृत्य आयुष्मान योग में करने चाहिए।।११।।

वस्त्रबन्धमलङ्कारं सौभाग्यं लेपकर्म च।
सोमपानं सुरापानं सौभाग्ये तु प्रकारेयत्।।१२।।

नवोनवस्त्र, व्रतबन्ध, अलङ्कार, सौभाग्य, लेपकृत्य, सोमपान, सुरापानादि कार्य सौभाग्य योग में शुभ कहे गये हैं।।१२।।

विवाहदानकर्माणि भूषणं भूपरिग्रहम्।
राजाभिषेकमायुष्यं शोभने च प्रकारयेत्।।१३।।

विवाह, दानादिकृत्य, भूषण धारण करना, पृथ्वी का लेनदेन, राजाभिषेक, शुभाशीर्वदादि कृत्य शोभन योग में करने चाहिए।।१३।।

विग्रहं निग्रहं चैव रोदनं वधबन्धनम्।
छेदनं वञ्चनं क्षुद्रमतिगण्डे प्रकारयेत्।।१४।।

युद्ध, कैद करना, छापा मारना, रोदन, वध, बन्धन, छेदन, वञ्चन और क्षुद्रादि कृत्य अतिगण्ड में करना ठीक हैं।।१४।।

चित्रकर्मगृहस्थापं कल्याणं भूपरिग्रहम्।
राजाभिषेककर्माणि सुकर्मणि च कारयेत।।१५।।

चित्रकारी, गृहनिर्माण, कल्याण, भूपरिग्रह, राजाभिषेकादि कृत्य सुकर्मा योग में करना प्रशस्त हैं।।१५।।

प्राकारं तोरणादीनि देवालयगृहाणि च।
सेतुबन्धं गजारोहं धृतियोगे तु कारयेत्।।१६।।

दीवार, द्वार निर्माण, देवालय, गृह, सेतुबन्ध, गजारोहनादि कृत्य धृति योग में करने चाहिए।।१६।।

क्रूरकर्म रिपूच्चाटं मारणं दाहनं तथा।
बन्धनं चावमानं च शूलयोगे प्रकारयेत्।।१७।।

क्रूरकर्म (पापकर्म), शत्रु उच्चाटन, मारण, दाहन, बन्धन तथा अवमानादि कृत्य शूल योग में करने चाहिए।।१७।।

शत्रुघातं रिपूच्चाटं तडागं सेतुबन्धनम्।
क्षेत्रसेवां गदायुद्धं गण्डयोगे प्रकारयेत्।।१८।।

शत्रुघात, शत्रु उच्चाटन, तड़ाग, सेतुबन्ध, क्षेत्र सेवा, गदायुद्धादि कृत्य गण्ड योग में प्रशस्त हैं।।१८।।

बीजवापं धनग्राहं विवाहं वस्त्रबन्धनम्।
तडागं सेतुबन्धं च वृद्धियोगे प्रकारयेत्।।१९।।

बीज वोना, धन इकट्ठा करना, विवाह वस्त्र, बन्धन, तालाब, सेतुबन्धादि कार्य वृद्धि योग में श्रेयस्कर हैं।।१९।।

वस्त्रबन्धं गृहस्थापं तडागं सेतुबन्धनम्।
भूषणं बहुरत्नं च ध्रुवयोगे प्रकारयेत्।।२०।।

वस्त्र, बन्ध, गृह निर्माण, प्रतिष्ठा, तालाब, सेतुबन्ध, भूषण, बहुविध रत्नादि कृत्य ध्रुव योग में करने चाहिए।।२०।।

बन्धनं रोदनं चैव घातनं छेदनं तथा।
क्रूराणि बहुकर्माणि व्याघाते तु प्रकारयेत्।।२१।।

बन्धन, रोधन (किसी को रोकना), घातन, छेदन, बहुविध क्रूर कृत्य व्याघात योग में करने चाहिए।।२१।।

वस्त्रबन्धं गजारोहं विवाहं भूपनिग्रहम्।
राजाभिषेकमायुर्ष्यं हर्षणे तु प्रकारयेत्।।२२।।

वस्त्र, बन्धन, गजारोहण, विवाह, शत्रु राजा को जकड़ना, राजाभिषेक, वृद्धिकृत्यादि हर्षण योग में करने चाहिए।।२२।।

शस्त्रकर्म रिपूच्चाटं शस्त्राणां च परिग्रहम्।
सेनाधिपत्यं सौम्यं च वज्रयोगे प्रकारयेत्।।२३।।

शस्त्रकृत्य, शत्रु उच्चाटन, शस्त्रों को धारण करना, सेना का आधिपत्य और साधारण कृत्य वज्र योग में करने चाहिए।।२३।।

हारकाञ्चीकलापं च हस्ताभरणमेव च।
अङ्गुलीभूषणं चैव सिद्धियोगे प्रकारयेत्।।२४।।

हार, काञ्चीकलाप (स्त्री का मेखला धारण), कङ्कण, अङ्गुली भूषण पहनना बनाना इत्यादि कृत्य सिद्धि योग में करने चाहिए।।२४।।

दानं वेदविदे दद्यात्छ्रद्धासङ्कल्पनं तथा।
रिपूच्चाटं विषादीनि व्यतीपाते तु कारयेत्।।२५।।

श्रद्धाभाव से वेद ज्ञाता ब्राह्मणों को दान देने का सङ्कल्प करना, शत्रु उच्चाटन, विष देना आदि कृत्य व्यती-पात योग में करने चाहिए।।२५।।

द्वाविंशतिः समुत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः।
उत्तिष्ठे सप्त घटिकाः पतिते घटिका दश।।२६।।

व्यतीपात की २२ घटी तक उत्पत्ति मुद्रा, २१ घटी तक भ्रमण मुद्रा, सात घटी उपस्थापन मुद्रा दश घटी पतित मुद्रा में व्यतीपात को समझें।।२६।।

व्यतीपात योग में दान का महत्त्व

पूर्वे लक्षगुणं दानं भ्रमणे कोटिरुच्यते।
उत्तिष्ठे सप्तकोट्यस्तु निपाते चाक्ष्यं भवेत्।।२७।।

उत्पत्तिकालिक दान का महत्त्व लक्षगुणा, भ्रमणावस्था में कोटिगुणा, उत्थानावस्था में सप्तकोटि गुणा, पतनावस्था में किया हुआ दान अक्षय हो जाता है।।२७।।

व्यतीपात शरीर लक्षण

शङ्खचक्रगदापद्मलम्बभ्रूदीर्घनासिकाम् ।
अष्टनेत्रं चतुर्वक्त्रं विस्तीर्णं शतयोजनम्।।२८।।

शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, लम्बी भ्रूकुटी, दीर्घनासिका, आठ नेत्र, चार मुख, शतयोजन विस्तृत—।।२८।।

दीर्घबाहुं महारौद्रं तीक्ष्णंद्रंष्ट्रं महोदरम्।
व्यतीपातवपुश्चेदं शोभने मृत्युकारकम्।।२९।।

दीर्घबाहु, महारौद्र, तीक्ष्ण दान्तों से युक्त, बड़े पेट वाला व्यतीपात का सुशोभित शरीर शुभकृत्यों में मृत्युकारक होता है।।२९।।

हारकाञ्चीकलापं च हस्ताभरणमेव च।
अङ्गुलीभूषणं चैव वरीयसि च कारयेत्।।३०।।

रत्नमाला, मेखलादि आभूषण, हस्तालङ्कार अङ्गुली भूषणादि कृत्य वरीयान योग में करने चाहिए।।३०।।

बन्धनं छेदनं चैव भेदनं विषदीपनम्।
तथान्यत्क्रूरकर्माणि परिघे तु प्रकारयेत्।।३१।।

बन्धन, छेदन, भेदन, विषोपदीपन करना तथा अन्य क्रूर कृत्य परिघ योग में करने चाहिए।।३१।।

मालिकां कटिसूत्रं च घण्टाभरमेव च।
कर्णयोर्भूषणं चैव शिवयोगे प्रकारयेत्।।३२।।

माला, मेखला, कण्डाभरण, कणभूषण इत्यादि कृत्य शिव योग में करने चाहिए।।३२।।

प्रतिष्ठा देवतानां च गृहाणि नगराणि च।
प्राकारतोरणादीनि सिद्धियोगे प्रकारयेत्।।३३।।

देव प्रतिष्ठा एवं घर, नगर, दीवार द्वार निर्माणादि कृत्य सिद्धि योग में करने चाहिए।।३३।।

देवतागुरुपूजां च विद्यापूजां तथैव च।
मन्त्रपूजान्यनेकानि साध्ययोगे प्रकारयेत्।।३४।।

देवता, गुरु और सरस्वती पूजन, विद्यारम्भादि, अनेक प्रकार के मन्त्र पूजादि कृत्य साध्य योग में करने चाहिए।।३४।।

बीजवापं गृहोत्साहं धनधान्यादिसंग्रहम्।
सर्वरत्नमहीग्राह्यं शुभयोगे प्रकारयेत्।।३५।।

बीज बोना, गृह निर्माण, उत्साह, धनधान्यादि संग्रह, सर्वरत्नादि संग्रह, पृथ्वी ग्रहण करना शुभयोग में शुभ हैं।।३५।।

लेपनं भूषणं चैव राजसंदर्शनं तथा।
कन्यादानं महोत्साहं शुक्लयोगे प्रकारयेत्।।३६।।

लेपन, भूषण, राजदर्शन, कन्यादान महोत्सव, आदि कृत्य शुक्ल योग में करने चाहिए।।३६।।

शान्तिकं पौष्टिकं चैव तडागं सेतुबन्धनम्।
चौलोपनयनं क्षौरं ब्रह्मयोगे प्रकारयेत्।।३७।।

शान्तिक, पौष्टिक, तड़ाग, सेतुबन्धन, चौल, उपनयन और क्षौर कृत्य ब्रह्मयोग में करने चाहिए।।३७।।

कन्यादानं गजारोहं स्त्रीसङ्गं वस्त्रबन्धनम्।
काव्यगायनवाद्यानि योगे चैन्द्रे प्रकारयेत्।।३८।।

कन्यादान, गजारोहण, स्त्रीसङ्ग, वस्त्र बन्धन, काव्य, गायन, सङ्गीतवाद्यादि कृत्य ऐन्द्र योग में शुभ होते हैं।।३८।।

घातनं परराष्ट्राणां वञ्चनं दाहनं तथा।
छेदनं क्रूरकर्माणि वैधृतौ तु प्रकारयेत्॥३९॥

घातन, दूसरे राष्ट्र को हड़पना, दाहन छेदनादि क्रूरकृत्य वैधृति योग में करने चाहिए॥३९॥

योगस्य सप्तविंशांशो योगमानं भवेदिह।
एकस्मिन्नपि योगेऽपि सर्वेयोगा भवन्ति हि॥४०॥

एक योग के सत्ताईस भाग करें, वर्तमान् योग से गिनते जाएँ तो एक ही योग में सत्ताईस योग समाविष्ट हो जाते हैं॥४०॥

सूर्याचन्द्रमसोर्धिष्ण्ययोगाज्जाता यतस्ततः।
ऋक्षेषा एव योगेशा ज्ञातव्याः सर्वकर्मसु॥४१॥

सूर्य और चन्द्रमा के योग द्वारा विष्कम्भादि सत्ताईस योगों की उत्पत्ति होती है। अश्विन्यादि नक्षत्रों के स्वामी ही सत्ताईस योगों के स्वामी भी मानकर सभी कार्यों में योगों को प्रयोग करें॥४१॥

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां योगाध्याय पञ्चदशः।।१५।।

॥वृद्ध वसिष्ठ संहिता के योगाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त॥१५॥

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, २-विष्कुंभ, वा.-विष्कंभा (विष्कम्भः), ज१-शोभानाद्धयः, ज२-शोभनाहूयः (शोभनाह्वयः)

१ (ब) ज१, २-शूलोतिगंडकः (शूलोऽथगण्डकः)

२ (ब) ज१-शिवेद्रियोगो (सिद्धियोगो)

३ (अ) ज१, २-ब्रह्मेंद्रो, वा.-ब्रह्मोदौ (ब्रह्मैन्द्रो), ज१-वैधृताद्वयः, ज२-वैधृताहूयः (वैधृताह्वयः)

४ (अ) ज१-वर्जनयः, ज.मो. विवर्जनीयः (विसर्जनीयः)

४ (ब) ज१, २-सवैधृतोयो, वा.-सविवैधृते (सवैधृताख्यो), ज१, २-व्यतिपातयोगो (व्यतिपातयोगः), ज१, २-सर्वोप्यनिष्टः, वा.-सर्वेःतिनेष्टः (सर्वोऽपिनेष्टः)

५ (अ) ज१,-सवज्रे, ज२-शवज्रे, वा.-वचर्जे (च वज्रे)

५ (ब) (वा.-न. च शूले (नव पञ्चशूले), वा.-शुभेषुका (शुभेषुकार्येषु)

६ (अ) वा.-महाशनी (महाशनीषु)

६ (ब) ज१-मूर्द्धभेषु, ज२-मूह्निभेषु (भूर्ध्निभेषु)

७ (अ) ज१, २-उर्द्धगांप्यर्द्ध (उर्ध्वगां षट् च), ज१-कृत्वाषटत्र, ज२-कृत्वाथदत्र (कृत्वाप्यत्र), ज१-खार्जुरचक्रे, ज२-खार्जुरचक्रण (खार्जूरचक्रे)

७ (ब) ज१-भावोर्द्स्वांख्यंपातो, ज२-नोदृवस्त्रंपातो (भान्वोर्दृक्सम्पातो)

८ (अ) ज१, २-दिनकर, वा. खरकः (खरकर)

८ (ब) ज१, २-जन्मवस्त्वनल (जातस्त्वनल), ज१-अग्निसंयाता, ज२-अग्निसंघात (वह्निसंघान्)

८ (द) ज१-सर्वेरप्यवायोऽग्निकोपः (संघैरप्यवार्योऽग्निकोपः)

९ (अ) ज१-वीजरौपं, वा.-वीजरोहं (बीजरोपं), ज१, २-च वस्त्रसंभोग (च स्त्रीसङ्गं), ज१, २-दंतकृत् (दन्तकल्पनम्)

९ (ब) ज१, २-काष्टकर्म, वा.-काकर्म (काष्ठकर्म), ज१, २-रिपोर्घातं (रिपूच्चाटं)

१० (अ) वा. वभूषणं (चैवभूषणं)

१० (ब) ज२-राजावश्यं (राजवश्यं)

११ (अ) ज१-धनग्राह्यमायुषाराक्ष, ज२-धनग्राह्यंमायुराषाराज्ञ (धनग्राहमायुरोग्य)

११ (ब) ज१, २-ह्यायुष्तानपि (ह्यायुष्मति च)

१२ (ब) ज.मा.सोमयानें, वा.सोमपाने, मु.पु. सोमयानं (सोमपानं)

१३ (ब) ज२-शोभनं (शोभने), ज१, २-प्रसिद्धये (प्राकारयेत्)

१४ (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-भेदनंववंधनं (छेदनं वञ्चनं)

१५ (अ) ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-कृपरिग्रहं (कल्याणं भूपरिग्रहम्)

१५ (ब) ज१, २-सुकर्माणि, वा.-कार्याणि (सुकर्माणि)

१६ (अ) वा.-तोरणानि (तोरणादीनि)

१६ (ब) ज१-योगेन (योगे तु)

१७ (अ) ज१, २-मारणादहनं, वा.-मारणांदाहनं (मारणं दहनं)

१७ (ब) ज२-तुकारयेत्, वा.-प्रकारेयेत् (प्रकारयेत्)

१८ (ब) ज२-तुप्रकारयेत् (प्रकारयेत्)

२० (अ) ज१, २-वस्त्रगंध (वस्त्रबन्धं)

२० (ब) ज१, २-बहुरत्नानां, वा.-वंहुरत्रानां (बहुरत्नं)

२१ (अ) ज१, २-रोदनं (रोधनं)

२१ (ब) ज१-शूराणि, ज२-सूराणि (क्रूराणि)

२२ (अ) ज१-शस्त्राबंधं, ज२-शस्त्रबंध (वस्त्रवन्धं), ज१-गजारोहे (गजारोहं), ज१, २-विवादं (विवाहं), ज१, २-भूपरिग्रहं (भूपनिग्रहम्)

२३ (अ) ज१-वस्त्रकर्म, ज१-वस्त्रकर्म (शस्त्रकर्म), ज१-वस्त्राणां (शस्त्राणां)

२४ (अ) ज१, २-हारंकांविक्लापं, वा.-हारकाचीक्पाल (हारकाञ्चीकलापं)

२४ (ब) ज१-सिद्धयोगे (सिद्धियोगे)

२५ (अ) ज१, २-दद्यात्श्राद्धं, वा.-दधद्धाद्ध (दद्यात्छ्रद्धा)

२५ (ब) ज१-रिपुपातं, ज२-रिपुघातं, वा.-रिपूच्चटिं (रिपूच्चाटं), ज१-विषास्त्रायं, ज२-विषास्त्राद्यं (विषादीनि)।

२६ (अ) ज१, २-द्वाविंशति (द्वाविंशति)

२६ (व) ज१-उतिष्टसप्तयटीका: (उत्तिष्ठे सप्त घटिका:, वा.-घटिका (घटिका)

२७ (ब) ज२-सप्तकोधस्तु, वा.-काटयस्तु ९सप्तकोट्यस्तु), ज१, वाक्ष्यं, ज२-चाक्ष्यं (चाक्षयं)

२८ (अ) ज१,-लघंभू, ज२-लघंभू (लम्बभ्रू), ज१, २-वा.-नाशिकं (नासिकम्)

२८ (ब) ज१, २-मुसंघंशयोजनं (विस्तीर्ण शतयोजनम्)

२९ (अ) ज१-दंष्ट, ज२-दंष्ट्र (दंष्ट्रं)

२९ (ब) ज१, २-कारणाम्, वा.-रकं (मृत्युकारकम्)

३० (अ) ज१, २-कांवि, वा.-काचि (हारकाञ्ची)

३० (ब) ज१, २-वरीयांसि (वरीयसि)

३१ (अ) ज१, २-विषपादनं, वा.-यिशदापतं (विषदीपनम्)

३१ (ब) ज१, २-तदान्य, वा. धान्य (तथान्यत्), ज१, २-मुखकारयेत् (तु प्रकारयेत्)

३३ (अ) ज१, २-अतीर्थदेवतादीनां, वा.-प्रतिष्ठादेवतानां (प्रतिष्ठादेवतानां)

३३ (ब) ज१, २-तोरणादीनां (तोरणादीनि), ज२-सिद्धियो, वा.सिद्धयोगे (सिद्धियोगे)

३४ (अ) ज१-देवतां (देवता)

३४ (ब) वा. सिद्धयोगे (साध्ययोगे)

३५ (अ) ज१, २-धनधान्यानि (धनधान्यादि)

३८ (ब) ज१-कीर्त्यगायक, ज२-काव्यगायक (काव्यगायन), ज१-नाड्यानि, ज२-नाद्यानि (वाद्यानि), ज१, १-ऐन्द्रयोगे (योगे चैन्द्र)

३९ (अ) ज१, २-वंधनंदहनं, वा.-वचनंदहनं (वञ्चनंदाहनं)

३९ (ब) ज१, २-वैधृते (वैधृतौ)

४० (अ) ज१, २-सप्तविंशति (सप्तविशांशो)

४० (ब) ज१, २-सर्व (सर्वे)

४१ (अ) ज१, २-सूर्यचन्द्रमसौर्धिष्ण्यं (सूर्याचन्द्रमसोर्धिष्ण्य), ज१, २-पतस्तत: (यतस्तत:)

४१ (ब) ज१-ऋक्षेशयोयएवेश, ज२-ऋक्षशयोग एवेश (ऋक्षेता एव योगेशा)

***

१६

अथ करणाध्यायः

आद्यं बवं बालवकौलवाख्ये तत्तैतिलं तद्गरसंज्ञकं च।
वणिक्च विष्टिः करणानि सप्त चराणि यानि क्रमशो भवन्ति॥१॥

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, बणिज, विष्टि क्रमशः ये सात चर संज्ञक करण कहे गये हैं॥१॥

क्रमागत–

बवाह्वयं बालव कौलवाख्यं ततो भवेत्तैतिलनामधेयम्।
गरविधानं वणिजं च विष्टिरित्याहुरार्याः करणानि सप्त॥

श्रीपतिः (वृ.दै.र. पृ० २५५)

तिथ्यर्धमाद्यं शकुनिर्द्वितीयं चतुष्पदं नागकसंज्ञितं च।
किंस्तुघ्नमेतान्यचराणि कृष्णचतुर्दशी पश्चिमभागतः स्युः॥२॥

तिथि के आधे के प्रथमपाद में शकुनि, द्वितीयपाद में चतुष्पद, तृतीय पाद में नाग, चतुर्थ पाद में किंस्तुघ्न करण होते हैं। ये चारों करण कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के पश्चिम भाग (उत्तरार्ध) से गिने जाते हैं॥२॥

क्रमागत–

चतुर्दशी या शशिनाप्रहीना तस्यादिभागे शकुनी द्वितीये।
दर्शार्द्धयोस्तश्चतुरङ्घ्रनागे किंस्तुघ्नमाद्ये प्रतिपद्दले च॥

श्रीपतिः (व.दै.र. पृ० २५५)

इन्द्रो-विधाता मित्राख्यस्त्वर्यमा भूर्हरिप्रिया।
कीनाशश्चेति तिथ्यर्द्धनाथाः स्युःक्रमतस्त्वमी॥३॥

इन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, अर्यमा, भूमि, लक्ष्मी, कीनाश (धर्मराज) ये क्रमशः सात करणों के स्वामी हैं॥३॥

क्रमागत–

नारदः–

इन्द्रः प्रजापतिर्मित्रश्चार्यमाभूर्हरिप्रिया।
कीनाशः कलिरूक्षाख्यौ तिथ्यर्धे शास्त्र्यहिर्मरुत्॥

(ना.सं. ८, १)

कश्यपः–

क्रमशः करणाधीशाः सहस्राक्षः प्रजापतिः।
मित्राख्यस्त्वर्यमाभूमिः श्रीः कीनाशः कलिस्तथा॥

(क.सं. १६, १)

इन्द्रो ब्रह्मा मित्रानामार्यमाभूः श्रीः कीनाशश्चेति तिथ्यर्धनाथाः।
कल्युक्षाख्यौ सर्पवायूतथैव ये चत्वारस्ते स्थिराणां चतुर्णाम्।।

(ज्यो.नि. पृ० ३७)

स्पष्टार्थ करण तथा स्वामी

क.संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
करण नाम	बव	बालव	कौलव	तैतिल	गर	वणिज	विष्टि	शकुनि	चतुष्पद	नाग	किंस्तु.
करण स्वामी	इन्द्र	ब्रह्मा	मित्र	सूर्य	भूमि	लक्ष्मी	यम	कलि	सांड	सर्प	वायु

कलिश्चऋक्षो भुजगः पवनश्च स्थिरेश्वराः।
विज्ञेयाः सर्वकार्येषु तिथ्यर्द्धेशा बवादयः।।४।।

कलि, रुद्र, सर्प और पवन ये क्रमशः स्थिर संज्ञक करणों के स्वामी हैं। सभी कृत्यों में बवादि करणों को ही समझना चाहिए।।४।।

क्रमागत–

नारदः–

बवादिवणिगन्तानि शुभानि करणानि षट्।
परीता विपरीता वा विष्टिर्नेष्टा तु मङ्गले।।

(ना.सं. ८, २)

कश्यपः–

रक्षः संज्ञो दन्दशूको वायुरेकादशामराः।
करणानि बवादीनिशुभसंज्ञानि तानि षट्।।

(क.सं. १६, २)

चरस्थिरद्विजहितः पशुधान्यकरादि यत्।
धातुवादवणिग्धान्यकर्म सर्वं बवेहितम्।।५।।

चर, स्थिर, द्विजों के लिए, पशुधान्यादि, धातु, वाद-विवाद, व्यापार, धान्यकर्म ये सभी कृत्य बव करण में हितकारी होते हैं।।५।।

क्रमागत–

कुर्माद्बवे शुभचरस्थिरपौष्टिकानि
धर्मक्रिया द्विजहितानि च बालवाख्ये।
सम्प्रीतिसिद्धिकरणानि च कौलवे स्युः
सौभाग्य संश्रुति शुभानि च तैतिलाख्ये।।

(ज्यो.नि. पृ० ३८)

माङ्गल्योत्सवपानादि वास्तुकर्माखिलं च यत्।
नृपाभिषेकसङ्ग्रामकर्म सिद्ध्यति बालवे।।६।।

माङ्गल्य महोत्सव, पेय पदार्थ, समस्त वास्तु कृत्य, राजाभिषेक, युद्धादि कृत्य बालव करण में सिद्ध होते हैं॥६॥

क्रमागत–

पौष्टिकस्थिर शुभानि बवाख्ये बालवे द्विजहितान्यपिकुर्यात्।
कौलवे प्रमदमित्रविधनंतैतिले शुभगताश्रम कर्म।।

(ज्यो.नि. पृ० ३८)

गजोष्ट्राश्वायुधोद्यानविपिनाद्यखिलं च यत्।
बालवोक्ताखिलं कर्म कौलवे सिद्ध्यति ध्रुवम्॥७॥

गज, ऊष्ट्र, अश्व, शस्त्र निर्माण, उद्यान (पर्यावरण रक्षा) वन निर्माण और बालव करण में प्रशस्त सभी कृत्य निश्चय से कौलव करण में भी सम्पादित करना उत्तम जानें॥७॥

सन्धिविग्रहयात्रादि क्रयविक्रयकर्म यत्।
तडागकूपखननं कार्यं तैतिलसंज्ञके॥८॥

सन्धि, विग्रह, यात्रा, क्रयविक्रय, परक्रमकृत्य तड़ाग, कूप खननादि कार्य तैतिल करण में करने चाहिए॥८॥

प्राकारोद्धरणं सर्वजलकर्माखिलं च यत्।
सर्वतिथ्यर्द्धकथितं कर्म सर्वं गरे हितम्॥९॥

दीवार की नींव रखना, समस्त जल सम्बन्धी कृत्य, उपरोक्त कहे हुए करणों में प्रशर्स्त सभी कृत्य गर करण में किये जा सकते हैं॥९॥

क्रमागत–

कृषिबीजगृश्रयजानि गरे वणिजे ध्रुवकार्यवणिक्युतयः।
नहि विष्टिहभं विदधाति शुभं परघात विषादिषु सिद्धिकरम्।।

(ज्यो.नि., पृ० ३९, श्लो. ४)

मूलकर्माखिलं धातुजीवकर्माखिलं च यत्।
उक्तानुक्ताखिलं कर्म ध्रुवं वणिजि सिद्ध्यति॥१०॥

मूल, धातु और जीव सम्बन्धित समस्त कृत्य, उक्त, अनुक्त सभी कृत्य निश्चय से वणिज करण में सिद्ध होते हैं॥१०॥

क्रमागत–

गरे च बीजाश्रय कर्षणानि वाणिज्यके स्थैर्यवणिक् क्रियाश्च।
न सिद्धिमायाति कृतं च विष्ट्यां विषारिघातादिषु तत्र सिद्धिः।।

(ज्यो.नि., पृ० ३९, श्लो. ४)

वधबन्धविषाग्न्यस्त्रछेदनोच्चाटनादि यत्।
तुरङ्गमहिषोष्ट्रादि कर्म विष्ट्यां च सिद्ध्यति॥११॥

वधबन्ध, विष, अग्नि, अस्त्र, छेदन उच्चाटनादि समस्त कृत्य, अश्व, भैंस, ऊँट इत्यादि सम्बन्धी कृत्य विष्टिकरण में प्रशस्त होते हैं॥११॥

न कुर्यान्मङ्गलं विष्ट्यां जीवितार्थी कदाचन।
कुर्वन्नज्ञस्तदा क्षिप्रं तत्सर्वं नाशतां व्रजेत्॥१२॥

विष्टि करण में जीने की इच्छा वाला कभी भी मङ्गलकृत्य न करे, यदि कोई मन्दबुद्धि मङ्गलोत्सवादि शीघ्रतावश करे तो शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है॥१२॥

रुद्रस्य भालनेत्राग्निज्वालामालासमुद्भवा।
कृतकार्या ततः पृथ्व्यां व्यपतद्दग्धमङ्गला॥१३॥

शिवजी महाराज के ललाट मध्यवर्ति तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्नि ज्वाला के पुञ्ज से प्रादुर्भूत शिव की आज्ञा को निभाने के पश्चात् दैत्यों के माङ्गिलक कृत्यों को दग्ध करने के अनन्तर भद्रा पृथ्वी पर आ गई॥१३॥

तस्मात्त्याज्या परीता वा विपरीतापि मङ्गले।
तन्माहात्म्यमजानन्तो भद्रायां यदि मङ्गलम्॥१४॥
कुर्याद्वंशक्षयं तस्य सभवेन्नष्टमङ्गलः।
तस्मात्तत्र शुभं कर्म मनसापि न कारयेत्॥१५॥

अतः भद्रा शुभ हो चाहे अशुभ मङ्गलकृत्यों में त्याग करना अनिवार्य है। भद्रा के महत्व को न जानते हुए यदि भद्रा में माङ्गिलक कृत्य करे तो कर्त्ता के वंश का क्षय और विधीयमान मङ्गल कृत्य के प्रभाव से स्वयं भी नष्ट हो जाता है। अतः ऐसे मङ्गल कृत्यों का मन से भी सङ्कल्प न करे॥१४-१५॥

नाड्यः पञ्चमुखे गलेऽथ घटिका वक्षो दशैकायुताः।
नाभिस्तद्घटिकाश्चतुष्टयमिताः षणनाडिकास्तत्कटिः॥१६॥

भद्रा की समस्त नाडिकाओं में प्रथम पाँच घटी मुख, एक गले में, ग्यारह वक्षस्थल में, चार नाभी में, छः कटी भाग में—॥१६॥

क्रमागत–

नारदः–

मुखे पञ्चगले त्वेका वक्षस्येकादशस्मृताः।
नाभौ चतस्रः कट्यां तु तिस्रः पुच्छाख्यनाडिकाः॥
कार्यहानिर्मुखे मृत्युर्गले वक्षसि निःस्वता।

कट्यामुद्गमनं नाभौ च्युतिः पुच्छ ध्रुवोजयः।।
स्थिराणि मध्यमान्येषां नेष्टौ नाग चतुष्पदौ।।

(ना.सं. ८-८.५)

पुच्छं तन्नाडिकास्तिस्त्रः पुच्छान्तं मुखतः क्रमात्।
विष्टेरङ्गविभागोऽयं फलं वक्ष्ये पृथक्पृथक्।।१७।।

तीन पुच्छ में, भद्रा का मुख से पुच्छ तक घटी क्रम से अङ्ग विभाजन कर अब पृथक्-पृथक् फल निरूपण करते हैं।।१७।।

क्रमागत–

मुखे पञ्चगलेत्वेका वक्षस्येकादश स्मृता।
नाभौ चतस्त्रःषट्कट्यां तिस्रः पुच्छेतु नाडिका।।
कार्यहानिर्मुखे मृत्युर्गले वक्षसिनिःस्वता।
कट्यामुन्मत्ता नाभौ च्युतिः पुच्छे ध्रुवोजयः।
स्थिराणि करणान्येषां नेष्टौ नाग चतुष्पदौ।।

(क.सं. १६, ३-५.५)

कार्यस्य नाशो वदने गले तु मृत्युः सदा वक्षसि चार्थहानिः।
नाभौ च विघ्नंत्वथ बुद्धिनाशः कट्यांजयः संयति पुच्छभागे।।१८।।

भद्रा के मुख घड़ियों में कार्यनाश, गले की घटी में मृत्यु, छाती पर धन हानि, नाभि में विघ्न कटिभाग पर बुद्धिनाश; परन्तु पुच्छभाग में जयप्रद होता है।।१८।।

सुरासुराणां समरेऽमरेषु पराजितेष्वीश्वरकोपदृष्टेः।
जाता सुरघ्नी मुदितैः सुरौघैर्विष्टिर्नियुक्ता करणावसाने।।१९।।

देवासुर सङ्ग्राम में देवताओं के पराजित हो जाने पर भगवान् शङ्कर के प्रकोप के कारण तृतीय नेत्र से उत्पन्न देवताओं को प्रसन्न करने वाली भद्रा को प्रसन्नदेव समूह के द्वारा करणों के अन्त में नियुक्त किया।।१९।।

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां करणाध्यायः षोडशः।।१६।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के 'करणाध्याय' की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त।।१६।।

पाठान्तरम्

१ (अ) वा.-आपववञ्जय (आद्यंबवं बालव), ज१, २-यतैतिलं, वा.-मतैत्संत, ज.मो.-यस्तैतिलं (यत्तैतिलं), ज१-तद्गरसंज्ञितं वा, ज२-तद्भरसंज्ञितं वा, वा.-नहारसंज्ञं च, ज.मो.-तद्गरसंत्रितं च (तद्गरसंज्ञकं च)

१ (ब) ज१-वाणिज्य, ज२-वाणिक्व, वा.-वणिक च (वणिक्च)

२ (अ) ज१, २-तिथर्द्धमावं (तिथ्यार्धमाद्यं), ज१, २-नागच (नागक)

२ (ब) ज१, २-चलानि (चराणि), ज१-पश्चिमभागतश्च, ज२-पश्चिमेभागश्च, वा.-पश्चिप्तभागतः स्युः, ज.मो. पश्चिमभागतश्च (पश्चिमभागतः स्युः)

३ (अ) इन्द्रा (इन्द्रो), ज१, २-मित्राख्य अर्यमा (मित्राख्यस्त्वर्यमा), ज१, २-कीनाश्चेति (कीनाशश्चेति)

४ (अ) ज१, २-कलिश्च उक्षौ, ज.मो.मु.पु.-कलिश्चरक्षो (कलिश्चऋक्षो)

४ (ब) ज१-जगतितिथ्यर्द्धेशाद्ववादयः, ज२-तिथ्यर्द्धेसावनादयः, वा.-तिथ्यर्द्धेशा-वृषादयः (तिथ्यर्द्धेशा बवादयः)

५ (अ) ज१, २-पत्सुधान्याकरादियत्, वा.-शुधान्यकरादियत्, ज.मो.-धामाकरादियत् (पशुधान्यकरादियत्)

५ (ब) वा.-धातुवेदवणिक (धातुवादवणिग्धान्यकर्म), ज१, २-सर्ववेरितं (सर्वब-व्रेहितम्)

६ (अ) ज१, २-मांगलस्तत्रथानादिवास्तु, वा.-मांगल्योत्सवपानादिवात्तु (माङ्गल्यो-त्सवपानादि)

६ (ब) ज१, २-सिद्धयंति (सिद्धयति), वा.-रालेवे (बालवे)

७ (अ) ज१, २-गजाश्वोष्ट्रोयुवन्यानिनिपिनाष्वखिलं (गजोष्ट्राश्वायुधोद्यानविपिनाद्यखिलं)

८ (अ) वा.-संविग्रह (सन्धिविग्रह)

८ (ब) ज१, २-कुयर्त्तितिल (कार्यं तैतिल)

९ (अ) ज१, २-वा-आकारोद्धारणं (प्राकारोद्धरणं)

९ (ब) ज१, २-सर्वसिद्धयर्थ (सर्वतिथ्यर्द्ध)

१० (अ) ज१, २-वाणीज्ये सिद्धयति ध्रुवं (ध्रुवं वणिजि सिद्धयति)

११ (ब) ज१-विष्ट्या, ज२-वृष्ट्या, वा.-विष्वा (विष्ट्यां), ज१, २-सुसिद्धयति, वा.-चासिद्धयति (च सिद्धयति)

१२ (अ) ज१-चदावना, ज२-च दाचना, वा.-कदाचत् (कदाचन)

१३ (अ) ज१, २-फाल्गुनेशाग्नि (भालनेत्राग्नि)

१३ (ब) ज१-तस्यपृथयानिपतदुग्धमंगलं, ज२-तस्यष्ट्रयनियमतदग्धमंगलं (ततः पृथव्यां व्यपतद्दग्धमङ्गला)

१४ (अ) ज१, २-विपरीताहिमंगलं, वा.-निपरीताले (विपरीतापि मङ्गले)

१४ (ब) ज१, २-तदातावत्वभजनने (तन्माहात्म्यमजानन्तो), वा.-मंगलां (मङ्गलम्)

१५ (अ) ज१, २-कुर्या शक्षयं (कुर्याद्वंशक्षयं), ज१, २-सभवन्नष्टमंगलं, वा.-संभवेन्नष्टमंगलाः (सभवेन्नष्टमङ्गलः)

१५ (ब) ज१-तमात्तप्र, वा.-वआदुत्र (तस्मात्तत्र)

१६ (अ) ज१, २-गलोथ, वा.-नलेथ (गलेऽथ), ज१, २-वक्षोदशैक्युता, वा.-वक्षेदैशकायुता (वक्षोदशैकायुताः)

१६ (ब) ज१, २-नभिस्तघटिकाचतुष्टयमतः, वा.-पुछस्तन्नडिकास्तिस्रः (पुच्छं तन्नाडिकास्तिस्रः), ज१, २-पुच्छतो, वा.-पुछातं (पुच्छान्तं)

१७ (अ) ज१, २-पुछस्तुनाडिकास्तिस्त्र, वा.-पुछस्तन्नडिकास्तिस्त्रः (पुच्छं तन्नाडिकास्तिस्त्रः), ज१, २-पुच्छतो, वा.-पुछातं (पुच्छान्तं)

१७ (ब) वा.-विष्वेरंगविभागोयं (विष्टेरङ्गविभागोऽयं)

१८ (अ) ज१-गलेवः, गलेचः (गलेतु), ज१-२-मृत्युरुदावक्षस्यवित्तिहानिः (मृत्युः सदा वक्षसि चार्थहानिः), वा.-पुछ्छभागो (पुच्छभागे)

१९ (अ) ज१, २-पराजिहतेथीश्वरकोपदृश्येद्वा (पराजितेष्वीश्वर्कोपदृष्टैः)

१९ (ब) ज१-तासासुरग्नी, ज२-धासुरग्री (जाता सुरघ्नी), ज१, २-नुदिता (मुदितैः), ज१, २-मरोधै (सुरौधैः)

***

१७

अथ मुहूर्ताध्यायः

शिवसर्पमित्रपितरो वसुजलविश्वाब्जजद्रुहिणः।
सुरपद्विदैवदनुजाः शम्बरनाथार्यमाख्यभगाः॥१॥

शिव, सर्प, मित्र, पितर, वसु, जल, विश्वेदेवा, अभिजित्, ब्रह्मा, इंद्र, इन्द्राग्नि, राक्षस, वरुण, अर्यमा और भग ये पन्द्रह दिवस मुहूर्तों के स्वामी कहे हैं॥१॥

क्रमागत–
कश्यपः–

दिवामुहूर्ता रुद्राहि मित्राः पितृवसूदकम्।
विश्वे विधातृ वैरिंचि शक्रेन्द्राग्न्यसुराम्बुपाः॥
अर्यमाभगसंज्ञश्च क्रमशो दशपञ्च च।
रुद्राजयाहिर्बुध्न्यपूषाश्वियमवह्नयः ॥
धातृचन्द्रादितीज्याख्यविष्ण्वर्क त्वष्ट्रवायवः।
रात्रिसंज्ञा मुहूर्तास्ते क्रमात्पञ्चदशस्मृताः॥
अह्नः पञ्चदशो भागो मुहूर्तो यस्तथा निशि।
एकाधिपे मुहूर्तस्य धिष्ण्यस्य च तथा भवेत्॥

(क.सं. १७, २-५)

दिवसमुहूर्ताः कथिता दशपञ्चमितास्तथैव रात्रेश्च।
रुद्राजपादेवाहिर्बुध्न्याख्यस्ततश्च पूषाख्यः॥२॥

इसी प्रकार रात्रि के पन्द्रह मुहूर्तों के अधिपति क्रमशः रुद्र, अजपात्, अहिर्बुध्न्य, पूषा—॥२॥

क्रमागत–
नारदः–

दिवा मुहूर्ता रुद्राहिर्मित्रपित्र्यवसूदकम्।
विश्वे विधातृब्रह्मेन्द्रा इन्द्राग्निनिर्ऋतितोयपाः॥
अर्यमा भगसंज्ञश्च विज्ञेया दश पञ्च च।
ईशाजपादहिर्बध्न्याः पूषाश्वियमवह्नयः॥
धातृ चन्द्रादितिज्याख्या विष्ण्वर्कत्वाष्ट्रवायवः।
अह्नः पञ्चदशो भगस्तथा रात्रि प्रमाणतः॥
मुहूर्तमानं द्वे नाड्यौ कथिते गणकोत्तमैः।
अथाशुभमुहूर्तानि वारादिक्रमशो यथा॥

(ना.सं. ९, १-५)

अश्वियमवह्निधातृसुधाकरास्त्वदितिसुरमन्त्री।
हरिस्तीक्ष्णकरत्वाष्ट्रप्रभञ्जनाश्चेति पञ्चदश॥३॥

अश्विनी कुमार, यम, अग्नि, धातृ, चन्द्रमा, अदिति, सुरमन्त्री, विष्णु, सूर्य, त्वष्टा और वायु हैं॥३॥

क्रमागत–

रुद्रगान्धर्वयक्षेशाश्चारणो मरुतोऽनः।
रक्षोघाता तथा सौम्यः पद्मजो वाक्पतिस्तथा।
पूषाहरिवायुनिऋन्मुहूर्त्ता रात्रि संज्ञिताः॥

(ज्यो.नि., पृ० ४६, श्लोक ८)

पञ्चदशांशो दिवसे क्षणमानं तत्त्रियामायाः।
नक्षत्रेश्वरसदृशे क्षणे च तन्नामधिष्ण्यं तत्॥४॥

दिन के व रात के पन्द्रहवें हिस्से को मुहूर्त कहते हैं अर्थात् १५ मुहूर्त्त दिन में और १५ मुहूर्त्त रात्रि में होते हैं। ये क्षण वार के समान स्वामी होते हैं, इनके नामों के नक्षत्रों के अनुसार कार्य करने चाहिए॥४॥

यत्कर्म कथितमृक्षे यस्मिंस्त्कर्म तत्क्षणे कार्यम्।
दिक्छूलादिकमखिलं पारिघदण्डं च विज्ञेयम्॥५॥

जो कार्य जिस नक्षत्र में करना कहा है, वो कार्य उसी क्षणिक नक्षत्र में करें, दिक्शूल, परिघ दण्डादि योगों का ज्ञान करना आवश्यक है॥५॥

निर्ऋतपितृसार्पाख्या रौद्रेन्द्राग्नीश्वराख्यभगाः।
पापमुहूर्तास्त्वेते शुभकर्मणि दुःखशोकदा नित्यम्॥६॥

नैर्ऋत्य, पितर, सर्प, रुद्र, इन्द्राग्नि, अजपाद (यम) भग ये समस्प पाप मुहूर्त शुभ कार्यों में नित्य दुःख शोकादि के द्योतक हैं॥६॥

द्युमुहूर्तास्त्ववशिष्टा सौम्याः शुभदाश्च मङ्गले नूनम्।
शान्तिकपौष्टिककर्मसु विशेषतस्तत्प्रदाः सततम्॥७॥

जो शेष दिवा मुहूर्त हैं, वे सौम्य हैं। सर्वदा निश्चित रूप से मङ्गल कृत्यों में, शान्तिक, पौष्टिक कार्यों में विशेषतया निरन्तर श्रेयस्कर माने गए हैं॥७॥

रात्रिमुहूर्तास्त्वजपाद्रौद्राग्नेयाख्ययाम्यसंज्ञाश्च।
क्रूरतराश्चत्वारस्त्वनिष्टदास्त्विष्टदास्त्वपरे॥८॥

रात्रि मुहूर्तों में अजपाद, रुद्र, अग्नि और यम ये चार क्रूरसंज्ञक अनिष्टकारक हैं। इनसे शेष सभी शुभफलप्रद हैं॥८॥

अर्यम्णस्त्वर्कवारे हिमकरदिवसे राक्षसब्रह्मसंज्ञौ।
पित्राग्नेयौ क्षणौ तौ क्षितिसुतदिवसे सौम्यवारेऽभिजिच्च॥
दैत्याप्यौ जीववारे भृगुतनयदिने ब्राह्मयपित्र्यौ मुहूर्तौ।
सार्पेशौ तिग्मरोचिप्रियसुतदिवसे वर्जनीया मुहूर्ताः॥९॥

रविवार में अर्यमा, चन्द्रवार में राक्षस एवं ब्रह्मा, भौमवार में पितर और अग्नि, बुधवार अभिजित्, बृहस्पतिवार राक्षस तथा जल, शुक्रवार ब्रह्मा एवं पितर, शनिवार सर्प और ईश ये मुहूर्त शुभ कार्यों में वर्जित हैं॥९॥

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां मुहूर्ताध्यायः सप्तदशः।।१७।।

॥वृद्ध वसिष्ठ संहिता के 'मुहूर्ताध्याय' की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त॥१७॥

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, २-शिवसर्पमित्रवरुण (शिवसर्पमित्रपितरो), ज१-विश्वाब्जजविश्वादुहिणा, ज२-विश्वांडाजविश्वदुहिणा, वा.-विश्वाव्जजदुहिणा (विश्वाब्जजद्रुहिणः)

१ (ब) ज१-सुस्यतिदैवतिवदनुजाः, ज२-स्वस्यतिदैवतिवदनुजाः (सुरपद्विदैवदनुजाः)

२ (अ) ज१, २-रात्रिश्च (रात्रेश्च)

२ (ब) ज१, रुद्राजयाद, ज२-रुद्राजयापद, वा.-रुद्राजपाद (रुद्राजपादे), ज१, २-पूषाख्या, वा.-पूषदेवाख्यः (पूषाख्यः)

३ (अ) ज१-अश्वयमग्नि, ज२-अश्वजववद्धि (अश्वियमवह्नि), ज१, २-धातुसुधा (धातृसुधा), ज१, २-करास्त्वदि (करास्त्वदिति)

३ (ब) ज१, २-हरितीक्ष्ण (हरिस्तीक्ष्ण), ज१, २-पञ्चदशाः (पञ्चदश)

४ (अ) ज१, २-पंचदश्यंशो (पञ्चदशांशो), ज१, २-दिवसः क्षयमानं, वा.-दिवसात्क्षणामानं (दिवसेक्षणमानं), ज१, २-तत्रयाभ्यास्युः (तत्त्रियामायाः)

४ (ब) ज१, २-नक्षत्रेश्वरसदृशी (नक्षत्रेश्वरसदृशे), ज१-तत्राभिष्ण्यं (तन्नामधिष्ण्यं तत्)

५ (ब) विज्जेयं (विज्ञेयम्)

६ (अ) ज१, २-रौद्रेदाग्निनिशाचराख्यभगः (रौद्रेन्द्राग्नीश्वराख्यभगाः)

६ (ब) ज१, २-पापसुवृत्तास्तेते (पापमुहूर्तास्त्वेते)

७ (अ) ज१, २-यमुदत्तास्त्ववगिष्टाः (द्युमुहूर्तास्त्ववशिष्टा), ज१, २-शुभदाः स्वमंगलछत्रां, वा.-मंगलेनूनां (शुभदाश्चमङ्गलेनूनम्)

८ (ब) वा.-क्रूरताराःस्युः (क्रूरतराश्च)

९ (अ) ज१-संज्ञोपि (संज्ञौ)

९ (ब) ज१-त्र्याग्नेयोक्षणौ, ज२-पित्र्याग्नेयौक्षणाधौ (पित्राग्नेयौक्षणौ)

९ (स) ज१, २-नैत्रृत्यो (दैत्याप्यौ)

९ (द) ज१-सर्पेषौ, ज२-सर्पेसौ (सार्पेशौ), ज१, २-तिग्मरोचिषिच (तिमरोचिप्रियसुत)

***

१८

अथ गोचरविचाराध्यायः

कथयामि गोचरबलं सवेधबलमम्बराटानाम्।
सदसद्वलकथनार्थं विज्ञाते जन्मभे क्षितीशानाम्।।१।।

राजाओं की जन्मराशि एवं जन्मलग्न ज्ञात होने पर आकाशवासियों (ग्रह-नक्षत्रों) के वेध बल सम्पन्न शुभाशुभ फल कथनार्थ गोचर बल प्रस्तुत करता हूँ।।१।।

त्रिषडेकादशमे सूर्यः शुभदो ग्रहैर्न विद्धश्चेत्।
नवरिःफात्मजजलगैः स्वबलोपेतैर्विसूर्यसूतैः।।२।।

यदि सूर्य जन्म से ९, १२, ५, ४ स्थानों में शनि के अतिरिक्त किसी भी बलवान ग्रह से विद्ध न हो तो जन्म से ३, ६, १०, ११ स्थानों में शुभफलादाक होता है।।२।।

क्रमागत–

नारदः–

शुभोऽर्को जन्मतस्त्र्यायदशषट्सु न विध्यते।
जन्मतो नवपञ्चाम्बुव्ययगैर्व्यर्किभिस्तदा।।

(ना.सं. १२, १)

कश्यपः–

हिमाद्रिविन्ध्ययोर्मध्ये वेधजं तद् ग्रहलयात्।
श्रेष्ठो दिवाकरः षट्त्रिदशायेषु न विध्यते।।

(क.सं. २०, २)

भवदशमाद्यकलत्रत्रिषट्सु निशाकरोऽत्र बली।
नैधनजलधीष्वर्थनवान्त्यगतैर्विबुधखेचैर्न हतः।।३।।

चन्द्रमा यदि ८, ४, ५, २, ९, १२ स्थानों में बुधवर्जित ग्रहों की स्थिति द्वारा विद्ध न हो तो क्रमशः ११, १०, ९, ७, ३, ६ स्थानों में गोचर बली एवं शुभफलप्रद होता है।।३।।

क्रमागत–

नारदः–

विध्यते जन्मतो नेन्दुर्द्युनाद्यायारिखत्रिषु।
खेष्वष्टान्त्याम्बुधर्मस्थैर्विबुधैर्जन्मतः शुभः।।

(ना.सं. १२, २)

कश्यपः–

व्यार्किभिः खचरैरन्त्य नवमित्रात्मजस्थितैः।
जन्मत्रिषष्ठ सप्तायदशमस्थः शशी शुभः॥

(क.सं. २०, ३)

त्रिषडेकादशसहितो धरासुतः कामधर्मसुतसंस्थैः।
दिनकरतनयोऽपि शुभो न विद्ध्यते खचरैर्विनोष्णकरैः॥४॥

इस प्रकार मङ्गल और शनि भी ३, ६, ११ स्थानों में शुभ होते हैं, जब क्रमशः ७, ९, ५ स्थानस्थ सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रहों द्वारा विद्ध न हों॥४॥

क्रमागत–

नारदः–

त्र्यायारिषु कुजः श्रेष्ठो जन्मराशेर्न विध्यते।
व्ययेष्वर्कग्रहे सौरिरप्यसूर्य्येण जन्मतः॥

(ना.सं. १२, २)

कश्यपः–

विबुधैर्धीनवान्त्यस्वभृत्यम्बुस्थैर्नविध्यते।
त्रिषष्ठलाभगोभूमिसुतो यदि शुभप्रदः॥

(क.सं. २०, ४)

दशमेकादशनिधनस्वबन्धुशत्रुस्थितः शुभः शशिजः।
निधनान्त्यप्रथमात्मजतृतीयस्थैर्विनेन्दुखेचरैर्नहतः ॥५॥

अपनी जन्म राशि से १०, ११, ८, २, ४, ६ स्थानों में बुध शुभ होता है, जब क्रमशः ८, १२, १, ५, ३ स्थानस्थ चन्द्रमा को छोड़कर अन्य किसी ग्रह का वेध न हो॥५॥

क्रमागत–

नारदः–

ज्ञोद्व्यब्ध्यंष्टखायेषु जन्मतश्च न विध्यते।
धीत्र्यङ्कघाष्टान्त्यखेटैर्जन्मतो व्यब्जकैः शुभः॥

(ना.सं. १२, ४)

कश्यपः–

रिष्फधर्मात्मजस्थानस्थितैः खेटैर्न विध्यते।
शुभोज्ञः स्वाम्बुषण्मृत्युर्दिगायस्थो न विध्यते॥

(क.सं. २०, ५)

पञ्चमनवमायधनस्मरगः शुभदोगुरुर्न विद्धश्चेत्।
गृहकर्माष्टान्त्यत्रिस्थितखेचरैर्नास्तमितैः ॥६॥

जन्म राशि से ५, ९, ११, २, ७ स्थानों में बृहस्पति शुभ होता है। यदि ४, १०, ८, १२, ३ क्रमशः इन स्थानों में कोई अस्तंगत ग्रह न हो॥६॥

क्रमागत–

नारदः–

जन्मतः स्वायगोक्षास्तेष्वन्त्याष्टायाजलत्रिगैः।
जन्मराशेर्गुरुः श्रेष्ठो ग्रहैर्यदि न विध्यते॥

(ना.सं. १२, ५)

कश्यपः–

धीयङ्काद्याष्टरिःफस्थैःखेचरैर्यदिवीन्दुभिः।
द्विपञ्चसप्तनवमलाभस्थः शुभदो गुरुः॥

(क.सं. २०, ६)

आसुतनिधनाङ्कान्त्यभवगृहतः शुक्रः शुभदो न हतः।
वसुमदनाद्यखधर्मसुतयारिसहजगैर्न विद्धस्तैः॥७॥

अपनी जन्म राशि से शुक्र ग्रह १, २, ३, ४, ५, ८, ९, १२, ११ स्थानों में शुभफलदायक होता है। यदि ८, ७, १, १०, ९, ५, ६ तथा ३ स्थानों में वेध द्वारा क्षीण न हो॥७॥

क्रमागत–

नारदः–

कुद्यग्न्यब्धिसुष्टान्कान्त्याये शुक्रो न विध्यते।
जन्मभाग्मृत्युसप्ताद्यखाङ्केष्वायारिपुत्रिगैः॥

(ना.सं. १२, ६)

कश्यपः–

रिष्फाम्बुत्रिदशाष्टस्थैर्ग्रहैर्यदि न विध्यते।
आसुताष्टाङ्कलाभान्त्यसितः श्रेष्ठो न विध्यते॥

(क.सं. २०, ७)

वेधसमन्वितखचरा नृणां न दिशन्ति सत्फलं किञ्चित्।
व्यत्ययवेधविधानाद् दिशन्त्यशुभाः शुभफलं सततम्॥८॥

वेध संयुक्त शुभ ग्रह कभी मनुष्यों को शुभफल नहीं देते। इसके विपरीत वेध संयुक्त अशुभ ग्रह सदैव शुभ फलप्रद होते हैं॥८॥

क्रमागत–

नारदः–

न ददति शुभं किंचिद्गोचरे वेधसञ्युते।
तस्माद्वेधं विचार्याथ कथ्यते तच्छुभाशुभम्॥

(ना.सं. १२, ७)

कश्यपः–

रिष्फधर्मात्मजस्थेन ग्रहेण न्युष्णरश्मिना।
विद्धः शुभस्थानगो वा न ददति शुभंफलम्।।

(क.सं. २०, ९)

गोचरबलचिन्तायां ये न विदन्ति यथाक्रमं चेति।
गोचरबलानभिज्ञा लोके यान्ति हास्यतां सुजनाः।।९।।

गोचरबल विचार समय पर जो उपरोक्त कहे गए क्रम को नहीं जानता, इस प्रकार के गोचर बल विचार से अनभिज्ञ ज्योतिर्विद् का ज्योतिष में उपहास होता है।।९।।

क्रमागत–

नारदः–

अज्ञात्वा विविधान्वेधान्यो ग्रहज्ञो फलं वदेत्।
स मृषावचनाभाषी हास्यं याति नरः सदा।।

(ना.सं. १२, ९)

कश्यपः–

अज्ञात्वा द्विविधं यो ग्रहज्ञो बलं वदेत्।
स मृषा वचनाऽऽभाषी हास्यं याति जनैः सदा।।

(क.सं. २०, १२)

कश्यपः–

ये वदन्ति खचरव्यधक्रमं नो ग्रहक्रमविदो हि गोचरे।
ते मृषा वचन भाषिणो जना यान्ति हास्यमपकीर्तिलाञ्छिताः।।

श्रीपतिः (वृ.दै.र., पृ० ४३४)

अशुभेक्षितः कष्टफलः शुभेक्षितः सत्फलः खचरः।
शत्रुविलोकनसहिताः सर्वे ते निष्फलाः खचराः।।१०।।

अशुभ ग्रहों द्वारा दृष्ट ग्रह अशुभफल तथा शुभग्रहों द्वारा दृष्ट शुभफल देते हैं। शत्रु ग्रह द्वारा दृष्ट सभी ग्रह अरिष्टकारक अथवा निष्फल हो जाते हैं।।१०।।

क्रमागत–

नारदः–

सौम्येक्षितो नेष्टफलः शुभदो पापवीक्षितः।
निष्फलौ तौ ग्रहौस्वेन शत्रुणा च विलोकितः।।

(ना.सं. १२, १०)

कश्यपः–

शुभेक्षितोऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः।
ग्रहौ तौ निष्फलौ ज्ञेयौशत्रुणा चावलोकितौ।।

(क.सं. २०, १३)

नीचगता रिपुविजिता रव्यभिभूताः स्वशत्रुगेहस्थाः।
भुजगा इव मन्त्रहता न भवन्ति कार्यक्षमा लग्ने।।११।।

नीचगत, शत्रुविजित, अस्तंगत, शत्रुगृहस्थ ग्रह लग्न में शुभ कार्य की क्षमता नहीं रखता। जैसे सर्पमन्त्र द्वारा हत होने पर अपना कार्य नहीं कर पाता।।११।।

क्रमागत–

नारदः–

नीचराशिगतः स्वस्य शत्रुक्षेत्रगतोपिवा।
शुभाशुभं फलं नैव दद्यादस्तमितोऽपि वा।।
ग्रहेषु विषमस्थेषु शान्तिं यत्नात्समाचरेत्।
हानिवृद्धिर्ग्रहाधीना तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः।।

(ना.सं. १२, ११-१२)

कश्यपः–

नीचगो रिपुराशिस्यश्चास्तमानं न गतोऽपि वा।
शुभाशुभं फलं दातुमशक्तः खेचरः तदा।।
ग्रहेषुविषमस्थेषु यत्नाच्छान्तिं समाचरेत्।
हानिर्वृद्धिग्रहाधाने तस्माच्छ्रेष्ठतमा ग्रहाः।।

(क.सं. २०, १४-१५)

हिमकिरण सितपक्षेद्वितीयनवपञ्चमगोऽपि शुभः।
गोचरबलविषये वै विबलः पक्षे सितेतरे नूनम्।।१२।।

चन्द्रमा शुक्लपक्ष में दूसरे, नवमे और पाँचवें शुभ होता है। गोचरबल कथन के सन्दर्भ में चन्द्रमा शुक्लपक्ष में ही बलवान होता है। कृष्णपक्ष में निश्चित रूप से बलहीन हो जाता है।।१२।।

भवनान्त्यगताश्चयदा धिष्ण्यान्त्यगताश्च गगनचराः।
दद्युः परभवनफलं प्राग्भवनफलं च वक्रिता ये च।।१३।।

यदि ग्रह एव भाव से दूसरे भाव अथवा एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र की ओर जाने के लिए प्रवृत्त हो तो अग्रिम भाव अथवा अग्रिम नक्षत्र फल देता है। यदि वक्र गति हो तो पहले भाव अथवा पहले नक्षत्र का फल करता है।।१३।।

दशदिवसपञ्चदिनात्त्रिपक्षमतिचारवक्रयोर्दद्युः।
भौमाद्याः पञ्चमदिनप्राशिफलं पञ्चमासांश्च।।१४।।

दश दिन, पाँच दिन और तीन पक्ष तक अतिचारी तथा वक्रग्रह शुभशुभ फल करते हैं। भौमादि पाँच दिन अथवा पाँच मास पूर्व फलादेश करते हैं।।१४।।

भवनादिगतौ फलदौ रविभौमौ मध्यगौ च गुरू शुक्रौ।
अन्त्यगतौ शनिशशिनौ सदैव फलदः शशाङ्कसुतः॥१५॥

सूर्य और मङ्गल राशि के प्रथम दशांश में अपना शुभाशुभ फल करते हैं, बृहस्पति, शुक्र मध्यांशों अर्थात् मध्यवर्ति दश अंशों में, चन्द्रमा और शनि अन्तिम दशक में तथा बुध सदैव तीस अंशों में शुभाशुभ फल देते हैं॥१५॥

राजालोकनसमये रविरार्थः करग्रहेषु बली।
रणसमये धरणिसुतः प्रयाणसमये सितोऽतिबली॥१६॥

राजदर्शन, विवाह, युद्ध एवं यात्रा समय में क्रमशः सूर्य, बृहस्पति, मङ्गल तथा शुक्र का बलवान होना आवश्यक है॥१६॥

दीक्षणसमयेत्वसितः शशितनयो ज्ञानशिल्पविधौ।
निखिलेषु च कार्येषु चन्द्रबलमुख्यमखिलनृणाम्॥१७॥

दीक्षा, विद्या अध्ययन, शिल्प कला कौशल में क्रमशः शनि एवं बुध का बलशाली होना आवश्यक है; परन्तु समस्त कार्यों में मनुष्यों के लिए चन्द्रबल होना मुख्य है॥१७॥

हिमकरवीर्याद्वीर्यं संश्रित्यैव ग्रहाश्च साध्वसाधुफलम्।
ददतीन्द्रियाणि मनसा सहितानि यथा स्वकार्यदक्षाणि॥१८॥

चन्द्रमा से बल प्राप्त करके सभी ग्रह शुभाशुभ फल देते हैं। जैसे अपने-अपने कार्यों में दक्ष सभी इन्द्रियाँ मन के साथ युक्त होकर अपने-अपने धर्म पर कार्यशील होती हैं॥१८॥

खचरेषु यदा विषमेष्वखिलनृणां व्याधिरर्थहानिः स्यात्।
सम्यग्विचार्य मनसा ग्रहशान्तिं कारयेन्नृपतिः॥१९॥

यदि समस्त जनवर्ग के लिए ग्रह विषम परिस्थिति में हों तो व्याधि एवं अर्थ हानिकारक होते हैं। अतः सम्यगतया मन में विचार करके राजा को ग्रहों की शान्ति करवानी चाहिए॥१९॥ (यह बात केवल राजा के लिए नहीं अपितु समस्त जनवर्ग के लिए भी है।)

उच्छ्रयपतनानि नृणां खचराधीनान विशेषतो यस्मात्।
अखिलानामपि लोकानां वृद्धिस्तस्माद्ग्रहाश्च पूज्यतमाः॥२०॥

मनुष्यों का उत्थान और पतन विशेषतया ग्रहों के अधीन है। अतः समस्त लोगों को अपनी-अपनी वृद्धि हेतु ग्रहों की पूजा करना आवश्यक है॥२०॥

मासि मास्ययने चन्द्रसूर्ययोर्ग्रहणेऽपि वा।
विषुवत्यसर्कसङ्क्रान्तौ व्यतीपाते दिनक्षये॥२१॥

प्रत्येक मास की सङ्क्रान्ति, अयन सङ्क्रान्ति, चन्द्र-सूर्यग्रहण दिन, विषुवत् सङ्क्रान्ति, व्यतीपात क्षय दिन—॥२१॥

पुण्येऽह्नि चन्द्रताराणां बलयुक्तो च जन्मभे।
गृहस्येशानभागे तु मण्डपं कारयेद्वुधः॥२२॥

पुष्य दिन, जन्मराशि से चन्द्र एवं ताराओं के बलयुक्त होने पर घर के ईशान भाग में श्रेष्ठ विद्वान् को मण्डप निर्माण करना चाहिये॥२२॥

षड्द्वादशाष्टभिर्हस्तै षोडशैर्वा समन्ततः।
चतुर्द्वारसमायुक्तो तोरणाद्यैः समन्वितः॥२३॥

छः, बारह, आठ अथवा सोलह हाथ, तोरणादि संयुक्त चार द्वारों से सुशोभित मण्डप बनाना चाहिए॥२३॥

कुण्डं तन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्रकम्।
वितस्तद्वयखातं यत्कुण्डं सचतुरङ्गुलम्॥२४॥

मण्डप के मध्यभाग में चतुरस्रकोण (चौरस) दो हाथ गहरा चतुरङ्गुल मेखला सहित कुण्ड—॥२४॥

विप्राणां क्षत्रियाणां तदङ्गुलत्रयसञ्युतम्।
वैश्यानां द्व्यङ्गुलाधिक्यं शूद्राणां हस्तमात्रकम्॥२५॥

ब्राह्मणों के लिए, क्षत्रियों के लिए त्रयङ्गुल वैश्यों के लिए द्वयङ्गुल और शूद्रों के लिए एक हस्त मात्र होना चाहिए॥२५॥

प्रथम मेखला तत्र द्वादशाङ्गुल विस्तृता।
चतुर्भिरङ्गुलैस्तस्याश्चोन्नतं च समन्ततः॥२६॥

प्रथम मेखला द्वादशाङ्गुल विस्तृत, ऊँचाई चतुरङ्गुल होनी चाहिये॥२६॥

तस्याश्चोपरि वप्रः स्याच्चतुरङ्गुलमुन्नतम्।
अष्टभिरङ्गुलैः सम्यग्विस्तीर्णं च समन्ततः॥२७॥

और उसके ऊपर चतुरङ्गुल अन्दर की ऊँचाई हो, दोनों ओर से सम्यग्तया आठ अङ्गुल विस्तृत होती है॥२७॥

तस्योपरि पुनः कार्यो वप्रः सोऽपि तृतीयकः।
चतुरङ्गुल विस्तीर्णं चोन्नतं च यथाविधि॥२८॥

पुनः उसी पर तीसरी मेखला चतुरङ्गुल विस्तीर्ण शास्त्रानुसार ही बनानी चाहिये॥२८॥

योनिश्च पश्चिमे भागे प्राङ्मुखी मध्यसंस्थिता।
षडङ्गुलैश्च विस्तीर्णा चायता द्वादशाङ्गुलैः॥२९॥

कुण्ड के पश्चिम भाग के मध्य में पूर्वाभिमुखी छः अङ्गुल विस्तृत और द्वादशाङ्गुल दीर्घ योनि होती है॥२९॥

पृष्ठोन्नता गजस्यैव सच्छिद्रामद्यमोन्नता।
एवं लक्षणसञ्युक्तं कुण्डमिष्टार्थसिद्धये॥३०॥

हाथी की तरह पीछे से ऊँची और मेखला के लिए मध्य में छिद्र रखकर बीच से उन्नत योनि का निर्माण करें। इस प्रकार के शुभ लक्षणों से युक्त अभीष्ट मनोरथ सिद्धि के लिए कुण्ड का निर्माण करे॥३०॥

अनेकदोषदं कुण्डं यत्र न्यूनाधिकं यदि।
तस्मात्सम्यक्परीक्ष्यैव कर्त्तव्यं शुभच्छिता॥३१॥

यदि कुण्ड में न्यूनाधिक्य दोष आ जाएं तो वो अनेक प्रकार के उपद्रवों का सूचक होता है। अतः अच्छी तरह दिग-देश कालानुसार परीक्षा के पश्चात् कल्याण को चाहने वाला शास्त्रोक्त विधि से कुण्ड निर्माण करे॥३१॥

कुण्डस्येशानभागे तु पूजावेदीं प्रकल्पयेत्।
हस्तोन्नतां च विस्तीर्णां चतुरस्त्रां समन्ततः॥३२॥

कुण्ड के ईशान भाग में पूजा वेदी का निर्माण करें, पूजा वेदी हाथ पर ऊँची और हाथ भर ही चारों ओर से विस्तृत होनी चाहिए॥३२॥

स्नात्वादौ कायशुध्यर्थं द्विजानुज्ञां लभेत्ततः।
आशिषो वाचनं कार्यं मधुपर्कपुरःसरम्॥३३॥

शारीरिक वृद्धि के लिए सर्वप्रथम स्नान विधान के पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञानुसार मधुपर्क प्रदान पूर्वक आशीर्वाद प्राप्ति हेतु पुण्याहवाचनादि कृत्य सम्पन्न करे॥३३॥

ऋत्विजो वरयेत्पश्चात्कृतविद्याविशारदान्।
षोडश ब्राह्मणाच्छुद्धानदम्भानृतवर्जितान्॥३४॥

तत्पश्चात् वैदिक विद्या सम्पन्न मानसिक शुद्धि से युक्त सत्यवादी अहंकार रहित शान्त स्वभाव सम्पन्न सोलह ब्राह्मणों को ऋत्विज रूप में वरण करे—॥३४॥

तेषां मध्ये श्रेष्ठतमाचार्यं तं प्रकल्पयेत्।
लिखेदष्टदलं पद्मं वेदिकोपरि तण्डुलैः॥३५॥

उनके बीच में जो सर्वोत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण हो उसे मुख्याचार्य पद प्रदान करे। वेदिका के ऊपर चावलों से विभिन्न वर्णों से युक्त अष्टदलकमल लिखें॥३५॥

आदित्याद्यग्रहाणां च प्रतिमां कल्पयेत्ततः।
ताम्रेण कारयेत्सूर्यं स्फटिकेन निशाकरम्॥३६॥

सूर्यादि ग्रहों की प्रतिमाएँ निर्माण करें। ताम्र का सूर्य, स्फटिक से चन्द्रमा की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये॥३६॥

कुजं तु चन्दनेन ज्ञं सुवर्णेन गुरुं तथा।
रजतेन सितं सौरिं लोहेन तु विद्युन्तुदम्॥३७॥

लाल चन्दन से मङ्गल का, बुध तथा बृहस्पति का सोने से, चाँदी से शुक्र का, लोहे से शनि का, राहु का—॥३७॥

सीसेन शुद्धकांस्येन केतुं कुर्यात्प्रयत्नतः।
यथारुचिप्रमाणेन प्रतिमां कल्पयेत्सुधीः॥३८॥

सीसे से, शुद्धकांस्य से केतु का निर्माण करने का प्रयत्न करें तथा यथारूचि शास्त्रीय प्रमाणानुसार प्रतिमाओं की कल्पना करें॥३८॥

सूर्यस्य

वेदी मध्ये ललितकमले कर्णिकायामधःस्थः
सप्ताश्वोऽर्कोऽरुणरुचिवपुः सप्तरज्जुर्द्विबाहुः।
गोत्रे रम्ये बहुविधगुणे काश्यपाख्ये प्रसूतः
कलिङ्गाख्ये विषयजनितः प्राङ्मुखः पद्महस्तः॥३९॥

वेदी के मध्य में उत्तम कमल के मध्य में कर्णिका के नीचे सात अश्वों सहित, सात रज्जुओं से युक्त, अरुणकान्ति सम्पन्न, सुन्दर द्विबाहु, अनेक गुणों से परिमार्जित, सर्वोत्तम कश्यप गोत्र में समुत्पन्न, कलिङ्ग देश में जन्म लेने वाले, हाथ में पद्म लिए हुए पूर्वाभिमुख श्री सूर्यनारायण की प्रतिमा को अङ्कित करें—॥३९॥

आकृष्णेनेतिमन्त्रेण रविं ध्यात्वा समर्चयेत्।
अस्य मन्त्रस्य च ऋषिर्हिरण्यस्तूपसंज्ञितः॥४०॥

'आकृष्णेन' इस मन्त्र से सूर्य नारायण का ध्यान करके पूजा आरम्भ करे। इस मन्त्र का हिरण्यस्तूप ऋषि—॥४०॥

त्रिष्टुप्छन्दो देवताऽर्को मन्त्रोऽसौ सर्वकामदः।
अस्याधिदेवता रुद्रं स्थापयेद्दक्षिणे ततः॥४१॥

त्रिष्टुप्छन्द सूर्यदेवता मन्त्र एवं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् रुद्र इसके अधिदेवता हैं। उनको सूर्य नारायण के दक्षिण भाग में स्थापित करे। तत्पश्चात्—॥४१॥

मन्त्रं तु त्र्यम्बकं चास्य छन्दोऽनुष्टुप्ततो ऋषी।
वामदेववसिष्ठाख्यौ देवता परमेश्वरः॥४२॥

इसका त्र्यम्बक मन्त्र अनुष्टुप्छन्द, वामदेव, वसिष्ठ दोनों ऋषि, परमेश्वर देवता माने गए हैं॥४२॥

सूर्यस्य स्थापयेद्वह्निं वामे प्रत्यधिदेवताम्।
ग्रहाधिदेवतास्त्वेवं स्थापनीयाः प्रयत्नतः॥४३॥

सूर्य के वाम भाग में प्रत्याधिदेवता अग्नि की स्थापना करे, इसी प्रकार सभी ग्रहों के दक्षिण भाग में अधिदेव, वामभागा में प्रत्याधिदेव सप्रयत्न स्थापित करे॥४३॥

मन्त्रोऽग्निदूतमित्यस्य ऋषिर्मेधातिथिस्तथा।
अग्निस्तु देवताच्छन्दो गायत्री पापमोचनी॥४४॥

अग्निदूतं इत्यादि मन्त्र का मेधातिथि ऋषि, अग्नि देवता, पापमोचनी गायत्री छन्द माने गए हैं॥४४॥

चन्द्रस्य

आग्नेयभागे सरथो दशाश्वश्चात्रेयजो पावनदेशजश्च।
प्रत्यङ्मुखस्थश्चतुरस्त्रपीठे गदावराङ्को हिमगुः सिताभः॥४५॥

अग्निभाग में दश अश्वों से युक्त रथ वाले अत्रिगोत्रोत्पन्न पावन देश के रहने वाले पूर्वाभिमुख चतुरस्रपीठ पर श्रेष्ठ गदा से अंकित श्वेत वर्ण संयुक्त चन्द्रमा की स्थापना करे॥४५॥

आप्यायस्येतिमन्त्रेण यजेच्चन्द्रमसं सदा।
अस्य ऋषिर्गौतमाख्यो गायत्री देवता शशी॥४६॥

'आप्यायस्येति' मन्त्र द्वारा सदैव चन्द्रमा का पूजन करे, चन्द्रमा के ऋषि गौतम, गायत्री छन्द एवं देवता स्वयं चन्द्रमा ही हैं॥४६॥

गौरीर्मिमायमन्त्रेण गौरीं प्रत्यधिदेवताम्।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चास्य जगती देवता उमा॥४७॥

'गौरीर्मिमाय' मन्त्र द्वारा गोरी प्रत्यधिदेवी है। दीर्घतमा ऋषि, जगती छन्द और उमादेवी है॥४७॥

अस्याधिदेवतास्त्वापस्त्वापोहिष्ठामयो ऋचः।
सिन्धुद्वीपोऽस्यमन्त्रस्य गायत्री देवता ऋषिः॥४८॥

चन्द्रमा के अधिदेवता जल, आपोहिष्ठामाय ऋषि, सिन्धुद्वीप गायत्री छन्द और ऋषि देवता हैं।।४८।।

कुजस्य

याम्येगतः शक्तिगदात्रिशूलो वरप्रदो याम्यमुखोऽतिरक्तः।
कुजस्त्ववन्तीविषयस्त्रिकोणस्तस्मिन्भरद्वाजकुले प्रसूतः।।४९।।

याम्य दिशा में शक्ति गदा त्रिशूल से युक्त, वरप्रदायक, याम्यमुख, गहरे लाल रंग वाला मङ्गल है। आवन्तीदेशज, त्रिकोण आकृति (विषय) और भारद्वाज ऋषि कुलोत्पन्न है।।४९।।

अग्निर्मूर्द्धेतिमन्त्रेण सम्यग्ध्यात्वा कुजं यजेत्।
ऋषिर्विरूपो गायत्री देवताङ्गारकोऽस्य च।।५०।।

'अग्निमूर्द्धेति' मन्त्र द्वारा भली भाँति ध्यान करके मङ्गल का पूजन करे, इसके विरूप ऋषि गायत्री छन्द और अङ्गरक देवता हैं।।५०।।

स्कन्दोऽधिदेवता त्वस्य सावित्री देवता गुहः।
मन्त्रस्य स्कन्दगायत्री स्कन्दस्य प्रीतिदायिका।।५१।।

इसके अधिदेवता स्कन्ध हैं, सावित्री देवता गुहमन्त्र, स्कन्द गायत्री स्कन्द के प्रति प्रीतिदायक है।।५१।।

स्योनापृथिव्यसौ मन्त्रस्त्वितरो देवता मही।
गायत्री देवता भूमिस्तस्य मेधातिथिर्त्रऋषिः।।५२।।

'स्योनापृथ्वी' इस का मन्त्र है, पृथ्वी प्रत्याधिदेवता है, गायत्री देवता भूमि मेधातिथि ऋषि हैं।।५२।।

बुधस्य

उदङ्मुखो मागधजो हरिस्थस्त्वात्रेयगोत्रः शरमण्डलस्थः।
सखड्गचर्मोरुगदाधरो ज्ञस्त्वीशानभागे वरदः सपीतः।।५३।।

उदङ्मुख, मागधदेशज, विष्णुदेवता, अत्रिगोत्र, शरमण्डलस्थ, खड्ग, चामर, गदाधर, पीतवर्ण बुध ईशान भाग में वर प्रदायक हो।।५३।।

अग्ने विवस्वदुरवसस्त्वितिमन्त्रेण चन्द्रजम्।
प्रस्कण्वो वृहती छन्दस्त्वस्यास्ति देवता बुधः।।५४।।

'अग्नेविवस्वदुरसस्तु' मन्त्र द्वारा चन्द्रमा पुत्र बुध प्रस्कण्व ऋषि, बृहतीछन्द, बुधदेवता—।।५४।।

मन्त्रेणेदं विष्णुरिति विष्णुः पूज्योऽधिदेवता।
ऋषिर्मेधातिथिच्छन्दो गायत्री देवता हरिः।।५५।।

इस मन्त्र द्वारा विष्णु अधिदेवता के रूप में पूजें। मेधातिथि ऋषि, गायत्री छन्द और विष्णु देवता हैं।।५५।।

विष्णुं च देवतामन्यत्पुरुषसूक्तेन चार्चयेत्।
ऋषिर्नारायणमोऽनुष्टुबन्यस्मिन्देवता ऋषिः।।५६।।

विष्णु को देवता मान कर पुरुषसूक्त मन्त्रों द्वारा अर्चना करनी चाहिए। नारायण ऋषि, अनुष्टुप्छन्द और अन्य ऋषि देवता हैं।।५६।।

बृहस्पते

सौम्ये सुदीर्घे चतुरस्रपीठे रथोऽङ्गिराः सौम्यमुखः सुपीतः।
द्वन्द्वाक्षमालाजलपात्रधारी सिन्ध्वाख्यदेशो वरदश्चजीवः।।५७।।

सौम्य, विस्तृत, चतुरस्रपीठ में, अङ्गिरा रथ से युक्त, सौम्यमुख, पीतवर्ण, रुद्राक्षमाला, जलपात्रधारी सिन्धुदेशज बृहस्पति वर देने वाला हो।।५७।।

वृहस्पते अतियदर्यो अनेन गुरुमर्चयेत्।
ऋषिरस्य प्रतिरथस्त्रिष्टुब्जीवोऽत्रदेवता।।५८।।

'बृहस्पते अतियदर्यो' मन्त्र द्वारा गुरु की अर्चना करनी चाहिए जिनके प्रतिरथ ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द और जीव देवता हैं।।५८।।

अस्याधिदेवता ब्रह्म ब्रह्मजज्ञानमित्यृचः।
तमर्चयेद्ऋषिर्भर्गस्त्रिष्टुब्ब्रह्मैव देवता।।५९।।

इसके अधिदेवता ब्रह्मा, ब्रह्म ज्ञान की ऋचा ऋषि भग, त्रिष्टुप्छन्द और ब्रह्म देवता हैं। (इसकी अर्चना इस विधि से करनी चाहिए।)।।५९।।

इन्द्रायेन्द्रो मरुत्त्वष्ट्रस्त्वनेनेतरदैवतम्।
छन्दो ऋषिः कश्यपोऽस्य गायत्री देवता हरिः।।६०।।

प्रत्यधिदेवता इन्द्र, कश्यप ऋषि गायत्री छन्द और विष्णु देवता हैं।।६०।।

शुक्रस्य

प्राच्यां भृगुर्भोजकटे प्रजातः सभार्गवः पूर्वमुखः सिताभः।
सपञ्चकोणे सरथाधिरूढो दण्डाक्षमालावरदाम्बुपात्रः।।६१।।

पूर्व दिशा में, भोजकट देशज, सफेद चमक वाला पूर्वाभिमुख, पञ्चकोणों में रथारुढ़, दण्डाक्षमाला, जलपात्र से संयुक्त शुक्र वरदायी हो।।६१।।

ध्यात्वासमर्चयेच्छुक्रं तत्रान्नादिति तदृचा।
त्रिष्टुबृषिर्भरद्वाजो देवता दनुरर्चितः।।६२।।

उक्तरूप शुक्र का ध्यान करके 'अन्नादिति' इत्यादि ऋचा के द्वारा शुक्र की पूजा करे, 'अन्नादिति' इस मन्त्र का भारद्वाज ऋषि त्रिष्टुप्छन्द दानवपूज्य शुक्र देवता—॥६२॥

अस्याधिदेवता शक्रस्त्वनेनैवार्चयेतु ताम्।
इन्द्राणी देवता चास्य धृतिर्मेधातिथिर्ऋषिः॥६३॥

इन्द्राधिदेवता, इन्द्राणी प्रत्यधिदेवता, इन्द्राणी देवता का मन्त्र, मेधातिथि ऋषि एवं धृति छन्द जानना॥६३॥

मन्त्रेणोत्तानपर्येण चास्य मेधातिथिर्ऋषिः।
इन्द्राणी देवता तत्र त्वनुष्टुप्छन्दसंज्ञितम्॥६४॥

'उत्तानपर्येण' इत्यादि मन्त्र, मेधातिथि ऋषि, अनुष्टुप्छन्द, इन्द्राणी देवता जानना॥६४॥

शनेः

चापासने गृध्ररथः सुनीलः प्रत्यङ्मुखः काश्यपजः प्रतीच्याम्।
सशूलचापेषु वरप्रदश्च सौराष्ट्रदेशे प्रसवश्च सौरिः॥६५॥

चापासन, गृध्ररथ, नीलवर्ण, पश्चिमाभिमुख, कश्यपगोत्र, पश्चिमदिशा, शूल, चाप, वाण तथा वरदमुद्रा, चतुर्भुज रूप, सौराष्ट्रदेशोत्पन्न शनि जानना॥६५॥

शन्नोदेवीत्यनेनैव मन्त्रेण शनिमर्चयेत्।
अस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री देवता शनिः॥६६॥

'शन्नोदेवी' इस मन्त्र द्वारा सिन्धुद्वीप ऋषि गायत्री छन्द शनि देवता की पूजा करे॥६६॥

यमोऽधिदेवता पूज्या त्वायङ्गौरित्यनेन च।
सर्पराज्ञी ऋषिश्चास्य गायत्री देवता यमः॥६७॥

'आयङ्गौ' इस मन्त्र की शनिदेवता, यम अधिदेवता सर्पराज्ञी ऋषि, गायत्रीछन्द, यम देवता—॥६७॥

प्रजापतिस्त्वस्य शनेः प्रतिपूर्वाधिदेवता।
प्रजापतेनत्वदेतेत्यनेनैव यजेत्तुताम्॥६८॥

'प्रजापतेनत्व..तेत्य' इस मन्त्र का शनिदेवता प्रजापति प्रत्यधिदेवता—॥६८॥

त्रिष्टुप्छन्दोऽस्य मन्त्रस्य स्वर्णगर्भऋषिस्ततः।
प्रजापतिर्देवतायां मन्त्रः स पापमोचकः॥६९॥

त्रिष्टुप्छन्द, स्वर्णगर्भ (हिरण्यगर्भ) ऋषि पापमोचनार्थ, प्रजापति प्रत्यधिदेवता के निमित्त विनियोग समझें॥६९॥

राहोः

पैठनीसो वर्वरदेशजातः शूर्पाऽऽसनः सिंहगमः सधूम्रः।
याम्यायने नैर्ऋतगः करालो वरप्रदः शूलसचर्मखड्गः॥७०॥

पैठनीस, वर्वरदेशोत्पन्न, शूर्पासन, सिंहवाहन, धूम्रवर्ण, दक्षिणायन में प्रधान, नैर्ऋत्य कोण में स्थान, करालरूप, शूल, चर्म (ढाल), खड्ग तथा वरदमुद्रा में चतुर्भुज राहु जानें॥७०॥

कयानश्चित्र आभुव इतिमन्त्रेण चार्चयेत्।
गायत्री वामदेवोऽस्य ऋषी राहुश्च देवता॥७१॥

'कयानश्चित्र आभुव' इस मन्त्र से राहुपूजन करे। इसका गायत्री छन्द, वामदेव ऋषि, राहु देवता॥७१॥

कालोऽधिदेवता ब्रह्मजज्ञानमिति चार्चयेत्।
त्रिष्टुप्छन्दो वामदेव ऋषिः कालोऽधिदेवता॥७२॥

'ब्रह्मजज्ञानमिति' इस मन्त्र का त्रिष्टुप्छन्द, वामदेव ऋषि, काल अधिदेवता जानकर पूजा करें॥७२॥

अपरा देवता सर्पा नमोऽस्त्विति समर्चयेत्।
अग्निर्ऋषिर्विराट्छन्दः सर्पाश्चास्याधिदेवताः॥७३॥

'नमोऽस्तुसर्पेभ्यो' इस मन्त्र का अग्नि ऋषि, विराटछन्द, सर्पप्रत्यधि देवता जानकर दूसरे सर्प देवता की अर्चणा करे॥७३॥

केतोः

वृकासनो जैमिनिगोत्रजोऽन्तर्वेदीसुदेशः सुविचित्रवर्णः।
याम्यायनो वायुदिशि प्रखड्गचर्मा शिखी चाष्टशतोऽथचैकः॥७४॥

वृकासन (वृकवाहन), जैमिनीगोत्र, अन्तर्वेदी-देशोत्पन्न, विचित्र वर्ग, दक्षिणायन प्रधान, वायुदिशा, खड्ग, चर्म धारण किए एक सौ आठ (१०८) केतु जानें॥७४॥

केतुं कृण्वन्ननेनैव चार्चयेत्तं प्रयत्नतः।
मधुऽच्छन्दो ऋषिरस्य गायत्री देवता शिखी॥७५॥

'केतु कृण्वन्ननेनैव' इस मन्त्र का मधु छन्द ऋषि, गायत्रीछन्द, शिखी देवता कर प्रयत्न से पूजा करे॥७५॥

आस्याधिदेवता चित्रगुप्तो ज्ञात्वा तमर्चयेत्।
छन्दोऽनुष्टुप्सोम ऋषिश्चित्रगुप्तोऽस्य देवता॥७६॥

'चित्रावसो' इस मन्त्र का अनुष्टुप्छन्द, सोमऋषि चित्रगुप्त अधिदेवता की पूजा करे॥७६॥

अस्याधिदेवता ब्रह्मा त्वेव ब्रह्म य इत्यृचा।
विश्वेदेवा ऋषिर्विरराङ्गायत्री ब्रह्मदेवता॥७७॥

'ब्रह्मात्वेषब्रह्मय' इस ऋचा का विश्वेदेव ऋषि, विराट गायत्री छन्द ब्रह्मप्रत्यधिदेवता जानना॥७७॥

शनैः पश्चिमतः स्थाप्य विनायकमथार्चयेत्।
गणनान्त्वेति जगती भर्गर्षिर्देवता स्वयम्॥७८॥

शनि से पश्चिम दिशा में श्रीगणेश जी की पूजा करें। इसके 'गणानान्त्वेति' मन्त्र जगती छन्द और भृगुऋषि स्वयं देवता हैं॥७८॥

तस्य दक्षिणतो दुर्गां जातवेदस इत्यृचा।
त्रिष्टुब्छन्दः कश्यपोऽस्य ऋषिर्दुर्गात्र देवता॥७९॥

उसके दक्षिण भाग में माँ दुर्गा जी को स्थापित करके 'जातवेदस' इस मन्त्र द्वारा पूजा करे। इसका त्रिष्टुप्छन्द, कश्यप ऋषि और दुर्गा जी देवता हैं॥७९॥

वायुतो दक्षिणे कोणे शिशुमन्त्रेण चार्चयेत्।
गौरी इति ऋषिश्चास्य गायत्री देवता मरुत्॥८०॥

वायु से दक्षिण कोण में शिशु मन्त्र द्वारा श्रीगौरि की पूजा करे, जिसके ऋषि गायत्री देवता मरुत् हैं॥८०॥

दक्षिणे तस्य चाकाशमादित्यं च समर्चयेत्।
ऋषिर्भृगोऽस्य गायत्री चाकाशो देवता ततः॥८१॥

उसके दक्षिण भाग में आकाश और सूर्य देवताओं की पूजा करनी चाहिए। इनके भृगु ऋषि, गायत्री छन्द और आकाश देवता हैं॥८१॥

अश्विनौ दक्षिणे तस्य कार्या वै षोडशा ऋचा।
ऋषिः कण्वोऽस्य गायत्री च्छन्दोऽश्विनौ च देवते॥८२॥

गायत्री तथा आकाश के दक्षिण में अश्विनी कुमारों की षोडश मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए। इसके कण्व ऋषि, गायत्री छन्द और अश्विनी कुमार देवता हैं॥८२॥

इन्द्रश्चैरावतारूढो वज्रपाणिः शचीप्रियः।
स्वर्णवर्णः सहस्राक्षो नायकस्त्वमरेश्वरः॥८३॥

ऐरावत नामक हाथी पर सवार, हाथों में वज्र लिए हुए, शचीप्रिय, सुनहरे वर्णवाले, हजार नेत्रों वाले, देवताओं में अग्रगण्य इन्द्र देवता हैं॥८३॥

पद्मपूर्वदलाग्रे च इन्द्रमिन्द्रश्च इत्यृचा।
वायुश्छन्दः ऋषिरस्य गायत्री देवता स्वयम्॥८४॥

पूर्वभाग कमल दल पर 'इन्द्रमिन्द्रश्च' इस मन्त्र द्वारा पूजा करे। इसके वायु छन्द, गायत्री ऋषि और इन्द्र स्वयं देवता हैं॥८४॥

अग्निः सुवर्णः सप्तार्चिः सप्तहस्तोर्द्ध्ववक्त्रकः।
स्वाहाप्रियो मेषगमः षडक्षः स्रुवस्रुवायुधः॥८५॥

अग्नि, सुवर्ण, सप्तजिह्वा वाले, सात हाथों वाले, ऊर्ध्वमुख, स्वाहाप्रिय, मेष वाहन, छः आँखों वाले स्रुवा रूप आयुध (शस्त्र) को धारण करने वाले अग्नि देवता हैं॥८५॥

आग्नेय्यामर्चयेदाग्निमग्निं दूतमनेन च।
ऋषिर्मेधातिथिश्छन्दो गायत्री देवताऽनलः॥८६॥

अग्नि दिशा में 'अग्निदूतं' इस मन्त्र के द्वारा अग्नि की पूजा करें, इसके मेधातिथि ऋषि, गायत्री छन्द और स्वयं अग्नि देवता हैं॥८६॥

इलप्रियो दण्डधरो यमो महिषवाहनः।
रक्तवर्णो हि लोकानां स्वस्वकर्मफलप्रदः॥८७॥

इला नामिका पत्नी के प्रिय, दण्डधारी भैंसे पर सवार, रक्तवर्णसंयुक्त यम देवता संसार को अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल प्रदान करने वाले हैं॥८७॥

यमं यजेद्याम्यदले यमाय सोममित्यृचा।
ऋषिः शातातपोऽनुष्टुप्छन्दोऽसौ देवता यमः॥८८॥

यमदेव की दक्षिण दिशा में 'यमाय सोमम्' इस मन्त्र द्वारा अग्नि पूजा करे। इसके शातातप ऋषि, अनुष्टुप्छन्द और यम देवता हैं॥८८॥

खड्गचर्मधरोनीलो निर्ऋतिर्नरवाहनः।
ऊर्ध्वकेशो विरूपाक्षः करालः कालिकाप्रियः॥८९॥

खड्ग और चर्मधारी, नील वर्ण, मनुष्यों की सवारी वाला, खड़े बालों वाला, विकृत आँखों वाला, भयङ्कर स्वरूप वाला, कालिका का प्रिय निर्ऋति है॥८९॥

मोषुणास्त्विवतिमन्त्रेण नैर्ऋत्यां निर्ऋतिं यजेत्।
गायत्री घोरकण्ठोऽस्य निर्ऋतिर्देवता स्वयम्॥९०॥

निर्ऋति की 'मोषुणस्त्वि' मन्त्र के द्वारा नैर्ऋत्य दिशा में पूजा करें। इसका गायत्री छन्द, घोरकण्ठ ऋषि और स्वयं निर्ऋति देवता है॥९०॥

नागपाशधरो रत्नभूषणः पद्मिनीप्रियः।
वरुणोऽम्बुपतिः स्वर्णवर्णो मकर वाहनः॥९१॥

नागपाशधारी, रत्नभूषणों से सुसज्जित पद्मिनी प्रिय, जल के देवता, स्वर्ण वर्ण वाले मकर (मगरमच्छ) सवारी करने वाले वरुण देवता हैं॥९१॥

वरुणं पश्चिमे भागे त्वन्नो अग्न इत्यृचा।
वामदेव ऋषिस्त्रिष्टुब्वरुणो देवताऽस्यच॥९२॥

पश्चिम भाग में 'त्वन्नो अग्न' इस मन्त्र के द्वारा वरुण की पूजा करें। इसके वामदेव ऋषि, अनुष्टुप्छन्द और वरुण स्वयं देवता हैं॥९२॥

प्राणरूपो हि जगतो वायुः कृष्णमृगासनः।
हेमदण्डधरः श्यामवर्णोऽसौ मोहिनी प्रियः॥९३॥

कृष्ण मृग् की सवारी वाले, संसार के लिए प्राणस्वरूप, स्वर्ण दण्डधारी, श्याम वर्ण और मोहिनीप्रिय वायु देवता हैं॥९३॥

तववायुवृतइति यजेद्वायुं मरुद्दिशि।
वायुश्च देवतात्वस्य गायत्री ऋषिरङ्गिराः॥९४॥

मरुत् दिशा में 'तवावायुवृत' इस मन्त्र के द्वारा वायु देवता की पूजा करे। इसके वायु देवता, गायत्री छन्द और अङ्गिरा ऋषि हैं॥९४॥

अश्वारूढः कुन्तपाणिः कुवेरश्चित्रिणीप्रियः।
निधीश्वरः स्वर्णवर्णः स्वर्णदो रूपवान्प्रभुः॥९५॥

घोड़े पर सवार, भालाधारी, चित्रिणीप्रिय खजानों के स्वामी, सुनहरे वर्ण वाले, रूपवान, ऐश्वर्यशाली कुबेर देवता हैं॥९५॥

सोमोधेनुमनेनैव उदीच्यां च धनेश्वरः।
त्रिष्टुप्छन्दो गौतमोऽस्य देवता सोमसंज्ञकः॥९६॥

उत्तर दिशा में 'सोमोधेनु' इस मन्त्र द्वारा कुबेर देवता की पूजा करें। इसका त्रिष्टुप्छन्द, गौतम ऋषि और सोम संज्ञक देवता हैं॥९६॥

शुद्धस्फटिकसंकाशो गौरीशो वृषवाहनः।
वरदाभयशूलाक्षः शूलभृत्परमेश्वरः॥९७॥

शुद्धस्फटिक सदृश वर्ण वाले, गौरीपति, वृषभ् की सवारी वाले, अभयमुद्रा में वरप्रदायक, प्रचण्डदीप्त नेत्रों वाले, त्रिशूलधारी परमेश्वर शिव हैं॥९७॥

कृद्रुद्रायेतिमन्त्रेणईशान्यां रुद्रमर्चयेत्।
गायत्री घोरकण्ठोऽस्य देवता चन्द्रशेखरः॥९८॥

ईशान दिशा में 'कृद्रुद्राय' इस मन्त्र द्वारा शिव की पूजा करें, गायत्री छन्द, घोरकण्ठ ऋषि और चन्द्रशेखर (शिवजी) देवता हैं॥९८॥

नवग्रहों की समिधाएँ

अर्कः पलाशखदिरापामार्गाश्वत्थसम्भवाः।
उदुम्बरशमीदूर्वाकुशजाः समिधाः क्रमात्॥९९॥

अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, अश्वत्थ, उदुम्बर, शमी, दूर्वा और कुशा क्रम से नवग्रहों की समिधाएँ कही गई हैं॥९९॥

क्रमागत–

श्रीपतिः–

अर्कादब्राह्ममहीरुहात्खदिरतोऽपमार्गतः।
पिप्पलादार्द्रौदुम्बरशाखिनोप्यथशमी दूर्वाकुशेभ्यः क्रमात्॥
सूर्यादिग्रहमण्डलस्य समिधो होमाय कार्या बुधैः।
सुस्निग्धाः सरलास्त्वचावनिमिताः प्रादेशमात्रा स्थिताः॥

आचार्य श्रीपतिः (वृ.दै.र. पृ० ४८९)

आर्द्राश्च सत्त्वनिबिडाः स्निग्धाः प्रादेशसम्मिताः।
कनिष्ठिकातुल्यवृत्ता होमकर्मणि कामदाः॥१००॥

गीली, सात्विक समिधाओं का समूह चिकनी, प्रादेश माप (कनिष्ठिका से अङ्गुष्ठ पर्यन्त परिमाण) वाली समिधाएँ होम कार्य में इच्छाओं को पूर्ण करने वाली होती हैं॥१००॥

लिखिताष्टदले पद्मे तस्मिन्कुण्डे हुताशनम्।
आचार्यः स्थापयेत्सम्यक् स्वगृह्योक्तविधानतः॥१०१॥

अष्टदल पद्म रूप में कुण्डनिर्माण करके आचार्य भली-भाँति अपनी गृह्यसूत्रोक्त विधि से अग्नि स्थापित करें॥१०१॥

मुखान्ते चार्चयेत्साधिदेवताश्चाखिलग्रहान्।
पूर्वोक्तमन्त्रैः स्वैः स्वैश्च लोकपालान्समर्चयेत्॥१०२॥

अग्निस्थापन के पश्चात् अधिदेवता, प्रत्यधिदेवता सहित नवग्रह पञ्चलोकपाल, दशलोकपाल देवताओं का पूर्वोक्त स्वस्व मन्त्रों द्वारा पूजन करवाए॥१०२॥

तस्याश्चेशानभागे तु पूर्णकुम्भं नवं न्यस्येत्।
पञ्चत्वक्पल्लवोपेतं शतौषधिसमन्वितम्॥१०३॥

पञ्चवृक्षीय छाल, पञ्चपल्लव, शतौषध युक्त मण्डप के ईशान भाग में नवीनपूर्ण कुम्भ स्थापन करे॥१०३॥

स्वर्णरत्नफलोपेतं मृत्तिकावस्त्रसञ्युतम्।
अब्लिङ्गैर्वारुणैर्मन्त्रैरर्चयेद्द्विजसञ्युतम्॥१०४॥

स्वर्णखण्ड, पञ्चरत्न, अष्टफल (ऋतुफल) सप्तमृत्तिका, रक्तवस्त्र, अब्लिङ्गोक्त (जिमन्त्रों में अप शब्द जलवाची आता हो उन्हें अब्लिङ्ग कहते हैं) वारुणमन्त्रों के द्वारा ब्राह्मणों सहित अर्चना करे॥१०४॥

उदुम्बरवटाश्वत्थप्लक्षाम्राब्जजसम्भवम् ।
तिलमाषव्रीहियवा गोधूमान्नप्रियङ्गवः॥१०५॥

उदुम्बर, वट (न्यग्रोध), अश्वत्थ, प्लक्ष, आम्र, कमल इनके पत्तों के द्वारा एवं तिल माष व्रीहि (शाली) यव, गोधूमान्न, कङ्गनि, मालकङ्गनि इत्यादि धान्य—॥१०५॥

गजाश्वगोकुलस्थानाद्रथ्यावल्मीकसम्भवात्।
ह्रदाच्च नगरद्वारात्सम्भूताष्ट च मृत्तिकाः॥१०६॥

गज, अश्व, गो, रथ्या (राजमार्ग) वर्मी, सरोवर तथा नगरद्वार इन आठ स्थानों की अष्टमृत्तिका—॥१०६॥

श्रीवृक्षविल्वखदिरविष्णुक्रान्तापुनर्नवाः।
देवदारुज़टामांसी सहदेवीमुराशिवाः॥१०७॥

नारिकेल, बिल्व, खदिर (खैर), विष्णुक्रान्ता (इट्टसिट्ट), देवदारु (दयार), जटामांसी, सहदेवी मुरा (मोडयां), शिवा (गिलोय)—॥१०७॥

फलिनीबकुलाजातिर्लतामञ्जिष्ठसंज्ञिकाः।
वटप्लक्षाम्रनीवारखदिरामल्लिकार्जुनाः॥१०८॥

फलिनी (फलाई), बकुला (मौलश्री), जाति (जैफल) लता, मंजिष्ठा (मंज़ीठ), वट (वोहड़), प्लक्ष, आम, नीवारधान्य, खैर, मल्लिका (मोतिया) अर्जुन—॥१०८॥

दमयन्तीमहाजातीनिम्बोशीरहरिद्रकाः।
सर्पाक्षीतुलसीरौद्रकुटादाडिमचम्पकाः॥१०९॥

दमयन्ती, महाजाती, निम्ब, उशीर (पन्नीजड़), हरिद्र (हल्दी), सर्पाक्षी (सरवैन्ख), तुलसी, रौद्र, रुद्रवन्ती (सोना बनाने की बूटी), कुट (कौड़), दाडिम, चम्पक (चम्पा)—॥१०९॥

मातुलुङ्गजपात्वष्टौकर्णिकारोर्णकाञ्चनाः।
सेवतीपनसद्राक्षाविशाक्षीश्वेतसर्षपाः ॥११०॥

मातुलुङ्ग, जपा (पुष्प विशेष), अष्टौवध (जीवक, ऋषभक, सहदेवी, महादेवी, मेदा, काकोली ऋद्धिवृद्धि, कर्णिकार (गंडीला), ऊर्णक, काञ्चन, सेवती, पनस, द्राक्षा, विशाक्षी, श्वेत सषर्प (सिद्धार्थ)—॥११०॥

राजीवकुन्दमुकुलनीलोत्पलकरञ्जकाः।
पुन्नागचन्दनद्रोणमन्दरो हेमदुग्धकः॥१११॥

कमल, कुन्दमुकुल (रात्रि में लिखने वाले पीतपुष्प), नीलोत्पल (नापा), करञ्ज, पुन्नाग (नागकेसर), चन्दन, द्रोणपुष्पी, मन्दर, हेमदुग्धक (स्वर्णक्षीरी)—॥१११॥

रक्तचन्दनजम्बीरयूथिकागृहमल्लिकाः।
सम्पाकः सिन्दुवारेन्द्ररक्तधत्तूरखण्डिमाः॥११२॥

रक्तचन्दन, जम्बीर (जमीरी), यूथिका (जूही), गृहमल्लिका (घरेलूमोतिया), सम्पाक (आरग्वधवृक्ष), सिन्दुवार (वना), इन्द्रयव, रक्तधतूरा, खण्डिमा (खण्डुआ)—॥११२॥

अपामार्गोरुपालाशवृहतीकरवीरकाः।
नन्द्यावर्तकुबेराक्षापाटलीहेमपुष्पिकाः॥११३॥

अपामार्ग (परकन्डा), उरुपलाश (बड़े पत्तों वाला पलाश), वृहती (कन्डयारी), करवरी (लालगंडीला), नन्द्यावर्तमणि, कुवेराक्षी वूटी, पाटली (छोटा गुलाब), हेमपुष्पिका (स्वर्गपुष्पी)—॥११३॥

शिरीषामलकाशोरक्तागस्तिकपित्थकाः।
बन्धूकभृङ्गराजाख्यकृष्णावीमाधवीलताः॥११४॥

शिरीष (सरींह), आमला, अशोक, रक्त अगस्ती, कपित्थक (कैंथ), बन्धूक (पुष्पविशेष), भृङ्गराज (भाङ्गरा), कृष्णावी (काली मिर्च), माधवी लता (वैशाख में फलने वाली लता विशेष)—॥११४॥

चतुर्जातो बर्हिशिखा कुटजो मधुविम्बकः।
तमालतरुपुष्पारुपुष्पाख्यश्चक्रमर्दिनी॥११५॥

चतुरजात, बर्हिशिखा (म्यूरशिखा), कुटज (कोगड़), मधुविम्बक (महिआ), तमालवृक्ष, पुष्पवतीवूटी, अरुपुष्प, चक्रमर्दिनी (हेड़वां)—॥११५॥

व्याकुली शाल्मली मौडीरास्नाखर्वपटोलिकाः।
महाखार्जूरिका नारिकेलाख्यास्ते शतद्रुमाः॥११६॥

व्याकुली वूटी, शाल्मली (सिम्बल सेमर), मौडी, रास्ना, खर्वपटोलिका (छोटी पटोल), बड़ी खजूर नारियल ये सौ १०० वृक्षों की पञ्चाङ्ग (जड़, फल, पुष्प, छाल, पत्ते) ग्रहण करें। इन्हें शतौषधि कहा जाता है॥११६॥

एषां मूलानि सर्वाणि नृणामेनो नुदन्ति यत्।
शान्तिकर्मणि सर्वत्र निःक्षेपेत्कलशोदके॥११७॥

इन सभी शतौषधियों के मूल मनुष्यों के पापों को दूर करते हैं। इन्हें शान्तिक कर्मों में कलश के जल में डालना चाहिए॥११७॥

एषामभावे तु दश सर्वौषध्यः प्रकीर्तिताः।
उद्धृतासीतिमन्त्रेण सदा तत्राष्टमृत्तिकाः॥११८॥

इनके अभाव में दश औषधियों (सर्वोषधि) को ग्राह्य माना है, 'उद्धृतासी वराहेन' इस मन्त्र से अष्टमृत्तिका का ग्रहण करना चाहिये॥११८॥

चातुर्जातमुशीरं च पद्मकं फलिनीमुखम्।
देवदारुनिशा चैषां त्वक्पत्राणि च निक्षिपेत्॥११९॥

चातुर्जात, उशीर, पद्माक्ष, फलिनी, देवदारू, हल्दी, उक्त वृक्षों के त्वक् एवं पत्र कलश में डालने चाहिए॥११९॥

उपचाराणि सर्वेषामपि शुक्लाक्षतैः सदा।
ग्रहवर्णाश्च दातव्या गन्धपुष्पाक्षतध्वजाः॥१२०॥

सभी प्रकार के उपचार सफेद अक्षतों द्वारा करें। ग्रहों के वर्ण भी मण्डप में दिखाएँ, गन्ध, पुष्प, अक्षत ध्वज का प्रयोग करें॥१२०॥

नौ ग्रहों के धूप

कर्पूरागरुकस्तूर्यः कुङ्कुमं गन्धगुग्गुलुः।
कृष्णागुर्वक्षकर्पूरा धूपाः स्युर्भास्करादितः॥१२१॥

कर्पूर, अगरु-कस्तूरी, कुङ्कुम (रोलिया), गन्ध, गुग्गुल, काला अगरु, आक्ष कर्पूर (भीमसैनी कर्पूर), गण्डीधूप ये नौ ग्रहों के धूप माने जाते हैं॥१२१॥

समिधा अभाव में पलाश

उक्तसमिदभावे तु पालाशं तत्र कल्पयेत्।
गन्धाभावे शुक्लगन्धं पुष्पाभावे सुगन्धकम्॥१२२॥

यदि नौ ग्रहों, अधिदेवता, प्रत्यधिदेवता, पञ्चलोकपाल दशलोपालादि समस्त देवताओं की समिधाएँ उपलब्ध न हों तो पलाश समिधाओं का प्रयोग करें, अष्टगन्धाभाव में श्वेतगन्ध (सफेद चन्दन) पुष्पाभाव में सुगन्ध—॥१२२॥

धूप के अभाव में

धूपाभावे गुग्गुलुः स्याद् गव्याभावे गुडोदनम्।
पञ्चामृते गव्यमेव मिश्रकं न कदाचन॥१२३॥

धूपाभाव में गुग्गुलु, वलिद्रव्याभाव में गुड का भात, पञ्चामृत में केवल गव्य ही, पञ्चाऽमृताभाव में अन्य मिश्रण कदापि न करें॥१२३॥

घृतान्नपायसापूपक्षीरमिश्रं गुडोदनम्।
दधिमिश्रं तिलैर्मिश्रं सामिषं चित्रितोदनम्॥१२४॥

घृत, अन्न, क्षीर, पूड़े, दूध मिले हुए गुडभात दधि तिल मिश्रित मांससहित सात अनाजों की खिचड़ी॥१२४॥

संस्कारार्थे चतुर्णां च होमार्थे स्थापयेच्च तान्।
अग्नेयजुष्टमन्त्रेण उद्धृतेष्वभिपूरयेत्॥१२५॥

संस्कार के लिए चारों वेदपाठियों के मन्त्रों द्वारा होम में प्रयोग करें, अग्नेयजुष्टमन्त्र द्वारा जल ग्रहण करें। उसी जल द्वारा पञ्चम् संस्कार भी कर लें॥१२५॥

आदौ तु समिधाज्यान्नैः पृथगष्टोत्तरं शतम्।
स्वस्वमन्त्रैश्च जुहुयाद्ग्रहोद्देशेन भक्तितः॥१२६॥

सर्वप्रथम समिधा, घी तथा अन्न द्वारा पृथक् १०८ आहुतियाँ दें, सभी ग्रहों का अधिदेवप्रत्यधिदेवताओं सहित अपने-अपने मन्त्रों द्वारा भक्तिपूर्वक होम करें॥१२६॥

द्वित्राश्चैवाधिदैवत्याः पञ्चानां चैव पञ्चधा।
इन्द्रादिलोकपालानां न कुर्यात्समिधादि यत्॥१२७॥

अधिदेवताओं के लिए दो-दो, प्रत्यधिदेवताओं के लिए तीन-तीन, पञ्चलोकपालों को पाँच-पाँच, इन्द्रादिलोकपालों की समिधादि न हों तो—॥१२७॥

हुनेदाज्याक्तसमिधश्चोपस्तरणपूर्वकम्।
अवदानं सकृत्कुर्यात्पश्चाच्चैवाभिधारणम्॥१२८॥

आज्य संयुक्त समिधाओं से उपस्तरण पूर्वक एक बार समिधा दान करके तत्पश्चात् चरु की—॥१२८॥

प्रमाणमाहुतेश्चात्र पक्वामलकसंमितम्।
चरुशेषं च नैवेद्यं विविधान्नं समर्पयेत्॥१२९॥

पके हुए आमले के समान आहुति दें, जो विशेष चरु बचे उसको अनेक प्रकार के अन्नों सहित ग्रहों को अधिदेवोंप्रत्यधिदेवों, पञ्चलोकपालों दशलोकपालों सहित नैवेद्य अर्पण करे॥१२९॥

ततो व्याहृतिभिः कुर्यात्तिलहोमान्प्रयत्नतः।
प्रथमोऽयुतहोमश्च लक्षहोमो द्वितीयकः॥१३०॥

तत्पश्चात् व्याहृतियों द्वारा प्रयत्नपूर्वक तिल होम करें। प्रथम दश हजार १०,००० होम, द्वितीय १००,००० लक्ष आहुति होती है॥१३०॥

तृतीयः कोटिहोमः स्यात् त्रिविधो ग्रहयज्ञकः।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा॥१३१॥

तृतीय कोटि होम, ये तीन प्रकार के ग्रह यज्ञ करने चाहिए। एक रात्र, त्रिरात्र एवं पञ्चरात्र विधि॥१३१॥

शिवगाथां विष्णुगाथां शान्तिर्ब्राह्मणभोजनम्।
समाचरेत्प्रतिदिनमेवं भक्त्या समन्वितः॥१३२॥

शिवगाथा (शिवपुराणादि श्रवण), विष्णुगाथा (विष्णुपुराणादि श्रवण), नवग्रह शान्ति, ब्राह्मण भोजन भक्तिपूर्वक प्रतिदिन करवाना चाहिए॥१३२॥

ततो जपादीञ्जुहुयात्पूर्णाहुति समाचरेत्।
स्वस्तिकं कल्पयेत्पश्चात्कुम्डस्येशानभागतः॥१३३॥

तत्पश्चात् जप दशांश होम करके पूर्णाहुति करें और फिर कुण्ड के पश्चिम भाग में स्वस्तिक कल्पना करे, ईशान कोण से—॥१३३॥

यजमानाभिषेकार्थं तत्र भद्रासनं न्यसेत्।
प्राङ्मुखस्योपविष्टस्य यजमानस्य तत्र च॥१३४॥

यजमान अभिषेकार्थ भद्रासन स्थापित करे पूर्वाभिमुख यजमान को वहाँ बिठा कर—॥१३४॥

अभिषेकं ततः कुर्युः साचार्याः षोडशर्त्विजः।
विविधैर्मङ्गलैर्घोषैः सूतमागधकैः सह॥१३५॥

आचार्य सहित सोलह ऋत्विजों द्वारा अनेक प्रकार के सूतमागधों सहित वैदिक लौकिक मन्त्रों, गीतवाद्य घोषों सहित—॥१३५॥

वक्ष्यमाणैश्च मन्त्रैश्च अब्लिङ्गैर्वेदमन्त्रकैः।
कुम्भोदकैः पूर्णजलैरुक्तद्रव्यसमन्वितैः॥१३६॥

वक्ष्यमाण मन्त्रों द्वारा एवं अब्लिङ्ग वैदिक मन्त्रों द्वारा, अन्य दिव्य औषधियों से युक्त तथा उक्त शतौषधियों युक्त कुम्भोदक से अभिषेक करे॥१३६॥

ग्रहाणामादिरादित्यो लोकरक्षणकारकः।
विषमस्थानसम्भूतां पीडां दहतु मे रविः॥१३७॥

ग्रहों के आदिम लोक रक्षा में समर्थ आदित्य भगवान् विषम स्थान में स्थित रवि मेरी पीड़ा को दग्ध करें॥१३७॥

रोहिणीशः सुधादीप्तः सुधागात्रः सुधाशनः।
विषमस्थानसम्भूतां पीडां दहतु मे विधुः॥१३८॥

रोहिणी स्वामी, अमृत सदृश चमकने वाला, अमृतमय शरीर, अमृतभोक्ता विषमस्थानस्थ उत्पन्न मेरी पीड़ा को चन्द्रमा दूर करे॥१३८॥

भूमिपुत्रो महातेजा जगतां भयकृत्सदा।
वृष्टिकृद्वृष्टिर्हर्ता च पीडां दहतु मे कुजः॥१३९॥

भूमिपुत्र महातेजस्वी सदा संसार के लिए भयङ्कर, वर्षा करने वाला, कदाचित् वर्षा न करने वाला मङ्गल मेरी पीड़ा को दग्ध करे॥१३९॥

उत्पातरूपो जगतां चन्द्रपुत्रो महाद्युतिः।
सूर्यप्रियकरो विद्वान्पीडां दहतु मे बुधः॥१४०॥

जगत् उत्पात स्वरूप, महातेजस्वी सूर्य प्रिय चन्द्रपुत्र, अत्यन्त विद्वान् बुध मेरी पीड़ा को दूर करे॥१४०॥

देवमन्त्री विशालाक्षः सदा लोकहिते रतः।
अनेकशिष्य सम्पूर्णः पीडां दहतु मे गुरुः॥१४१॥

सदैव लोक हित में संलग्न, विशाल नेत्रों वाले देवमन्त्री, अनेक शिष्यों से युक्त बृहस्पति मेरी पीड़ा को दग्ध करें॥१४१॥

दैत्यमन्त्री गुरुस्तेषां प्राणदः स महाद्युतिः।
प्रभुस्ताराग्रहाणां च पीडां दहतु मे भृगुः॥१४२॥

दैत्यमन्त्री, दैत्यों के प्राणरक्षक गुरु, महातेजस्वी, तारा ग्रहों के प्रभु भगवान् भृगु मेरी पीड़ा को नष्ट करें॥१४२॥

सूर्यपुत्रो दीर्घदेहो विशालाक्षः शिवप्रियः।
मन्दचारः प्रसन्नात्मा पीडां दहतु मेऽर्कजः॥१४३॥

सूर्यपुत्र, दीर्घदेहधारी, विशालनेत्र, शिवप्रिय, मन्दचारी, प्रसन्नात्मा शनैश्चर मेरी पीड़ा को दहन करे॥१४३॥

महाशिरो महावक्त्रो दीर्घदंष्ट्रो महाबलः।
अतनुश्चोर्ध्वकेशश्च पीडां दहतु मे तमः॥१४४॥

महाशीर्ष, महामुख, लम्बी दाढ़ों वाला महाबली, ऊर्ध्वकेशी राहु मेरी पीड़ा को दहन करे॥१४४॥

अनेकरूपवर्णश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
उत्पातरूपो जगतः पीडां दहतु मे शिखी॥१४५॥

अनेक रूप एवं वर्णों से युक्त, सैंकड़ों अथवा हजारों भेदों में व्यक्त किया जाने वाला, जगत् उत्पात स्वरूप केतु मेरी पीड़ा को दग्ध करे॥१४५॥

ततो राज्ञोऽभिषिक्तस्य रक्षार्थे बलिमुत्क्षिपेत्।
दिग्विदिक्षु विचित्रान्नैर्दीपैर्नीराजयेत्ततः॥१४६॥

तत्पश्चात् अभिषिक्त राजा की रक्षार्थ दिशाओं विदिशाओं में विचित्र अन्नों के द्वारा बलिदान करे तत्पश्चात् राजा की आरती (नीराजन) उतारे॥१४६॥

शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः।
ततो मण्डलमागत्य ध्यायेदग्निं ग्रहान् सुरान्॥१४७॥

शुक्ल माला वस्त्र गन्धादि लेपन करके मण्डल में आकर ग्रहों देवताओं और अग्नि का ध्यान करे॥१४७॥

प्रत्येकं प्रतिमन्त्रैश्च दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः।
मन्त्रतन्त्रक्रियालोपप्रायश्चित्तार्थमेव च॥१४८॥

प्रत्येक देवता को उनके मन्त्रों द्वारा मन्त्र तन्त्र, क्रियालोप प्रायश्चित्तार्थ पुष्पाञ्जलि अर्पण करें॥१४८॥

यदस्य कर्मण इति स्विष्टकृज्जुहयात्ततः।
अस्य मन्त्रस्यातिधृतिः स्वर्णगर्भ ऋषिस्ततः॥१४९॥

जिस लक्ष्य को रख कर शान्तिविधान किया जा रहा है, उसके अधिष्ठातृ देवताओं के मन्त्रों द्वारा स्विष्टकृत् आहुति दे। इस मन्त्र का स्वर्णगर्भ ऋषि, अतिधृतिछन्द, अग्निदेवता हैं, ऐसा प्रयोग करे॥१४९॥

देवताग्निः स्विष्टकृच्च व्याहृतेव्याहृतं ततः।
समिधादिद्रव्यमयमवदाय सकृत्सकृत्॥१५०॥

इसी प्रकार व्याहृतियों के विनियोग सहित व्याहृति होम करे, समिधादि द्रव्यों को एक-एक बार लेकर—॥१५०॥

मिलित्वा स्रुकस्रुवं तत्र निक्षिपेदभिधार्य तत्।
मन्त्रेण सप्त ते अग्निरिति पूर्णाहुतिं यजेत्॥१५१॥

स्रुक स्रुव इन दोनों को मिलाकर, दो आधार आहुतियों तथा दो आज्य भाग देकर 'सप्ततेऽग्ने' इत्यादि मन्त्रों द्वारा पूर्णाहुति देवे॥१५१॥

आचार्येभ्यो नवभ्यश्च ग्रहार्चनफलं ततः।
समिधाज्यचरूणां च तिलहोमफलं च यत्॥१५२॥

आचार्यों के लिए नौ ग्रहार्चन फलस्वरूप, समिधा, घी, चरु, तिलहोम फलादि से युक्त—॥१५२॥

ब्रह्मत्वं कुम्भपूजायां चार्चनस्य फलं च यत्।
गणपक्षेत्रपालाश्च दुर्गाहव्याङ्गदेवताः॥१५३॥

ब्रह्मा, कुम्भपूजा के अर्चन का फल, गणपति, क्षेत्रपाल, दुर्गाहोमाङ्गदेवतों के—॥१५३॥

तासां जपफलं सम्यग्गृह्णीयाज्जलपूर्वकम्।
एवं षोडशऋत्विग्भ्यो दातव्या दक्षिणा ततः॥१५४॥

जप का फल जलपूर्वक सम्यग्तया ग्रहण करना चाहिए। आचार्य सहित षोडश ऋत्विजों को दक्षिणा देनी चाहिए॥१५४॥

दानमन्त्राः

धेनुंशङ्खं रक्तवृषं हेमं पीताम्बरं हयम्।
श्वेताश्वं कृष्णवर्णां गां कृष्णलोहमजं क्रमात्॥१५५॥
स्वर्णेन वा समीकृत्य दातव्या दक्षिणा ततः।
आचार्यार्थं जापकेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽथ शक्तितः॥१५६॥

धेनु शंख, लाल बैल, स्वर्ण, पीतवस्त्र, घोड़ा, सफेद घोड़ा, काली गाय, कृष्णवर्ण एवं लोहवर्ण का बकरा, इनके अभाव में तन्मूल्योपकल्पित स्वर्णमयी दक्षिण द्वारा यथा शक्ति आचार्य, ब्रह्मा और जापकों को प्रसन्न करे॥१५५-५६॥

गोदानकपिलादनमन्त्रौ

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च॥१५७॥
कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी।
तीर्थरूपमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छमे॥१५८॥

गाय के अङ्गों में चतुर्दश भुवन निवास करते हैं। अतः इस लोक में, एवं परलोक में गोदान से मेरा कल्याण हो। हे कपिले! हे रोहिणी गौमाता! तू सभी देवताओं की पूजनीय एवं सर्वतीर्थमयी हो अतः मुझे शान्ति प्रदान कीजिए॥१५७-५८॥

शंखदानमन्त्रः

पुण्यस्त्वं शङ्खं पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गल।
विष्णुनाऽपि धृतो यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छमे॥१५९॥

हे शंख! तू पुण्यों में प्रधान पुण्य है, मङ्गलों में प्रधान मङ्गल है, श्री विष्णु भगवान् ने भी इसीलिए धारण किया है। अतः मुझे शान्ति दो॥१५९॥

वृषभ्दानमन्त्र

धर्मस्त्वं वृषरूपेणं जगदानन्दकारकः।
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥१६०॥

हे धर्मरूपीबृषभ्! तू जगत् में आनन्द प्रदान करता है। भगवान् शङ्कर की अष्टमूर्तियों का अधिष्ठान रूप है। अतः मुझे शान्ति दो॥१६०॥

स्वर्णदानमन्त्रः

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छमे॥१६१॥

हे स्वर्ण! तू हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) के गर्भ में निवास करने वाला है, अग्नि का वीर्य होने से अनन्त पुण्यफलप्रद है। अतः मुझे शान्ति प्रदान करो॥१६१॥

पीतवस्त्रदानम्

पीतवस्त्रयुगं यस्माद् वासुदेवस्य वल्लभम्।
प्रदानात्तस्यमे विष्णुर्ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥१८२॥

हे पीतवस्त्र युग्म! तू भगवान् वासुदेव का परमप्रिय है। तुम्हारे दान से भगवान् विष्णु और तू शान्ति दे॥१६२॥

अश्वदानमन्त्रः

विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः।
चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥१६३॥

हे अश्व! तू अश्वरूप से विष्णुरूप है, अमृत से उत्पन्न हुआ है, सूर्य चन्द्रमा का वाहन है, मुझे नित्य शान्ति प्रदान करो॥१६३॥

कृष्णधेनुदानमन्त्र

यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनो कृष्णेन सन्निभा।
सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥१६४॥

हे कृष्ण गौ माता! तू पृथ्वी रूप है। तू साक्षात् कृष्ण के रूप में कामधेनु रूप है, सब पापों को दूर करती है। अतः शान्ति प्रदान करो॥१६४॥

आयसदानमन्त्र

यस्मादायस कर्माणि तवाधीनानि सर्वदा।
लाङ्गलाद्यायुधादीन तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥१६५॥

लाङ्गलादि शस्त्र (हल के आकार सदृश) एवं समस्त लोह कर्म सदैव तुम्हारे अधीन है। अतः आयस दान से मुझे शान्ति दो॥१६५॥

रत्नदानमन्त्र

यस्माद् रत्नप्रदानेन स्वर्गभोगं लभेन्नरः।
तस्मादनेन दानेन स्वर्गभोगश्च मे भवेत्॥१६६॥

जिस रत्न दान से मनुष्य को स्वर्ग एवं भोगों की प्राप्ति होती है, उस रत्न के दान से मुझे भी स्वर्ग और भोग की प्राप्ति हो॥१६६॥

भूमिदानमन्त्र

सर्वभूताश्रया भूमिर्वराहेण समुद्धृता।
अनन्तफलदा यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥१६७॥

समस्त प्राणीमात्र का आश्रय स्थान वराह के द्वारा भली भाँति उठाई हुई अनन्त फलप्रदा भूमि दान से मुझे शान्ति मुझे शान्ति हो॥१६७॥

छागदानमन्त्र

यस्मात्त्वं छाग यज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः।
योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥१६८॥

छाग को यज्ञ के आवश्यक अङ्ग के रूप में व्यवस्थित किया गया है। तुम नित्याग्नि की योनि में स्थित हो। अत: छाग दान से मुझे शान्ति हो॥१६८॥

शय्यादानमन्त्र

यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च।
तथा मे शयनं शश्वद्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥१६९॥

जैसे भगवान् श्री हरि एवं भगवान् शिव निश्चिन्त होकर शयन करते हैं, उसी प्रकार शय्यादान से जन्म-जन्म में मुझे भी निश्चिन्त शयन प्राप्त हो॥१६९॥

वस्त्रदानमन्त्र

शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम्।
देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥१७०॥

सर्दी, हवा, गर्मी एवं लज्जा की रक्षा करने वाला, देह को सुशोभित करने वाला वस्त्र मुझे शान्ति प्रदान करे॥१७०॥

आज्यपात्रपूजनमन्त्र

अवशिष्टद्विजेभ्यश्च यावच्छक्त्या च दक्षिणाम्।
दीनान्धकृपणादिभ्यः किञ्चित् किञ्चित् प्रदापयेत्॥१७१॥

यथाशक्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर बचे हुए धन को गरीबों, अन्धों, कंजूसों को थोड़ा-थोड़ा दान देना चाहिए॥१७१॥

वन्दे सर्वरसश्रेष्ठ त्वामहं भगवन्नजः।
अत आज्य सुधारूप सर्वश्रेष्ठं कुरुष्व माम्॥१७२॥

सभी रसों में श्रेष्ठ, ऐश्वर्यस्वरूप आज्य तुम्हें मेरा नमस्कार है, तुम अमृत रूप हो मुझे सभी से श्रेष्ठ बनाओ॥१७२॥

आज्यवेक्षणमन्त्र

या लक्ष्मीर्यच्च मे दौस्थ्यं सर्वमात्रेष्ववस्थितम्।
तत्सर्वं शमयाज्य त्वं लक्ष्मीं पुष्टिं च वर्द्धय॥१७३॥

हे आज्य! मेरे शरीर में जितने दुर्गुण स्थित हैं, उन सभी को समाप्त करो, इस आज्य प्रदान से लक्ष्मी और पुष्टि की वृद्धि करो॥१७३॥

उद्वासयेत्ततो वह्निं ग्रहान्देवाद्विजान्पितृन्।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः॥१७४॥

सर्वप्रथम अग्नि स्थापन करे, पश्चात् ग्रहों, देवों, ब्राह्मणों, पितरों को भोजन करवाए तत्पश्चात् स्वयं बन्धु बान्धवों सहित भोजन करे॥१७४॥

एवं यः कुरुते सम्यग्ग्रहयज्ञं सहैव सः।
सर्वानकामानवाप्नोति स्वस्थानस्थ फलं लभेत्॥१७५॥

इस प्रकार भलीभाँति जो इस ग्रह यज्ञ को बन्धुबान्धवों सहित करता है, वह अपने स्थान पर स्थित होकर इच्छाओं को प्राप्त करता है॥१७५॥

इदं बलद्वयं चिन्त्यं मासि मासि स्वजन्मतः।
अष्टवर्गबलं मुख्यमुभयोः सर्वकामिकम्॥१७६॥

अपनी जन्म राशि से महीने-महीने दोनों बलों का विचार करना चाहिए। दोनों बलों में अष्टवर्ग बल मुख्य है तथा समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला है॥१७६॥

यथा ग्रहाणां तीक्ष्णांशुः सदा तु सदृशो बली।
अष्टवर्गबलं तद्वद् ग्रहाणामुत्कटं बलम्॥१७७॥

जैसे ग्रहों में तीव्र किरणों वाले सूर्य नारायण सब से बलवान हैं, उसी प्रकार अष्टवर्ग बल सभी ग्रहों से अत्याधिक बलशाली हैं॥१७७॥

अष्टवर्गबलं यत्र तत्रास्ति त्रिविधं बलम्।
तस्माद्बलत्रयाणां तत्साधयेदष्टवर्गजम्॥१७८॥

यहाँ पर अष्टवर्ग बल है, वहाँ तीन प्रकार का बल रहता है, उन तीनों बलों को अष्टवर्ग के फलों द्वारा साधना चाहिए॥१७८॥

ग्रहेषु विषमस्थेषु यः शान्तिं न करोति सः।
अर्थहानिं मनस्तापं चाश्नुते सर्वसङ्कटान्॥१७९॥

ग्रहों के विषम स्थिति में रहने पर जो व्यक्ति उनकी शान्ति नहीं करता वह धनहानि, मानसिक कष्ट एवं समस्त सङ्कटों को भोगता है॥१७९॥

॥इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां गोचरविचाराध्यायो अष्टादशः॥१८॥

॥वृद्ध वसिष्ठ संहिता के 'गोचरविचाराध्याय' की नारायणी हिन्दी टीका समाप्त॥१८॥

पाठान्तरम्

१ (अ) बलसहितंवरायतं, वा.-वैधबलंवराटानां (सवेधबलमम्बराटानाम्)

१ (ब) ज१-सदसद्वृत्तमकथनार्थं, ज२-सदशंहूत्मक (सदसद्बलकथनार्थं), ज१, २-जन्मभखिल (जन्मभे)

२ (अ) ज१, २-त्रिषडेकादशे, ज.मो.-त्रिषडेकादशमो (त्रिषडेकादशमे), ज१, २-शुभक्ष्ये (शुभदो)

२ (ब) ज१, २-वा. सूर्यसुतः (सूर्यसुतैः)

३ (अ) ज१, २-त्रिषंषस्मिशाकरोवली (त्रिषट्सुनिशाकरोऽत्रबली)

३ (ब) ज१, २-नैधनाधस्ततायो जन्म (नैधनजलधीष्वर्थनवान्त्य)

४ (अ) पी.धा.टी.-धरासुतौऽरिःफधर्म (धरासुतः कामधर्म)

४ (ब) ज१, २-खेचरैर्विनीष्णकरैः, वा.-खचरैविनोष्णकरैः, पी.धा.टी. खेचरैविनोष्णकरर्म (खचरैर्विनोष्णकरैः)

५ (अ) ज१, २-निधानद्धधु (निधनस्वबन्धु)

५ (ब) ज१-खेचरैनिहंतः, ज२-वेचरैर्निहतः, वा. खेचरैर्नहतो (खेचरैर्नहतः)

६ (ब) ज१, २-गृहकर्मतयांव्य, वा.-गहकर्मतथाश्टांत्य (गृहकर्माष्टान्त्य), १, २-त्रिषुसंस्थितैः (त्रिस्थित)

७ (अ) ज१, २-आसुतनवांत्य (आसुतनिधनाङ्कान्त्य), ज१, २-शुभप्रदोसहतः, वा.-मकरोग्रह (शुभदो न हतः)

७ (ब) ज१, २-धर्मसुसुरदि (धर्मसुतयारि)

८ (अ) ज१-दैवसमन्वित, ज२-देवसन्वित, वा.-वैधसमन्वं (वेधसमन्वित)

८ (ब) ज१-मृत्युयवेद, ज२-मृषपवेद, पी.धा.टी.-व्यत्ययवे (व्यत्ययवेध), ज१, २, पी.धा.टी.-शुभप्रदाः (शुभफलं)

९ (अ) ज१, २-वदंति (विदन्ति), ज१, २-व्यथत्क्रमतेन (यथाक्रमं चेति)

९ (ब) ज१, २-गोचरबलंभिशस्त्वि (गोचरबलानाभिज्ञा), ज१, २-सुजनैः (सुजनाः)

१० (अ) ज१-शुभवीक्षित, ज२-सुभवीक्षिते (अशुभेक्षितः), ज१, २-कष्टफलास्त्व (कष्टफलः)

१० (ब) ज१, २-शत्रुविलोकेन (शत्रुविलोकन)

११ (ब) ज१, २-भवंत्य, वा.-भवनि (न भवन्ति)

१२ (अ) ज१-सितपक्ष (सितपक्षे)

१२ (ब) ज१, २-गोचरविषयैर्विवल: (गोचरबलविषये वै विबल:)

१३ (अ) ज१-गगनचरा, वा.-गगनरा: (गगनचरा:)

१३ (ब) ज१, २-परभुवनफलं (परभवनफलं), ज१, २-प्राग्भुवनफलं, ज.मो.-प्रारम्भनफलं (प्राग्भवनफलं), ज१, २-वक्रितायेब, पी.धा.टी.-वक्रिताचेते, ज.मो।-कृताङ्गेच (वक्रिता ये च)

१४ (अ) ज१, २-ज.मो., वा.-दशदिवसं पञ्चदिनं (दशदिवसपञ्चदिनात्)

१५ (ब) ज१, २-पी.धा.टी.-शशिरविजौ (शशिशशिनौ)

१६ (अ) ज.मो.-करग्रहेष, ज१, २-करतलग्रहेसु (करग्रहेषु)

१७ (ब) ज१, २-चंद्रबलंसुखानिखिलनृणां (चन्द्रबलमुख्यमखिलनृणाम्)

१८ (अ) ज१-त्वाश्रितैव, ज२-मेत्वाश्रितै: व (संश्रित्यैव), ज१, २-ग्रहासु (ग्रहाश्च)

१८ (ब) ज१, २-वंदतीद्रियाणि (ददतीन्द्रियाणि)

१९ (अ) ज१-वरवरेषु (खचरेषु)

२० (अ) ज१, २-खचराधीनां, ज.मो.-खचराधीनं (खचराधीनानि)

२० (ब) ज१, २-वृद्धिस्तस्वादग्रहा:, ज.मो.-वृद्धिस्तस्मादग्रहा (वृद्धिस्तस्मादग्रहाश्च

२१ (अ) ज१-मासिमास्यपते, ज२-मासिनास्यते (मासि मास्ययने)

२१ (ब) ज१, २-विषुवत्कर्क, ज.मो.-विसुवत्यर्क (विषुवत्यर्क), ज१-दिनेक्षये (दिनक्षये)

२२ (अ) ज१, २-पुण्याहं, वा.-पाठोनास्ति (पुण्येऽह्नि)

२२ (ब) ज१-गृहसौनन नागेज, ज२-न गृहेसौननागे, वा.-पाठोनास्ति (ग्रहस्येशानभागे तु)

२३ (ब) ज१, २-चतुर्द्वारसंयुक्तं, वा.-चतुर्द्धारसमायुक्तं, ज.मो. चतुर्द्वारिसमायुक्तां (चतुर्द्वारसमायुक्तो), ज.मो.-ज१, २-तोरणाधैरलंकृतं (तोरणाद्यै: समन्वित:)

२४ (ब) ज१, २-विनास्तितद्वयखातं (वितस्तिद्वयखातं)

२५ (अ) ज१, २-अंगुलत्रय (तदङ्गुलत्रय)

२६ (अ) ज१, २-द्वादशयांगुलभिस्मृत: (द्वादशाङ्गुलविस्तृता)

२७ (अ) ज१-तस्याध्वोपरि, ज२-तस्याच्चोपयर, वा.-पाठोनास्ति (तस्याश्चोपरि)

२७ (ब) ज१, २-सभ्यग्विस्तीर्णा, वा.-सभ्यग्विस्तीर्णी, ज.मो.-सम्यग्विस्तीर्णा (सम्यग्विस्तीर्णं)

२८ (अ) ज१, २-वप्र, वा.-चप्र:, ज.मो., मु.पु.-विप्र: (वप्र:)

२८ (ब) ज१-श्चोतश्चतथाविधा, ज२-श्चतथाविधा, ज.मो.-श्चोन्नतस्वतथाविध: (चोन्नतं च यथाविधि)

२९ (अ) ज१, २-ज.मो.-प्राङ्मुखा (प्राङ्मुखी), ज१, २-संस्थिता: (संस्थिता)

२९ (ब) ज१-श्रेयतां, ज२-शचायतां, वा.-चायतां (चायता)

३० (अ) ज१, २-पृथोन्नतां (पृष्ठोन्नता), ज१-गजेषि, ज२-गजोक्ष्येव, ज.मो.-गजोप्यैव (गजस्यैव), ज१, २-सछिच्चा, वा.-सछिद्रा (सच्छिद्रा)

३० (ब) ज१, २-सिद्धिदः, ज.मो.-सिद्धिदम् (सिद्धये)

३१ (अ) ज१, २-ज.मो.-अनेनदोषदं (अनेकदोषदं)

३१ (ब) ज१, २-सुभमिच्छति, वा.-शुभमिछता (शुभमिच्छता)

३२ (ब) ज१, २-ज.मो.-विस्तीर्ण (विस्तीर्णा)

३३ (अ) ज१, २-तत्रादौ (स्नात्वादौ), ज.मो.-कार्यशुध्यर्थं (कायशुध्यर्थं), ज.मो.-लभेत च (लभेत्ततः)

३३ (ब) ज१, २-परस्परं (पुरःसरम्)

३४ (अ) ज१-ॠत्विजान्, ज२-ॠतिजानु (ॠत्विजो), ज१-वृक्षविधानसमन्वितान्, ज२-ॠक्षविधासमन्वितान्, वा.-वृत्तविद्यानिशारदान, ज.मो. वृत्तविर्द्यासमन्वितान्, (कृतविद्याविशारदान्)

३५ (अ) ज१, २, ज.मो.-एषां (तेषां), वा.-प्रकल्पयत् (प्रकल्पयेत्)

३६ (अ) ज१, २, ज.मो.-आदित्यादिग्रहाणां (आदित्याद्यग्रहाणां), ज१, २-ज.मो.-कल्पयेत्तदा (कल्पयेत्तदः)

३७ (अ) ज१, २-कुजे (कुजं)

३७ (ब) ज१, २-विद्युंतुदं, ज.मो.-विधून्तुदं, वा.-विधुन्तुदां (विद्युन्तुदम्)

३८ (अ) ज१, शुभकासीन, ज२-शुभकासेन, ज.मो.- शुद्धकांशेत् (शुद्धकांस्येन)

३८ (ब) ज१-तथासुवित्तमानेन, ज२-रथासुविज्ञमानेन (यथारूचिप्रमाणेन)

३९ (अ) ज१, २-वरस्थ, ज.मो. रथस्थः (अधःस्थः)

३९ (ब) ज१-सप्ताश्वीकीरुणहविरिपुः, ज२-सप्ताश्वोर्कारुणाहुविरिपुः (सप्ताश्वोऽर्कोऽरुण-रुचिवपुः)

३९ (स) ज१-बहुविधंगुणि, ज२-वद्धविधमुणी (बहुविधगुणे)

३९ (द) ज१-प्राङ्मुखमध्यहस्तः,, ज२-पाङ्गखमहस्तः (प्राङ्मुखः पद्महस्तः)

४० (अ) ज१, २-विंध्यात्वार्क (रविं ध्यात्वा)

४० (ब) ज१, २-ज.मो.-संज्ञकः (संज्ञितः)

४१ (अ) ज१, २-वा.-मन्त्रीसौ (मन्त्रोऽसौ)

४२ (अ) ज१-मैत्रास्थं च कुंकुभास्य, ज२-मैत्रस्थं त्रयम्बककुभास्य (मन्त्रं तु त्र्यम्बकं चास्य)

४२ (ब) ज१, २-वामदेववसिष्टस्या, ज.मो. वामदेववसिष्ठस्याद, वा.-चामदेववसिष्ठाद्या (वामदेववसिष्ठाख्यौ)

४३ (अ) ज१, २-स्थापयेद्मिमामा (स्थापयेद्वह्निं वामे)

४३ (ब) ज१, २-ज.मो.-परास्ततः (प्रयत्नतः)

४४ (अ) १, २-मंत्राग्निहूमित्यस्य (मन्त्रोऽग्निदूतमित्यस्य)

४४ (ब) ज१, २-पपापमोचनं (पापमोचनी)

४५ (अ) ज२, २-पावनदेशयश्च, ज.मो.-यामुनदेशजश्च (पावनदेशजश्च)

४५ (ब) ज१, २-गदाधरेमृद्धिमजसिताभा (गदावराङ्को हिमगुः सिताभः)

४६ (अ) ज१, २-अध्यायस्त्वतिमत्रैण (आप्यायस्येतिमन्त्रेण)

४७ (अ) ज१, २-प्रत्यधिदेवता, ज.मो.-त्वस्याधिदेवता (प्रत्यधिदेवताम्)

४७ (ब) ज१, ऋषिदीर्घतनाश्चस्य, ज२-ऋषिःदीर्घतमाश्चास्य (ऋषिर्दीघतमाश्चास्य)

४८ (ब) ज.मो.-गायत्री वारिदेवता (गायत्री देवता ऋषिः)

४९ (अ) ज१-याम्यैगर्क्षः, ज२-जाभ्येगतः, ज.मो.-याम्ये अग्च (याम्येगतः), ज.मो. शक्तिगदसशूलो (शक्तिगदात्रिशूलो)

५० (ब) ज१-ऋषिर्विहयोगायत्री (ऋषिर्विरूपो गायत्री), ज१, २-देवतांगारकस्य, ज.मो.-देवताङ्गारकस्य च, वा.-देवतागारकोऽस्य (देवताङ्गारकोऽस्य)

५१ (अ) ज१, २-स्कन्दोधिदेवतातस्य (स्कन्दोऽधिदेवतात्वस्य), ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-सावित्री देवताः ग्रहाः, ज.त्मो. गायत्री देवता गुहा (सावित्री देवता गुहः)

५२ (ब) ज१-भूमिस्त्वस्य, ज२-भूमिस्वस्य, ज.मो.-भूमिस्त्वस्य (भूमिस्तस्य)

५३ (अ) शरमण्डलस्थ, वा.-शरमण्डलस्याः (शरमण्डलस्थः)

५३ (ब) ज.मो.-सुपीठः (सपीतः)

५४ (ब) ज१-छन्दस्त्वस्यास्मिन्, ज२-छंदसुस्यास्मिन्, ज.मो.-छन्दस्त्वस्यस्मिन्, वा.-छन्दास्त्वस्यास्मिन् (छन्दस्त्वस्यास्ति)

५६ (अ) ज.मो.-देवतामन्यां (देवतामन्यत्)

५७ (अ) ज. २, ज.मो.-रथगिरा, वा. रथोमिख (रथोऽङ्गिराः), ज१, २-सौम्यमुख, ज.मो.-सौम्यमुखश्चपीतः (सौम्यमुखः सुपीतः)

५७ (ब) ज.मो. दण्डाक्ष (द्वन्द्वाक्ष), ज१, २-हारयेदशौ (सिन्ध्वाख्यदेशो)

५८ (अ) ज१, २-परिदीयेत्यनेन, वा.-परिदीपतेयनेन, ज.मो.-परिधीयेत्यनेन (अति-यदर्यो अनेन)

मु.पु. वृहस्पते परिदीयत्यनेन गुरूमर्चयेत्।
ऋषिरस्याप्रतिरथस्त्रिष्टुब्जीवोऽस्यदेवता।। (क्वचित्पुस्तके पाठः)

५९ (अ) (ब) ज१, २, वा-श्लोकोऽयं न विद्यते

६० (अ) ज१, २, वा.-पाठोनास्ति

६० (ब) ज.मो.-इन्द्रऋषिः (छन्दो ऋषिः)

६२ (अ) ज१-समर्चयेशुक्रे, ज२-त्वामसमच्वयेच्छुक्रं, ज.मो.-समर्ययेच्छुक्रं (समर्चये-च्छुक्रे)

६२ (ब) ज१, २-दनुर्चिं, वा.-दनुरचितं, ज.मो.-धनुरर्चित (दनुरर्चितः)

६३ (ब) ज१-इंद्रमितिर्देवता तस्य च, ज२-इन्दमितिर्देवतातस्य, वा.-इद्रमिदेवतातस्य, ज.मो.-इन्द्रमिद्देवतातस्य (इन्द्राणी देवता चास्य), ज१, २, वा.ज.मो.-तिमेधातिथिऋषिः (धृतिर्मेधातिथिर्ऋषिः)

६५ (अ, ब) ज१, २, वा. पाठोन्नास्ति

६६ (अ) ज१, २, ज.मो.-शन्नोदेवीरित्यनेन (शन्नोदेवीत्यनेनैव), ज१-शनिर्यजेत, ज२-शनिर्जयेत् (शनिमर्चयेत्)

६६ (ब) ज.मो. ऋषिर्गात्री (ऋषिर्गायत्री)

६७ (ब) ज१-सार्प...श्च, ज२-सार्पराज्ञे, ज.मो. रार्थराज्ञे (सर्पराज्ञी), ज१, २-ऋषीश्चस्य (ऋषिश्चास्य)

६८ (अ) ज१, २-प्रजापतेनत्वदेवतान्यदनेनैव, वा.-प्रजापतेनत्वदेवतान्यनेनैव (प्रजापतेनत्वदेतेत्यनेनैव), ज१-यजेतुतां, ज२-येतुतां, ज.मो.-यजेतुताम्, वा.-जेतुतां, मु.पु.-यजेत्तु (यजेत्तुताम्)

६९ (ब) ज.मो. प्रजापतिदेवतायोर्नमन्त्र: (प्रजापतिदेवतायां मन्त्र:), ज.मो.-पापादिमोचक: (पापमोचक:)

७० (अ) ज१, २, ज.मो.-पैठीनसौ (पैठनीसो), ज१-वर्द्धरदेशयात्त, ज२-वरवरदेशजाता (वर्वरदेशजात:), ज१-शूर्पासन+, ज२-सूर्यासन:, ज.मो. सूर्यासन (शूर्पाऽऽसन:)

७० (ब) ज१, २-नैऋतापः, ज.मो.-नैर्ऋतिग: (नैर्ऋतग:)

७१ (अ) ज१, २, ज.मो.-राहोश्च (राहुश्च)

७२ (अ) ज१, २-ब्रह्मयज्ञानमिवा (ब्रह्मजज्ञानमिति)

७२ (ब) ज१, २-कालस्यदेवता, ज.मो.-कालोऽस्यदेवता, वा.-कालाख्यदेवता (कालोऽधिदेवता)

७३ (अ) ज१, २-चार्चजेत, ज.मो.-प्रपूजयेत (समर्चयेत्)

७३ (ब) ज१, २-सर्प्पाश्चदेबता, वा.-सर्पाश्चास्यदेवता, ज.मो.- सर्पाश्चास्य च देवता: (सर्पाश्चास्याधिदेवता:)

७४ (अ) ज१, २-दृकासनो, ज.मो.- ध्वजासनो (वृकासनो)

७४ (ब) ज१, २-याम्यानौ, वा.-याभ्यौननौ, ज.मो.-याभ्याननौ (याम्यायनो), ज१-वायुदिसि, ज२-वायुषि (वायुदिशि)

७५ (अ) ज१-केतुकृरावत्रतनैव, ज२-श्रीकेतुकेतुकृण्वग्रेनैव (केतुं कृण्वृन्ननेनैव)

७५ (ब) ज१-शिषी (शिखी)

७६ (अ) ज१-ज्ञात्वातर्चयेत्, ज.मो.-स्याजजातमर्चयेत् (ज्ञात्वा तमर्चयेत्)

७६ (ब) ज१, २-चित्रगुप्तोत्र, ज.मो.-चित्रगुप्तोऽत्र (चित्रगुप्तोऽस्य)

७८ (अ) ज१, २-शनेपश्चिम:, वा.-शयन:, ज.मो.-शने: पश्चिमतो (शनै: पश्चिमत:)

७९ (अ) ज१, २-इत्युवां (इत्यृचा)

७९ (ब) ज१, २-अनुष्टुप्छन्द: (त्रिष्टुब्छन्द:), ज१, २-कश्यपोत्रऋषि: (कश्यपोऽस्य), ज१, २-दुर्गादिवता (दुर्गात्रदेवता)

८० (अ) ज१, २-वायुतं, ज.मो.-वायुंतद् (वायुतो), ज.मो.-शिशुर्मन्त्रेण (शिशुमन्त्रेण), ज१-वाचयेत्, वा.-लार्चयेत (चार्चयेत्)

८० (ब) ज१, २-गौरीविचित्राधिदेवता महत् (गौरी इति ऋषिश्चास्य)

८१ (अ) ज१-वाकाशंआदित्य, ज२-पाठस्यलोप:, ज.मो. चाकाशं आदित्रा, वा.-चाकाशं आदित्यस्य (चाकाशमादित्यं च)

८१ (ब) ज१-ऋषिर्भगोस्य, ज२-पाठोनास्ति, वा.-ऋषिगर्भोस्य, मु.पु.-ऋषिर्भर्गोऽस्य (ऋषिर्भृगोऽस्य)

८२ (अ) ज१-कार्यावैवासुखावहा, ज२-कार्ययेषां सुखवाहा, ज.मो. कार्पावेष उषारुचा (कार्या वै षोडशा ऋचा)

८२ (ब) ज१, २-ज.मो.-कण्ठोऽस्य (कण्ठोऽस्य)

८३ (अ) ज१, २-इन्द्रस्यैरावतौरुढो, वा.-इन्द्रश्चोरवगरुढो (इन्द्रश्चैरावतारुढो)

८३ (ब) ज१-छुवर्णावर्णा, ज२-छवर्णावर्णा, ज.मो.-सवर्णवर्ण (स्वर्ण वर्ण:), ज१, २-नाक्यस्त्वमहेश्वर:, वा.-नाकपश्चमरेश्वर:, ज.मो.-नाकपस्त्वमरेश्वर: (नायकस्त्वमरेश्वर:)

८४ (अ) ज१, २-इंद्रमिदं व इत्युच, वा.-इंद्रवोश्विनी ऋचा, ज.मो.-इन्द्रमिन्द्रवतृच: (इन्द्रमिन्द्रश्च इत्यृचा)

८४ (ब) ज१, २-मधुछन्दो, वा.-वायुछंदो (वायुश्छन्द:)

८५ (अ) ज१, २-स्ववर्णा:, वा.-स्वर्णि:, ज.मो.-स्ववर्णा (सुवर्ण:), ज१, २-सप्तहस्तोध्रुवकृके, वा.-सप्तहस्तौद्धवक्रक:, ज.मो.-सप्तहस्तोध्रुवक्रके (सप्तहस्तोर्द्धवक्त्रक:)

८५ (ब) ज१, २-स्वाहाश्रियो, ज.मो.-स्वाहास्त्रियो (स्वाहाप्रियो)

८६ (अ) ज१, २-सम्पूर्ण श्लोकस्य लोप:, वा.-शुद्धपाठ:

८६ (ब) ज.मो.-देवतानदे (देवताऽनल:)

८७ (अ) ज१, २-ज.मो.-संप्रीतये (इलप्रियो)

८७ (ब) ज१, २-लोकांत: (लोकानां), ज१, २-स्वस्यकर्म (स्वस्वकर्म)

८८ (अ) ज१, २-सोममित्युच, वा.-सोममित्यृच, ज.मो.-सोममितृचा (सोममित्यृचा)

८८ (ब) ज१-ऋषियशातारको, ज२-ऋषयशांतारको, ज.मो.-ऋषीयशोस्तारको (ऋषी: शातातपो)

८९ (अ) ज१-ऋतिर्यमहावन:, ज२-नैर्ऋतिर्यमवाहन (निर्ऋतिर्नरवाहन:)

८९ (ब) ज, २-अर्धकोशाधिरूपाक्ष (ऊर्ध्वकेशोविरूपाक्ष:), ज१-करालि, ज२-कराली (कराल:)

९० (अ) ज१, २-मेयूर्णास्त्विमिति (मोषुणस्त्विति)

९० (ब) ज१, २-योरंवतोप्य (घोरकण्ठोस्य)

९१ (ब) ज१-तरुणांऽवुपति, ज२-तरुणांबुजपति: (वरुणोऽम्बुपति:), ज१, २-वरुणोमिषवाहना (वर्णो मकर वाहन:)

९२ (अ) ज१-इतित्युच, ज२-अग्ने इतित्युच, ज.मो.-अणतइतित्यृचा (अग्नइत्यृचा)

९२ (ब) ज१, २-ज.मो.-वामदेव इति (वामदेवऋषि:)

९४ (अ) ज१, २-महद्दिशि (मरुद्दिशि)

९४ (ब) ज.मो.-वायु: रव (वायुश्च), ज१, २-देवतास्वस्य (देवतात्वस्य)

९५ (ब) ज१, २-स्वर्ण, ज.मो.-स्वर्णावर्ण: (स्वर्णवर्ण:)

९६ (अ) ज१, २-ज.मो.-धनदेश्वरम्, वा.-गंधनेश्वर (धनेश्वरः)

९६ (ब) वा.-सोमसमसंज्ञकः (सोमसंज्ञकः)

९७ (ब) ज.मो.-सूत्रमृत्यपरमेश्वरः (शूलभूत्यपरमेश्वरः)

९८ (अ) ज१-कटुप्रियतिमंत्रेण, ज२-कुंडप्रियेतिमंत्रेण (कृद्रुद्रायेतिमन्त्रेण)

९८ (ब) वा.-चन्द्रोशेखरः (चन्द्रशेखरः)

९९ (अ) ज१, २-मार्गप्यसंभवा, वा.-मार्गाश्वच्छसंभवा (मार्गाश्वत्थसम्भवाः)

९९ (ब) ज१, २-ज.मो. समिधः, वा.सिमिधाः (समिधाः)

१०० (अ) ज१, २-आर्द्रासत्वकानिवीरा, ज.मो.-सत्यचोनिविड़ाआर्द्रा, ज.मो.-आर्द्रासत्वक्का निविडा (आर्द्राश्च सत्त्वनिबिडा)

१०० (ब) वा.-कनिष्टः का तुल्यवृताः (कनिष्ठिकातुल्यवृता), ज१, २-कासदा (कामदाः)

१०३ (अ) ज१, २-च विन्यसेत् (नवं न्यसेत्)

१०४ (अ) ज.मो.-स्वर्णरक्तफलोपेतं (स्वर्णरत्नफलोपेतं)

१०४ (ब) ज१, २-अतिगौवहिरौर्मंत्रर (अब्लिङ्गैर्वारुणैर्मन्त्रैः), ज.मो.-बीजसंयुतम् (द्विजसंयुतम्)

१०५ (अ) ज१-प्लक्षांतकुंजसंभवं, ज२-प्लक्षोथकुजसंभवं, वा.-प्लक्षाप्रासभव, ज.मो.-प्लाक्षम्लकुजसंभवम् (प्लक्षाप्राब्जजसम्भवम्)

१०५ (ब) ज१, २-गोधूमानां प्रियंभुभिः, वा.-गोधूमायुप्तिंयगुभिः, ज.मो.-गोधूमाप्रियङ्गुभिः, मु.पु. गोधूमाण्डप्रियङ्गवः (गोधूमान्नप्रियङ्गवः)

१०६ (अ) ज१, २-ज.मो.-संगमात् (सम्भवात्)

१०६ (ब) ज१, २-प्रादाय (हृदाच्च), ज१, २-नरपद्धात्सम्भूताश्चाष्ट (नगर-द्वारात्सम्भूताष्ट)

१०७ (अ) ज१, २-ज.मो.-वदरी (खदिर)

१०७ (ब) ज१-सुराशिवा, ज१-सुरासिवा (मुराशिवाः)

१०८ (अ) ज१, २-फलमंजिष्टसंज्ञकाः, वा.-शुद्धपाठः, ज.मो.-जातिफलमांजिष्ट-संज्ञकाः (जातिर्लमामञ्जिष्ठसंज्ञिकाः)

१०९ (अ) ज१, २-मंदयंति, ज.मो.-मदयन्ती (दमयन्ती), वा.-निम्बोक्षीर (निम्बोशीर)

१०९ (ब) ज१-सर्प्पाक्ष, ज२-सर्प्पाख्य (सर्पाक्षी), ज१, २-ज.मो.-रौद्रजटा (रौद्रकुटा)

११० (अ) ज१, २-स्वांवष्टा (पात्वष्टौ), ज१, २-कर्णिकारेणकांचना, वा.-कर्णिकारोपाकाचनाः, ज.मो.-कर्णिकारोर्णाकाञ्चनाः (कर्णिकारोर्णकाञ्चनाः)

११० (ब) ज१, २-सेवतीपद्म (सेवतीपनस), ज१, २-ज.मो.-विश्वाक्षी (विशाक्षी)

१११ (अ) ज१, २-ज.मो.-कुषदमुकुद (कुन्दमुकुल), वा.-नीलात्पकरंका (नीलोत्पल-करञ्जकाः)

१११ (ब) वा.-पंनागचंद, ज.मो.-घनागचन्दन (पुन्नागचन्दन), ज१, २-द्रोणमहोरोहित:, ज.मो.-द्रोणमन्दारो, वा.-द्रोणोमन्दरो (द्रोणमन्दरो)

११२ (अ) ज१, २-ग्राहमल्लिका (गृहमल्लिका:)

११२ (ब) ज१, २-शन्यर्कतीदु:रावारेद्रक्त, वा.-सम्पर्कसिन्धुवारेद्रक्त, ज.मो.-शन्यर्कसिन्दुवारेन्द्रक्त, मु.पु.-सम्पर्कसिन्दुवारेन्द्ररक्त (सम्पाक: सिन्दुवारेन्द्ररक्त), ज१, २-धूतारशंडिला, वा.-धुन्रेरखडिमा:, ज.मो.-धतूरशाण्डिता: (धनूरखण्डिमा)

११३ (अ) ज१-वार्तारास्त्वविपित्पक:, ज२-वार्गागस्त्तयविपित्यक: (वृहतीकरवीरका:)

११३ (ब) ज१, २-पाठस्यलोप:, वा.-नवादावर्तेकुर्वराक्षा, ज.मो.-नद्यावर्तकुवेराक्षी (नन्द्यावर्तकुवेराक्षा)

११४ (अ) ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-सिरस्वामलकाशोकरक्त, ज.मो.-शिरीषामलकाशोक्वर्णा (शिरीषामलकाशोकरक्ता), वा.-गस्तिकपिच्छका: (गस्तिकपित्थका:)

११४ (ब) वा.-वंधकभृंगरागाख्य, ज.मो.-वन्धूकमृगराजाख्य (बन्धूकभृङ्गराजाख्य)

११५ (अ) ज१, २-धातुर्जातो, वा.-चातुर्जातो, ज.मो.-चातुर्जाता (चतुर्जातो), वा.-वर्हिशेखा, ज.मो.-वहिशिखौ (बर्हिशिखा), ज१, २-भूरिषिंचक:, वा.-मधुविवक: (मधुविम्बक:)

११५ (ब) ज१, २-मलूमपुष्यौ, वा.-ज.मो.-तमालमरुपुष्पो (तमालतरुपुष्पा)

११६ (अ) ज१-वाकुदी, ज२-चाकूदी, ज.मो.-वाकुची (व्याकुली), ज१, २-मौडीराक्षा, ज.मो.-माण्डीरास्ना (मौडीरास्ना)

११६ (ब) ज१-शतद्रुमा, ज२-स्वेशतद्रुभ्य (शतद्रुमा:)

११८ (अ) वा.-प्रकीर्तितो: (प्रकीर्तिता:)

११८ (ब) ज१, २-उधृताशीत, वा.-उधृतासिति (उद्धृतासीति)

११९ (अ) ज१-फलिनीमुषा, ज२-कंपलिनीमुखा (फलिनीमुखम्)

१२० (अ) ज१, २-उपहाराणि (उपचारिण)

१२० (ब) ज१, गंधपुष्पयुवंध्वता, ज२-रांधपुष्पयुतंवध्वतौ, ज.मो.-गन्धपुष्पयुवध्वजा: (गन्धपुष्पाक्षतध्वजा:)

१२१ (अ) ज१, २-गुग्गुलम्, वा.गुगुल (गुग्गुलु:)

१२१ (ब) ज१, २-दूर्वास्यु (धूपा:स्यु:)

१२३ (अ) ज.मो.-द्रव्याभावे (गव्याभावे), ज२-भावे च मिश्रकं, ज.मो.-तुमिश्रकम्, वा.-तुमिश्रक (गुडोदनम्)

१२३ (ब) ज१, २-ज.मो.-चंपाकृते (पञ्चामृते)

१२५ (अ) ज१, २-चरुणां (चतुर्णां)

१२५ (ब) ज१, २-उधृतेप्वविहाययेत्, वा.-उधृतेधानिरूपयेत्, ज.मो.-उद्धृतेष्वपिहावयेत् (उद्धृतेष्वभिपूरयेत्)

१२६ (अ) ज१-समिधाग्रेच, ज२-रमिधाग्रे (समिधाज्यान्नै:), ज१, २-वृद्धष्टोत्तरंशतं (पृथगष्टोत्तरं शतम्)

१२६ (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-जुहुयाश्चग्रहोदेशेन (जुहुयाद्ग्रहोद्देशेन)

१२७ (अ) ज१-पाटस्यलोप:, ज२-द्वितांश्चैवाधिदैवत्यां, ज.मो.-चित्राश्चैवाधिदैवत्या: (द्वित्राश्चैवाधिदैवत्या:), ज२-पंचमाचैवपंचमा (पञ्चानां चैव पञ्चधा)

१२८ (अ) ज१, २-हुतोदात्र्योक्त, ज.मो.-भूतेदाप्योक्त (हुनेदाज्यात्त)

१२९ (अ) ज१, २-मलकेफलं, ज.मो.-मलकीफल (पक्वामलक)

१२९ (ब) ज१, २-चरु: शेषं (चरुशेषं)

१३० (अ) ज१, २-ज.मो.-कार्यास्तिलहोम: प्रयत्नत: (कुर्यात्तिलहोमान्प्रयत्नत:)

१३१ (अ) ज१-ग्रहस्यज्ञक: (ग्रहयज्ञक:)

१३२ (ब) ज१, २-समंत: (समन्वित:)

१३४ (अ) ज१, २-यज्ञामानाभिषेकार्थं (यजमानाभिषेकार्थं), ज१-मुद्रासनं, ज२-भेद्रासनं (भद्रासनं)

१३५ (अ) ज१, २-सभार्या, वा.सावार्या, ज.मो.-सचार्या: (साचार्या:)

१३६ (अ) ज१, २-वक्ष्यमाणै, ज.मो.-वक्षमाणै: (वक्ष्यमाणैश्च), ज१, २-समैत्रश्च, ज.मो.-स्वयन्त्रैश्च (मन्त्रैश्च), ज१, २-तल्लिगै: मंत्र मंत्रकै: (अब्लिङ्गैर्वेदमन्त्रकै:)

१३६ (ब) ज१, २-पुण्यजलै:रक्तद्रव्य, ज.मो.-पुण्यजलैरक्तद्रव्य (पूर्णजलैरुक्तद्रव्य)

१३८ (अ) ज१, २, ज.मो.-सुधादीप्ति: (सुधादीप्त:), ज१-सुधाशान:, वा.-सधाशन: (सुधाशन:)

१२९ (अ) वा.-महातेजो (महातेजा)

१४१ (अ) ज१-विशालाक्षा:, ज२-विशालाक्ष्य:, ज.मो.-विशालाक्ष, वा.-विशालार्क्ष: (विशालाक्ष:)

१४२ (अ) ज१, २-ज.मो.-प्राणदश्चमहामति:, वा.-प्रांणद:समदाप्रति (प्राणद: स महाद्युति:)

१४२ (ब) वा.-प्रभुत्वश्चग्रहाणां (प्रभूतस्ताराग्रहाणां)

१४३ (अ) ज१-सविलाश्च, ज२-विशालाक्ष्य:, वा.-विशालाक्षा: (विशालाक्ष:)

१४३ (ब) वा.-र्मकोज: (मेऽर्कज:)

१४४ (अ) ज१, २-पाठोनास्ति

१४४ (ब) वा.-श्चोर्द्धकेशश्च, ज.मो.-अतनुश्चोर्ध्वकेशस्य (अतनुश्चोर्ध्वकेशश्च)

१४५ (ब) वा.-उत्पातरूपै: (उत्पातरूपो)

१४६ (अ) वा.-क्षार्थ (रक्षार्थे), ज१, २-वलिमिक्षिपेत, वा.-वलिंमुक्षिपेत (बलिमुत्क्षिपेत्)

१४६ (ब) ज१, २-नीराजयेत, वा.-नीराजयैतत: (नीराजयेत्तत:)

१४७ (अ) वा.-रक्तगन्धानुलेपनं (शुक्लगन्धानुलेपन:)

१४९ (ब) ज१-मंजस्यातिष्टिति, ज२-मंत्रस्यातिधृति (मन्त्रस्यातिधृति:)

१५० (अ) ज१, २-व्याहृतिव्याह्वितस्तत: (व्याहृते व्याहृतं तत:)

१५१ (अ) ज.मो.-समेत्व (मिलित्वा), ज१-सृक्पृव, ज२-पाठोनास्ति, ज.मो.-सुकश्रुबं, वा.-पृक्स्रुवं (स्रुकस्रुवं), ज१-निक्षिपेद्यभिधार्यत:, ज.मो.-निक्षिपेदभिपूर्वत:, वा.-निक्षेपव्यभिर्मत: (निक्षिपेदभिधार्यतत्)

१५१ (ब) ज.मो.- हुनेत (यजेत्)

१५२ (ब) ज१-समिधार्यश्चरुणां (समिधाज्यचरुणां)

१५३ (अ) ज२-पद्मत्वं (ब्रह्मत्वं)

१५४ (ब) ज१-एववंषोडशाऋषि:त्विग्भ्यो (एवं षोडशऋत्विग्भ्यो)

१५५ (अ) ज१, २-पीताम्बरद्वयं, वा.-पितांवरह्वयं (पीताम्बरं हयम्)

१५५ (ब) ज१-श्वेताश्च, ज२-स्वेताश्चं (श्वेताश्वं)

१५६ (अ) ज१, २-स्वर्णोतपासमीकृत्य, ज.मो.-स्वर्णेनवसाससीकृत्वा (स्वर्णेन वा समीकृत्य)

१५६ (ब) ज१, २-ब्राह्मणोवार्थ, ज.मो.-ब्राह्मणेचार्थ (ब्राह्मणेभ्योऽथशक्तित:)

१५८ (ब) ज१, २-स्यादत: शान्तिं प्रयच्छमे, ज.मो.-शान्तिंप्रयछमे (यस्मादत: शान्तिं प्रयच्छमे)

१५९ (अ) ज१-पुण्यसस्थं (पुण्यस्त्वं)

१५९ (ब) ज१, २-ज.मो. विष्णुनाविधृतो (विष्णुनाऽपिंधृतो), ज१, २-ज.मो.-नित्यमत: (यस्मादत:)

१६१ (अ) ज१-हीमवीनं, ज२-वा.-पाठस्य लोप: (हेमबीजं)

१६२ (ब) ज१, २-विष्णुरत:, ज.मो.-विष्णरत: (विष्णुर्ह्यत:)

१६३ (अ) ज१, २-विष्णस्त्वस्वस्थरूपेण (विष्णुस्त्वमश्वरूपेण)

१६३ (ब) ज१, नित्यरत:, ज२-मतरत (नित्यमत:)

१६४ (अ) ज१, २-सस्मिता (सन्निभा)

१६५ (अ) ज१-तदादीना, ज२-युधादीनि, ज.मो.-त्वदधीनानि (तवाधीनानि)

१६६ (अ) ज१-स्वर्गलोकं (स्वर्गभोगं)

१६६ (ब) ज१, २-लोकगमेभवेत्नर: (भोगश्च मे भवेत्)

१७१ (अ) १, २-विशिष्टेभ्यद्विजेभ्यश्च (अवशिष्टद्विजेभ्यश्च)

१७३ (ब) ज१, २-विवर्द्धनं (वर्द्धय)

१७४ (अ) ज१, २-ज.मो.-द्विजान्क्रमात (द्विजान्पितृन्)

१७४ (ब) ज१, २-तंभुव (बन्धुभि:)

१७६ (अ) ज१-इदंवलवर्द्धयवित्यं, ज२-इदवलं वदर्पवित्यं (इदं बलद्वयंचिन्त्यं)

१७७ (ब) ज१, २-बलानामुत्कटं (ग्रहाणामुत्कटं)

१७८ (ब) ज१, २-तस्माद्बलं प्रमाणाञ्च (तस्माद्बलत्रयाणां)

१७९ (ब) ज१, २-मरणं च समाप्नुयात् (चाश्नुते सर्वसङ्कटान्)

***

अथ सङ्क्रान्त्याध्यायः

सूर्य, शनि तथा भौमवार में सङ्क्रान्ति का फल

रविरविजभौमवारे सङ्क्रान्तौ दिनकरस्य यन्मासे।
पित्तकफानिलजामयनरपतिकलहस्त्ववृष्टिश्च॥१॥

जिस मास में सूर्य की सङ्क्रान्ति सूर्य, शनि या मङ्गलवार के दिन हो तो पित्त, कफ, वायु द्वारा रोग, राजाओं में परस्पर कलह और वर्षा का अभाव हो॥१॥

बुध, गुरु, चन्द्र, शुक्रवार में सङ्क्रान्ति का फल

बुधगुरुसितचन्द्राहे सङ्क्रान्तावनामयं नृणाम्।
क्षितिपतिनिकरक्षेमं सस्यविवृद्धिं विधर्मिणां मरणम्॥२॥

यदि सूर्य सङ्क्रान्ति बुध, गुरु, शुक्र तथा सोमवार को हो तो मनुष्यों के लिए आरोग्यप्रद, राजाओं का कल्याण, फसलों की वृद्धि और पापियों का विनाश होता है॥२॥

नक्षत्रवश सङ्क्रान्ति संज्ञा

घोराग्र्यर्क्षे ध्वांक्षी लघुभे चरभे महोदरीमृदुभे।
मन्दाकिन्यस्थिरर्क्षे मन्दा मिश्रा च राक्षसी तीक्ष्णे॥३॥

सूर्य सङ्क्रमण (राशि परिवर्तन) यदि उग्रसंज्ञक (पू.फा., पू.षा., पू.भा., भरणी, मघा) नक्षत्रों में हो तो घोरा नामक सङ्क्रान्ति, लघु संज्ञक (आश्विनी, पुष्य, हस्त, अभिजित्) नक्षत्रों में ध्वांक्षी नामक, चर संज्ञक (स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रों में महोदरी, मैत्र संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) नक्षत्रों में मन्दाकिनी, स्थिर संज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) नक्षत्रों में मन्दा, मिश्र संज्ञक (विशाखा, कृतिका) नक्षत्रों में मिश्रा, तीक्ष्ण संज्ञक (मूला, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा) नक्षत्रों में राक्षसी नामक सङ्क्रान्ति होती है॥३॥

क्रमागत–

नारदः–

घोराध्वांक्षीमहोदर्यो नन्दामन्दाकिनीमता।
मिश्राराक्षसिकानाम सूर्यवारादिषुक्रमात्॥

(नारदः)

कश्यपः–

घोराध्वांक्षी महोदर्योमन्दा मन्दाकिनी तथा।
मिश्रा राक्षसिका सूर्य संक्रान्तिश्चार्क वासरात्॥

(कश्यपः)

सङ्क्रान्ति फल निर्णय

शूद्रविट्चौरभूपद्विजगणपशुमुख्यसर्वजन्तूनाम् ।
शुभफलदाः क्रमशस्ता नूनं सङ्क्रान्त्यस्तेषाम्।।४।।

घोरा नामक सङ्क्रान्ति शूद्रों के लिए, ध्वांक्षी वैश्यों, महोदरी चोरों, मन्दाकिनी राजाओं, मन्दा ब्राह्मणों, मिश्रा पशुओं तथा राक्षसी अन्त्यजों के लिए सुखकारी है।।४।।

क्रमागत–

नारदः–

शूद्रविट् तस्करक्ष्माप भूदेवपशुनीचजाः।
अनुक्तानां च सर्वेषां घोराद्याः सुखदाः स्मृताः।।

(नारदः)

कश्यपः–

घोरासुखाय शूद्राणां विशां ध्वाङ्क्षी सुखप्रदा।
महोदरी च चौराणां राज्ञां मन्दाकिनी हिता।।
विप्राणां शुभदा मन्दा पशूनां मिश्रिकामुदे।
चाण्डालशौण्डिकादीनां सुखदा स्यात्तु राक्षसी।।

(ज्यो.नि., पृ० १३, श्लोक ४, ५)

वार नक्षत्र से संक्रान्ति नाम सारणी

वार	नक्षत्र	संक्रान्ति नाम	फल
रवि	पू.फा., पू.षा., पू.भा., भरणी, मघा	घोरा	शूद्रसुखकारी
चन्द्र	अश्वि., पुष्य, अभि., हस्त	ध्वांक्षी	वैश्यसुखप्रदा
मंगल	स्वा., पुन., श्रव., धनि., शत.	महोदरी	चौर हितकारी
बुध	मृग., चित्रा, अनु., रेवती	मन्दाकिनी	राजा श्रेयस्करी
गुरू	उ.फा., उ.षा., उ.भा., रोहिणी	मन्दा	ब्राह्मण सुखकारी
शुक्र	विशाखा, कृत्तिका	मिश्रा	पशु सुखकारी
शनि	आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल	राक्षसी	अन्त्यज सुखकारी

करणों के आधार पर सुप्तादि सङ्क्रान्ति का ज्ञान

नागचतुष्पदतैतिलकरणे सुप्तः करोति सङ्क्रमणम्।
कौलवशकुनिकिंस्तुघ्ने करणे चोर्ध्वस्थितो दिनकृता।।५।।

नाग, चतुष्पद और तैतिल करण में सूर्य संक्रमण होने पर सुप्त संज्ञा तथा कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न करणों में सूर्य की सङ्क्रान्ति उर्ध्वस्थिति वाली होती है।।५।।

क्रमागत–
नारदः–

निविष्टो वणिजे विष्ट्यां बालवे च गरे ववे।
कौलवे शकुने भानुः किस्तुघ्ने चोर्ध्वसंस्थिता।।
चतुष्पातैलिलेनागे सुप्ताक्रान्तिकरोति सा।
धान्यार्घवृष्टिसु भवेदनिष्टक्रमशस्तदा।।

(नारदः)

स्यादुत्थितश्च किंस्तुघ्ने शकुनौ कौलवे रविः।
संक्रान्तिस्तैतिले नागे प्रसुप्तस्य चतुष्पदे।।
निविष्टश्च गरे विष्ट्यां बवे वणिजबालवे।
वृष्ट्यर्घादेः क्रमादिष्टमनिष्टं मध्यमं फलम्।।

(ज्यो.नि., पृ० ९४)

गरबवविष्ट्यां वणिजे सबालवे सततं च निविष्टः।
सततं जगतां वृष्टिर्धान्यार्घत्वं विशेषतः क्षेमम्।।६।।

गर, बव, विष्टि, वणिज, बालव करणों में सूर्य संक्रमण अर्थात् सङ्क्रान्ति होने पर संसार में वृष्टि, धनधान्य की वृद्धि तथा विशेष कल्याणकारक होता है।।६।।

क्रमशस्त्वनिष्टमिष्टं मध्यमरूपं भवेदतुलम्।
नानाविधान् रोगानप्येवं ज्ञातव्यमर्भकादीनाम्।।७।।

पूर्व कही हुई संक्रान्तियों का फल अनिष्ट, इष्ट एवं मध्यम होता है। अर्थात् ये संक्रान्तियाँ अतुलनीय फलप्रद होती हैं; परन्तु गर्भस्य शिशुओं एवं छोटे बच्चों के लिए रोगप्रद भी होती हैं।।७।।

काल के आधार पर सङ्क्रान्ति का फल

पूर्वाह्णे नृपतिभयं मध्याह्ने हन्ति भूसुरानखिलान्।
अपराह्णे वैश्यगणं शूद्रानखिलान्हि चास्तमये।।८।।

पूर्वाह्णकालिक संक्रान्ति राजाओं के लिए भयप्रद मध्याह्न समस्त राजाओं को नष्ट करती है। अपराह्ण कालिक वैश्यों को तथा अस्तकालिक संक्रान्ति शूद्रों को नष्ट करती है।।८।।

क्रमागत–

पूर्वाह्णे नृपतीन्हन्ति विप्रान्मध्यदिने विशः।
अपराह्णेऽस्तगे शूद्रान्प्रदोषे च पिशाचकान्।।
निशिरात्रिचरान्नट्यकारानपररात्रके ।
गोचारिणश्च सन्ध्यायां लिङ्गिनं रविसंक्रमे।।

(मु.चि.प्र. ३, श्लोक ३, पी.धा.टीका)

पूर्वाह्नकाले नृपतिद्विजेन्द्रान् मध्ये दिने चाथ विशोऽपराह्ने।
शूद्रान रवावस्तमिते प्रदोषे पिशाचकान् रात्रिचरान्निशीथे।।
नटादिकांश्चापररात्रकाले प्रत्यूषकाले पशुपालकांश्च।
संक्रान्तिरर्कस्यसमस्तलिङ्गन् प्रभातसन्ध्यासमये निहन्ति।।

(ज्यो.सा., पृ० ४०, श्लोक ४, ५)

रात्रिचरान्निशिसमये सन्ध्यासमये पिशाचगणान्।
नटनर्त्तकानपरनिशि पशुपान्निखिलान्निहन्त्युषसि।।९।।

रात्रि कालिक संक्रान्ति निशाचरों को, सन्ध्या कालिक पिशाचों को, रात्रि उत्तरार्द्ध कालिक संक्रान्ति नट, नर्त्तकों को, उषाकालिक संक्रान्ति समस्त पशुपालकों को नष्ट करती है।।९।।

क्रमागत–

दिवा चेन्मेषसङ्क्रान्तिरनर्धकलहप्रदा।
रात्रौ सुभिक्षमतुलं सन्ध्ययोर्वृष्टिरूत्तमा।।

(ज्यो.नि., पृ० ९३, श्लोक ८)

केवलसन्ध्यासमये लिङ्गिव्रातं च निखिलसन्यासीन्।
शुभफलदा सङ्क्रान्तिरनुक्तकाले नृणां सततम्।।१०।।

सन्ध्याकालिक संक्रान्ति केवल ब्रह्मचारियों एवं सन्यासियों को नष्ट करती है, संक्रान्तिकाल जो अभी तक वर्णित नहीं हुए उनमें संक्रान्ति होने पर सर्वदा मनुष्यों को शुभफल होता है।।१०।।

क्रमागत–

मृग्कर्क्यजगोमीनसङ्क्रान्तिर्निशिसौख्यदा।
शेषेषु सप्तसु दिवा व्यत्ययादशुभं भवेत्।।

(ज्यो.नि., पृ० ९३, श्लोक ९)

सङ्क्रमणों में गौण पुण्यकाल

दिनपतिसङ्क्रमणात्प्राक् षोडशानाड्यः स पुण्यकालस्तु।
परतः षोडशानाड्यः सर्वत्रस्नानदानयोः पुण्याः।।११।।

सूर्य भगवान् के संक्रमण से पूर्व सोलह (१६) घटी तक, संक्रमण के पश्चात् सोलह घटी तक सर्वत्र अर्थात् सभी स्थानों में स्नानदानादि का पुण्यकाल रहता है।।११।।

क्रमागत–

संक्रान्तिकालादुभयत्रनाडिकाः पुण्यमताः षोडशषोडशोष्णगोः।

(मु.चि. मणि.प्र. ३, श्लोक ५)

पूर्वतोपि परतोऽपि सङ्क्रमात्पुण्यकालघटिकास्तुषोडश।
अर्द्धरात्रिसमयादनन्तरं सङ्क्रमे परदिनं हि पुण्यदम्।।

(मु.चि. प्र. ३, श्लोक ८)

संक्रान्ति पुण्यकाल ज्ञान

सङ्क्रमणं यद्यहनि तदहः पुण्यं च पुण्यकार्येषु।
निश्यर्द्धात्प्राक्सङ्क्रमणं पूर्वाह्वः स्नानदानयोः पुण्यः।।१२।।

यदि भगवान् सूर्य का संक्रमण दिन में हो तो दिन में ही पुण्यकार्यों में पुण्यफलप्रद होता है। अर्द्धरात्रि के पूर्व संक्रमण हो तो पहले दिन स्नानदानादि का पुण्य होता है।।१२।।

क्रमागत–

यद्यर्थरात्र एवं स्यात्सम्पूर्णो रविसङ्क्रमः।
तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानादिकर्मसु।।

(ज्यो.नि. पृ० ९६, श्लोक ११)

निश्यर्द्धात् सङ्क्रान्ति पश्चाच्चेत्परदिनं पुण्यम्।
निशि समये साक्षाच्चेद्दिनद्वयं स्नानदानयोः पुण्यम्।।१३।।

आधी रात के बाद संक्रमण हो तो अगले दिन पुण्य काल होता है, रात्रि काल में संक्रान्ति होने पर दोनों दिनों में स्नान दानादि का पुण्य होता है।।१३।।

क्रमागत–

अहः सङ्क्रमणे पुण्यमहः सर्वं प्रकीर्तितम्।
रात्रौ सङ्क्रमणे पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः।।
अर्धरात्रादधस्तत्र दिनार्धस्योपरि क्रिया।
ऊर्ध्वसङ्क्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम्।।
सम्पूर्णे चार्धरात्रे तु भानुः सङ्क्रमते यदा।
पुण्यकालं प्रयत्नेन प्रभाते मनुरब्रवीत्।।

(लल्लाचार्य:, व.दै.र, पृ० ३९०)

विष्णुपदी आदि सङ्क्रान्तियों की संज्ञा

स्थिरराशिषु विष्णुपदं षडशीतिमुखं यद्युभयभे चैव।
मृगकर्कटसङ्क्रान्ती ह्युदगयनं दक्षिणायनं चैव।।१४।।

स्थिर राशियों में अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ में विष्णुपदी संज्ञक, द्विस्वभाव राशियों में अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि की संक्रान्ति षडशीतिमुखी, मकर राशि में संक्रमण उत्तरायणी तथा कर्क राशि में संक्रमण दक्षिणायानी संज्ञक समझें।।१४।।

क्रमागत–

स्थिरभेष्वर्कसंक्रान्तिर्ज्ञेया विष्णुपदाह्वया।
षड्शीतिमुखंज्ञेयं द्विस्वभावेषुराशिषु।
तुलाधराजयोर्ज्ञेयं विषुवं सूर्यसङ्क्रमे नारदः।।

(मु.चि.प्र. ३, श्लोक ४, पी.धा.टी.)

स्थिरे विष्णुपदं कर्किदक्षिणायनमादितः।
मृगे सौम्यायनं द्वयङ्गे षडशीतिमुखं पुरः 'घटेऽजे विषुवं'।।

(ज्यो.नि., पृ० ९६, श्लोक ६, ७)

विषुवत संक्रान्तियाँ

अजधटसङ्क्रान्तिद्वयं विषुवत्प्रकीर्तितं नित्यम्।
द्वादशसङ्क्रान्तीनां चतुष्टयं तद्विशिष्टतमम्।।१५।।

मेष तथा तुला संक्रान्ति सदैव विषुवत संज्ञक संक्रान्तियाँ कही गयी हैं। इस प्रकार बारह राशियों में चार संक्रान्तियाँ विशेष हैं।।१५।।

विष्णुपदी सङ्क्रान्तियों में पुण्यकाल का ज्ञान

हरिपदयाम्यत्वयने पूर्वदिनं स्नानदानयोः पुण्यम्।
षड्शीतिमुखेत्वयने सौम्ये पुण्यं च परदिनं निशिचेत्।।१६।।

विष्णुपदी दक्षिणायन संक्रान्ति में स्नानदानादि का पुण्यकाल पूर्व दिन में समझें—षडशीतिमुख उत्तरायण संक्रान्ति में पुण्यकाल अग्रिम दिन में होता है। रात्रि काल में संक्रान्ति हो तो विचार पूर्वक विशेष निर्णय करते हुए ही ज्योतिषियों को सर्वदा आदेश करना चाहिए।।१६।।

क्रमागत–

याम्यायने विष्णुपदे तदादौ दानाद्यनन्तं विषुवे च मध्ये।
वदन्त्यतीते षड्शीतिवक्त्रे महर्षयः खल्वयने च सौम्ये।।

(मुचि. प्र. ३, श्लोक ८, पी.धा.टी.)

श्राद्धतर्पणादि न करने पर फल

विषुवत्ययने ग्रहणे सङ्क्रान्तौ पुण्यदिवसे वा।
पितृतृप्तिं यो न करोति दत्त्वा शापं व्रजन्ति तस्य सदा।।१७।।

विषुवत् संक्रान्ति, उत्तरायण एवं दक्षिणायन संक्रान्तियों में पुण्यकाल में जो कोई पितरों का श्राद्ध तर्पणादि न करे तो पितर श्राप देकर चले जाते हैं।।१७।।

आगतगतसमयेऽपि च करोति दानं जपं च होमाद्यम्।
ऊषरवापितबीजं यद्वत्तद्वच्च निष्फलं भवति।।१८।।

आते-जाते समय में जो दान, जप, होमादि करता है, उसका ऊषर (बंजर भूमि) में बोये हुए बीज की तरह सम्पूर्ण कार्य नष्ट हो जाता है॥१८॥

समयानुसार स्नानदानादि का महत्त्व

सुतजनने सङ्क्रान्तौ उपरागे चन्द्रसूर्ययोर्नित्यम्।
रात्रावपि कर्त्तव्यं स्नानं दानं विशेषतो नृणाम्॥१९॥

पुत्र जन्म, संक्रान्ति समय, सूर्यचन्द्र ग्रहण होने पर रात्रिकाल में भी विशेषकर स्नानदानादि करना चाहिए॥१९॥

क्रमागत–

ग्रहणेऽर्कस्य सङ्क्रान्तौ विवाहे पुत्रजन्मनि।
काम्यव्रते च मरणे रात्रौ स्नानार्थमुत्तमम्॥

(ज्यो.नि. पृ० ९६, श्लोक १९)

मेषादि संक्रान्तियों में वर्षा का फल

अजकन्यावृषकर्किणि सङ्क्रान्तौ यदि भवेद्वर्षम्।
अतुलं क्षेमसुभिक्षं नृपसज्जनगोकुले क्षेमम्॥२०॥

मेष, कन्या, वृष और कर्क की संक्रान्ति के समय यदि वर्षा हो तो अत्यन्त कल्याण, सुभिक्ष, राजा, सज्जन गोकुलों का कल्याण होता है॥२०॥

घटचापसिंहमिथुनसङ्क्रान्तौ यदि भवेद्वर्षम्।
आमयडामरभूभुजयुद्धभयं त्ववृष्टिश्च॥२१॥

कुंभ, धनु, सिंह, मिथुन संक्रान्ति काल में यदि वर्षा हो तो रोग, दंगे-फसाद, राजाओं में परस्पर युद्ध भय होता है, आने वाले समय में वृष्टि भी नहीं होती॥२१॥

धटवृषवृश्चिकमकरे वृष्टिः स्यात्संक्रमणसमये।
विस्फोटामयतस्करपीडावृष्टिः कृशानुभयम्॥२२॥

तुला, वृष, वृश्चिक और मकर संक्रान्ति काल में वर्षा हो तो विस्फोट, रोग, चोरों द्वारा पीड़ा, वृष्टि एवं अग्नि से भय होता है॥२२॥

संक्रान्तियों के वाहन

हरिशार्दूलवराहगर्दभगजमहिषाश्च घोटकाश्चैव।
श्वानवृषभकुक्कुटाः स्युः सङ्क्रान्तेर्वाहनानि बवकरणात्॥२३॥

सिंह, शार्दूल (चीता, बाघ), सूअर, गर्दभ (गधा), हाथी, भैंसा, घोड़ा, कुत्ता, बकरा, बैल एवं मुर्गा ये क्रम से बवादि करणों के संक्रान्ति वाहन कहे गये हैं॥२३॥

विभिन्न देशों में नक्षत्रानुसार वाहन फल

बाह्लीलककखशवङ्गाङ्गेषु तु विज्ञेयं वाहनं च ऋक्षभवम्।
करणभवं त्वन्यस्मिन्देशे नियतं च वाहनं ज्ञेयम्॥२४॥

बाह्लीक, खश, बङ्गाल, कलकत्ता तथा अङ्ग (बिहार) इत्यादि देशों में नक्षत्रों से उत्पन्न वाहनों का विचार करना चाहिए। इसी प्रकार करणों से उत्पन्न होने वाले वाहनों को अन्य देशों के लिए समझें॥२४॥

बवादि करणों में संक्रान्ति फल

क्रमशो विभर्त्ति दिनपो बबतो भुशुण्डी गदाख्यं च।
खड्गाख्यं दण्डकार्मुकतोमरकुन्तपाशाङ्कुशास्त्रशराः॥२५॥

बवादि करणों में संक्रान्ति होने पर क्रम से बन्दूक, गदा, तलवार, दण्ड, धनुष, तोमर, भाला, पाश, अङ्कुश अस्त्र एवं बाण धारण करते हैं॥२५॥

चन्द्रवशसङ्क्रान्ति का फल

विधोर्बलाबलैनैतत्सङ्क्रमेण दिवाकरः।
ददाति तत्फलं नृणां तस्मिन्मासे तु गौणतः॥२६॥

चन्द्रमा के बलाबलानुसार सूर्य का संक्रमण होने पर मनुष्यों को संक्रान्ति मास में गौण रूप से फल प्राप्त होता है॥२६॥

सङ्क्रान्ति से जन्मवश शुभाशुभफल

हानिश्चेदर्कसङ्क्रान्तिर्जन्मपूर्वर्क्षतस्त्रिषु।
अर्थलाभं तथा षट्सु शेषेऽष्वेवमुपप्लवः॥२७॥

जिस व्यक्ति के जन्म नक्षत्र, जन्म मास, जन्मतिथ्यादि में संक्रान्ति होती है तो मास पर्यन्त हानि, जन्म नक्षत्र से तीन एवं छः के क्रम से तीन प्रकार से विचार करें तो क्रमशः तीन में हानि और छः में लाभ होता है॥२७॥

संक्रमण काल में सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमङ्गलादि का फल

दशन्ति सूर्यमुक्तर्क्षान्निर्जीवाख्यं च भत्रयम्।
एकादशर्क्षं विशर्क्षं मङ्गले निधनप्रदम्॥२८॥

सूर्य नक्षत्र से तीन नक्षत्र यदि चन्द्रमा भोग कर रहा हो तो निर्जीव संज्ञा होती है। वहीं से (अर्थात् सूर्य नक्षत्र से) ग्यारह नक्षत्रों से बीस नक्षत्रों के बीच में भोग करे तो मृत्युप्रद होता है॥२८॥

शूलदोष-निर्जीव दोषों के उपाय

शूलदोषापनुत्त्यर्थं निर्जीवस्यापनुत्तये।
स्वर्णशूलं द्विजे दद्यात्तिलवस्त्रसमन्वितम्॥२९॥

शूल दोष शान्ति एवं निर्जीव संज्ञक दोषों की शान्ति के लिए स्वर्णशूल तिल वस्त्रादि से समन्वित करके ब्राह्मण को दान देना चाहिए।।२९।।

अर्कविम्बचरान्नित्यं भचक्रं लभतेऽयनात्।
अस्तोदये तदयनमुच्चनीचोच्चवर्त्मनः।।३०।।

सूर्य बिम्ब प्रतिदिन गमन करता है और भचक्र को प्राप्त करता है। अयन से उदयास्त काल में सूर्य अयन उच्च, नीच तथा समान कक्षाओं में होता है।।३०।।

तदंशैर्न्यूनकालो हि वर्तमानस्य निर्गमः।
परराशिप्रवेशश्च राशीनामेवमेव हि।।३१।।

उन्हीं अंशों के न्यूनकाल में वर्तमान एवं निर्गम, पर राशि प्रवेश राशियों के द्वारा ही जानना चाहिए।।३१।।

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां सङ्क्रान्त्याध्यायः एकोनविंश।।१९।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के संक्रान्त्याध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका समाप्त।।१९।।

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, २-तन्मासि, वा.-तन्मासे (यन्मासे)

२ (ब) ज१, २-ज.मो.-पीडा (मरणम्)

३ (ब) ज१, ज२, ज.मो. चलर्क्षे, मु.पु. चरर्क्षे (स्थिरर्क्षे)

४ (ब) ज१-सुभमित्रे, ज.त्रो.-वा.-शुभफलदा (शुभफलदाः), ज१-संक्रान्तयसदातेषाम्, ज२-ज.मो.-संक्रांतयः सदातेषां (सङ्क्रान्त्यस्तेषाम्)

५ (अ) ज१-तैलंकरणो (तैतिलकरणे)

५ (ब) ज१-कौलवशुक्ले, ज२-कौलवकरणो (कौलवशकुनि), ज१-घोर्द्धस्थिते, ज२-चोर्द्धस्थिते (चोर्ध्वस्थितो)

६ (अ) ज१, २-निविष्टसः, ज.मो.-निविष्टः सः, व.-पाठस्यलोप (निविष्टः)

६ (ब) ज१, २-जगती (जगतां), ज१-वृष्टिर्वात्यंर्घत्व, ज२-वृष्टिःवार्धच (वृष्टि-र्धान्यार्घत्वं)

७ (अ) ज१, २-मध्यमस्तपं (मध्यमरूपं)

७ (ब) ज१, २-नानाविधरोगान, मु.पु.-नानाविधात्रोगानप्येवं (नानाविधान्रोगानप्येव)

८ (ब) ज१, २-शूद्रानखिलांश्च (शूद्रानखिलान्हि), ज१-वास्तसमये, ज२-वांशस्तंमये (चास्तमये)

९ (ब) ज१, २-पशुनानाखिलां (पशुपान्निखिलान्)

१० (अ) ज१, २-लिङ्गव्रातं (लिङ्गिव्रातं), ज१, २-निखिलसत्वास्था, वा.-निखिलसन्सान् (निखिलसन्यासीन्)

१२ (ब) ज१-पूर्वोह्व, ज२-पूर्वान्ह (पूर्वाह्नः)

१३ (अ) ज१-पश्चान्वित्परदिनं, ज२-पश्चानित्यरदिनं (पश्चाच्चेत्परदिनं)

१३ (ब) ज१-संक्रान्तिर्दिनद्वयं, ज२-संक्रान्तिः दिनद्वयं (साक्षाच्चेद्दिनद्वयं)

१४ (अ) ज१, २-पदमयमेवेव (यद्युभय भे चैव)

१८ (अ) ज१-यद्दानजपहोमाख्यं, ज२-षदानवपहोमाख्यं (दानं जपं च होमाद्यम्)

१८ (ब) ज१-उषरभूमौबीजं, ज२-ऊषरभूमौबीजं (ऊषरवापितबीजं)

१९ (अ) ज१, २-संक्रांता (सङ्क्रान्तौ)

१९ (ब) ज१-विदोषतोनृणां (विशेषतोनृणाम्)

२० (अ) ज१, २-ज.मो.-ऋषिकर्किणि (वृषकर्किणि)

२० (ब) ज१, २-गोकुले (गोकुले)

२१ (अ) ज१-सिंघामिथुने, ज२-वा.-ज.मो.- सिंहमिथुने (सिंहमिथुन)

२२ (अ) ज१, २-संक्रमेसमये, वा.-संक्रमसमये (स्यात्संक्रमणसमये)

२३ (अ) ज१, २-यदिशार्दूल (हरिशार्दूल), ज१, २-महिषाश्वशुभाः, वा.-महिषाश्वश्वा, ज.मो.-महिषाश्वशुनः (महिषाश्वघोटकाश्चैव)

२३ (ब) ज१, २-संक्रान्तौवाहनानि (सङ्क्रान्तेर्वाहनानि)

२४ (अ) ज१-वशंवंगांगेषुतु, ज२-स्ववशंगागेयुत (खशवङ्गाङ्गेषु), ज१, २-ऋक्षभयं, व.-ऋक्षभवान् (ऋक्षभवम्)

२५ (अ) ज१, २-भुशुंडिमिंडिपालाख्यं (भुशुण्डी गदाख्यं च)

२६ (अ) ज१, २-नैवसंक्रमणो, वा.-नैतत्संक्रमणा (नैतत्सङ्क्रमेण)

२७ (अ) ज१, २-जन्मर्क्षेभयतिस्त्रि, ज.मो.-जन्मपूर्वापरत्रिषु (जन्मपूर्वर्क्षतस्त्रिषु)

२७ (ब) ज१, २-अर्थचवत्लाभं तथा, वा.-ज.मो.-अर्थलाभस्तथा (अर्थलाभं तथा)

२८ (अ) ज१, २-दशीत्, वा.-दर्शोतं, ज.मो.- (दशन्ति), (दशन्ति), ज१, ज२-मुक्ताक्षीतिजांवाक्षं च मंत्रयं (सूर्यमुक्तार्क्षाब्रिर्जीवाख्यं च भत्रयम्)

३० (अ) ज१, २-चरेनित्यं, ज.मो.-चरोनित्यं (चरान्नित्यं)

३० (ब) ज१, २-दयेतदयनुमुष्टनीचोद्यवर्त्मन (तदयनमुच्चनीचोच्चवर्त्मनः)

३१ (अ) ज१, २-तदैशेर्न्यूनकालो (तदंशैर्न्यूनकालो)

***

२०

अथ चन्द्रताराबलाध्यायः

चन्द्रमा का शुभाशुभफल

प्रथम दिने वत्सरतः शुभदे चन्द्रे च यस्य पुरुषस्य।
तद्वर्षे शिशिरकरः शुभफलदस्तस्य बेधयुक्तोऽपि॥१॥

जिस पुरुष का वर्ष के प्रारम्भ में पहले दिन चन्द्रमा शुभ होता है, उस वर्ष में वर्ष के अन्त तक चन्द्रमा वधयुक्त होने पर भी शुभफलप्रद होता है॥१॥

क्रमागत–

नारदः–

शुक्लपक्षाद्यदिवसे चन्द्रो यस्य शुभप्रदः।
स पक्षस्तस्य शुभदः कृष्णपक्षेऽन्यथा शुभः॥

नारदः (ज्यो.नि., पृ० ४९, श्लोक १)

वलर्क्षपक्षादिगते हिमांशौ शुभे शुभं पक्षमुदाहरन्ति।
सितेतरादावशुभे शुभं च पक्षावनिष्टौ भवतोऽन्यथा तौ॥

आचार्यश्रीपतिः (वृ.दै.र., पृ० २७२)

अयनादौ ऋतुसमये मासेऽप्येवमेव विजानीयात्।
ताराबलमाप्तिस्तच्छुभतारा चेत्तथैव शुभदा स्यात्॥२॥

अयन या ऋतु अथवा मास के प्रथम दिन में चन्द्रमा तथा ताराबल यदि शुभफलप्रद तो पूरे अयन, पूरी ऋतु तथा सम्पूर्ण मास पर्यन्त शुभफल होता है॥२॥

सितपक्षस्याद्यदिने शुभदस्तत्पक्षमति शुभदः।
असितस्यादावशुभः शुभफलदः पक्षमखिलं तत्॥३॥

यदि चन्द्रमा शुक्लपक्ष प्रतिपदा के दिन शुभ हो तो वह पक्ष पर्यन्त शुभफलप्रद होता है। कृष्णपक्ष में यदि अशुभ हो जाये तो सम्पूर्ण पक्ष शुभफल देने वाला होता है॥३॥

जन्मत्रिकलत्ररिपु द्वितीयनववमायसु तदशमे।
सितपक्षहिमकिरणः शुभदः कृष्णे त्रिपञ्चधननवमे॥४॥

जन्म लग्न, तृतीय, सप्तम, छठा, दूसरा, नौवाँ, ग्यारहवाँ, पञ्चम तथा दशवें स्थानों में शुक्लपक्ष का चन्द्रमा शुभ होता है, जबकि कृष्णपक्ष में तीसरे, पाँचवें, दूसरे नवमें चन्द्रमा अशुभ होता है॥४॥

जन्मनक्षत्र-ताराबल का शुभाशुभफल

जन्मभमनुजन्मर्क्षं त्रिजन्मभं नेष्टमखिलकार्येषु।
सम्पत्तारा शुभदा विपदाख्या विपत्प्रदा तारा॥५॥

जन्म नक्षत्र, जन्म नक्षत्र से पूर्व नक्षत्र, जन्म से तीसरा नक्षत्र समस्त शुभ कार्यों के लिए नेष्ट कहा है। सम्पत् तारा शुभफलप्रद तथा विपत् तारा विपत्ति देने वाली होती है॥५॥

ताराओं का शुभाशुभ फल

क्षेमाख्या क्षेमकरी प्रतिकूला प्रत्यरिस्तारा।
साधनभं साधनदं नैधनभं नैधनं नृणाम्॥६॥

क्षेमतारा कल्याणकारिणी, प्रत्यरि तारा प्रतिकूल फलप्रदा, साधना तारा साधन देने वाली निधन तारा मनुष्यों को मृत्यु देने वाली होती है॥६॥

मैत्रीकरणं मित्रभमतिमैत्रं परममैत्रर्क्षम्।
एवं विचार्य सततं बलाबलं दैववित्कथयेत्॥७॥

मित्र तारा मैत्रीकारक, अति मैत्र तारा परम मैत्रीकारक होती है। इस प्रकार भली-भाँति विचार करके ज्योतिषियों को फलादेश करना चाहिए॥७॥

पक्षानुसार चन्द्रताराबल विचार

सितपक्षेहिमकिरणो बलवान्कृष्णेऽपि बलवती तारा।
शशिबलवत्प्राधान्यं शुक्ले कृष्णे च तारकायाश्च॥८॥

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बलवान एवं कृष्णपक्ष में तारा बलवती होती है। कृष्णपक्ष की तारा शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के बल के समान प्रधान होती है॥८॥

क्रमागत-

पक्षे सिते चन्द्रबलं प्रधानं ताराबलं तत्र न चिन्तनीयम्।
सुप्ते गृहस्थे सबले च पत्यौ प्रधानता नास्ति यतोऽङ्गनानाम्॥

(ज्यो.नि., पृ० ४९, श्लोक ७)

चन्द्रमा का बल प्राधान्य

अमृतकिरणस्त्वमृतभवस्तद्बलमखिलं च तद्वत्स्यात्।
अमृतमयं तत्तस्मादभ्यधिकं त्वन्यखेटबलान्॥९॥

चन्द्रमा की उत्पत्ति अमृत से कही गई है। अतः उसका सम्पूर्ण बल उसी प्रकार से होता है, अमृतमय होने के कारण अन्य ग्रहों के बल की अपेक्षा अधिक बलवान होता है॥९॥

तुहिनकरो जगतां यद्वत्तद्वच्च तद्बलं त्वखिलम्।
तन्महिमानं व्याचष्टे गुणरूपं निखिल जन्तूनाम्॥१०॥

चन्द्रमा जैसा बलशाली होता है, उस प्रकार से बलशाली फल देता है। समस्त प्राणियों के लिए चन्द्रमा के गुण रूप और महिमा को कहते हैं॥१०॥

बला अखिलमृगाणां हरिरिव खचरबलानां च चन्द्रबलम्।
हिमकिरणे बलिनि सति सर्वे बलिनो वियच्चरा नित्यम्॥११॥

जैसे सम्पूर्ण मृगों (पशुओं) में सिंह बलवान होता है, उसी प्रकार ग्रहों में चन्द्रमा की प्रधानता होती है। चन्द्रमा यदि बलवान हो तो सभी ग्रह बलवान हो जाते हैं॥११॥

क्रमागत–

आधामिन्दोर्बलमुक्तमाद्यैराधेयमन्यग्रहजं च वीर्यम्।
आधारशक्तौ परिधिष्ठितानामाधेय वस्तूनि हि वीर्यववन्ति॥
अमृतकिरणवीर्याद्वीर्यमाश्रित्य सर्वे ददाति।
हि फलमेते खेचराः साध्वासाधु॥
निजनिज विषयेषु प्राप्नुवन्ते यतोऽभूत।
फलमिह मनसैवाधिष्ठितानीन्द्रियाणि॥

(ज्यो.नि., पृ० ६३, श्लोक ३, ४)

अभ्यधिकं चन्द्रबलं त्वबलं ताराग्रहोद्भवं निखिलम्।
हिमकिरणबलार्द्धादपि नो तुल्यं ग्रहबलं सर्वम्॥१२॥

चन्द्रमा का बल अत्यधिक बली होने से ग्रह अधिक बलवान तथा निर्बल होने से तारा ग्रहों से उत्पन्न सभी फलों का विचार करना चाहिए। चन्द्रमा यदि आधा बलशाली भी हो तो भी उसके तुल्य सभी ग्रहों का बल नहीं हो पाता है॥१२॥

॥इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां चन्द्रताराबलाध्यायो विंशः॥२०॥

॥वृद्ध वसिष्ठ संहिता के 'चन्द्रताराबलाध्याय' की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥२०॥

पाठान्तरम्

---

१ (अ) ज१-शुभेचंद्रस्य, ज२-शुभेदचन्द्रस्य (शुभदे चन्द्रे)

१ (ब) ज१, २-तद्वर्षशशिकर (तद्वर्षे शशिरकरः), ज१, २-वेयुक्तोपि, मु.पु. बुधयुक्तोऽपि (वेधयुक्तोऽपि)

२ (अ) ज१, २-मासेवाप्येवमेव (मासेऽप्येवमेव)

२ (ब) ज१, २-तारावलमपितद्धशुभतारा (ताराबलमाप्तिस्तच्छुभतारा)

३ (ब) ज१, २-असितस्याधशुभे, वा.-असितस्यादावशुभे (असितस्यादावाशुभः)

४ (अ) ज१, २-घुनशमे (सुतदशमे)
४ (ब) ज१, २-अपिपञ्चधननमे (त्रिपञ्चधननवमे)
५ (अ) ज१, २-जन्मभेर्नुजमन्मर्क्ष (जन्मभमनुजन्मर्क्ष)
५ (ब) ज१, २-शुभदायी (शुभदा)
६ (अ) ज१, २-क्षेमस्था: (क्षेमाख्या), ज१, २-क्षेमकरा, वा.-मकरा (क्षेमकरी)
६ (ब) ज१, २-साधनं तं (साधनदं)
७ (अ) ज१, २-मित्रंभमेतिमैत्रं (मित्रभमतिमैत्र)
७ (ब) ज१, २-दैवंवित्कथयो: (दैववित्कथयेत्)
८ (अ) ज१, २-हिमखिलं (हिमकिरणो)
९ (ब) ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-विटवलवान्, ज.मो.-त्वत्रखेटवलात् (त्वन्य-खेटबलान्)
११ (अ) ज१, २-पाठोनास्ति, वा.ज.मो.-अखिल (बला अखिल)
११ (ब) ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-हिमकिकरणो (हिमकिरणे)
१२ (ब) ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-बलाद्दोदपि (बलार्द्धादपि)

***

२१

अथोपग्रहाध्यायः

दिनकरभात्सप्तभं भूकम्पं पञ्चमर्क्षमतिविद्युत्।
शूलोपग्रहमष्टमभं दशमर्क्षं चाशनिं च विज्ञेयम्॥१॥

सूर्य नक्षत्र से सातवाँ नक्षत्र भूकम्प संज्ञक, पांचवाँ नक्षत्र अतिविद्युत संज्ञक, आठवाँ शूल संज्ञक तथा दशवाँ नक्षत्र अशनि संज्ञक समझें॥१॥

केतुरुपग्रहदोषस्त्वष्टादशमं च दण्डसंज्ञश्च।
पञ्चदशं दशनवमं चोल्कापातं चतुर्दशं पातः॥२॥

सूर्य से अठारहवाँ नक्षत्र केतु संज्ञक उपग्रहदोषयुक्त, पन्द्रहवाँ दण्ड संज्ञक, उन्नीसवाँ उल्का संज्ञक तथा चौदहवाँ उल्कापात संज्ञक उपग्रह होता है॥२॥

मेघोपग्रहदोषो निर्घातकम्पसंज्ञ बज्रनिभः।
एकोत्तरविंशतिभादुक्ताः क्रमशोह्युपग्रहा दोषाः॥३॥

उपग्रह दोष युक्त मेघ, निर्घात, कम्पसंज्ञक सभी उपग्रह हीरे की चमक जैसे होते हैं। क्रमशः ये इक्कीस संज्ञा वाले उपग्रहदोष सूर्य नक्षत्रों से कहे गये हैं॥३॥

हिमकिरणे त्वेषु युते शुभकार्यं मृत्युदं नृणाम्।
उद्वाहादिषु सततं विचार्य लग्नं वदेद्धीमान्॥४॥

उपग्रह संज्ञक नक्षत्रों से चन्द्रमा का युति सम्बन्ध होने पर किया गया शुभ कार्य मनुष्यों को मृत्यु देने वाला होता है। अतः विवाहादि कार्यों में लग्नादि का विचार करके ही विद्वानों को कहना चाहिए॥४॥

रविभादहिपितृमित्रत्वाष्ट्रभहरिपौष्णभेषु गणितेषु।
अश्विनिभादिन्दुयुते तावति वै पतति गणनया पातः॥५॥

सूर्य नक्षत्र से अहि (आश्लेषा), पितृ (मघा), मित्र (अनुराधा) त्वाष्ट्र (चित्रा), हरि (श्रवण), पौष्ण (रेवती) नक्षत्रों के गणित में अश्विनी से चन्द्रमा का योग हो तो उतने ही संख्या में पात होता है॥५॥

अयमपि पातो दोषश्चण्डीशचण्डायुधाह्वयो ज्ञेयः।
अखिलेषु मङ्गलेष्वपि वर्ज्यो यस्माद्विनाशदः कर्त्तुः॥६॥

यह पात दोष चण्डीश और चण्डायुध संज्ञक जानना चाहिए। यह समस्त सद्कार्यों में कर्ता का विनाश करता है। अतः इसका त्याग करना चाहिए॥६॥

दस्त्रेन्दुभुजगभास्करमित्रोत्तराषाढजलधिष्ण्येषु।
क्रमशो रविवारादिष्वानन्दाद्याः क्रमाद्योगाः॥७॥

दस्र (अश्विनी), इन्दु (मृगशिरा), भुजग (आश्लेषा), भास्कर (हस्त), मित्र (अनुराधा), उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रों में क्रमशः रविवार नन्दादि तिथियों के क्रम से योग कहे गये हैं॥७॥

आनन्दः कालदण्डो धूम्राख्योऽथ प्रजापतिः सौम्यः।
ध्वांक्षोऽथो ध्वजसंज्ञ श्रीवत्सो वज्रमुद्गरौ छत्रम्॥८॥

आनन्द, कालदण्ड, धूम्रसंज्ञक, प्रजापतिः, सौम्य, ध्वांक्ष, ध्वज, श्रीवत्स, वज्र, मुद्गर एवं छत्र॥८॥

मित्रं मानससंज्ञः पद्माख्यो लम्बकस्तथोत्पातः।
मृत्युः काणः सिद्धिः शुभामृतौ मुशलमथ गदाख्यश्च॥९॥

मित्र, मानस, संज्ञक, पद्मसंज्ञक, लम्बक, उत्पात, मृत्यु, काण, सिद्धि, शुभ, अमृत, मुशल और गदा संज्ञक योग—॥९॥

मातङ्गराक्षसाह्वयचरस्थिरप्रवर्द्धमानसंज्ञाः स्युः।
अष्टाविंशतिसंख्या निजनिजसंज्ञासदृशफलदाः स्युः॥१०॥

मातङ्ग, राक्षस, चर, स्थिर तथा प्रवर्द्धमान संज्ञक अट्ठाईस योग अपने-अपने नाम सदृश फल देते हैं॥१०॥

॥इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां मुपग्रहाध्यायः एकविंश॥२१॥

॥वृद्ध वसिष्ठ संहिता के 'उपग्रहाध्याय' की नारायणी हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥२१॥

पाठान्तरम्

१ (अ) वा.-सरभकंलं (भात्सप्तमं), ज१, २-पंचमर्क्षमपि (पञ्चमर्क्षमति)

२ (अ) ज१, २-मदंडसंज्ञं च, वा.-चदंडसंज्ञश्च (च दण्डसंज्ञश्च)

२ (ब) ज१-च निर्यातं, ज२-च निर्घातं (पातः)

३ (ब) ज१, २-एकोत्तरविंश (एकोत्तरविंशति), ज१, २-भोक्तम्, वा.-भाउल्का (भादुक्ताः), ज१, २-शस्तेनेत्युपग्रहदोषः, वा.-क्रमशस्त्वेषुपग्रहदोषः (क्रशोह्युपग्रहा दोषाः)

४ (अ) वा.-मृत्युदंणां (मृत्युदंनृणाम्)

४ (ब) ज१, २-परीक्ष्यलग्नं, वा.-प्रववास्यग्रं (विचार्यलग्नं), ज१, २-प्रवदेहीमान् (वदेद्धीमान्)

५ (अ) ज१, २-रविभात्वहिपितृभत्रित्वाष्ट्रे (रविभादहिपितृमित्रत्वाष्ट्र), ज१, २-वा.-भेषसत्सु (भेषुगणितेषु)

६ (अ) ज१-अयमतो, ज२-अषमतो, वा.-अयमपपाता (अयमपि पातो), ज१, २-षंचण्डीशचंडायुधांह्वयस्यात्, वा.-दोषश्चंडीश्चेडायुधः स (दोषश्चण्डीशचण्डायुदाह्वयो)

६ (ब) ज१-घुसांलब्धपिवर्ज्ये, ज२-सालध्वयिवर्ज्जो (मङ्गलेष्ववपि वर्ज्यो), ज१, २-विनाशतः (विनाशदः), वा.-केतुः (कर्तुः)

७ (अ) अश्विंदुभुजंगम (दस्रेन्दुभुजग), ज१, २-मैत्रो (मित्रे)

७ (ब) ज१, २-त्वमीयोगाः (क्रमाद्योगः)

८ (अ) ज१, २-कालदण्डाख्यो, वा.-कालदण्डा (कालदण्डो), ज१-धूमाक्षाख्यौ, ज२-धूम्राध्वांक्षो (धूम्राख्योऽथ)

८ (ब) ज१, २-ध्वांक्ष, वा.-ध्वाक्षो (ध्वांक्षोऽथो), ज१, ज२-ध्वजा, वा.-विजयो (ध्वजसंज्ञः)

९ (अ) ज१, २-पद्माख्या (पद्माख्यो), ज१, २-लंवुकस्तथोत्पातः (लम्बकस्तथोत्पातः)

९ (ब) ज१, २-गदाख्योवा, वा.-गजाख्यश्च (गदाश्यश्च)

१० (अ) ज१, २-मातंगराक्षसाख्यश्च (मातङ्गराक्षसाह्वय)

१० (ब) ज१-निजसंज्ञा, ज२-निजिसंज्ञा (निजनिजसंज्ञा), ज१, २-सदृशफलदास्युः, वा.-सदशफलाः स्युः (सदृशफलदाः स्युः)

***

२२

अथ ग्रहकूटाध्यायः

ग्रहकूटभतो यस्माच्छुभाशुभं भवति जन्तूनाम्।
तद्ग्रहकूटविधानं नूनं सम्यक्समासतो वक्ष्ये॥१॥

आमतौर पर ग्रहकूट नक्षत्र से समस्त प्राणियों का शुभाशुभ होता है। अतः निश्चित रूप से भली-भाँति कूट विधान का विचार लिखते हैं॥१॥

स्फुटमानीय खगेन्द्रं लिप्तीकृत्यखखाष्टभिर्भक्तम्।
गतधिष्ण्यानि च लब्धमवशिष्टं वर्त्तमानकं ज्ञेयम्॥२॥

ग्रहों के स्पष्टमान को पलात्मक बना कर खखाष्ट (८००) से भाग देने पर प्राप्त हुए नक्षत्र का गत नक्षत्र तथा बचे हुए को वर्तमान समझना चाहिए॥२॥

षष्टिहतं गतगम्यं भुक्तिहृतं नाडिकादितो ज्ञेयम्।
खचराधिष्ठितधिष्ण्यं ज्ञात्वा सर्वं विचिन्तयेत्पश्चात्॥३॥

६० से भाग देने पर बीते हुए को बचे हुए में भुक्ति का भाग देने पर घट्यादि ज्ञान हो जाता है। इसी तरह ग्रहों के अधिष्ठित नक्षत्रों को जानकर पश्चात् सभी का चिन्तन करना चाहिए॥३॥

यस्य नरस्य हि जन्मनि धिष्ण्ये क्रूरैर्निपीडिते खचरैः।
अतिदुःखामयशोकं भयं प्रवासः शत्रोर्भयं भवति॥४॥

जिस मनुष्य का जन्म नक्षत्र पाप ग्रहों द्वारा पीड़ित हो वह अत्यन्त दुःख, रोग, शोक, भय, विदेश प्रवास तथा शत्रु से भयभीत रहता है॥४॥

यस्मिन्धिष्ण्ये विपदि प्रत्यरिभेस्थानमाशनं भवति।
निधनं नैधनधिष्ण्ये बन्धनमथवा स्थितेऽपाये॥५॥

जिस नक्षत्र में विपत्तिधारा हो अथवा प्रत्यरितारा हो वहाँ हानि होती है, निधन तारा हो तो मृत्यु, बध तारा हो तो बन्धन होता है॥५॥

शुभखचरेषु स्थितेषु नक्षत्रेषु त्वल्पहानिः स्यात्।
मध्यमफलदाः सौम्याः पापाश्चानुक्तभेषु भीतिकराः॥६॥

नक्षत्रों में शुभग्रह स्थित हों तो थोड़ी हानि होती है, सौम्य अर्थात् शुभग्रह मध्यम फल देने वाले होते हैं; जबकि पाप ग्रह अनुक्त नक्षत्रों में (न कहे गये) भयप्रद होते हैं॥६॥

यस्मिन्धिष्ण्ये यः प्रभवति तदेव तज्जन्मभं विजानीयात्।
दशमर्क्षं कमाख्यं संघाताख्यं च षोडशं धिष्ण्यम्॥७॥

जिस नक्षत्र में जो उत्पन्न होता है, वही नक्षत्र उसका जन्म नक्षत्र कहलाता है, उसको दशवाँ नक्षत्र कर्म संज्ञक तथा सोलहवाँ नक्षत्र संघात संज्ञक होता है॥७॥

समुदायं द्विनवमभं यद्वैनाशं त्रयोविंशम्।
पञ्चोत्तरविंशच्च मानससंज्ञं महादुष्टम्॥८॥

द्वितीय एवं नवम नक्षत्र समुदाय संज्ञक तथा तेइसवाँ विनाश संज्ञक, पच्चीसवाँ नक्षत्र मानस संज्ञक और महादोष करने वाला होता है॥८॥

षड्भानि च शुभकर्माणि तानि विनाशानि जन्तूनाम्।
राज्ञां विशेषभानि तु देशोद्भवजानि पट्टबन्धानि॥९॥

ये छः नक्षत्र शुभकार्यों में समस्त प्राणियों को विनाश करते हैं। विशेष करके राजाओं के देशज नक्षत्र पटबन्धनादि को नष्ट करते हैं॥९॥

नवधिष्ण्यानि नृपाणां विनाशनदान्येव सर्वकार्येषु।
अत एवाखिलविषये नूनं वर्ज्यानि सर्वदात्यर्थम्॥१०॥

राजाओं के लिए जन्म नक्षत्र से नौवाँ नक्षत्र समस्त शुभ कार्यों में विनाशप्रद होता है। अत: निश्चित रूप से सभी कार्यों में त्याग होना चाहिए॥१०॥

कृतमखिलं जन्मनि भे विनाशमायाति तत्कार्यम्।
कर्मणि कर्मविनाशं संघातर्क्षे शरीरनाशः स्यात्॥११॥

जन्म नक्षत्र में किये गये समस्त कार्य विनाश को प्राप्त होते हैं। कर्म संज्ञक नक्षत्र में कर्म का विनाश तथा संघात संज्ञक नक्षत्र में शरीर का नाश होता है॥११॥

रोगभयं समुदाये वैनाशिकभेऽपिनाशः स्यात्।
हृदयभं मानसभे देशजभे राजपीडा स्यात्॥१२॥

समुदाय संज्ञक नक्षत्र में रोगभय, वैनाशिक नक्षत्र में विनाश, मानस संज्ञक नक्षत्र में हृदयघात तथा देशज नक्षत्र में राजपीड़ा होती है॥१२॥

जात्यर्क्षे जातिभयमभिषेकर्क्षे च राजनाशः स्यात्।
क्रूराम्बरचरनिहतेष्वेषु च भेषु प्रभूतपीडास्यात्॥१३॥

जाति संज्ञक नक्षत्र में जाति को भय तथा अभिषेक संज्ञक नक्षत्र में राजनाश होता है। क्रूर ग्रहों से हत होने पर सभी नक्षत्रों में पीड़ा होती है॥१३॥

ग्रहयज्ञैरभिषेकैर्होमैर्दानैः प्रयाति शमनं वै।
जन्मनि धिष्ण्ये यस्य ग्रहणोत्पाता भवन्ति तस्यैवम्॥१४॥

जन्म नक्षत्र में जो भी ग्रहण, उत्पात होते हैं, उनका शमन यज्ञ, अभिषेक, होम एवं दान द्वारा निश्चित रूप से हो जाता है।।१४।।

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां ग्रहकूटाध्यायो द्वाविंशः।।२२।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के 'ग्रहकूटाध्याय' की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।२२।।

पाठान्तरम्

---

२ (अ) ज१, २-लिप्ताकृत्वा, मु.पु.-लिप्तीकृत्वा (लिप्तीकृत्य) 'लिप्तीकृत्वा', अस्यस्थाने लिप्तीकृत्य इत्यैवरूपं साधु यतोहि इदं च्विप्रत्यान्तं रूपम्

३ (ब) ज१-किंचितयेत्पश्चात्, वा.-विचितयोत्पश्चात् (विचिन्तयेत्पश्चात्)

५ (अ) वा.-यस्मिनधिष्टो (यस्मिन्धिष्ण्ये), ज१, २-प्रत्यवरेस्थान, वा.-प्रत्यरले (प्रत्यरिभे)

५ (ब) ज१, २-सितेपावैः, वा.-स्थितेपापे (स्थितेऽपाये)

६ (अ) ज१, २-शुभखचरे (शुभखचरेषु), ज१, २-नक्षत्रेष्वचतुसंस्थं, वा.-नक्षत्रेषुसंस्थिषु (स्थितेषुनक्षत्रेषु), ज१, २-वाल्पहानिः, वा.-त्वाल्पहानिः (त्वल्पहानिः)

६ (ब) ज१, २-सौम्य (सौम्याः), ज१, २-पापाश्चनुक्तवेंदु (पापाश्चानुक्तभेषु)

७ (ब) ज१, २-तादृशमर्क्षं (दशमर्क्षं)

८ (अ) ज१, २-यद्वाविंशो, वा.-यदैनाशं (यद्वैनाशं), ज१, २-जयोविंशत्, **वा.-त्रयोदश (त्रयोविंशम्)**

८ (ब) ज१, २-मनुसंज्ञं (मानससंज्ञं)

९ (अ) ज१, २-खड्गाव, वा.-षड्ग्निच (षड्भानि च), ज१, २-शुभकर्माण्येतानि, वा.-कर्माण्येतानि (शुभकर्णाणि तानि), ज१, २-विनाशदा, वा.-विनाशदग्नि (विनाशदानि)

९ (ब) ज१, २-देशद्भत्रयाति (देशोद्भवजानि), ज१, २-पटवंधनानि (पटबन्धनानि)

१० (अ) ज१-नवाधृष्ण्या, ज२-नवाधिष्ण्या (नवाधिष्ण्यानि), वा.-नृणां (नृपाणां), ज१, २-विनाशदान्येव, वा.-नाशान्येव (विनाशनदान्येव)

१० (ब) ज१, २-वर्ज्या (वर्ज्यानि)

११ (अ) ज१, २-जन्मर्क्षे (जन्मनिभे)

१२ (अ) ज१, २-वैनाशिकमेविनाशः (वैनाशिकभेऽपिनाशः)

१२ (ब) ज१, २-वैशर्क्षे (देशजभे)

१३ (अ) वा.-राजभ्रमः (राजनाशः)

१३ (ब) ज१, २-क्रूरावरवर (क्रूराम्बरचर)

१४ (अ) ज१, २-ग्रहयच्चैरभिषेकैदीनैः (ग्रहयज्ञैरभिवेकैर्होमैदीर्नै), ज१, २-वा.-प्रशमनंयाति (प्रयातिशमनं)

१४ (ब) ज१, २-ग्रहणोत्धाता (ग्रहणोत्पाता)

***

२३

अथ लग्नबलाध्यायः

मेषलग्न में विहित कार्य

अभिषेको नृपतीनां साहसकर्मादि वैरोधम्।
आकरधातुवादाद्यखिलं मेषोदये कार्यम्॥१॥

राजाओं का अभिषेक, राजाओं के साहसी कार्य विरोध, धातु खानों से तथा वाद्यादि सम्बन्धी कार्य मेष लग्न में करने चाहिए॥१॥

क्रमागत–

विरोधमभिषेकं च राज्ञां साहसकर्म च।
धात्वाकरादि सम्बन्धं मेष लग्ने प्रसिद्ध्यति॥

(ज्यो.नि., पृ० ५७, श्लोक १)

वृष लग्न में

स्थिरचरकार्यंत्वखिलं विवाहवास्त्वादिकन्यकावरणम्।
क्षेत्रारम्भणमखिलं भूषणशिल्पादिकारकं वृषभे॥२॥

समस्त स्थिर एवं चर कार्य, विवाह, गृह प्रवेश गृहारम्भादिकृत्य, कन्यावरण, खेती सम्बन्धी समस्त कृत्य भूषणशिल्पादि कार्य वृष लग्न में करना विहित हैं॥२॥

क्रमागत–

वृषोदये विवाहश्च ध्रुवं वेश्मप्रवेशनम्।
कुमारीवरणं दानं क्षेत्रारम्भादि चेष्यते॥

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक २)

मिथुन लग्न में

मेषवृषोक्तं कर्म गजतुरगोष्ट्रादिकं च गोकर्म।
अविकलमाहिषमेषक्षितिपतिसेवादिकं मिथुने॥३॥

मेष तथा वृष लग्न में विहित कार्य, गज, अश्व, ऊँट और गो सम्बन्धी कृत्य, भैंस, भेड़, बकरी, राजा के समस्त सेवा कार्य मिथुन लग्न में करना चाहिए॥३॥

क्रमागत–

कलाविज्ञानसम्बन्धं वृषलग्नोदितं च यत्।
विभूषणदिकं कर्म कर्त्तव्यं मिथुनोदये॥

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक ३)

कर्क लग्न में

शान्तिकपौष्टिकमाङ्गलजलबन्धनमोक्षमखिलजलकर्म।
दैविककूपतडागशिल्पोद्वाहादि कर्कटे कार्यम्॥४॥

शान्तिक, पौष्टिक, माङ्गलिक, जल का संग्रह (बन्धन) मोक्ष (विमोचन) और पुष्टता सम्बन्धी समस्त जलकर्म, दैविक कृत्य, कूप, तालाब, शिल्प तथा विवाहादि सभी कार्य कर्क लग्न में करना चाहिए।।४।।

क्रमागत–

वापीकूपतडागादिवारिबन्धनमोक्षणे ।
पौष्टिकं कर्म यत्किञ्चित्सर्वं सिद्ध्यति कर्किणी।।

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक ४)

सिंह लग्न में

परयोगो नृप सेवा कृषिकर्म वणिङ्महाहवाद्यखिलम्।
स्थिरकर्माखिलवास्तुनि वेश्मशिल्पादि सिंहभे कार्यम्।।५।।

दूसरे से संयोग, राजा की सेवा, कृषि कर्म, वाणिज्य, महायुद्ध (युद्ध की चुनौती), सभी स्थिर कृत्य, वास्तुकृत्य, घर की सजावट के कार्य सिंह लग्न में करने चाहिए।।५।।

क्रमागत–

वणिक्क्रियाद्यं पण्यं च कर्षणं नृपसेवनम्।
परयोगश्च मेषोक्तं यश्च कण्ठीरवेहितम्।।

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक ५)

कन्या लग्न में

भूषणमङ्गलकार्यमौषधविज्ञानपुण्यशिल्पादि।
उद्वाहशान्तिपौष्टिकगजतुरगोष्ट्रादिकन्यायाम्।।६।।

भूषणकृत्य, मङ्गल कार्य, औषध विज्ञान (दवाई बनाना) पुण्य कार्य शिल्पादि (श्रेष्ठ कारीगरी का काम), विवाह, शान्तिक, पौष्टिक (शान्ति एवं पुष्टिप्रद कार्य), हाथी, घोड़ा और ऊँटों से सम्बन्धी कार्य कन्या लग्न में करना।।६।।

क्रमागत–

औषधं शिल्पिविज्ञानं भूषणादि चरं स्थिरम्।
कर्त्तव्यं पौष्टिकारम्भं कन्यालग्ने प्रसिद्ध्यति।।

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक ६)

तुला लग्न में

कन्योक्ताखिलकार्यं तुलादिमानानि भाण्डकर्माणि।
यात्रावास्तुविधानं तौलिनि कृषिकर्म वाणिज्यम्।।७।।

कन्या लग्न में विहित सभी कार्य, तराजू तोल मानादि, भण्डारादि कार्य,

यात्रा, वास्तु विधान (गृहारम्भ प्रवेशादि) तोलमापादि कृषि कर्म तथा व्यापार सम्बन्धी कार्य तुला लग्न में करना चाहिए।।७।।

क्रमागत–

कृषिकर्मवणिक्सेवा यात्राकर्म तुलोदये।
प्रसिद्धयन्ति हि सर्वाणि तुलाभाण्डाश्रितानि च।।

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक ७)

वृश्चिक लग्न में

साहसदारुणचित्रकलेखकवास्तूग्रशास्त्रकर्माद्यम्।
आहवकृषिवाणिज्यं क्षितिपतिवादश्च वृश्चिके कार्यम्।।८।।

साहस, दारुण (कठिनक्रूर), चित्रकारी, लेखन कार्य, वास्तुकृत्य, उग्रशास्त्र (तान्त्रिक कृत्य), युद्ध (युद्ध की चुनौती), कृषि, व्यापार, राजा की सेवा सम्बन्धी कार्य वृश्चिक लग्न में करें।।८।।

क्रमागत–

साहसं दारुणोग्रं च राजसेवाभिसेचनम्।
चौर्यकर्म स्थिरारम्भाः कर्त्तव्या वृश्चिकोदये।।

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक ८)

धनु लग्न में

शान्तिक पौष्टिक शिल्पिकसन्धानाश्वादिनृत्यगीताद्यम्।
राजोपकरणमखिलं भूषणवास्त्वादि चापभे सेवा।।९।।

शान्तिक (शान्तिप्रद), पौष्टिक (पुष्टिप्रद), शिल्पिक (कारीगरी), मित्रता, अश्वादि कार्य (वाहन सम्बन्धी), नाचना, गाना, राजा सम्बन्धी सारा समान, भूषण तथा वास्तु कृत्य (गृहप्रवेश निर्माणादि) धनु लग्न में करने चाहिए।।९।।

क्रमागत–

प्रस्थानपौष्टिकोद्वाहाः सवाहनपरिग्रहाः।
चापलग्ने विधेयाः स्युः चरकर्म प्रसिद्धये।।

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक ९)

मकर लग्न में

शम्बरमोचनबन्धनभूषणरत्नादि शिल्पधान्यादि।
क्रयविक्रयमखिलं यद्रिपुहननोद्योगमाहवं मकरे।।१०।।

जल का मोचन एवं बन्धन (बान्ध या पुल निर्माण), भूषणादि (गहनें), रत्न, शिल्प (कारीगरी), धान्यादि कृत्य समस्त क्रय-विक्रय, शत्रु संहार, उद्योग (फैक्ट्री आदि) युद्ध के लिए ललकारना मकर लग्न में विहित हैं।।१०।।

क्रमागत–

क्षेत्राश्रयाम्बुयात्रा बन्धमोक्षौ च वारिणाम्।
दासीचतुष्पदोष्ट्रादि कर्त्तव्यं च मकरोदये॥

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक १०)

कुम्भ लग्न में

युद्धोपकरणभूषणजलधान्यशिल्पाश्च गोधनाद्यं यत्।
पण्यासवपुरनगर प्रवेशनं कर्म घटे लग्ने॥११॥

युद्ध में उपयोगी अस्त्र-शस्त्र, आभूषण (भूषणादि निर्माण), जलकर्म, खेती, कारीगरी, गोधन, (पशुकर्म), व्यापार, आसव, गृह एवं नगर प्रवेशादि सभी कार्य कुम्भ लग्न में करने चाहिए॥११॥

क्रमागत–

नौचर्योदकयानं च कर्म ध्रुवचरं तथा।
बीजसङ्ग्रहणोप्ती च कर्त्तव्यं कलशोदये॥

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक ११)

मीन लग्न में

यज्जलबन्धनमोचनजलयात्रारत्नभूषणं कर्म।
रथतुरगेभपशूनां कार्यं मीनोदये शिल्पम्॥१२॥

जलबन्ध तथा मोक्ष, जलयात्रा (नौका विहार अथवा समुद्री जहाज में यात्रा), रत्न आभूषणादि कृत्य, रथ अश्वादि पशुओं तथा कारीगरी के कार्य मीन लग्न में करने चाहिए॥१२॥

क्रमागत–

विद्यालङ्कृतिशिल्पादि कृष्यम्बुपशुकर्म च।
यात्राद्वाहाभिषेकाद्यं कार्यं मीनोदये बुधैः॥

(ज्यो.नि., पृ० ५८, श्लोक १२)

लग्न का शुभाशुभ फल

पापयुतेक्षितरहिता मेषाद्याश्चोक्तफलदाः स्युः।
नो चेदुक्तफलं वै दातुं शक्ता भवन्ति न कदाचित्॥१३॥

मेषादि लग्नों का फल तभी होता है, जब लग्न पापयुक्त अथवा पापग्रहों द्वारा दृष्ट न हो, यदि लग्न पापग्रहों से युक्त एवं दृष्ट हो तो फल देने में असमर्थ होता है॥१३॥

क्रमागत–

शुद्धेषु मेषाद्युदयेषु कर्मण्येतानि सिद्ध्यन्ति यथोदितानि।
क्रूरग्रहालोकनयोगदुष्टेष्वेतेषु कर्मोदितमुग्रमेव॥

(वृ.दै.र., पृ० २९३)

लग्न का बलाबल

सम्पूर्णफलदमादौ विलग्नमध्येऽथमध्यफलम्।
अन्ते तु तुच्छफलं सर्वत्रैवं विचिन्तयेद्धीमान्॥१४॥

लग्न का फल आदि अंशों में सम्पूर्ण, मध्य में मध्यफल, अन्त में न्यून फल होता है, ऐसा सर्वत्र विद्वानों को विचार पूर्वक कहना चाहिए॥१४॥

अथषड्वर्गाः

त्रिंशद्भागं लग्नमितं तदर्द्धतुलिता तु होराख्या।
लग्नतृतीयो भागो द्रेष्काणः स्यान्नवांशको नवमः॥१५॥

तीस (३०) अंशात्मक लग्न, लग्न से आधा होरा, तृतीयाभाग द्रेष्कान और नवम भाग नवांशक होता है॥१५॥

द्वादशभागो द्वादशमस्त्रिंशत्तमस्त्रिदंशः स्यात्।
षड्वर्गो भवति सदा शुभखचरसमुद्भवाः शुभदाः॥१६॥

लग्न का द्वादश भाग द्वादशांश, विषमराशि त्रिशांश एवं समराशि त्रिशांश होता है। षड्वर्ग सदैव शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट होने पर ही शुभफलप्रद होता है॥१६॥

क्रमागत–

विलग्नहोराद्रेष्काणनवांशद्वादशांशकः ।
त्रिशांशश्चेति षड्वर्गाः ससौम्यग्रहजः शुभः॥

(ज्यो.नि., पृ० ६०, श्लोक १)

पापसमुत्थस्त्वशुभस्तस्माद्ग्राह्यस्तुसौम्यषड्वर्गः।
शुभकर्मणि सततं संत्याज्यः पापाह्वयो वर्गः॥१७॥

षड्वर्ग लग्न पाप ग्रहों द्वारा युत व दृष्ट हो तो अशुभफप्रद होता है। अतः शुभ षड्वर्ग को ग्रहण करना चाहिए। पापवर्ग हो तो शुभ कार्यों में निरन्तर त्याग करना॥१७॥

राशियों के अनुसार शुभाशुभ फल

चापनृयुग्घटवृषभा कर्कटकन्यान्त्यराशयः शुभदाः।
शुभभवनत्वादन्येत्वशुभग्रहत्वादशोभनाः पञ्च॥१८॥

शुभ भवन में होने से धनु, मिथुन, कुम्भ, वृष, कर्क, कन्या तथा तीन राशियाँ शुभ हैं। अशुभ भवन में होने से अन्य पाँच मेष, सिंह, तुला, वृश्चिक एवं मकर शुभ नहीं॥१८॥

स्थिरराशौ शुभवर्गे नैधनशुद्धे चतुष्टये सौम्ये।
द्विपदगृहे लग्नगते वास्तु निवेशः शुभो न भोगचरे॥१९॥

स्थिर राशि, शुभवर्ग, अष्टम स्थान शुद्धि चारों केन्द्रों में शुभ ग्रहों की स्थिति, द्विस्वभाव राशि का लग्न हो तो वास्तु निवेश गृहप्रवेशादि समस्तकृत्य शुभ होते हैं; परन्तु चर लग्नों में उक्त स्थिति नेष्ट है।।१९।।

शुभखचरा घटराशिं विसृज्य धनलाभलग्नकर्मस्थाः।
अव्यारिगास्त्वशुभखगा विपणिं यदि सेन्दुभार्गवे योगे।।२०।।

शुभ ग्रह कुंभ राशि को त्याग कर धन (दूसरे), लाभ (ग्यारहवें), लग्न (प्रथम) में तथा कर्म (दश में) स्थित हों तथा उसमें चन्द्रमा शुक्र का योग हो, एवं अशुभ ग्रह न हों तो व्यापार कार्य करना चाहिए।।२०।।

धर्मात्मजनैधनभे चरवर्गेत्त्वर्थसंग्रहः कार्यः।
बुधेलग्नदशमगते भौमे चौर्यस्य मुख्यकालः स्यात्।।२१।।

नवम, पञ्चम, अष्टम स्थानों में चरवर्ग तथा बुधवार को धन सञ्चय करना चाहिए। लग्न एवं दशम में भौम हो तो चोर का मुख्य काल होता है अर्थात् चोरी का भय होता है।।२१।।

शुभलग्ने दशमभवे रवौ कुजे वाऽथ तद्वर्गे।
आयुधविद्या कार्या नृपसेवा वैरिनिग्रहः कार्यः।।२२।।

शुभ लग्न, दशम, अपने वर्ग में सूर्य भौम दीर्घायुप्रद (उत्तमस्वास्थ्य की कामना), राजा की सेवा तथा शत्रु नियन्त्रण करवाते हैं।।२२।।

शुभखचरे लग्नगते शुभवर्गे चाथ नैधने शुद्धे।
पशु सङ्ग्रहणं कार्यं रक्षावृद्धिर्विशेषतस्तेषाम्।।२३।।

शुभग्रह लग्नगत शुभवर्ग में, अष्टम स्थान शुद्ध होने पर पशु संग्रह, विशेषतया रक्षा वृद्धि उपाय करना श्रेयस्कर है।।२३।।

बलवति दितिजगुरौ वा शुक्रे वा दुर्बलेष्वकथितेषु।
पुंजन्मकथितलग्ने पुत्रार्थी कामयेत्प्रियां पत्नीम्।।२४।।

राक्षसों का गुरु बलवान शुक्र अथवा न कहे हुए दुर्बली ग्रहों में अर्थात् बलवान शुभग्रहों के योग में पुंजन्म के लिए कथित लग्न में पुत्र प्राप्ति की इच्छा वाला अपनी प्रिय पत्नी की कामना करे।।२४।।

सुरसचिवे शुक्रे वा धर्मात्मजलग्नगे बलिनि।
पुंजन्मकथितयोगे समुपेयात्प्रेयसीं मुदितः।।२५।।

देवगुरु बृहस्पति अथवा शुक्र धर्म (नवम) एवं पञ्चम तथा लग्न में बलशाली हों, पुंजन्म कथित योग में प्रसन्नचित्त हो प्रेयसी (पत्नी) से सङ्ग करे।।२५।।

नूतन गृहप्रवेश काल

बलयुक्तैः शुभखचरैरन्यैः स्थिरोदये सौम्ये।
अष्टमशुद्धियुतेऽस्मिन्नवसद्मप्रवेशनं कार्यम्॥२६॥

बलयुक्त शुभ ग्रहों में अन्य स्थिर राशियों के उदय कालिक शुभ लग्नों में, अष्टम स्थान शुद्ध हो अर्थात् अष्टम स्थान में शुभग्रह में अथवा दृष्टि रखते हों ऐसे योग में नूतन गृह प्रवेश करना चाहिए॥२६॥

अभिचार मुहूर्त्त

सुरगुरुहिबुके लग्ने भानौ वारे च सुकृतवृद्धिः स्यात्।
गुरुलग्नेऽर्के दशमे कर्त्तव्यं त्वभिचारमखिलं हि॥२७॥

देवगुरु बृहस्पति चतुर्थ या लग्न में स्थित होने पर रविवार के दिन पुण्य की वृद्धि हो। गुरु के लग्न में तथा दशम में सूर्य हो तो सभी अभिचार कर्मों को करना चाहिए॥२७॥

राज्याभिषेक काल निर्णय

उदगयने पूर्णेन्दौ जीवे वा भास्करे च दशमगते।
अभिषेकं नृपतीनामुत्सवकार्याणि सितदिवसे॥२८॥

उत्तरायण में पूर्ण चन्द्रमा अथवा देवगुरु बृहस्पति के साथ दशम स्थान में सूर्य हो एवं शुक्रवार हो तो राजाओं का अभिषेक, उत्सव आदि कार्य करना चाहिए॥२८॥

रससंग्रह, बागबगीचा इत्यादि कार्य करना

हिमकिरणे लग्नगते जीवे केन्द्रे च चन्द्रसितवारे।
रससङ्ग्रहणं कार्यं सस्यारामादिनिखिल जलकर्म॥२९॥

चन्द्रमा लग्न में तथा केन्द्र में बृहस्पति होने पर सोमवार या शुक्रवार के दिन रस संग्रह, फसलों का कार्य, बाग-बगीचा तथा जल सम्बन्धी कर्मों को करना चाहिए॥२९॥

मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रव्रज्या योग

लग्नगते सुरसचिवे दशमस्थैः क्रूरखेचरैरबलैः।
प्रव्रज्याह्वययोगे ज्ञानग्रहणं मुमुक्षुभिः कार्यम्॥३०॥

लग्न में बृहस्पति हो, दशम स्थान में निर्बली क्रूर ग्रह स्थित हों तो प्रव्रज्या नामक योग बनता है। इसमें मोक्ष की इच्छा करने वाले के द्वारा ज्ञान ग्रहण करना चाहिए॥३०॥

बुधराशिगते चन्द्रे शुभखचरे शुभे वर्गे।
ज्ञानग्रहणं कार्यं हित्वा पापग्रहोदयं च तद्वर्गम्॥३१॥

बुध की राशि (मिथुन, कन्या) में चन्द्रमा, अन्य शुभग्रह शभ वर्ग में हो तो ज्ञान प्राप्ति कार्य को त्याग कर पाप ग्रह के लग्न में और उसके वर्ग में अन्य कार्य करना चाहिए॥३१॥

कार्यसिद्धि के लिए ग्रहों की स्थिति

शुभकार्याण्यखिलानि तु त्रिकोण केन्द्रस्थितेषु सौम्येषु।
व्ययनैधनरिपुलग्नैरसंयुते यत्र तुहिनकरे॥३२॥

समस्त शुभ कार्यों को त्रिकोण एवं केन्द्र में स्थित शुभग्रहों के होने पर करना चाहिए। बारहवें, आठवें, छठे तथा लग्न में यदि चन्द्रमा स्थित न हो तो—॥३२॥

शिल्पारम्भकाल

शशितनये जीवे वा चन्द्रे वा लग्नगे बलिनि धर्मे वा।
तद्वर्गे लग्नगते शिल्पारम्भः प्रशस्यते सततम्॥३३॥

बुध, बृहस्पति एवं चन्द्रमा बलवान होकर लग्न या नवम में स्थित हों, इन ग्रहों का वर्ग लग्न में हो तो सदैव शिल्पारम्भ प्रशस्त होता है॥३३॥

नाटक आरम्भकाल

उदगयने शशितनये गुरुवीक्षिते शीतगौ ज्ञराशिस्थे।
हिबुकस्थैः शुभखचरैर्नाट्यारम्भः प्रशस्यते नूनम्॥३४॥

बुध उत्तरायण में हो बृहस्पति द्वारा देखा जा रहा हो, चन्द्रमा बुध की राशि में हो, चतुर्थ में शुभ ग्रह हों तो निश्चित ही नाटकारम्भ श्रेष्ठ होता है॥३४॥

व्यापार के लिए समय

लग्नगते तुहिनकरे त्रिकोणकेन्द्रस्थितैः शुभदैः।
सततं घटभं हित्वा पण्यं कर्म लाभदं भवति॥३५॥

लग्न में चन्द्रमा, केन्द्रत्रिकोण स्थानों में शुभ ग्रह हों; परन्तु कुंभ राशि को छोड़कर सदैव व्यापार कर्म लाभप्रद होता है॥३५॥

औषध सेवन काल

निधनारिव्ययमन्मथभवने शुद्धे शुभेषु बलवत्सु।
वरसिद्धामृतयोगे त्वौषधसेवा सुवीर्यदा तत्र॥३६॥

अष्टम, षष्ठ, द्वादश तथा सातवाँ स्थान शुद्ध हो, शुभ बलवान ग्रहों से युक्त हो तो वरसिद्धामृत योग में औषध सेवा बल पुष्टि देने वाली होती है॥३६॥

सन्धि काल योग

सुरगुरुमैत्रभभाग्ये द्वादश्यां वा पक्षमध्यतिथौ।
सितयुतवीक्षितलग्ने तैतिलकरणे च सन्धिः स्यात्॥३७॥

देवगुरु बृहस्पति मित्र राशि का होकर भाग्य भाव में अथवा द्वादश स्थान में पक्ष के मध्य तिथियों में शुक्र से युत या देखा जा रहा हो और तैतिलकरण भी हो तो सन्धि हो जाती है॥३७॥

वेतालादि कर्मों की सिद्धिः

शशिनैर्ऋतयमपितृभेष्वष्टमशुद्धे भृगौ च पाताले।
घटलग्नगते शशिजे निखिलवेतालकर्मसिद्धिः स्यात्॥३८॥

चन्द्रमा नैर्ऋत्य (मूल नक्षत्र), यम (भरणी), पितृ (मघा) में हो तथा अष्टम स्थान शुभ हो, शुक्र चतुर्थ स्थान में, कुंभ लग्न में बुध हो तो वेतालादि कर्मों की सिद्धि होती है॥३८॥

अभिचार काल

अशुभयुतेन्दावशुभग्रहवर्गगते बुधे बलिनि।
रिपुनैधनलग्नगृहे विष्टौ योगेषु चाभिचारः स्यात्॥३९॥

चन्द्रमा अशुभ ग्रहों से युत हो अथवा अशुभ ग्रहों के वर्ग में गया हो, बलवान होकर बुध षष्ठ, अष्टम या लग्न में स्थित हो, भद्रा का भी योग हो तो अभिचार कर्म प्रशस्त समझें॥३९॥

मङ्गलकृत्य का समय

उपचयभे लग्नगते व्ययनैधनशुद्धिसञ्युते लग्ने।
उपचयगे शीतकरे मङ्गलकर्माणि कार्याणि॥४०॥

उपचय स्थानों के लग्न में द्वादश तथा अष्टम शुद्धि सहित लग्न हो, उपचय स्थानों में चन्द्रमा हो तो समस्त मङ्गलकृत्य करने चाहिए॥४०॥

कृषि कार्य काल

शक्तियुते भृगुतनये चन्द्रे वाऽसितार्कधरणिसुतैः।
बलहीने हिमकिरणे लाभे जीवे कृषि क्रिया लग्ने॥४१॥

शुक्र बलशाली हो, चन्द्रमा—शनि, सूर्य एवं मङ्गल के द्वारा बलहीन होकर लाभ स्थान में हो तथा लग्न में बृहस्पति हो तो कृषि कार्य करना चाहिए॥४१॥

बीज बोने का उपयुक्त समय

भवरिपुसहजैः पापैस्त्रिकोणकेन्द्रस्थितैश्च शुभैः।
कथितेषु च धिष्ण्येष्वपि शुभलग्ने बीजवापनं कार्यम्॥४२॥

ग्यारहवें, छठे और तीसरे स्थान में पापग्रह हो तथा त्रिकोण (५, ९) केन्द्र

(१, ४, ७, १०) में शुभ ग्रह स्थित हों तो कहे हुए नक्षत्रों में ही शुभ लग्न में बीज बोने का कार्य करना चाहिए।।४२।।

लेपन कार्य काल

शय्यासनयुवतिजनशस्त्राभरणानुलेपनं निखिलम्।
सितवासरवर्गेष्वपि कर्त्तव्यं शशि जीवयोर्वापि।।४३।।

शय्या, आसन, युवतियों, शस्त्र, आभूषण तथा लेप शुक्रवार को अथवा शुक्र के वर्ग में चन्द्रमा एवं बृहस्पति का योग होने पर करना चाहिए।।४३।।

शुभाशुभ कार्यों में लग्न की महत्ता

महिषखरकरभाणां दासकर्मादि सूर्यसुतलग्ने।
शुभकार्यं शुभलग्नेत्वशुभं सर्वेत्त्वशुभलग्ने च।।४४।।

भैंस, गधा, हाथी सम्बन्धी कार्य, नौकरी इत्यादि कार्यों को शनि लग्न में हो तो करने चाहिए। शुभ कार्य शुभ लग्न में तथा अशुभ कार्य अशुभ लग्न में सदैव करने चाहिए।।४४।।

निधन व्ययगाः सौम्याः प्रायो न शुभप्रदास्त्वितरे।
तत्र च केन्द्रेष्वशुभो लग्ने चन्द्रः शुभान्वितो निधनः।।४५।।

अष्टम एवं द्वादश स्थान में शुभ ग्रह प्रायशः शुभफलप्रद नहीं होते। अन्य दूसरे ग्रह केन्द्र स्थानों में अशुभफलप्रद होते हैं। अन्य दूसरे ग्रह केन्द्र स्थानों में अशुभफलप्रद होते हैं, ऐसे ही लग्न में चन्द्रमा या आठवें स्थान में चन्द्रमा शुभ ग्रहयुत हो तो भी मृत्युप्रद होता है।।४५।।

शशिबलमादौ कल्प्यं पश्चादितरग्रहबलं कर्तुः।
बलयुक्ते हिमकिरणे बलिनो भवन्ति निखिल खगाः।।४६।।

सबसे पहले चन्द्रमा का बल समस्त कार्यों में विचार करना चाहिए पश्चात् दूसरे ग्रहों का बल विचारना चाहिए; क्योंकि चन्द्रमा यदि बलवान हो तो सभी ग्रह अपने आप बलशाली हो जाते हैं।।४६।।

क्रमागत–

बलाबलं चन्द्रमसः प्रसाध्य दद्युर्ग्रहेन्द्रा हि बलाबलानि।
मनः प्रचारेण यथेन्द्रियाणि वदन्ति वस्तूनि न केवलानि।।

(वृ.दै.र., पृ० २६९)

हिमकिरणबलमाधारं त्वाधेयं त्वन्यखेटजं वीर्यम्।
आधारस्थान्यखिलान्याधेयान्येव जृम्भन्ते।।४७।।

चन्द्रमा का बल ही आधार है, अन्य सभी ग्रहों का बल आधेय है। अतः आधार में स्थित अन्य सभी आधेय खुल कर फलप्रद होते हैं।।४७।।

।।इति वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षिविरचितायां संहितायां लग्न बलाध्यायस्त्रयोविंशः।।२३।।

।।वृद्ध वसिष्ठ संहिता के 'लग्नबलाध्याय' की नारायणी हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।२३।।

पाठान्तरम्

१ (अ) ज१, २-कर्माणि (कर्मादि)

१ (ब) वा.-आकाशवानु (आकरधातु)

२ (ब) ज१, २-भूषणकार्यादिक (भूषणशिल्पादिकारकं)

४ (ब) ज१, २-सेवाहर्ष (सेवादिकं)

४ (अ) ज१, २-मोक्षणमाखिलाजलकर्म (मोक्षमखिलजलकर्म)

४ (ब) ज१, २-दीर्घिकं, वा.-देविके, ज.मो.-दीर्घिक, (दैविक), ज१, २-शिल्पोत्पाहादि (शिल्पोद्वाहादि)

५ (अ) ज१, २-कृषिकार्य, वा.-कृषिकार्म (कृषिकर्म), वा.-महोहवनवाद्यखिलं (वणिङ्महाहवाद्यखिलम्)

५ (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-वा.-निवेशाशिल्प (वेश्मशिल्पादि)

६ (अ) ज१-कार्यत्वैषविज्ञातवः, ज२-त्वैषविज्ञातवः (कार्यमौषधविज्ञान), ज१, २-पश्चशिल्पादि (पुण्यशिल्पादि)

७ (अ) ज१, २-भांडमानानि (भाण्डकर्माणि)

७ (ब) ज१-सात्रा, ज२-सत्रा (यात्रा), ज१, २-कृषिकर्माणि (कृषिकर्म)

८ (ब) ज१, २-क्षितिपतिवादि (क्षितिपतिवादश्च)

९ (ब) ज१, २-पाठोनास्ति, वा.-भोलेवा (चापभे सेवा)

१० (अ) ज.मो.-शिल्पधान्यानि (शिल्पधान्यादि)

१० (ब) ज१, २-ययुहननाधयोग (यद्रिपुहननोद्योग)

११ (ब) ज१, वा.-ज.मो.-घटलग्ने, ज२-घटलग्नं (घटे लग्ने)

१२ (ब) ज१, २-शैल्यम्, ज.मो.-शैल्यम् (शिल्पम्)

१३ (ब) ज१, २-फलोस्वंदाहशदारूंश्क्त्यम् (फलं वै दातुं शक्ता), ज१, २-भवति (भवन्ति)

१४ (ब) ज१, २-अंत्येतुच्छफलदं, वा.-अंते तुच्छफलदं (अन्ते तु तुच्छफलं)

१५ (अ) ज१, २-लग्नंमितं, ज.मो.-, वा.-लग्नं (लग्नमितं)

१५ (ब) ज१, २-लग्नतृतीयभागो, ज.मो.-लग्ने तृतीय भागो, वा.-लग्नतृतीयभोरगो (लग्नतृतीयोभागो)

१६ (ब) ज१, २-षड्वर्गाभवतु, वा.-षड्वर्गोभवति (षड्वर्गोभवति)

१७ (अ) मु.पु.-बाह्यस्तु (ग्राह्यस्तु)

१७ (ब) ज१, २-सततंत्याज्याः, ज.मो.-सततं तत् त्याज्यः (सततंसंत्याज्यः), ज१, २-पापहयोर्द्धकं, वा.-पाद्धर्यावर्गाः (पापाह्वयो वर्गः)

१८ (अ) ज१, २-कन्यामीनशशयः (कन्यान्त्यराशयः)

१८ (ब) ज१, २-शुभभुवनत्वादन्ये (शुभभवनत्वादन्ये)

१९ (अ) ज१, २-नैधनशुद्र, वा.-लैधनशुद्धे (नैधनशुद्धे)

१९ (ब) ज१-लग्नेगते (लग्नगते), ज१-निवेशस्तुनौनवे, ज२-निवेशस्तुनौनवते, वा.-निर्वशः शुभौनवे (निवेशः शुभो न भोगचरे)

२० (अ) शुभखचराशिं, वा.-शुभखचराघुटताशि (शुभखचरा घट राशिं), वा.-सृज्य (विसृज्य), ज१, २-धनलाभकर्मस्थ (धनलाभलग्नकर्मस्थाः)

२० (ब) मु.पु. अव्यपगा (अव्यारिगा), ज१, २-विपर्णी, वा.-विपरिणां (विपणिं)

२१ (ब) ज१, २, वा.-बुधलग्ने (बुधेलग्न)

२२ (अ) ज१, २-पाठस्यलोपः, वा.-वैकुजे (रवौकुजे)

२३ (अ) ज१, २-सम्पूर्णश्लोकस्य लोपः, वा.-शुभखेचरे (शुभखचरे)

२४ (अ,ब) ज१, २-पाठोनास्ति

२६ (अ) ज२-ग्राम्यैः, वा.-ग्राम्येः, मु.पु.-ग्राम्ये (सौम्ये)

२६ (ब) ज१-नवमेभ्यप्रवेशनं, ज२ नववेशमप्रवेशनं, वा. वसमप्रवेशनं (नवसद्मप्रवेशनं)

२७ (अ) ज१, २-हिबकस्यात् (वृद्धिः स्यात्)

२७ (ब) ज१, २-त्वभिचारामखिलानां (त्वभिचारमखिलं)

२९ (ब) ज१, २-सस्यारामसितदिवसे (सस्यारामादिनिखिलजलकर्म)

३० (अ) ज२-क्रूरैखैचरैर्वलैः (क्रूरखेचरैरबलैः)

३१ (अ,ब) ज१, २-पाठस्यलोपः

३२ (ब) वा.-चषड्वर्गम्, ज.मो.-षड्वर्ग, मु.पु.-षड्वर्गम् (चतद्वर्गम्)

३३ (अ) ज१-लग्ने......रधर्मे च, ज२-लग्नेधर्मे च (लग्नगे बलिनिधर्मे वा)

३४ (अ) ज१, २-गुरुवीक्षितशांत (गरुवीक्षिते शीतगौ)

३४ (ब) ज१-शुभखचरेर्मेधारंभः, ज२-शुभखचरैः एर्मधारंभः (शुभखचरैर्नाट्यारम्भः), ज१, २-नियतं (नूनम्)

३५ (ब) ज१, २, वा.-यत्पुण्यंकर्म (पण्यंकर्म), ज१, २-भेदं (लाभदं)

३७ (अ) ज१-मैत्रभोग्य, ज२-मैत्रभागये (मैत्रभाग्ये), ज१, २-वाथमध्यतिथौ (पक्षमध्यातिथौ), ज१, २-सितसंयुत (सितयुत), ज१, २-विसन्धिः (च सन्धिः)

३८ (ब) ज१, २-वैतालसिद्धिः स्यात् (वैतालकर्म सिद्धिः स्यात्)

३९ (अ) ज१-बुधेत्वहिनि, ज२-बुधेत्वलिनि (बुधे बलिनि)

३९ (ब) ज१, २-वाभिचार, वा.-चाभिवास्यात् (चाभिचारः स्यात्)

४१ (ब) ज१, २-जलभेजीवे (लाभेजीवे), ज१-कृषियालग्ने, ज२-कृषिकृपालग्नं (कृषिक्रियालग्ने)

४३ (अ) ज१, २-वस्त्र भरणानुलेपनं (शस्त्राभरणानुलेपनं)

४५ (अ) ज१, २-सुभग्रहास्तवेतरौ, वा.-शुभप्रदास्त्वितरा (शुभप्रदास्त्वितरे)

४६ (अ) ज१, केतुः (कर्तुः)

४७ (अ) ज१-खौजंवीर्य (खेटजंवीर्यम्)

***

—०—

ज्यौतिष ग्रन्थाः

ग्रहलाघवम् । श्रीगणेशदैवज्ञविरचितम् । '**मल्लारि**' संस्कृत व्याख्या स्वोपज्ञया '**चन्द्रिका**' नाम्नी हिन्दी व्याख्या च समलङ्कृत्या ।
सम्पादको व्याख्याकारश्च— प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय **H.B.** 200.00, **P.B.** 125.00

बृहत् अवकहडाचक्रम् । (ज्योतिषप्रवेशिका) हिन्दी भाषानुवाद सहित ।
व्याख्याकार— डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय 20.00

मानसागरी । '**मनोरमा**' हिन्दी व्याख्या तथा विवेचनात्मक परिशिष्ट सहित ।
व्याख्याकार— डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय 170.00

मुहूर्त्तचिन्तामणिः । सविमर्श '**चन्द्रिका**' संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित ।
व्याख्याकार— प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय 90.00

लीलावती । श्रीमद्भास्कराचार्यविरचिता । सिद्धान्तशिरोमणेः पाटीगणिताख्यं प्रथमप्रकरणम् । सान्वय सोपपत्ति सोदाहरण '**तत्त्वचन्द्रिका**' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेता ।
सम्पादकोऽनुवादकश्च प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय **H.B.** 275.00, **P.B.** 175.00

आर्यभटीयम् । आर्यभटविरचितम् । श्रीसूर्यदेवयज्वप्रणीत 'प्रकाशिका' संस्कृत एवं सुरकान्त झा प्रणीत 'चिद्धर्षिणी' संस्कृत टीका एवं 'माया' नाम्नि हिन्दी टीका सहित।
सम्पादक—डॉ० सुरकान्त झा **H.B.** 325.00, **P.B.** 200.00

कश्यप जातकम्। महर्षिकश्यपप्रणीत। 'अभया' हिन्दी टीका सहित।
टीकाकार–महर्षि अभय कात्यायन 125.00

कुण्डली द्वारा आयु और रोग ज्ञान एवं निदान। जातक शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर जातक-कुण्डली द्वारा सटीक आयु, निश्चयात्मक रोग और उनके ठीक-ठीक उपचार-उपायों के साथ अचूक मन्त्रों तथा वास्तविक रत्नों और स्वाभाविक औषधियों का मार्गदर्शक, अनुपम व एक मात्र संग्रहणीय ग्रन्थ।
लेखक—सुरकान्त झा **H.B.** 350.00, **P.B.** 275.00

ग्रहगति का क्रमिक विकास । श्रीचन्द्र पाण्डेय 100.00

जातकक्रोडम् । श्रीकृष्णदत्तविरचितम् । 'प्रज्ञावर्धिनी' हिन्दी टीका सहित 125.00

जातक-दीपक (Astrological Science)। नवग्रहों का फल-ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी अद्वितीय पुस्तक। संकलनकर्त्ता पं. श्री बालमुकुन्द त्रिपाठी 650.00

जातक-पारिजातः। दैवज्ञश्रीवैद्यनाथविरचितः। '**प्रज्ञावर्द्धिनी**' संस्कृत-हिन्दी टीकाद्वय श्लोकानुक्रमणिका च संवलितः टीकाकारः सम्पादकश्च डॉ० सत्येन्द्र मिश्रः (1-2 भाग)
सजिल्द 1000.00, अजिल्द 600.00

ज्योतिर्गणितम् । स्वकृतव्याख्योदाहरणकोष्ठकादिभिः समलंकृतम्। श्रीवेङ्कटेशरामकृष्णकेतकरैर्विरचितम्। सहसंशोधकौ श्री दत्तात्रेयवेङ्कटेशकेतकरः।
विज्ञप्ति लेखकः डॉ० सुरकान्त झा 425.00

ज्योतिर्विज्ञानशब्दकोषः सुरकान्तसंकलितः। लेखन एवं सम्पादन डॉ० सुरकान्त झा 400.00

(श्री रणवीर)ज्योतिर्महानिबन्ध। मूल लेखक पं. महेशदत्त।
पुनर्लेखन एवं हिन्दी अनु. डॉ. धनीराम शास्त्री। संशोधक संपा.–डॉ. पारसराम शास्त्री 700.00

ज्योतिषदीपिका (शुद्धिदीपिका)। म. म. श्रीश्रीनिवासप्रणीता। 'अभया' हिन्दी टीका सहित।
टीकाकार—महर्षि अभयकात्यायन। **H.B.** 275.00, **P.B.** 160.00

ताजक-विज्ञान (वर्षफलित-विज्ञान) । श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री 175.00

Also can be had from : **Chowkhamba Sanskrit Series Office,** Varanasi.

ISBN : 978-81-218-0363-2 ₹ 400.00

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo.9839814784